RNI-UPBIL/2011/38102

ISSN-2231-5837

Indian Journal of Social Concerns

इण्डियन जर्नल ऑफ सोशल कन्सर्न्स

(मानविकी एवं समाज विज्ञान पर केन्द्रित अन्तर्राष्ट्रीय त्रैमासिक शोध पत्रिका)

Volume -11: Issue - 45 Jan. - Mar. 2022 Gaziabad

A RESEARCH JOURNAL OF HUMANITIES AND SOCIAL SCIENCES

(An International Peer-Reviewed & Refereed Journal)

Journal Impact Factor No. : 6.419

Editor
Dr. RAJ NARAYAN SHUKHLA

Guest Editor
Dr. Laxmikant Tripathi

Editor in Chief
Dr. HARI SHARAN VERMA

Asstt. Editor
MUKTA SONI

Sub Editor
Dr. PUSHPA
Dr. BEENA PANDEY (SHUKLA)

Art Editor
(MS) MANISHA VERMA

Managing Editor
Dr. SANGEETA VERMA

Legal Advisor
Dr. JASWANT SAINI
SHRI BHAGWAN VERMA

Joint Editor
Dr. PRIYANKA SINGH

Office Assistant
JITENDER GIRDHAR

Computer Operator
MS. NEHA VERMA

- The responsibility of the originality of the articles/papers shall be of the author.
- The editor does not owe any kind of responsibility in this regard

Dr. Laxmikant Tripathi
Guest Editor

Dr. Hari Sharan Verma
Editor in Chief

Dr. Raj Narayan Shukhla
Editor

Dr. Sangeeta Verma
Managing Editor

मानविकी शोध पीठ प्रारम्भ सोसायटी,
गाज़ियाबाद द्वारा संचालित

प्रकाशक : डॉ० राजनारायण शुक्ला, सम्पादक
SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ० प्र०)
दूरभाष : 9910777969
E-mail : *harisharanverma1@gmail.com*
WWW.IJSCJOURNAL.COM

सहयोग राशि (भारत में)
(व्यक्तिगत) (आजीवन 4100 रुपये)
(संस्थागत) (आजीवन 6100 रुपये)

विदेश में :–
(व्यक्तिगत) 26 यू.एस. डॉलर (आजीवन) (संस्थागत) 32 यू.एस. डॉलर (आजीवन)

कृपया सहयोग राशि बैंक ड्राफ्ट से ही भेजें।
बैंक ड्राफ्ट, संपादक "इण्डियन जर्नल ऑफ सोशन कन्सर्न्स" के पक्ष में देय होगा। आजीवन सदस्यता केवल दस वर्षों के लिए मान्य होगी। यदि किसी कारणवश पत्रिका का प्रकाशन बन्द हो जाता है तो आजीवन सदस्यता स्वतः ही समाप्त हो जायेगी।

संपादकीय कार्यालय :

1. **डॉ० हरिशरण वर्मा, प्रधान सम्पादक**
F-120, सेक्टर–10, DLF, फरीदाबाद (हरियाणा)
harisharanverma1@gmail.com 09355676460
WWW.IJSCJOURNAL.COM

2. **डॉ० राजनारायण शुक्ला, सम्पादक**
SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ०प्र०)

क्षेत्रीय सम्पादक

1. डॉ० वाई.आर. शर्मा, A-24, रेजिडेंसल कैम्पस, न्यू कैम्पस, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू–180001, फोन : 09419145967
2. डॉ0 सलमा असलम, ओल्ड टाउन बारामुला, कश्मीर पिन– 193101, मौ0 9682162934
3. डॉ0 आरती लोकेश P.o.Box 99846, Dubai, UAE 97150-4270752
4. श्री मोहनलाल, 11 अशोक विहार, संजय नगर, पो. इज्जत नगर बरेली (उ०प्र०) फोन : 09456045552
5. श्री जितेन्द्र गिरधर, कार्यालय सहायक 105/26 जवाहर नगर, कॉपरेटिव बैंक के पीछे, रोहतक 09896126686
6. डॉ0 विमला देवी, सहायक प्रोफेसर (इतिहास) स्वामी विवेकानन्द राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय लोहाघाट चंपावत (उत्तराखण्ड)–262524 – 9411900411
7. डॉ0 प्रिया कपूर, सहायक प्रोफेसर, डी0 ए0 वी शताब्दी कालेज, फरीदाबाद मौ0 9711196954
8. डॉ0 किरण मिश्रा, सहायक प्रोफेसर, हिन्दी, राम गुलाम राय पी0 जी0 कालेज, देवरिया गोरखपुर–273001 मौ0 :7007018819
9. डॉ0 ऊषा रानी, हिन्दी–विभाग हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला–5
10. विमला टोप्पो, एस0 आर0 इंटरप्राइसेस म्युनिसिपल काम्पलेक्स सोप न0 4, डेरी फार्म, पोर्ट बलेयर, पी0 ओ0 जंगली घाट–744103 साउथ अंडमान

संरक्षक मण्डल :

1. **डॉ0 दिनेश मणी त्रिपाठी**, प्रधानाचार्य एन0 पी0 के0 आई कालेज, सरदार नगर बसडीला (गोरखपुर) उ0प्र0
2. **डॉ० राजेन्द्र सिंह,** (पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय राहतक
3. **डॉ० रमेशचन्द लवानिया,** (पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग, शम्भु दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद
4. **डॉ० वाई.आर.शर्मा,** (राजनीति शास्त्र विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू)
5. **डॉ0 सुंधांशु कुमार शुक्ल** चेयर हिन्दी, आई. सी. सी. वार्सा विश्वविद्यालय, वार्सा (पोलैन्ड) मौ0 48579125129
6. **सुदेश रावत** प्रांचार्या एस. एन. आर. जयराम महिला कॉलेज, लोहार माजरा, कुरूक्षेत्र हरियाणा 36119 (सेठ नारंग राय लोहिया जय राम महिला कॉलेज)

परामर्शदात्री समिति :

1. **डॉ० नरेश मिश्रा** (पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
2. **डॉ० सुधेश** (पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली)
3. **डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल** (पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर)
4. **डॉ० राजकुमारी सिंह,** प्रोफेसर एफ.टी.एम. विश्वविद्यालय लोधीपुर राजपूत मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश 9760187147
5. **डॉ0 जंगबहादुर पांण्डेय** (पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग) रांची विश्वविद्यालय, रांची – 834008 फोन : 09431595318
6. **डॉ० माया मलिक,** पूर्वप्रोफेसर हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
7. **डॉ० ममता सिहल,** (एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा अंग्रेजी विभाग) जे०वी० जैन कॉलेज सहारनपुर

संपादकीय विशेषज्ञ समिति :
हिन्दी विभाग:

1. **डॉ० राजेश पाण्डे** (डी.वी. कॉलेज, उरई, जिला जालौन, उ०प्र०)
2. **डॉ0 अनिता, सहायक प्रोफेसर**, (हिन्दी), श्री अरबिन्दो कालिज (सांध्य) मौ0 :8595718895
3. **डॉ० सुशील कुमार शर्मा** (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय शिलांग, मेघालय)
4. **डॉ० शशि मंगला,** पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पलवल
5. **डॉ० के०डी० शर्मा,** एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पलवल
6. **डॉ० उत्तरा गुप्ता** (पूर्व रीडर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, आर. एन. कॉलेज, मेरठ)
7. **मुकेश चन्द्र गुप्ता** (हिन्दी विभाग, एम.एच.पी.जी. कॉलेज, मुरादाबाद)
8. **डॉ० गीता पाण्डेय** (रीडर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद)

9. **डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा** (सह प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग) गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय, पलवल गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय, पलपल
10. **कु० महाविद्या उपाध्याय** (हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, आरोना (गु॰ प्रोफेसर हिन्दी विभाग कश्मीर
11. **डॉ० रूबी,** (सीनियर सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग कश्मीर
12. **डॉ0 सुमन राठी,** सहायक प्रो0 हिन्दी विभाग, मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर रोहतक
13. **डॉ० अनिल कुमार विश्वकर्मा** (जनता महाविद्यालय अजीतमल, औरेया, उ०प्र०)
14. **डॉ० एम. के. कलशेट्टी,** हिन्दी विभाग, श्री माधवराव पाटिल महाविद्यालय, मुरूम तह० अमरगा, जिला उस्मानाबाद (महाराष्ट्र)–413605
15. **डॉ० मनोज पंड्या,** व्याख्याता हिन्दी विभाग, श्री गोविन्द गुरु, राजस्थान महाविद्यालय, बांसवाड़ा–327001, मो० 09414308404
16. **डॉ. कृष्णा जून,** प्रो० हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
17. **डॉ. विपिन गुप्ता,** सहायक प्रोफेसर, वैश्य कॉलेज भिवानी
18. **डॉ० सीता लक्ष्मी,** पूर्व प्रो० एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, आन्ध्र विश्वविद्यालय, विशाखापट्टनम, आन्ध्रप्रदेश
19. **डॉ० जाहिदा जबीन,** (प्रो0 एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर–६)
20. **डॉ० टी०डी० दिनकर,** (एसो० प्रो० एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, अग्रवाल कॉलेज, बल्लभगढ़)
21. **डॉ० सुभाष सैनी,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग दयालसिंह कॉलेज, करनाल, हरियाणा
22. **डॉ० उर्विजा शर्मा,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग शम्भु दयाल स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, गाजियाबाद
23. **डॉ० कामना कौशिक,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग एम.के. स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, सिरसा 09896796006
24. **डॉ० मधुकान्त,** (वरिष्ठ साहित्यकार) 211- L मॉडल टाऊन, रोहतक
25. **डॉ0 कंचन पुरी, विभागध्यक्ष,** रघुनाथ गर्ल्स पी0 जी0 कालेज मेरठ
26. **डॉ0 प्रवेश कुमारी ,** सहायक प्रो0 हिन्दी बाबा मस्तराथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर रोहतक

अंग्रेजी विभाग:

1. **डॉ. ममता सिहल, अध्यक्षा,** अंग्रेजी विभाग, जे.वी. जैन कॉलिज, सहारनपुर, उ.प्र.
2. **डॉ. रणदीप राणा, प्रोफेसर,** अंग्रेजी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
3. **डॉ. जयबीर सिंह हुड्डा, प्रोफेसर,** अंग्रेजी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
4. **डॉ० रविन्द्र कुमार,** एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष अंग्रेजी विभाग, चौ० चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ
5. **डॉ. अनिल वर्मा** (पूर्व रीडर, अंग्रेजी विभाग, जे.वी. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहारनपुर)
6. **डॉ0 जे. के. शर्मा,** प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक
8. **डॉ. पी.के. शर्मा,** (प्रो., अंग्रेजी–विभाग, राजकीय के.आर.जी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर)
9. **डॉ. गीता रानी शर्मा,** (सहायक प्रोफेसर) गो.ग.दत्त सनातन धर्म कॉलेज, पलवल
10. **डॉ. किरण शर्मा,** (एसोसिएट प्रोफेसर) राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय रोहतक

वाणिज्य विभाग:

1. **डॉ० नवीन कुमार गर्ग** (वाणिज्य विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० ए.के. जैन,** पूर्व रीडर (वाणिज्य विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर)
3. **डॉ० दिनेश जून,** एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फरीदाबाद
4. **डॉ० एम.एल. गुप्ता,** (पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, वाणिज्य एवं व्यवसायिक प्रशासन संकाय, एस.एस.वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हापुड़ एवं संयोजक–शोध उपाधि समिति एवं संयोजक बोर्ड ऑफ स्टीडिज चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ)
5. **डॉ० वजीर सिंह नेहरा,** प्रोफेसर वाणिज्य विभाग, म.द.वि. रोहतक
6. **डॉ० संजीव कुमार,** प्रोफेसर वाणिज्य विभाग, म.द.वि. रोहतक
7. **डॉ. गीता गुप्ता,** (सहायक प्रोफेसर) वाणिज्य विभाग, वैश्य महिला महाविद्यालय, रोहतक)
7. **डॉ. नरेन्द्रपाल सिंह,** (एसोसिएट प्रोफेसर) वाणिज्य विभाग, साहू जैन कॉलेज, नजीबाबाद, उ.प्र.)

राजनीति शास्त्र विभाग:

1. **साकेत सिसोदिया,** (राजनीति शास्त्र विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद)
2. **डॉ० रोचना मित्तल** (रीडर एवं अध्यक्षा, राजनीति शास्त्र–विभाग, शम्भु दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
3. **डॉ० कौशल गुप्ता,** एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, देशबन्धु महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली **Mob.: 09810938437**
4. **डॉ०पी.के. वार्ष्णेय**, पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, जे.वी.जैन कॉलेज, सहारनुपुर
5. **डॉ० सुदीप कुमार,** सहायक प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, पेहवा (कुरुक्षेत्र) **Mob.: 9416293686**
6. **डॉ० वाई०आर० शर्मा,** एसो० प्रो०, राजनीति शास्त्र विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू (कश्मीर)
7. **डॉ. रेनू राणा,** (सहायक प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, पं. नेकीराम शर्मा राजकीय महाविद्यालय रोहतक 124001
8. **डॉ. ममता देवी,** (सहायक प्रोफेसर, राजनीतिक शास्त्र विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

इतिहास विभाग:

1. **डॉ० भूकन सिंह** (प्रवक्ता, इतिहास विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० मनीष सिन्हा,** पी.जी. विभाग, इतिहास, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार–824231
3. **डॉ० राजीव जून,** सहायक प्रो० इतिहास, सी.आर इन्स्टीट्यूट ऑफ ला, रोहतक
4. **डॉ० मीनाक्षी** (सहायक प्रोफेसर इतिहास विभाग) सी.आर. किसान कॉलेज, जीन्द

भूगोल विभाग:

1. **डॉ० पी.के शर्मा,** पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, भूगोल विभाग, जे.वी. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहारनपुर
2. **रश्मि गोयल** (भूगोल विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद)
3. **डॉ० भूपेन्द्र सिंह,** एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, राजकीय पी.जी. कॉलेज, हिसार
4. **डॉ० विनीत बाला,** सहायक प्रो. भूगोल विभाग, वैश्य पी.जी. कॉलेज, रोहतक
5. **डॉ0 प्रदीप कुमार शर्मा**, एसोसिएट प्रोफेसर, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक

शिक्षा विभाग:

1. **डॉ० उमेन्द्र मलिक,** एसिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, म.द.वि. , रोहतक
2. **डॉ० संदीप कुमार,** सहायक प्रो० शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्लीएसोसिएट
3. **डॉ० तपन कुमार बसन्तिया,** एसोसिएट प्रोफेस, सैंटर फॉर एजुकेशन, सैंट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ विहार, गया कैम्या, विनोभा नगर, वार्ड नं. **29**, **Behind ANMCH** मगध कालोनी, गया–**823001**बिहार**Mob.: 09435724964**
4. **डॉ० (प्रो०) अनामिका शर्मा,** प्राचार्या, एम.आर. कॉलिज ऑफ एजुकेशन, फरीदाबाद
5. **डॉ० मनोज रानी,** सहायक प्रोफेसर (अंग्रेजी) एम.एल.आर.एस. कॉलिज ऑफ एजुकेशन, चरखी दादरी (भिवानी)
6. **डॉ० अनीता ढाका,** (प्राचार्या, आर.जी.सी.ई. कॉलेज, ग्रेटर, नोएडा।)
7. **डॉ० ममता देवी,** (सहा. प्रो. बी.आई.एम.टी. कॉलेज कमालपुर गढ़ रोड़, मेरठ)

गृह विज्ञान

1. **डॉ0 श्रीमती पंकज शर्मा,** (सहायक प्राफेसर), गृह विज्ञान (प्रसार शिक्षा) राजकिय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रोहतक

शारीरिक शिक्षा विभाग:

1. **डॉ० सरिता चौधरी,** सहायक प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग, आर्य गर्ल्ज कॉलेज, अम्बाला कैंट, हरियाणा
2. **डॉ० वरुण मलिक,** सहायक प्रोफेसर, म.द.वि., रोहतक
3. **डॉ० सुनील डबास,** (पद्मश्री व द्रोणाचार्य अवार्ड) HOD in physical education"DGC Gurugram

समाज शास्त्र विभाग:

1. **प्रवीण कुमार** (समाजशास्त्र विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० कमलेश भारद्वाज,** समाज शास्त्र विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद

मनोविज्ञान विभाग:

1. **डॉ० चन्द्रशेखर,** सहायक प्रोफेसर साईक्लोजी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू
2. **डॉ. रश्मि रावत,** (मनोविज्ञान विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, देहरादून)
3. **अनिल कुमार लाल** (प्रवक्ता, मनोविज्ञान विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)

अर्थशास्त्र विभाग:

1. **डॉ० जसवीर सिंह** (पूर्व रीडर अर्थशास्त्र विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मवाना)
2. **डॉ० सुशील कुमार** (एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद, उ०प्र०)
3. **डॉ० अखिलेश मिश्रा** (प्राध्यापक, अर्थशास्त्र–विभाग, एस.डी.पी. जी. कॉलेज, गाजियाबाद)
4. **डॉ० सत्यवीर सिंह सैनी,** एसो०प्रो० (अर्थ०वि०, गो०ग० सनातन धर्म पी०जी० कॉलेज, पलवल)
5. **डॉ० सारिका चौधरी,** अध्यक्ष अर्थशास्त्र विभाग, दयाल सिंह कॉलेज करनाल

विधि विभाग:

1. **डॉ० नरेश कुमार,** (प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
2. **डॉ० विमल जोशी,** (प्रोफेसर, विधि–विभाग भगत फूलसिंह महिला विश्वविद्यालय खानपुर, सोनीपत)
3. **डॉ० जसवन्त सैनी,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
4. **डॉ० वेदपाल देशवाल,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
5. **डॉ. अशोक कुमार शर्मा,** एसो. प्रोफेसर, विधि विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर
6. **डॉ. राजेश हुड्डा,** सहायक प्रो०, विधि विभाग, बी.पी.एस. महिला विश्वविद्यालय, खानपुर कलां, सोनीपत
7. **डॉ० सत्यपाल सिंह,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
8. **डॉ० सोनू,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
9. **डॉ० अर्चना वशिष्ठ,** (सहायक प्रोफेसर, के०आर० मंगलम विश्वविद्यालय, सोहना रोड, गुरुग्राम)
10. **डॉ० आनन्द सिंह देशवाल,** (सहायक प्रोफेसर, सी०आर० कॉलेज ऑफ लॉ रोहतक)
11. **अनसुईया यादव,** (सहायक प्रोफेसर, विधि विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा)

गणित विभाग:

1. **डॉ० विनोद कुमार,** रीडर एवं अध्यक्ष गणित विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर
2. **डॉ० विरेश शर्मा,** लेक्चरर गणित विभाग, एन.ए.एस. कॉलेज, मेरठ
3. **डॉ0 सलौनी श्रीवास्तव** सहायक प्रो0, गणित विभाग आर0 बी0 एस0 कालेज आगरा

कम्प्यूटर विभाग:

1. **प्रो० एस.एस. भाटिया** (अध्यक्ष, स्कूल ऑफ मैथमेटिक्स एण्ड कम्प्यूटर एप्लीकेशन, थापर विवि, पटियाला)
2. **सर्वजीत सिंह भाटिया** (प्रवक्ता, कम्प्यूटर साईंस, खालसा कॉलेज, पटियाला)
3. **डॉ० बालकिशन सिंहल,** सहायक प्रोफेसर, कम्पयूटर विभाग, म०द०विश्वविद्यालय, रोहतक

संस्कृत विभाग:

1. **डॉ० रामकरण भारद्वाज** पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, लाजपत राय कॉलेज, साहिबाबाद (गाजियाबाद)
2. **डॉ० सुनीता सैनी,** एसो0 प्रोफेसर संस्कृत विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
3. **डॉ० साधना सहाय** पूर्व प्राचार्या, नेशनल इस्माईल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ
4. **डॉ० सुमन,** (सहायक प्रोफेसर, संस्कृत–विभाग, आदर्श महिला महाविद्यालय, भिवानी।)
5. **डॉ0 दिनेश मणि त्रिपाठी {प्रधानाचार्य}** एल ० पी ० के ० इंटर कॉलेज सरदार नगर बसडिला {गोरखपुर}
6. **डॉ0 दानपति तिवारी,** प्रोफेसर, एवं अध्यक्ष, साकेत पी0जी0 कालेज, अयोध्या उत्तर–प्रदेश

रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग:

1. **डॉ० आर०एस० सिवाच,** प्रो० एवं अध्यक्ष, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, म०द०वि०, रोहतक

दृश्यकला विभाग:

1. **डॉ० सुषमा सिंह,** एसोसिएट प्रोफेसर, दृश्यकला विभाग, म०द० विश्वविद्यालय, रोहतक

पंजाबी विभाग:

1. **डॉ० सिमरजीत कौर,** सहायक प्रो० (पंजाबी), ईश्वरजोत डिग्री कालेज, पेहवा (कुरूक्षेत्र)

संगीत विभाग:

1. **डॉ० संध्या रानी,** अध्यक्षा, संगीत विभाग, यूआरएलए, राजकीय पीजी कॉलेज, बरेली
2. **डॉ० हुकमचन्द,** एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष तथा डीन, संगीत विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा
3. **डॉ. अनीता शर्मा,** (संगीत–गायन प्राध्यापिका, जयराम महिला महाविद्यालय लोहारमाजरा (कुरुक्षेत्र)
4. **डॉ. वन्दना जोशी,** (सहायक प्राध्यापक, विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा)

पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग:

1. **डॉ० सरोजनी नंदल,** प्रोफेसर (पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग) महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

उर्दू विभाग:

1. **डॉ० मो. नूरूल हक,** (एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, उर्दू, बरेली कॉलेज, बरेली)

An update on UGC - List Journals

The UGC List of Journals is a dynamic list which is revised periodically. Initially the list contained only journals included in Scopus, Web of Science and Indian Citation Index. The list was expanded to include recommendations from the academic community. The UGC portal wasa opended twice in 2017 to universities to upload their recommendations based on filtering criteria available at https://www.ugc.ac.in/journallist/methodology.pdf. The UGC approved list of Journals is considered for recruitment, promotion and career advancement not only in universities and colloges but also other institutions of higher education in India. As such, it is the responsibillity of UGC to curate its list of approved journals and to ensure the it contains only high-quality journals.

To this end, the Standing Committee on Notification on Journals removed many poor quality/predatory/questionable journals from the list between 25th May 2017 and 19th Septemeber 2017. This is an ongoing process and since then the Committee has screened all the journals recommended by universities and also those listed in the ICI, which were re-evaluated and rescored on filtering criteria defined by the Standing Committee. Based on careful and analysis, 4,305 journals were removed from the current UGC-Approved list of Journals on 2nd May, 2018 because of poor quality/incorrect or insufficient information/false claims.

The Standing Committee reiterates that removal/non-inciusion of a journal does not necessarily indicate that it is of poor quality, but it may also be due to non-availability of information such as details of editorial board, indexing information, year of its commencement, frequency and regularity of its publication schedule, etc. It may be noted that a dedicated web site for journals is once of the primary criteria for inclusion of journals. The websites should provide full postal addresses, e-mail addresses of chief editor and editors, and at least some of these addresses ought to be verifiable official addresses. Some of the established journals recommended by universities that did not have didicated websites, or websites that have not been updated, might have bee dropped from the approved list as of now. However, they may be considered for re-inclusion once they fulfil these basic criteria and are re-recommended by universities.

The UGC's Standing Committee on Notification on Journals has also decided that the recommendation portal will be opened once every year for universites to recommend journals. However, from this year onwards, every recommendation submitted by the universities will be reviewed under the supervision of Standing Committee on Notification of Journals to ascertain that only good-quality journals, with correct publication details, are included in the UGC approved list.

The UGC would also like to clarity that 4,305 journals which have been removed on 2nd May, 2018 were UGC-approved journals till that date and, as such, articles published/accepted in them prior to 2nd May 2018 by applicants for recruitment/promotion may be considered and given points accordingly by universities.

The academic community will appreciate that in its endeavour to curate its list of approved journals, UGC will enrich it with high-quality, peer-reviewed journals. Such a dynamic list is to the benefit of all.

LIFE MEMBERS OF INDIAN JOURNAL OF SOCIAL CONCERNS

1. **Dr. Praveen Kumar Verma**
Associate Professor, Hindi Department, GGD Sanatan Dharam Post Graduate College, Palwal.

2. **Smt. Veena Pandey (Shukla)**
Hindi Teacher, Jawahar Navodya Vidyalya, Dhoom Dadri, Distt. Gautambudhnagar - 203207 (U.P.)

3. **Dr. Kiran Sharma**
Asso.Professor, English Department, Govt. P.G. College (Women), Rohtak (Haryana)

4. **Dr. Narayan Singh Negi**
H.No. 15, Umracoat, langasu-246446, Distt. Chamoli, Uttrakhand.

5. **Dr. Sarika Choudhary**
Head Department of Economics, Dyal Singh College, Karnal (Haryana)

6. **Dr. Suman**
H.No. 1001, Radha Swami Colony, Rohtak Road, Bhiwani (Haryana)

7. **Dr. Reshma Singh**
Assistant Professor, English Department, J.V. Jain College, Saharanpur (U.P.)

8. **Dr. Savita Budhwar**
Assistant Professor, K.V.M. Narsing College, Rohtak.
H.No. 196/29, Gali No. 9, Ram Gopal Colony, Rohtak.
Mob. 9996363764

9. **Principal**
Sat Jinda Kalyana College, Kalanaur (Rohtak, Haryana) 124113

10. **Dr. Renu Rana**
Assistant Professor Department of (Political Science) Pt. Nekiram Sharma Govt. College Rohtak-124001
H.No. 1355, Sect-2, Rohtak

11. **Dr. Mamta Devi**
Assistant Professor Department of Polt. Science Hindu Girls College, Sonepat (Haryana)
H. No. 2066, Sect. 2 (P), Rohtak 124001

12. **Dr. Subhash Chand Saini** (Hindi Department, Dyal Singh College, Karnal, Haryana

13. **Dr. Sarita Dahiya** (Department of Education, Maharshi Dayanand University, Rohtak 8222811312

14. **Dr. Vimla Devi,** Assistant Professor (History), Swami Vivekanand Govt. (PG) College, Lohaghat, Champawat (Uttrakhand)

15. **Princepal,** Associat Professor (Hindi), Aggarwal College, Ballabhgarh (Haryana)

16. **Dr. Dinesh Mani Tirpathi (Principal)** L-P=-K Inter College sardar Nagar, Basdila Gorkhpur

सम्पादकीय

डॉ० लक्ष्मीकांत त्रिपाठी,

इक्कीसवीं सदी का पिछला दशक और खासकर पिछले दशक के कोरोना और पोस्ट–कोरोना पीरियड के विगत ढाई वर्ष राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय क्षितिज पर काफी उथल–पुथल वाले घटनाक्रम से आच्छादित रहे हैं। विचारजगत पर इस उथल–पुथल की प्रतिध्वनि और अभिव्यक्ति स्वाभाविक थी। ह्वाट्स ऐप, फेसबुक,ट्विटर आदि सोशल मीडिया और हड़काऊ–भड़काऊ की फूहड़ शैली वाले पेड–कम–सरकारी मीडिया पर उक्त घटनाक्रम के त्वरित और रोमांचक टिप्पणीकार सदैव (24×7) क्रियाशील रहते हैं। किन्तु इन घटनाक्रम की गम्भीर और स्थितप्रज्ञ गवेषणा के प्लेटफार्म गिने–चुने हैं। ऐसी स्थिति में गम्भीर व विश्वसनीय शोध–पत्रिकाओं में प्रकाशित शोधपत्रों का महत्व स्वयंसिद्ध है:'इण्डियन जर्नल ऑफ सोशल कंसर्न्स' का योगदान इस दिशा मे अप्रतिम है।

वाल्टेयर केवल गद्य की विधा को ही गम्भीर साहित्य मानता है किन्तु यह शोधपत्रिका गद्य, पद्म, नाटक आदि साहित्य की समस्त विधाओं पर उदारतापूर्वक शोधपत्र प्रकाशित करती है।

यूनान के महान् दार्शनिक प्लेटो ने आदर्श राज्य की स्थापनार्थ शिक्षण और प्रशिक्षण के माध्यम से दार्शनिक शासक तैयार करने हेतु एथेंस में अकादमी (387BC) स्थापित की जहां साहित्य, संगीत,कला,शारीरिक शिक्षा,राजनीति,प्रशासन,भूगोल, अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र आदि की शिक्षा दी जाती थी।तत्कालीन श्रेष्ठतम् विषय विशेषज्ञों के साथ स्वयं प्लेटो यहां पढ़ाता था और अरस्तू 20 वर्षों तक अकादमी का सर्वोत्कृष्ट क्षात्र(Mind of Academy) था। अकादमी के मुख्य द्वार पर लिखा था कि ज्यामितीयज्ञान के अभाव मे प्रवेश वर्जित है।

इण्डियन जर्नल ऑफ सोशल कंसर्न्स एक प्रकार से 21वी सदी में अकादमी का प्रिंट एडिशन है क्योंकि जर्नल मे साहित्य, संगीत,कला,शारीरिक शिक्षा,राजनीति,प्रशासन,भूगोल, अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र और गणित मे उच्चकोटि के मौलिक– शोधपत्र प्रकाशित होते हैं।

इसी क्रम मे द्विमाषीय–त्रैमासिक– शोध–पत्रिका का 47वां अप्रैल–जून 2022 अंक आपके हाथों में है...

डॉ० लक्ष्मीकांत त्रिपाठी
एसोसिएट प्रोफेसर–राजनीति विज्ञान,
फ़ीरोज़ गाँधी कालेज,
राय बरेली,(उप्र) पिन–229001
मोबाइल 7007760947
email: &lktripathi7@gmail-com

संक्षिप्त परिचय

डॉ० लक्ष्मीकांत त्रिपाठी,

डॉ० लक्ष्मीकांत त्रिपाठी
एम.ए., पी–एच. डी.(राजनीति विज्ञान)
सी. एस.0जे. एम. यूनिवर्सिटी,
कानपुर
प्रकाशित पुस्तक: Prison Administration in U-P- (Five Decades of Nurturing the Abode of Vultures since 1937)

M- Karunanidhi& A Great Democrat and friend of Dalits
अन्य प्रकाशनः
(प)प्रतिष्ठित शोधपत्रिकाओं मे लगभग 24 शोधपत्र।
(पप) राष्ट्रीय सेमिनार, कान्फ्रेंस, वर्कशाप व शार्ट– टर्म कोर्स (UGC & ICSSR Sponsored)मे अनुभाग, शोधपत्र प्रस्तुति,रिसोर्स पर्सन और सत्र की अध्यक्षता।
(पपप) दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र–पत्रिकाओं मे लगभग 50 आलेख।
सम्प्रतिः

एसोसिएट प्रोफेसर(राजनीतिविज्ञान)
फ़ीरोज़ गाँधी कालेज
राय बरेली(उप्र) २२६००१
निवर्तमान एसो० प्रोफेसर
साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या
सम्पर्कः
मो० ७००७७६०६४७
email: &lktripathi7@gmail-com

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ स.
1.	तहसील फरीदपुर (जनपद बरेली) में समन्वित ग्रामीण विकास नियोजन–एक भौगोलिक विश्लेषण	डॉ0 ए0 के0 एस0 राना, बादाम सिंह	12–16
2.	भारत में एक देश एक चुनावी मुद्दे का समीक्षात्मक अध्ययन	Dr. Mamta Narwal, Aadil Goyat	17–22
3.	सोनीपत जिले की बदलती साक्षरता दर (2001–2011) का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ० प्रदीप कुमार शर्मा, नेहा रानी	23–25
4.	स्त्री चेतना और स्त्री का स्वत्व के लिए संघर्ष	प्रोफ़ेसर पुष्पा	26–30
5.	''स्वयं सहायता समूह का स्वरूप हरियाणा के सन्दर्भ में''	डॉ0 मनजीत कुमार	31–33
6.	आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी जगत् के एक अतुलनीय हस्ताक्षर	डॉ0 निर्भय शर्मा	34–37
7.	डॉ0 रामनिवास 'मानव' का साहित्यिक पतन के प्रति आक्रोश	डॉ0 महिमा	38–42
8.	दुष्यन्त कुमार का साहित्य शिल्प के प्रति सरोकार	सविता सुपुत्री श्री आत्माराम	43–46
9.	शोधःदृष्टि और सृष्टि	डॉ0 जंग बहादुर पाण्डेय'तारेश'	47–50
10	गृहस्थाश्रम और महाभारत	दीपमाला	51–52
11	आधुनिक संस्कृत महाकाव्यों की वर्तमान में प्रासंड़िकता	गरिमा सिंह	53–54
12	शोध–विषय व शोध–शीर्षक का चयन	डॉ0 दिनेशमणि त्रिपाठी, डॉ0 दानपति तिवारी	55–57
13	भारतीय संगीत के अवनद्व बाद्यों को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं उनका महत्त्व	डॉ0 वन्दना जोशी, पूनम आर्या	58–61
14	'' भारतीय शास्त्रीय संगीत में तबले के प्रमुख घरानें . एक अध्ययन	डॉ0 गोविन्द सिंह बोरा	62–65
15.	प्रेमचन्द के साहित्य में सामाजिक विडंबनाएं	सुशीला	66–67
16.	सामाजिक वानिकी	डॉ0 रानी त्रिपाठी, ज्योत्सना गुप्ता	68–72
17.	प्रेमचन्द के साहित्य में स्त्री विमर्शः–	अमित चौधरी	73–77
18.	मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नारी उत्पीड़न का चित्रण	डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा	78–81
19.	हिन्दी पत्रकारिता का उद्भव और विकासः–	अमित चौधरी	82–88
20.	सुदर्शन प्रियदर्शिनी का व्यक्तित्व एंव उनका साहत्यिक योगदान	Shugufta Ali	89–92
21.	मैथिलीशरण गुप्त की भारत–भारती में राष्ट्रीय भावना	डॉ0 सुखवीर सिंह	93–95
22.	न्यू मीडिया में हिन्दी भाषा के प्रभावः एक अध्ययन	डॉ0 नरेश कुमारी	96–99
23.	समाजोत्थान में आधुनिक रामकाव्यों की भूमिका	डॉ0 सुखवीर सिंह	100–102
24.	जन कवि नागार्जुनःसृष्टि और दृष्टि	डॉ0 प्रकाश कुमार	103–105
25.	भारतीय संगीत का दिल्ली घराना दिल्ली घराने की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :	डॉ0 जगदीश कुमार	106–112
26.	विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यास– "दीवार में एक खिड़की रहती थी" में "घर" मानव और "प्रकृति"	डॉ0 राजनारायण शुक्ल, डॉ0 बीना पांडे	113–116
27.	मिधु कॉकरिया के उपन्यास 'सलाम आखिरी'में वेश्या त्रासदी	डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा	117–121
28.	अभिमन्यु अनत कृत उपन्यास का कथानक तथा मारिशस जीवन पर गांधी का प्रभाव	डॉ0 संगीता वर्मा	122–124
29.	हिंसा रहित प्रबुद्वसमाज का अन्वेषण	डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा	125–128
30.	उत्तर–आधुनिकता की ध्वनि और प्रतिध्वनि का व्याकरण	डॉ० लक्ष्मी कान्त त्रिपाठी	129–131
31.	EARTHQUAKE: A CONCEPTUAL FRAMEWORK IN INDIAN PERSPECTIVE	Udit Rana	132–135
32.	A Critical Analysis of Water Pollution and it's Laws in India	Dr. Pardeep Kumar Sharma	136–141
33.	Challenges Among Woman Enterpreneurship In Rajasthan	Dr. G.P. Acharya	142–147
34.	Role of Structuralism In Literature	Dr. Poonam Nigam Sahay, Priya	148–151
35.	An Analytical Study of hydro Politics in Indian Subcontinent	Ajit Singh	152–155
36.	Significance of Communication Skills and Spoken English for Learners of English Language	Dr. Poonam Mor, Dr. Aparna	156–158
37.	Queer Community Right to Sexual Orientation: An Analytical Study	Dr. Seema Devi	159–162
38.	A Study of Achievement In Academics Of Senior Secondary School Students In Relation To Concept Attainment	Dr Umender Malik	163–165
39.	Drug Use and Anti-Social Behaviour of Young Drug Addicts	Nisha Rani	166–172
40.	Perspective of Feminism in Nagamandala	Pradip Kr. Singh	173–174

अनुक्रमणिका

क्र. विषय लेखक पृष्ठ स.

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ स.
41.	An Appraisal Of The Growth Performance of The Indian Economy During The First Half of The Twentieth Century	Shailendra Tripathi	175–177
42.	Effects of Materials Management on the Productivity of an Organization"	Dr. Santosh Kumar Sharma	178–181
43.	Socio-economic Contribution Of Livestock And Prospects	Dr. (Mrs) Mukesh Yadav	182–185
44.	Commentary on United States — Continued Suspension of Obligations in the EC — Hormones Dispute decided by DSB	Ruchi Aggarwal	186–188
45.	A Research on Problem of Suicide among Small and Marginal Farmers in India	Mrs. Vishakha Sharma	189–191
46.	Changes In Ground Water Resources: A Study of Haryana State (2011-2020)	Dr Sucheta Rani	192–195
47.	Research Paper On The Topic inflation And Its Impact On Indian Economy	Mrs. Vishakha Sharma	196–197
48.	Symbolism in the Middle Phase of Frost's Poetry	Dr. Sunil Srivastava	198–200
49.	India's Relations with GCC	Deepak Kumar	201–204
50.	Importance Of Healthy Psychological Work Environment For Employees' Well Being	Ms Gargi Sharma	205–208
51.	Demonetization – A Step towards Digital India	Dr. Sarika Choudhary	209–212
52.	'डरी हुई लडकी उपन्यास में नारी मनोदशा'	ललिता	213–214
53.	Igbo Tradition and Western Culture: Chinua Achebe's Marriage Is A Private Affair	Scholastica	215–217
54.	प्रकृति के स्वरुप का विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ0 एम0पी0 त्रिपाठी, दयानन्द	218–220
55.	हिन्दी कथा साहित्य में मानवता और मानव मूल्य	डॉ0 आशा रानी	221–224
56.	भारत में क्षेत्रीयतावाद एवं राष्ट्रीय एकीकरण	नरेन्द्र सिंह मेहता, डॉ0 गिरिराज सिंह	225–233
57.	कबीर सामाजिक दार्शनिक परिप्रेक्ष्य	डॉ0 आशा रानी	234–238

1

तहसील फरीदपुर (जनपद बरेली) में समन्वित ग्रामीण विकास नियोजन–एक भौगोलिक विश्लेषण

डॉ0 ए0 के0 एस0 राना, बादाम सिंह

सारांश

ग्रामीण विकास एक ऐसी रणनीति है जो समूह विशेष के लोगों ग्रामीण गरीब पुरूषों एवं स्त्रियों को समर्थ बनाती है। तहसील फरीदपुर का अक्षांशीय विस्तार 28° 10′ से 28° 40′ उत्तरी अक्षांश एवं देशान्तरीय विस्तार 79° 25′ से 79° 50′ पूर्वी देशान्तर तक है तथा क्षेत्रफल 713.77 वर्ग किलोमीटर है। कुल जनसंख्या 4.72 लाख है। रामगंगा मैदान में फैला यह भू–भाग उपजाऊ एवं मैदानी है। ग्रामीण विकास में 'कृषि' का मुख्य योगदान है। यहाँ 51181 हेक्टेयर क्षेत्र पर कृषि होती है तथा शुद्ध सिंचित क्षेत्र 46141 हेक्टेयर है। कुल पशुधन 1.75 लाख है जिसमें 42: महिषवंशीय है। कुल औद्योगिक इकाईयां 150 है पक्की सड़कों की लम्बाई 1010 किलोमीटर एवं विद्युत उपभोग 293230 हजार किलोवाट घण्टा है। 35 बैंक कार्यरत है। इसके साथ अनेक सामाजिक संस्थायें कार्यरत है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था प्रतिफल परिस्थितियों से गुजर रही है। ग्रामीण विकास हेतु संसाधन उपयोग एवं कल्याणकारी योजनाओं का क्रियान्वयन आवश्यक है।

प्रस्तावना:

ग्रामीण विकास का तात्पर्य ग्रामीण भूदृष्य के सम्पूर्ण प्रत्यावर्तन से है। इसीलिए इसमें आर्थिक विकास, सामाजिक स्वास्थ्य सम्बन्धी अवस्थापना तत्वों का विकास और शोषण रहित सामाजिक न्याय पर आधारित संरचनात्मक तत्वों का मात्रात्मक तथा गुणात्मक रूपान्तरण सम्मिलित है भारत ग्रामों का देश है। औसत रूप से तीन–चौथाई जनसंख्या गाँवों में निवास करती है इसलिए जब तक गाँवों का पूर्ण विकास नहीं हो जाता है, तब तक देश में आर्थिक विकास को कोई अर्थ नहीं है। वास्तव में ग्रामीण विकास से ही राष्ट्रीय विकास अक्षय स्वरूप प्राप्त करता है। ग्रामीण अर्थतन्त्र में कृषि एक आधारभूत प्रखण्ड है। इसलिए कृषि में गुणात्मक और मात्रात्मक वृद्धि ग्रामीण विकास के आधार स्तम्भ है लेकिन कृषि के लिए विकास का वातावरण निर्मित करने में संरचनात्मक सिंचाई, उर्वरक, ऊर्जा, परिवहन, विपणन आदि का विकास आवश्यक है। इसके साथ ही कृषि पर आधारित औद्योगीकरण भी कृषि विकास को प्रोत्साहित कर सकता है। इसलिए सम्पूर्ण ग्रामीण संरचना में प्रत्यावर्तन ही ग्रामीण विकास है। वास्तव में स्वतन्त्रता आन्दोलन का आधार यह था कि ब्रिटिश हुकूमत के समय ग्रामीण भारत की अनदेखी की जा रही थी। महात्मा गाँधी ने तो ग्राम स्वराज्य को ही स्वतन्त्र भारत के आर्थिक विकास के केन्द्र बिन्दु के रूप में देखा। आज देश को स्वतन्त्र हुए 75 वर्ष हो चुके है और महात्मा गाँधी का ग्रामीण विकास का आह्वान आज भी बरकरार है। तेजी से हो रहे शहरीकण के बावजूद हमारी जनसंख्या का बड़ा हिस्सा आज भी गाँवों में रह रहा हैं प्रतिशत के हिसाब हो सकता है, कि ग्रामीण जनसंख्या में कुछ कमी आई है लेकिन आर्थिक विकास के कार्यक्रमों के लिए ग्रामीण की कुल संख्या अब भी काफी है। ऐसा नहीं है कि विकास कार्यक्रमों में कोई प्रगति नहीं हुई है लेकिन उनकी गति और उपलब्धियाँ बाँछित स्तर की नहीं है। ग्रामीण विकास को हमेशा कृषि विकास के साथ जोड़ा गया और यह मान लिया गया कि कृषि उत्पादन में वृद्धि के साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में समृद्धि आ जाएगी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के एक दशक बाद वैचारिक परिवर्तन हुआ। अधिक अन्न उपजाओं जॉच समिति ने केवल कृषि या कृषि से जुड़ी अन्य गतिविधियों जैसे पशुपालन आदि को ही नहीं अपितु इनके साथ–साथ ग्रामीण के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य सामाजिक–आर्थिक जरूरतों के समन्वित कार्यक्रम को भी बढ़ावा दिया गया है।

अध्ययन क्षेत्र:

प्रस्तुत शोध–पत्र का क्षेत्र तहसील फरीदपुर है जो रूहलेखण्ड भौगोलिक क्षेत्र जनपद बरेली के अन्तर्गत स्थित है। तहसील फरीदपुर का अक्षांशीय विस्तार 28° 10′ से 28° 40′ उत्तरी अक्षांश एवं देशान्तरीय विस्तार 79° 25′ से 79° 50′ पूर्वी देशान्तर के अन्तर्गत है तथा भौगोलिक क्षेत्रफल 713.77 वर्ग किलोमीटर है। अध्ययन क्षेत्र के उत्तर में तहसील नबावगंज एवं बरेली सदर, दक्षिण में दातागंज एवं तिलहर तहसील, पूर्व में तहसील बीसलपुर एवं पश्चिम में आंवला एवं बरेली सदर तहसील स्थित है।

प्रशासनिक दृष्टि से 01 तहसील (फरीदपुर), 02 विकासखण्ड (फरीदपुर एवं भुता), 22 न्याय पंचायत, 142 ग्राम पंचायत एवं 329 राजस्व ग्राम तथा 02 नगरीय केन्द्र शामिल है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या 4.72 लाख व्यक्ति एवं जनघनत्व 662 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। ऐतिहासिक दृष्टि से फरीदपुर को मूल रूप से परा नाम से जाना जाता था। अकबर के पश्चात् जब जहांगीर सिंहासन पर बैठा तब फरीद खाँ

यहाँ का सुबेदार नियुक्त हुआ। नबाब फरीद खाँ ने अपने नाम से बरेली से 22 किलोमीटर दूर फरीदपुर की नीवं डाली। परा मोहल्ला अब भी फरीदपुर में मौजूद हैं। यहाँ फतेहगंज पूर्वी के स्थान पर रूहेलों का नबाब अवध तथा अंग्रेजों से 1774 में युद्ध हुआ जिसमें रूहेले हार गए थे। फरीदपुर तहसील की स्थापना 1815 में हुई थी।

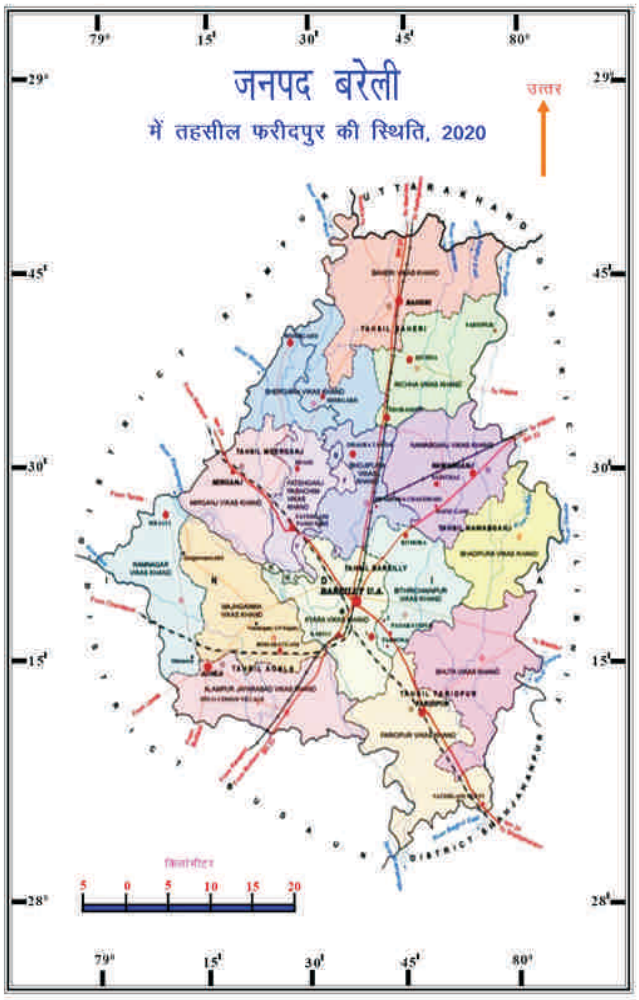

मानचित्र संख्या– 01

शोध परिकल्पनाः

प्रस्तुत शोध–पत्र ग्रामीण विकास पर आधारित है। तहसील फरीदपुर की ग्रामीण जनसंख्या को सामाजिक–आर्थिक सुविधाओं की उपलब्धता होने से बदलाव दिखाई दे रहा है यहाँ पर निम्न शोध परिकल्पनायें उभरती हैः–

1. तहसील फरीदपुर की कुल जनसंख्या का 88.26 प्रतिशत भाग ग्रामीण क्षेत्र में रहता है।
2. ग्रामीण क्षेत्र में निवास करने वाली जनसंख्या का मुख्य व्यवसाय कृशि एवं पशुपालन है तथा कृषि आधारित उद्योगों का विकास हुआ है।
3. ग्रामीण क्षेत्र में सड़क, संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य, विद्युत, पेयजल आपूर्ति का उपलब्धता से ग्रामीण–जन जीवन में बदलाव हो रहा है।
4. औद्योगिक इकाईयां ग्रामीण जनसंख्या को रोजगार उपलब्ध करा रही है जिससे सामाजिक–आर्थिक स्तर तेजी से बदल रहा है।
5. सरकारी स्तर से संचालित योजनाओं एवं नीतियों के क्रियान्वयन के फलस्वरूप ग्रामीण विकास में तीव्रता दिखाई पड़ रही है।

प्राकृतिक स्वरूपः

तहसील फरीदपुर मुख्यतः एक मैदानी भू–भाग है जिसका निमार्ण गंगा–रामगंगा और उसकी सहायक नदियों द्वारा लाए गए अवसाद के निक्षेपण से हुआ है। सम्पूर्ण क्षेत्र की औसत ऊँचाई 175 मीटर है। यहाँ पर अवसादी परतदार चट्टानें मिलती है। रामगंगा यहाँ की मुख्य नदी है। इसके अलावा नकटिया, पूर्वी बहगुल, किच्छा एवं अनेक जल धारायें बहती है। यहाँ पर झीलों एवं तालाबों की संख्या 75 है। भूमिगत जल स्तर की गहराई 5.5 मीटर है। तहसील फरीदपुर की जलवायु मानसूनी है। ग्रीष्मकालीन औसत तापमान 35°C एवं शीतकालीन औसत तापमान 15°C है। वार्षिक वर्षा 90 सेन्टीमीटर है। सापेक्षिक आर्द्रता 7% एवं औसत वायु की गति 5.50 किलोमीटर प्रति घण्टा है। सामान्य जाड़ा उष्ण ग्रीष्म ऋतु, गर्म 'लू' हवाओं का चलना तथा वर्षा काल में वर्षा प्राप्ति मुख्य जलवायुविक विशेशतायें है। यहाँ पर उपजाऊ जलोढ़ मिट्टियां मिलती है। जिनमें बांगर एवं खादर प्रमुख है जिसमें चिकनी, दोमट, बलुई एंव सिल्ट युक्त बलुई मिट्टी है। खनिजों की दृष्टि से यह क्षेत्र पूर्णतया शून्य है। प्राकृतिक वनस्पति सड़कों, रेलमार्गो के किनारे व बंजर और ऊसर भूमि पर ही मिलती है। मात्र 305 हेक्टेयर भाग पर ही वन क्षेत्र फैला है। नदियों एवं झाड़ियो के किनारे वन्य जीवों की अनेक प्रजातियाँ देखने को मिलती है।

आर्थिक स्वरूपः

तहसील फरीदपुर पूर्णतया कृषि प्रधान क्षेत्र है, जहाँ पर 75.92% अर्थात् 51181 हेक्टेयर भूमि पर कृषि होती है कुल कार्यशील जनसंख्या का 35% भाग कृषक और 20 प्रतिशत कृषि श्रमिक के रूप में कार्यरत है। दो फसली भूमि 15844 हेक्टेयर है तथा सकल बोया गया क्षेत्रफल 43236 हेक्टेयर है जिसमें 48.34% रबी, 49.20% खरीफ एवं 2.46% जायद की फसल बोई जाती है। कृषि घनत्व 865 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। भूमि उपयोग दक्षता 165% है। यहाँ पर 75% भाग पर खाद्यान्न फसलें एवं 25% भाग पर मुद्रादायिनी एवं अन्य फसलें उगाई जाती है। कृषि के अन्तर्गत बोए गए क्षेत्र का 90.15 प्रतिशत क्षेत्र शुद्ध सिंचित है। एक से अधिक बार सिंचित क्षेत्र 70.32% एवं सकल सिंचित भूमि 82.36% है। सिंचाई गहनता 150% है। इस प्रकार आर्थिक विकास में 'कृषि' का

विशिष्ट योगदान है।

तहसील फरीदपुर में वर्ष 2017 की पशुगणना के अनुरूप कुल पशुधन की संख्या 1.75 लाख है जिसमें 32.40% गौवंशीय, 42% महिशवंशीय एवं 25.60% अजातवंशीय पशुधन शामिल है। कुल औद्योगिक इकाईयों की संख्या 150 है जिसमें 2575 व्यक्ति कार्यरत है। यहॉ पर कुटीर, हस्तशिल्प, ग्रामोद्योग, लघु, मध्यम एवं वृहद् स्तरीय औद्योगिक इकाईयो की स्थापना हुई है, परन्तु अधिकांश औद्योगिक इकाईयां कृशि क्षेत्र पर आधारित है। यहाँ पर 22 दैनिक बाजार, 45 अर्द्धसाप्ताहिक एवं 55 साप्ताहिक बाजार लगते है। कुल पक्की सड़कों की लम्बाई 1010 किलोमीटर है। विद्युत उपभोग 293230 हजार किलोवाट घण्टा है। बैकिंग शाखाओं की संख्या 35 है।

कृषिः

तहसील फरीदपुर के ग्रामीण विकास में 'कृषि' का विशेष योगदान है। यहाँ पर सकल प्रतिवेदित क्षेत्रफल 67416 हेक्टेयर है जिसमें 51181 हेक्टेयर भाग पर कृशि की जाती है। कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग में भूमि 17.04% है। सकल बोए गए क्षेत्र में 40736 हेक्टेयर रबी, 41461 हेक्टेयर खरीफ एवं 2073 जायद की फसल उगाई जाती है। भूमि उपयोग दक्षता 165% है। यहाँ पर 40.83% गेहूँ, 25.56% चावल, 3.03% ज्वार–बाजार, 2.48% लाही/सरसों, 2.38% तिल एवं 16.94% गन्ना की फसल उगाई जाती है। सिंचाई साधनों में 238 किलोमीटर नहर, 540 नलकूप 18600 डीजल चालित पम्पिंग सैट्स एवं 100 अन्य प्रकार के साधन है। शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल 46141 हेक्टेयर है जो 36.27% नहर एवं नलकूप, 60.33% डीजल चालित पम्पिंग सैट्स द्वारा एवं 3.40% अन्य प्रकार के साधनों द्वारा सिंचित है। कृषि सम्बन्धी सुविधाओं में 105 बीज गोदाम, 110 उर्वरक केन्द्र 75 कीटनाशक डिपो, 35 किसान सेवा केन्द्र, 35 कृषि विपणन केन्द्र एवं 40 कृषि यन्त्र एवं उपकरण केन्द्र स्थित है। कुल जोतों की संख्या 48453 एवं क्षेत्रफल 34140 हेक्टेयर है।

परिवहन एवं संचारः

तहसील फरीदपुर में परिवहन साधनों में रेल एवं सड़क की सुविधा उपलब्ध है। रेलमार्ग की लम्बाई 25 किलोमीटर है तथा रेलवे स्टेशन की संख्या 03 है। सड़क मार्गो की कुल लम्बाई 1010 किलोमीटर है जिसमें लोक निर्माण विभाग 710, स्थानीय निकाय 300 एवं अन्य विभागों द्वारा निर्मित सड़कों की लम्बाई 10 किलोमीटर है तथा बस स्टेशन की संख्या 22 है। जैसा कि तालिका– में दर्शाया गया है।

तालिका संख्या – 01

तहसील फरीदपुर में सड़कों का विवरण, 2019–2020

क्र0 सं0	विवरण	सड़कों की लम्बाई किलोमीटर में
1–	लोक निर्माण विभाग के अन्तर्गत	–
1.1	राष्ट्रीय राजमार्ग	15
1.2	प्रादेषिक राजमार्ग	45
1.3	मुख्य जिला सड़कें	150
1.4	अन्य जिला तथा ग्रामीण सड़कें	500
	योग	**710**
2–	स्थानीय निकायों के अन्तर्गत	–
2.1	जिला पंचायत	250
2.2	नगर निगम/नगर पालिका परिशद/ नगर पंचायत	50
	योग	**300**
3–	अन्य विभागों के अन्तर्गत	–
3.1	सिंचाई विभाग	5
3.2	गन्ना विभाग	5
3.3	डी0जी0बी0आर0	–
3.4	अन्य विभाग	–
	योग	**10**
	कुल योग	**1010**

स्रोतः 1. जिला सांख्यिकीय पत्रिका अर्थ एवं संख्या प्रभाग जनपद बरेली।

2. विकासखण्ड मुख्यालय से प्राप्त सूचना पर आधारित।

तहसील फरीदपुर में संचार साधनों में डाकघरों की संख्या 37 है। ग्रामीण क्षेत्र में मोबाइल कनेक्शन 85 प्रतिशत है। जनसेवा केन्द्रों की संख्या 22 है तथा साइबर कैफे की संख्या 70 है।

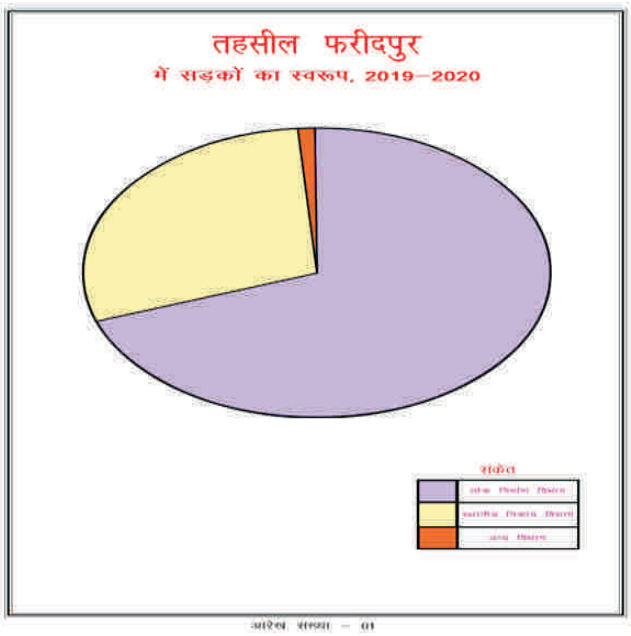

विद्युतः

तहसील फरीदपुर में विद्युत उपभोग 293230 हजार किलोवाट घण्टा है। घरेलू प्रकाश एवं लघु विद्युत शक्ति में उपभोग 66.58%, वाणिज्यक प्रकाश एवं लघु विद्युत शक्ति में उपभोग 11.17% औद्योगिक विद्युत शक्ति में उपभोग 10.32% सार्वजनिक प्रकाश व्यवस्था में उपभोग 1.40%, रेल में उपभोग 0.76%, कृषि विद्युत शक्ति में उपभोग 8.67% एवं सार्वजनिक जलकल एवं मल प्रवाह उद्वहन व्यवथा में उपभोग 1.10% सम्मिलित है। जैसा कि तालिका– में दर्शाया गया है।

तहसील फरीदपुर में विद्युत उपभोग का स्वरूप, 2019–2020

क्र0 सं0	मद	उपभोग हजार किलोवाट घण्टा में	% में
1–	घरेलू प्रकाश एवं लघु विद्युत शक्ति	195210	66.58
2–	वाणिज्यिक प्रकाश एवं लघु विद्युत शक्ति	32750	11.17
3–	औद्योगिक विद्युत शक्ति	30275	10.32
4–	सार्वजनिक प्रकाश व्यवस्था	4110	1.40
5–	रेल	2040	0.76
6–	कृषि विद्युत शक्ति	25425	8.67
7–	सार्वजनिक जलकल एवं मल प्रवाह उर्द्धन व्यवस्था	3220	1.10
	योग जनपद	**293230**	**100.00**

स्रोतः 1. जिला सांख्यिकीय पत्रिका अर्थ एवं संख्या प्रभाग जनपद बरेली।

2. विकासखण्ड मुख्यालय से प्राप्त सूचना पर आधारित।

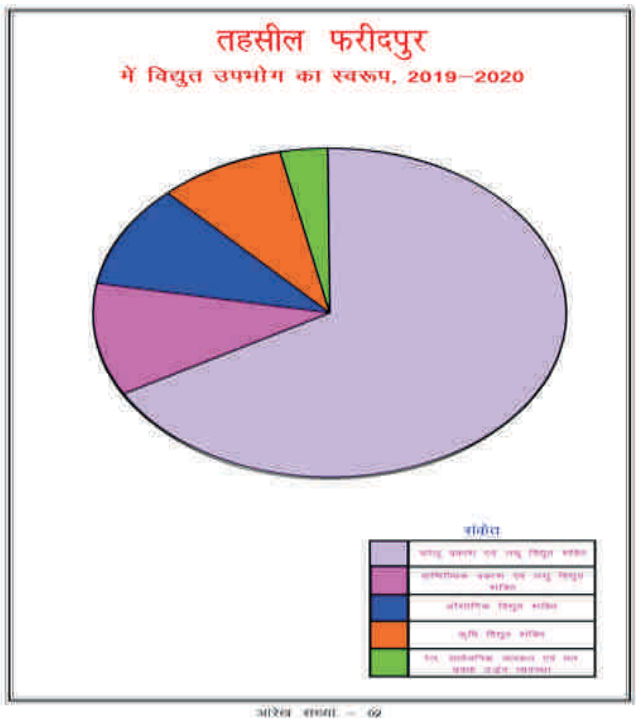

पीने का पानीः

तहसील फरीदपुर में पीने के पानी हेतु 300 ग्रामीण कुएं, 965 सरकारी हैण्डपम्प, 4955 नल एवं 1425 जेट पम्प उपलब्ध है।

सामाजिक संस्थायेंः

तहसील फरीदपुर के ग्रामीण विकास में सामाजिक संस्थाओं की विशिष्ट भूमिका दिखलाई पड़ती है। यहाँ पर 356 प्राइमरी स्कूल, 174 जूनियर हाईस्कूल, 35 माध्यमिक, 15 इण्टर कालेज, 06 औद्योगिक संस्थान, 05 मेडिकल संस्थान, 02 अस्पताल, 10 डिग्री कॉलिज, 02 सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र, 08 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, 10 परिवार एवं मातृ शिशु कल्याण केन्द्र, 37 बैंक, 35 सहकारी समिति, 06 पशु चिकित्सालय, 07 पशुधन विकास केन्द्र, 08 कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र एवं 15 कृत्रिम गर्भाधान उपकेन्द्र, 22 जन सेवा केन्द्र, 170 ग्राम पंचायत, 22 न्यायपंचायत, 150 क्षेत्र पंचायत एवं 175 राशन की दुकान कार्यरत है। जैसा कि तालिका– में दर्शाया गया है।

तालिका संख्या – 03

तहसील फरीदपुर में सामाजिक संस्थाओं का विवरण, 2019–2020

क्र0 सं0	न्यायपंचायत	संख्या
1–	प्राइमरी स्कूल	356
2–	जूनियर हाईस्कूल	174
3–	माध्यमिक विद्यालय	35
4–	इण्टरमीडिएट कालेज	15
5–	औद्योगिक संस्थान	06
6–	मेडिकल संस्थान	05
7–	सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र	02
8–	डिग्री कॉलिज	10
9–	प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र	08
10–	परिवार एवं मातृ शिशु कल्याण	10
11–	परिवर एवं मातृ शिशु कलयाण उपकेन्द्र	50
12–	पषु चिकित्सा	06
13–	पषुधन विकास केन्द्र	07
14–	कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र	08
15–	कृत्रिग गर्भाधान उप केन्द्र	15
16–	बैंक	37
17–	सहकारी समिति	35
18–	ग्राम पंचायत	170
19–	न्याय पंचायत	22
20–	विकासखण्ड	02
21–	तहसील	01
22–	क्षेत्र पंचायत	150
23–	जिला पंचायत	10
24–	राशन की दुकान	175
25–	जनसेवा केन्द्र	22

स्रोतः 1. जिला सांख्यिकीय पत्रिका अर्थ एवं संख्या प्रभाग जनपद बरेली।

2. विकासखण्ड मुख्यालय से प्राप्त सूचना पर आधारित।

सन्दर्भ

1.चौहान, पी0आर0 एवं प्रसाद गौतम 2004भारत का वृहद भूगोल, वसुन्धरा प्रकाषन गोरखपुर पृष्ठ–63

2. गोडीवाल राकेष कुमार 2014'ग्रामीण विकास याजनाओं का क्रियान्वयन' कुरूक्षेत्र मासिक पत्रिका फरवरी पृष्ठ–9

3. कुमार गौरव 2014ग्रामीण विका परियोजनाएं– एक नजर में, कुरूक्षेत्र मासिक पत्रिका फरवरी पष्ठ–29

4. सोलंकी अर्जुन 2013ग्रामीण क्षेत्रो में ऋण की आवष्यकता एवं उसका प्रबन्ध, कुरूक्षेत्र मासिक पत्रिका दिसम्बर पृष्ठ–9

5. झा संजय 2016ः गाँवों में बेहतर हो रही है आधारभूत सुविधायें, कुरूक्षेत्र मासिक पत्रिका सितम्बर पृष्ठ–11

6. झा प्रभाश कुमार :बुनिादी सुविधाओं से बदलेगी गाँवों की तस्वीर, कुरूक्षेत्र मासिक पत्रिका दिसम्बर पृष्ठ–5

7. कुमार आलोक 2016लिखी जा रही गाँवों के विकास के नई इबारत, कुरूक्षेत्र मासिक पत्रिका जून पृष्ठ–5

8. तिवारी, आर0सी0 एवं सिंह बी0 एन0 कृषि भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन इलाहाबाद पृष्ठ–108

9. कौषिक, एस0डी0 2014ः आर्थिक भूगोल के सरल सिद्धान्त रस्तोगी पब्लिकेषन्स मेरठ पृष्ठ–84

10.माथुर, अषोक 2005ःग्रामीण विकास, योजना एवं प्रबन्धन राष्ट्रीय ग्रामीण विकास भारत सरकार पृष्ठ–105

11.सिंह कटार 1999ःग्रामीण विकासः सिद्धान्त नीतियाँ एवं प्रबन्ध, द्वितीय संस्करण नई दिल्ली पृष्ठ–45

12. कुमार गौरव 2014:ग्रामीण विकास योजनाएं– एक नजर में, कुरूक्षेत्र मासिक पत्रिका फरवरी अंक पृष्ठ–30
13. जिला विकास पुस्तिका, अर्थ एवं संख्या प्रभाग जनपद बरेली 2020 पृष्ठ–4
14. जिला सांख्यिकीय पत्रिका, अर्थ एवं संख्या प्रभाग 2020
15. नन्दन गिरिराज 2010:रूहेलखण्ड संस्कृति एवं इतिहास प्रकाष बुक डिपो बरेली पृष्ठ–155

निर्देशक
डॉ0 ए0 के0 एस0 राना
प्रभारी एवं एसोसिएट प्रोफेसर
भूगोल विभाग
वर्धमान कॉलिज, बिजनौर

शोधार्थी
बादाम सिंह
एम0 ए0 (भूगोल) नेट
9410258915

2

भारत में एक देश एक चुनावी मुद्दे का समीक्षात्मक अध्ययन

Dr. Mamta Narwal, Aadil Goyat

सारांश

समय–समय पर होने वाले चुनाव किसी भी देश में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली की प्रमुख विशेषताओं में से एक है। भारत, जिसने लोकतंत्र के संसदीय स्वरूप को अपनाया हुआ है, और हर 5 साल में राष्ट्रीय, राज्य और स्थानीय तीनों स्तरों पर समय––समय पर निष्पक्ष चुनाव होते हैं। लोकसभा और राज्यों की विधानसभाओं के चुनाव एक साथ कराए जाने के मसले पर हमारे यहाँ लंबे समय से बहस चल रही है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी तथा पूर्व राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी के अलावा, संसदीय स्थायी समिति, चुनाव आयोग, विधि आयोग और नीति आयोग जैसे प्रमुख संस्थानों ने 'एक देश एक चुनाव' के प्रति अपना समर्थन व्यक्त किया है। एक देश एक चुनाव का प्रावधान सरकारी नीतियों का समय पर क्रियान्वयन सुनिश्चित कर सकता है तथा इसके कारण प्रशासनिक तंत्र को चुनाव अभियानों के बजाय विकासात्मक गतिविधियों में लगा सकेंगे। इसके विपरीत विरोधी पक्षकारों का कहना है कि एक साथ चुनाव न केवल राज्यों की राजनीतिक स्वायत्तता को खतरे में डालता है बल्कि इससे लोगों के प्रति सरकार की जवाबदेही भी कम हो जाएगी। उनका कहना है कि यह विचार लोकतांत्रिक प्रक्रिया के खिलाफ है। जाहिर है कि जब तक इस विचार पर आम राय नहीं बनती तब तक इसे धरातल पर उतारना संभव नहीं होगा।

मुख्य शब्द : लोकतंत्र, संवैधानिक संशोधन, एक साथ चुनाव, अध्यक्षीय शासन प्रणाली, मत व्यवहार

पृष्ठभूमि

किसी भी जीवंत लोकतंत्र में चुनाव एक अनिवार्य प्रक्रिया है। स्वस्थ एवं निष्पक्ष चुनाव लोकतंत्र की आधारशिला होते हैं। भारत जैसे विशाल देश में निर्बाध रूप से निष्पक्ष चुनाव कराना हमेशा से एक चुनौती रहा है। अगर हम देश में होने वाले चुनावों पर नजर डालें तो पाते हैं कि हर वर्ष किसी न किसी राज्य में चुनाव होते रहते हैं। चुनावों की इस निरंतरता के कारण देश हमेशा चुनावी मोड में रहता है। इससे न केवल प्रशासनिक और नीतिगत निर्णय प्रभावित होते हैं बल्कि देश के खजाने पर भी भारी बोझ पड़ता है। इस सबसे बचने के लिए नीति–निर्माताओं ने लोकसभा तथा राज्यों की विधानसभाओं का चुनाव एक साथ कराने का विचार बनाया।

जब वर्ष 1951–52 में लोकसभा का पहला चुनाव हुआ था तो 53 दलों ने चुनाव में भागीदारी की थी, 1874 उम्मीदवारों ने चुनाव लड़ा था और चुनाव खर्च लगभग 11 करोड़ आया था। अब इसकी तुलना हाल ही में संपन्न 17वीं लोकसभा के चुनाव से करते हैं – 610 राजनीतिक दल थे और लगभग 9000 उम्मीदवार। लेकिन इन पर लगभग 60000 करोड (सेंटर फॉर मीडिया स्टडीज का अनुमान) खर्च हुए, जबकि राजनीतिक दलों ने अपने चुनावी खर्चों की जानकारी अभी तक नहीं दी है। 7 चरणों में 75 दिनों में संपन्न हुए इस आम चुनाव को अब तक का सबसे खर्चीला चुनाव बताया जा रहा है। इस लिहाज से एक वोट पर औसतन 700 खर्च किए गए और हर लोकसभा क्षेत्र में 100 करोड खर्च हुए। वर्ष 2014 के लोकसभा चुनाव में लगभग 30000 करोड का खर्च आया था, इस प्रकार हम देखते हैं कि चुनावी खर्च मात्र 5 वर्षों में बढ़कर दोगुना हो गया।

एक देश एक चुनाव कोई अनूठा प्रयोग नहीं है, क्योंकि 1952, 1957, 1962, 1967 में ऐसा हो चुका है, जब लोकसभा और राज्यों की विधानसभाओं के चुनाव साथ–साथ करवाए गए थे। यह क्रम तब टूटा जब 1968–69 में कुछ राज्यों की विधानसभाएँ विभिन्न कारणों से समय से पहले भंग कर दी गईं तथा 1971 में लोकसभा चुनाव भी समय से पहले हो गए थे।

एक तरफ जहां कुछ जानकारों का मानना है कि अब देश की जनसंख्या बहुत ज्यादा बढ़ गई है, लिहाजा एक साथ चुनाव करा पाना संभव नहीं है, तो वहीं दूसरी तरफ कुछ विश्लेषकों का कहना है कि अगर देश की जनसंख्या बढ़ी है तो तकनीक और अन्य संसाधनों का भी विकास हुआ है। इसलिए एक देश एक चुनाव की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। इस समय सभी राजनीतिक दलों पर एक विशेष विचार थोपना मुश्किल है। किंतु इन सबसे इसकी सार्थकता सिद्ध नहीं होती, इसके लिए हमें इसके पक्ष और विपक्ष में दिए गए तर्कों का विश्लेषण करना होगा।

एक साथ चुनाव क्रियान्वयन : संवैधानिक एवं वैधानिक चुनौतियां आधुनिक लोकतांत्रिक सरकारें, सरकार के कार्यपालिका और विधायिका अंगों के मध्य संबंधों की प्रकृति के आधार पर संसदीय और राष्ट्रपति में वर्गीकृत होती है। भारतीय संविधान में अमेरिका के अध्यक्ष प्रणाली के बजाय ब्रिटेन के संसदीय तंत्र को अपनाया है। सरकार की संसदीय व्यवस्था वह व्यवस्था है जिसमें

कार्यपालिका अपनी नीतियों एवं कार्यों के लिए विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है। दूसरी ओर सरकार के राष्ट्रपति शासन व्यवस्था में कार्यपालिका अपनी नीतियों एवं कार्यों के लिए विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होती और यह संवैधानिक रूप से अपने कार्यकाल के मामले में विधायिका से स्वतंत्र होती है।

भारत में यदि कोई भी सरकार अल्पमत में होने के कारण अपना कार्यकाल पूरा होने से पहले टूट जाती है तो देश में नए सिरे से चुनाव करवाना होता है। इस प्रकार देश में एक साथ चुनाव को लागू करने के रास्ते में मुख्य बाधा सरकार के संसदीय स्वरूप को लेकर है। इस प्रकार एक समाधान अध्यक्षीय शासन प्रणाली/राष्ट्रपति शासन प्रणाली के रूप में हो सकता है, जो कि एक क्रांतिकारी कदम होगा। हालांकि उच्चतम न्यायालय द्वारा संसदीय शासन प्रणाली को 'आधारभूत ढांचे' के रूप में परिभाषित किया गया है।

राह में सबसे बड़ी चुनौती लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के कार्यकाल को समन्वित करने की है, ताकि दोनों का चुनाव निश्चित समय के भीतर हो सके। राज्य विधानसभाओं के कार्यकाल को लोकसभा के साथ समन्वित करने के लिए राज्य विधानसभाओं के कार्यकाल को तदनुसार घटाया और बढ़ाया जा सकता है। साथ ही लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के कार्यकाल को निश्चित किया जा सकता है, ताकि सरकार भले ही बर्खास्त कर दी जाए लेकिन विधानसभा बनी रहेंगी। लेकिन इसके लिए कुछ संवैधानिक संशोधनों की आवश्यकता होगीः

अनुच्छेद 83 : इसमें कहा गया है कि लोकसभा का कार्यकाल उसकी पहली बैठक की तिथि से 5 वर्ष का होगा।

अनुच्छेद 85 : यह राष्ट्रपति को लोकसभा भंग करने का अधिकार देता है।

अनुच्छेद 172 : इसमें कहा गया है कि विधानसभा का कार्यकाल उसकी पहली बैठक की तिथि से 5 वर्ष का होगा।

अनुच्छेद 174 : यह राज्य के राज्यपाल को विधानसभा भंग करने का अधिकार देता है।

अनुच्छेद 356 : यह केंद्र सरकार को राज्य में संवैधानिक मशीनरी की विफलता के मद्देनजर राष्ट्रपति शासन लगाने का अधिकार देता है।

इसके अतिरिक्त जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 के साथ–साथ संबंधित संसदीय प्रक्रिया तथा दल परिवर्तन कानून में भी संशोधन करना होगा।

इन संवैधानिक संशोधनों के लिए संसद के दोनों सदनों में दो–तिहाई बहुमत के साथ–साथ, इसे कम से कम आधे राज्य की विधानसभाओं के अनुसमर्थन की आवश्यकता होगी। इस प्रकार यह महत्वपूर्ण है कि इस विशेष मुद्दे पर सभी राजनीतिक दल सहमत हों।

नीति आयोग द्वारा प्रस्तुत पेपर 'एक साथ चुनावों का विश्लेषण : क्या, क्यों और कैसे – एक विमर्श पत्र' में एक साथ चुनाव करवाने हेतु एक वैकल्पिक एवं व्यवहारिक विकल्प को प्रस्तुत किया गया है। समिति ने इसके लिए दो चरण के दृष्टिकोण की सिफारिश की है। समिति ने परिकल्पना की है कि कुछ विधानसभाओं के चुनाव लोकसभा के मध्यावधि में करवाए जा सकते हैं तथा शेष विधानसभाओं के चुनाव लोकसभा चुनाव के साथ–साथ करवाए जा सकते हैं। समिति ने अपनी रिपोर्ट 2019 लोकसभा चुनाव के संदर्भ में प्रस्तुत की है। समिति द्वारा दिए गए सुझावों पर गहन विचार विमर्श के पश्चात दो चरणों में चुनाव हेतु प्रक्रिया इस तरह से सुझाई गई है – चरण 1 में कुछ राज्य विधानसभाओं के चुनाव को लोकसभा चुनाव के साथ यानी अप्रैल–मई 2019 में होने वाले चुनाव के साथ तालमेल बैठाने का सुझाव दिया गया है। चरण 2 में शेष विधानसभाओं के चुनाव अक्टूबर–नवंबर 2021 में करवाने का सुझाव दिया गया है। इस तरह इस प्रक्रिया के तहत हर 2.5 वर्ष में चुनाव करवाने का सुझाव दिया गया है। इस प्रकार लोकसभा और सभी विधानसभाओं के चुनाव दिसंबर 2021 तक सिंक्रोनाइज किए जा सकेंगे।

2018 में विधि आयोग ने एक साथ चुनावों के कार्यान्वयन का समर्थन करते हुए एक मसौदा रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें चुनावों से संबंधित प्रावधानों और कानूनों में बदलाव की सिफारिश की गई थी। इसमें यह भी प्रावधान किया गया है कि अगर सदन में किसी सरकार के खिलाफ 'अविश्वास प्रस्ताव' लाया जाता है तो उसी दौरान एक 'विश्वास प्रस्ताव' (कंस्ट्रक्टिव नो कॉन्फिडेंस मोशन) भी साथ में प्रस्तुत किया जाएगा ताकि एक वैकल्पिक सरकार की व्यवस्था भी की जा सके। इन दोनों ही प्रस्ताव पर सदन में एक साथ वोटिंग करने का प्रावधान किया गया है।

क्या होगा यदि सत्तारूढ़ दल या गठबंधन लोकसभा या राज्य विधानसभाओं में, कार्यकाल के बीच में बहुमत खो देता है, और क्या लोकसभा और विधानसभाओं का कार्यकाल तय किया जाना चाहिए?इन चुनौतियों के समाधान हेतु भारतीय चुनाव आयोग ने विभागीय संसदीय स्थायी समिति की 79 वी रिपोर्ट में निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए है :

सदन के समय–पूर्व विघटन की स्थिति में अविश्वास प्रस्ताव के साथ–साथ विश्वास प्रस्ताव का प्रस्तुत किया जाना

यदि ऐसी स्थिति आ जाती है कि लोकसभा/विधानसभा

को भंग करना ही एकमात्र विकल्प बचा है तो उस स्थिति में लोकसभा/विधानसभा को भंग कर दिया जाएगा तथा राष्ट्रपति/राज्यपाल अपने द्वारा नियुक्त मंत्रिपरिषद की सलाह और सिफारिश पर प्रशासन चलाएगा यदि वर्तमान लोकसभा की अवधि संक्षिप्त काल (पीरियड टू बी स्पेसिफाइड) के लिए बची हो। यदि वर्तमान लोकसभा का कार्यकाल लंबी अवधि (पीरियड टू बी स्पेसिफाइड) के लिए बचा हुआ हो तो उस दौरान नए चुनाव करवाए जाएंगे।

यदि किसी चुनाव में कोई भी पार्टी या गठबंधन सरकार बनाने में विफल रहती है तो उस समय नए चुनाव करवाए जाएंगे तथा सदन का कार्यकाल शेष बचे हुए समय तक ही रहेगा।

इसके अतिरिक्त इसमें किसी भी साल में होने वाले उपचुनाव के लिए भी व्यवस्था की गई है।

भारतीय चुनाव आयोग द्वारा प्रस्तुत की गई यह सिफारिशें एक साथ चुनाव करवाने के संदर्भ में प्रस्तुत की गई हैं न की विभिन्न चरणों में चुनाव करवाने के संदर्भ में।

एक देश एक चुनाव के समर्थन में दिए जाने वाले तर्क

एक देश एक चुनाव के पक्ष में कहा जाता है कि यह विकासोन्मुखी विचार है। जाहिर है की लगातार चुनाव के कारण देश में बार–बार आदर्श आचार संहिता लागू करनी पड़ती है। इसकी वजह से सरकार आवश्यक नीतिगत निर्णय नहीं ले पाती और विभिन्न योजनाओं को लागू करने में समस्या आती है। इसके कारण विकास कार्य प्रभावित होते हैं। आपको बता दें कि आदर्श आचार संहिता या मॉडल कोड आफ कंडक्ट चुनावों की निष्पक्षता बरकरार रखने के लिए बनाया गया है।

एक देश एक चुनाव से न केवल सार्वजनिक धन की ही बचत होगी बल्कि इससे प्रशासनिक तंत्र तथा सुरक्षाबलों पर भी भार कम होगा।

सरकार द्वारा लिए गए नीतिगत निर्णयों का भी समय पर कार्यान्वयन सुनिश्चित हो सकेगा।

आदर्श आचार संहिता सरकार की कार्य प्रणाली को भी प्रभावित करती है क्योंकि चुनाव की घोषणा हो जाने के बाद न तो किसी नई महत्वपूर्ण नीति की घोषणा की जा सकती है और न ही क्रियान्वयन।

इसके अतिरिक्त यह भी सुनिश्चित होगा कि प्रशासनिक तंत्र चुनावी गतिविधियों में लगातार संलिप्त रहने की बजाय विकासात्मक कार्यों में लगा रहे।

सुरक्षा बलों को तैनात करने तथा बार–बार उनके परिवहन पर भी अधिक लागत आती है। इसके अलावा एक साथ चुनाव हो जाने के कारण इन सुरक्षाबलों को संवेदनशील क्षेत्रों से बार–बार हटाना नहीं पड़ेगा।

जब चुनाव की प्रक्रिया 5 वर्ष में एक बार होगी तो भारतीय निर्वाचन आयोग, अर्द्धसैनिक बलों तथा नागरिकों को तैयारी के लिए अधिक समय मिलेगा, जिसके कारण चुनाव में अधिक पारदर्शिता होगी।

एक साथ चुनाव होने से मतदान प्रतिशत में वृद्धि होगी।

देश भर में बार–बार होने वाले चुनाव जाति, धर्म और सांप्रदायिक मुद्दों को कायम रखते हैं जिसका सामाजिक सौहार्द पर नकारत्मक प्रभाव पड़ता है। एक साथ चुनाव होने से सामाजिक समरसता में वृद्धि होगी।

कम पूंजी वाली छोटी पार्टियां अधिक पूँजी क्षमता रखने वाली बड़ी पार्टियों के साथ समान रूप से प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकती हैं।

मंत्रियों द्वारा शासन व्यवस्था पर अधिक ध्यान दिया जा सकेगा।

बार–बार चुनावों के कारण राजनीतिक दल राष्ट्रवादी नीतियों के बजाय लोकलुभावन नीतियों को आगे बढ़ाने की अधिक संभावना रखते हैं। एक साथ चुनाव होने से इस तरह के व्यवहार में काफी गिरावट आने की संभावना है और उन नीतियों को लागू करने पर अधिक जोर दिया जाएगा जो बड़े पैमाने पर जनता को लाभान्वित करती हों।

एक देश एक चुनाव के विपक्ष में तर्क

2015 की संसदीय स्थायी समिति के सामने बहुत सी पार्टियों जैसे कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी, अखिल भारतीय तृणमूल कांग्रेस, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, एआईएमआईएम इत्यादि ने इस विचार की संवैधानिकता एवं अन्य सांविधिक विषयों को लेकर इस विचार के प्रति अपना विरोध दर्ज किया था। एक देश एक चुनाव के विरोध में विश्लेषकों का मानना है कि संविधान ने हमें संसदीय मॉडल प्रदान किया है जिसके तहत लोकसभा और विधानसभा 5 वर्षों के लिए चुनी जाती हैं, लेकिन एक साथ चुनाव कराने के मुद्दे पर हमारा संविधान मौन है। कुछ संवैधनिक प्रावधान जो एक देश एक चुनाव के नितांत विपरीत दिखाई पड़ते हैं, ये निम्नलिखित हैं :

संविधान में कई ऐसे प्रावधान हैं जो एक देश एक चुनाव के विचार के बिल्कुल विपरीत दिखाई देते हैं। मसलन अनुच्छेद 2 के तहत संसद द्वारा किसी नए राज्य को भारतीय संघ में शामिल किया जा सकता है और अनुच्छेद 3 के तहत संसद कोई नया राज्य बना सकती है जहां अलग से चुनाव कराने पड़ सकते हैं।

इसी प्रकार अनुच्छेद 85(2)(ख) के अनुसार राष्ट्रपति लोकसभा को और अनुच्छेद 174(2)(ख) के अनुसार राज्यपाल विधानसभा को 5 वर्ष से पहले भी भंग कर सकते हैं। अनुच्छेद 352 के तहत युद्ध, बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह की स्थिति में राष्ट्रीय आपातकाल लगाकर लोकसभा का कार्यकाल बढ़ाया जा सकता है।

इसी तरह अनुच्छेद 356 के तहत राज्यों में राष्ट्रपति शासन लगाया जा सकता है और ऐसी स्थिति में संबंधित राज्य के राजनीतिक समीकरण में अप्रत्याशित उलटफेर होने से वहाँ फिर से चुनाव की संभावना बढ़ जाती है।

एक देश एक चुनाव के विरोध में दिए जाने वाले अन्य महत्वपूर्ण तर्क इस प्रकार हैं :

लोकसभा और राज्यों की विधानसभाओं का चुनाव एक साथ करवाने पर कुछ विधानसभाओं की मर्जी के खिलाफ उनके कार्यकाल को बढ़ाया या घटाया जाएगा जिससे राज्यों की स्वायत्तता प्रभावित हो सकती है। भारत का संघीय ढांचा संसदीय शासन प्रणाली से प्रेरित है और संसदीय शासन प्रणाली में चुनावों की बारंबारता एक अकाट्य सच्चाई है।

अगर लोकसभा और राज्यों की विधानसभाओं के चुनाव एक साथ करवाए गए तो ज्यादा संभावना है कि राष्ट्रीय मुद्दों के सामने क्षेत्रीय मुद्दे गौण हो जाएं और अपना अस्तित्व खो दें। लोकसभा में जहाँ राष्ट्रीय महत्व के मुद्दों को प्राथमिकता दी जाती है तो वहीं विधानसभा चुनावों में क्षेत्रीय महत्व के मुद्दे आगे रहते हैं।

इस तरह के प्रावधान से भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की संघीय प्रकृति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

इससे लोगों के मतदान संबंधी निर्णय प्रभावित होंगे और इस नई प्रक्रिया के लिए बड़े पैमाने पर जनशक्ति और मशीनरी (ईवीएम और वीवीपीएटी) की आवश्यकता होगी।

एक साथ चुनाव होने के कारण जनप्रतिनिधियों की जनता के प्रति जवाबदेही बहुत कम हो जाएगी।

अगर सरकारों को वापस बुलाए जाने के डर के बिना एक निश्चित कार्यकाल का आश्वासन दिया जाता है तो यह निरंकुश प्रवृत्तियों को जन्म दे सकता है।

लोकसभा और संबंधित राज्यों की विधानसभाओं के कार्यकाल को कम या अधिक करके केंद्र और सभी राज्यों में एक साथ चुनाव करवा भी दिए जाएं, तो भी ऐसी स्थिति को लंबे समय तक बनाए रखना मुश्किल होगा। जैसे ही कोई सरकार सदन में विश्वास खोती है तो व्यवस्था फिर से अस्त–व्यस्त हो जाएगी।

वर्तमान व्यवस्था को हमारे संविधान निर्माताओं ने सोच समझकर ही चुना है ताकि नियमित चुनाव कराकर लोकतंत्र की इच्छा को कायम रखा जा सके ताकि लोग मतदान के अधिकार के माध्यम से अपनी इच्छा व्यक्त कर सकें।

वर्तमान चुनाव प्रणाली को संशोधित करने का मतलब होगा – लोगों की लोकतांत्रिक इच्छाओं को व्यक्त करने की शक्ति के साथ छेड़छाड़ करना।

इसके अलावा ऐसे सबूत हैं जो संकेत देते हैं कि एक साथ चुनाव केंद्र में सत्ता में रहने वाली पार्टी के पक्ष में होने की संभावना को प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के लिए, आईडीएफसी संस्थान द्वारा हाल ही में किए गए एक अध्ययन के अनुसार, एक साथ चुनाव के दौरान केंद्र और राज्य दोनों सदनों के लिए एक ही पार्टी को वोट देने की संभावना 77þ है। वहीं अगर दोनों सदनों में चुनाव का अंतराल 6 महीने का हो जाए तो यही संभावना 61þ रह जाती है।

बार–बार होने वाले चुनाव न केवल रोजगार प्रदान करते हैं बल्कि घरेलू खपत को भी बढ़ावा देते हैं।

'कोटेल इफेक्ट'(बवंजजंपस मंिबज) को देखते हुए राष्ट्रीय राजनीतिक दलों को तथा विशेष रूप से सत्तारूढ़ राजनीतिक दल को एक साथ चुनाव में अपने प्रतिस्पर्धियों पर अधिक बढ़त मिल जाती है। यह अपने आप में सभी को समान अवसर न देकर लोकतांत्रिक लोकाचार के विरुद्ध है।

एक साथ चुनाव एक दलीय प्रभुत्व को बढ़ावा देता है। विश्व–इतिहास में ऐसे कई उदाहरण रहे हैं जहां एक दलीय प्रभुत्व की परिणति लोकतांत्रिक व्यवस्था को तानाशाही में बदलने में हुई है।

भारत जैसे बहुदलीय लोकतंत्र में लोकसभा और राज्य विधानसभाओं दोनों के लिए एक साथ चुनाव की व्यवस्था व्यवहारिक रूप से लंबे समय तक नहीं चल सकती क्योंकि चुनाव के परिणाम अक्सर अनिश्चित या त्रिशंकु सदन की स्थिति पैदा करते हैं।

वैश्विक स्तर पर चुनावी प्रावधान

विश्व में ऐसे कई देश है जिनमें एक साथ चुनाव कराए जाते हैं। स्वीडन, इंडोनेशिया, दक्षिण अफ्रीका, स्पेन, हंगरी, बेल्जियम, पोलैंड और जर्मनी जैसे देश अपने संवैधानिक प्रावधानों के अनुरूप एक साथ चुनावी प्रक्रियाओं को क्रियान्वित कर रहे हैं।

स्वीडन में, काउंटी और नगर पालिका परिषदों के चुनाव देश के आम चुनाव (रिक्सडैग चुनाव) के साथ हर 4 साल में होते हैं। स्वीडन के लगभग समान दक्षिण अफ्रीका है, जहां राष्ट्रीय सभा, नगरपालिका परिषद और प्रांतीय विधायी चुनाव भी हर 5 साल में एक साथ होते हैं। स्वीडन की ही तरह दक्षिण अफ्रीका भी 'पार्टी–सूची आनुपातिक प्रतिनिधित्व' की प्रणाली को अपनाता है, जहां किसी भी पार्टी को प्राप्त होने वाले वोटों की संख्या उसके द्वारा

सदन में जीती गई सीटों की संख्या को निर्धारित करती है। बेल्जियम की संघीय संसद के चुनाव में हर 5 साल में यूरोपीय संसद के चुनाव के साथ किए जाते हैं।

2019 में इंडोनेशिया में भी एक देश एक चुनाव की प्रणाली शुरू की गई। एक साथ चुनाव लागू करने हेतु इंडोनेशिया ने अपने संविधान में संशोधन किए जिसके परिणाम स्वरूप अब हर 5 साल में विधायिका और राष्ट्रपति के चुनाव एक साथ हो रहे हैं। जर्मनी में मूल कानून का अनुच्छेद 67 चांसलर के खिलाफ 'अविश्वास प्रस्ताव' लाने के लिए शर्तें निर्धारित करता है। बुंदेस्टैग (जर्मन संसद) अविश्वास प्रस्ताव पारित करके न केवल अपने चांसलर को बर्खास्त करने का अनुरोध राष्ट्रपति से करते हैं बल्कि साथ में अपने सदस्यों के बहुमत के वोट से उत्तराधिकारी का चुनाव भी कर दिया जाता है। अन्य उदाहरणों में फिलीपींस, कोस्टारिका, बोलिविया और ग्वाटेमाला शामिल हैं।

हालांकि यह ध्यान देने योग्य है कि ये सभी देश सरकार के अध्यक्षीय शासन प्रणाली/राष्ट्रपति स्वरूप पर काम करते हैं।

मत व्यवहार

कुछ ऐसे उदाहरण जहां लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के चुनाव एक साथ करवाए गए : आंध्र प्रदेश (1989, 1999, 2004, 2009 और 2014) ओडिशा (2004, 2009, 2014 और 2019) कर्नाटक (1989, 1999 और 2004) सिक्किम (2009 और 2014) तमिलनाडु (1989, 1991 और 1996) महाराष्ट्र (1999) असम (1991 और 1996) हरियाणा (1991 और 1995) केरल (1989, 1991 और 1996) उत्तर प्रदेश (1989 और 1999) पश्चिम बंगाल (1991 और 1996) अरुणाचल प्रदेश (2009 और 2014) और तेलंगाना (2014) । जब 24 चुनावों में इन राज्यों में लोकसभा और विधानसभा के लिए एक साथ चुनाव हुए तो मतदाताओं ने प्रमुख राजनीतिक दलों को लोकसभा और विधानसभा दोनों के लिए वोटों के लगभग समान अनुपात में मतदान किया, जबकि केवल 8 मामलों में ही मतदाताओं की पसंद कुछ अलग थी।

आंकड़े निश्चित रूप से यह बताते हैं कि एक साथ चुनावों में लोग एक ही पार्टी के लिए दोनों बटन दबाते हैं लेकिन हमेशा ऐसा हो जरूरी नहीं। 2019 में लोकसभा चुनाव के साथ संपन्न हुए ओडिशा विधानसभा के चुनाव से यह पता लगता है कि मतदाता एक साथ मतदान करते हुए भी राष्ट्रीय और राज्य चुनावों के लिए अलग–अलग वोट कर सकते हैं। लोकसभा चुनावों के दौरान जहाँ बीजेपी ने दिल्ली की सभी सातों सीटों पर जीत दर्ज की, तो वहीं दूसरी तरफ अगले वर्ष हुए विधानसभा चुनावों में आप पार्टी ने 70 में से 62 सीटें जीती तथा बीजेपी को मात्र 8 ही सीटें मिल पायी। झारखंड में लोकसभा चुनावों में शानदार प्रदर्शन के बावजूद भाजपा ने राज्य में सत्ता खो दी। हरियाणा में भाजपा ने लोकसभा की सभी 10 सीटें जीती थी, लेकिन विधानसभा चुनाव में नए उभरे क्षेत्रीय दल के साथ चुनाव के बाद गठबंधन करके ही सत्ता पर काबिज हो सके। महाराष्ट्र विधानसभा के नतीजों ने भी पार्टी को उतना समर्थन नहीं दिया और चुनावों के बाद भी शिवसेना के साथ उसका दीर्घकालिक गठबंधन समाप्त हो गया। बिहार में भी एनडीए अपनी लोकसभा की स्थिति बिल्कुल भी बरकरार नहीं रख पाई। इसी तरह पश्चिम बंगाल विधानसभा चुनावों में भाजपा 2019 के अपने लोकसभा चुनाव के प्रदर्शन को दोहराने में विफल रही। 2014 और 2019 के दो लोकसभा चुनावों के परिणाम और उसके बाद हुए विधानसभा चुनावों के परिणामों का गहन विश्लेषण स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि भाजपा को, विशेष रूप से राज्य स्तर पर राज्य विधानसभा चुनावों के दौरान जहां कहीं भी मजबूत विकल्प उपलब्ध है, मतदाताओं द्वारा पसंद नहीं किया जाता है। यह विश्लेषण दर्शाता है कि मतदाताओं की प्रवृत्ति है कि वे केंद्र में बीजेपी को समर्थन देते हुए हुए भी राज्य स्तर पर उसे खारिज कर सकते हैं। आज मतदाता स्थानीय और राष्ट्रीय दोनों मुद्दों के बारे में जागरूक तो हुआ है, लेकिन यह यह मान लेना कि सभी मतदाता पूर्ण रूप से जागरूक हैं, यह सत्य नहीं है।

निष्कर्ष

यह स्पष्ट है कि एक साथ चुनाव की अवधारणा को लागू करने के लिए संविधान और अन्य कानूनों में संशोधन की आवश्यकता होगी। चूँकि यह मुद्दा संविधान के संघीय ढांचे से संबंधित है, इसलिए राष्ट्रीय और क्षेत्रीय दलों की चिंताओं को दूर करने के लिए इस राजनीतिक मुद्दे पर उचित रूप से चर्चा और बहस की आवश्यकता है। एक साथ चुनाव को लागू करने के लिए बड़ी राजनीतिक इच्छाशक्ति की भी जरूरत होगी। लेकिन लोकतंत्र और संघवाद के सिद्धांतों को ताक पर रखकर ऐसे बड़े संवैधानिक बदलाव करके भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में कोई बड़ा सुधार हो जायेगा, ये कहना काफी हद तक कल्पना पर ही आधारित लगता है। क्योंकि सत्ताधारी दलों की राजनीतिक व्यवस्था में सुधार करने की जो इच्छा–शक्ति होनी चाहिए वो अब तक लिए गए फैसलों में कहीं नजर नहीं आती।

एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में चुनाव आवश्यक और अपरिहार्य है क्योंकि यह लोगों के हाथों में एकमात्र प्रक्रम है जो उन्हें कुछ हद तक सशक्तिकरण देता है। अगर किसी भी तरह से उनके इस अधिकार पर कोई प्रतिबंध या सीमा लगा दी जाती है तो इससे हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था, जो पहले ही कमजोर हो चुकी है, और भी कमजोर हो जाएगी। साथ ही, यह भी ज्ञात है कि वर्तमान चुनावी

प्रक्रियाओं और प्रथाओं में गंभीर खामियां हैं और इनमें सुधार की तत्काल आवश्यकता है। चुनावों में काले धन और बाहुबल का उपयोग, उम्मीदवारों के रूप में चुनावी प्रक्रिया में आपराधिक तत्वों की बढ़ती भागीदारी, मतदाता सूची की दोषपूर्ण तैयारी, आदर्श आचार संहिता का ढुलमुल कार्यान्वयन, ईवीएम वोटिंग और वीवीपीएटी मतगणना पर उठते हुए सवालों के साथ–साथ अपारदर्शी चुनावी बॉण्ड सिस्टम पर बढ़ती हुई चिंताओं को दूर करना शामिल है। आधुनिक पश्चिमी लोकतंत्रों के विपरीत, भारत में लोगों के पास अपने नेताओं पर उत्तरदायित्व सुनिश्चित करने के लिए बहुत कम अधिकार हैं और चुनाव उनमें से प्रमुख है। इसके महत्व में कोई भी कमी लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए एक झटका होगी।

सन्दर्भ सूची

- Law Commission of India-Draft Report 2018. Retrieved from https://lawcommissionofindia. nic.in/ reports/ Simultaneous_Elections.pdf
- Debroy, Desai. Analysis of Simultaneous Elections : The "What", "Why" And "How" A Discussion Paper. Retrievedhttps://www.google.com/url?sa=t&source=web&rct=j&url=https://www.niti.gov.in/writereaddata/files/document_publication/Note%2520on%2520Simultaneous%2520Elections.pdf&ved=2ahUKEwi8pI7ynsj4AhUyRmwGHYB7ALYQFnoECBQQAQ&usg=AOvVaw018W8mChQZqdmjuQuIi4oA
- Explained: PM Narendra Modi calls for one nation, one election. What does this idea mean?. The Indian ExpressRetrievedfromhttps://indianexpress.com/article/explained/one-nation-one-election-poll-narendra-modi-bjp-5908164/
- Keerthana R. JUNE 19, 2019. The Hindu Explains: One Nation, One Election. THE HINDU. Retrieved from https://www.thehindu.com/news/national/one-nation-one-election/article28073916.ece
- Singh, Akhilendra Pratap. March 29,2022. One Nation, One Election will prove fatal for our democracy. NationalHerald.Retrievedfromhttps://www.nationalheraldindia.com/amp/story /india/one-nation-one-election-will-prove-fatal-for-our-democracy
- Singh H. Jun 20, 2019. One Nation One Election: Merits and Demerits. Retrieved from. https://www.jagranjosh.com/general-knowledge/one-nation-one-election-1561032672-1
- Singh A., One Nation One Election: Constitutional Challenges.Retrievedfromhttp://www.legalserviceindia.com/legal/article-1763-one-nation-one-election-constitutional-challenges.html
- One Nation One Election: RSTV, The Big Picture. Retrieved From https://byjus.com/free-ias-prep/one-nation-one-election-rstv-big-picture/
- One Nation One Election- Next IAS. Retrieved from https://www.nextias.com/current-affairs/11-03-2022/one-nation-one-election
- One Nation One Election , Simplified UPSC. Retrieved from https://simplifiedupsc.in/one-nation-one-election/
- One Nation One Election, Civilsdaily. Retrieved from https://www.civilsdaily.com/burning-issue-one-nation-one-election/

Dr. Mamta Narwal
Assistant Professor,
Department of Political Science,
MDU ROHTAK

Aadil Goyat
Research Scholar,
Department of Political Science,
MDU ROHTAK
MOB. NO. 9315876887

3

सोनीपत जिले की बदलती साक्षरता दर (2001–2011) का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० प्रदीप कुमार शर्मा, नेहा रानी

सारांश

मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण से साक्षरता जनसंख्या का एक ऐसा सामाजिक पक्ष है जिसके आधार पर सामाजिक विकास का मापदण्ड निश्चित किया जा सकता है तथापि जनसंख्या भूगोलविदों के लिए साक्षरता, जनसंख्या का एक सामाजिक पक्ष होते हुए भी ऐसा गुणात्मक तथ्य है जो क्षेत्रीय आधार पर परिवर्तनशील सामाजिक–आर्थिक प्रवृत्तियों की ओर अप्रत्यक्ष रूप से संकेत करता है। वस्तुतः साक्षरता के विकास से मनुष्य सीमित परिवेश से बाहर निकल अपने क्षेत्र की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रवृत्तियों से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध स्थापित कर लेता है जिससे एक इकाई के रूप में मानव ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण समाज विकास–क्रम में आगे आ जाता है। साक्षरता का प्रभाव अन्य जनांकिकी तथ्यों जन्म–मृत्यु और आर्थिक प्रतिरूप पर भी पड़ता है।

परिचयः– साक्षरता का शाब्दिक अर्थ है व्यक्ति के साक्षर होने का गुण। सामान्य अर्थ में साक्षर व्यक्ति वह है जो किसी भाशा में पढ़ना और लिखना जानता है। अक्षर ज्ञान साक्षर होने के लिए अनिवार्य है। विभिन्न देशों में साक्षरता की परिभाशा तथा उसकी माप के लिए प्रयुक्त आधारों में उल्लेखनीय अंतर पाया जाता है जिसके कारण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर साक्षरता की तुलना में कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। भारत के संदर्भ में शिक्षा और साक्षरता में कुछ मौलिक अंतर होता है जो व्यक्ति कम से कम किसी एक भाशा में पढ़ना और लिखना जाता है तथा अपना हस्ताक्षर बना लेता है उसे साक्षर माना जाता है जबकि शिक्षा के लिए पाठशाला उत्तीर्ण करना भी आवश्यक है। सामान्य रूप से साक्षरता शिक्षित व्यक्तियों दोनों के लिए एक साथ साक्षरता शब्द का प्रयोग किया जाता है। कुल जनसंख्या में साक्षर व्यक्तियों के अनुपात को सामान्यतः साक्षरता दर की संज्ञा दी जाती है। साक्षरता की संकल्पना तथा उसके लिए प्रयुक्त मापदंडों में प्रायः एकरूपता नहीं मिलती है। तुलनात्मक अध्ययन में एक बड़ा अवरोधक है साक्षरता की माप के लिए जो आधार प्रयुक्त होते हैं उनमें किसी देश की भाषा की वर्णमाला का ज्ञान, अपने हस्ताक्षर बना लेना, पढ़ने–लिखने की योग्यता तथा कुछ लोग साक्षरता का माप विद्यालयी शिक्षा को मानते हैं। साक्षरता वह वैयक्तिक गुण है जो किसी व्यक्ति के पढ़ने–लिखने की योग्यता के साथ मनुश्य के सोच–विचार और कार्य करने की योग्यता में वृद्धि करती है और उसे नवीन खोजों की दिशा में प्रवृत्त करती है जिससे सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है। कट्टरता सामाजिक भेद–भाव, निर्धनता आदि को दूर करने में साक्षरता का महत्त्व सर्वोपरि है। आज के वैज्ञानिक तकनीकी युग में साक्षरता का महत्त्व और भी बढ़ता जा रहा है क्योंकि निरक्षर या अनपढ़ व्यक्ति समाज और देश की वर्तमान वास्तविक स्थिति तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को समझने में असमर्थ होता है तथा तकनीकी दृष्टि से अकुशल होने के कारण आधुनिक उद्योगों तथा सेवाओं में उचित योगदान भी नहीं कर पाता है। मानव सभ्यता का विकास प्रत्यक्ष रूप से साक्षरता से सम्बन्धित रहा है और वर्तमान काल में भी वे देश या प्रदेश आर्थिक रूप से अधिक सम्पन्न हैं जहाँ साक्षरता दर उच्च है और वे देश पिछड़े हुए हैं जहाँ साक्षरता दर निम्न है। इस शोध–पत्र में सोनीपत जिले की साक्षरता का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

साक्षरता की मापन विधियाँ :– साक्षरता की माप के लिए कई प्रकार के सूचकांकों तथा विधियों का प्रयोग किया जाता है। प्रायः सभी क्षेत्रों में साक्षरता की गणना किसी न किसी रूप में की जाती है किन्तु साक्षरता की परिभाशा और आँकड़ों के संग्रह की तकनीकों में सूचकांकों में भी उल्लेखनीय भिन्नता पाई जाती है जिससे तुलना करना कठिन हो जाता है इसके साथ ही जनगणना की अनियमितता तथा जनगणना अन्तराल की असमानता के कारण भी विभिन्न चरों की साक्षरता की तुलनीयता कम हो जाती है। साक्षरता की गणना के लिए समाहित जनसंख्या के आधार पर साक्षरता दर मुख्यतः दो प्रकार की हो सकती हैः–

(1) अशोधित साक्षरता दर

(2) आयु विशिष्ट साक्षरता दर

(1) अशोधित साक्षरता दर :– किसी देश या प्रदेश के कुल साक्षर व्यक्तियों और कुल जनसंख्या के साधारण प्रतिशत अनुपात को अशोधित साक्षरता दर कहा जाता है। इसकी गणना के लिए निम्नांकित सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$\text{साक्षरता दर} = \frac{\text{कुल साक्षर जनसंख्या}}{\text{कुल जनसंख्या}} \times 100$$

अशोधित साक्षरता दर से साक्षरता का वास्तविक माप नहीं हो पाता है क्योंकि इसकी गणना में 5 वर्ष से कम आयु के बच्चे भी सम्मिलित होते हैं जो प्रायः निरक्षर होते हैं।

$$\text{साक्षरता दर} = \frac{\text{कुल साक्षर जनसंख्या}}{\text{कुल जनसंख्या} - 5 \text{ वर्ष या } 7 \text{ वर्ष से कम आयु की जनसंख्या}} \times 100$$

$$\text{साक्षरता दर} = \frac{5 \text{ वर्ष या } 7 \text{ वर्ष से ऊपर की साक्षर जनसंख्या}}{5 \text{ वर्ष या } 7 \text{ वर्ष से ऊपर की आयु की कुल जनसंख्या}} \times 100$$

अगर इसी आधार पर साक्षरता की गणना करें तो इससे वास्तविक साक्षरता अनुपात प्रकट होगा और विभिन्न क्षेत्रों की या वर्शों की तुलना करना संभव हो सकेगा। सोनीपत जिले की साक्षरता दर को भी इसी विधि द्वारा निकाला गया है और 2001 की साक्षरता दर की तुलना 2011 की साक्षरता दर से की गई है। साक्षरता दर निकालने के लिए भारतीय जनगणना विभाग 2011 में प्रस्तुत किए गए आँकड़ों को आधार मानकर इसका तुलनात्मक अध्ययन द्वितीयक आँकड़ों के द्वारा किया गया है।

अध्ययन क्षेत्रः– भारत के उत्तरी मैदान में स्थित हरियाणा राज्य के सोनीपत जिले की जनसंख्या का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। सोनीपत जिले के पूर्व में यमुना नदी प्रवाहित होती है जो इसकी उत्तर प्रदेश से सीमा बनाती है इसके दक्षिण में भारत की राजधानी दिल्ली स्थित है। यह जिला राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के अंतर्गत आता है। सोनीपत जिला रोहतक जिले से 22 दिसम्बर 1972 को अलग हुआ। इस जिले का उत्तरी अक्षांशीय विस्तार 28°41'30" से 29°11'54" तथा पूर्वी देशांतरीय विस्तार 76°28'30" से 77°13'40" है। इस जिले की सीमाएँ दिल्ली और उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त हरियाणा राज्य के अन्य जिलों जैसे रोहतक, जींद, पानीपत और झज्जर से भी मिलती हैं। सोनीपत जिले का कुल क्षेत्रफल 2122 वर्ग कि०मी० है। इस जिले में चार तहसील (सोनीपत, गन्नौर, गोहाना और खरखौदा) और आठ सामुदायिक खण्ड (सोनीपत, गन्नौर, राई, खरखौदा, मुडलाना, कथूरा, गोहाना और मुरथल) हैं।

मानचित्र–1:सोनीपत जिले की अवस्थिति

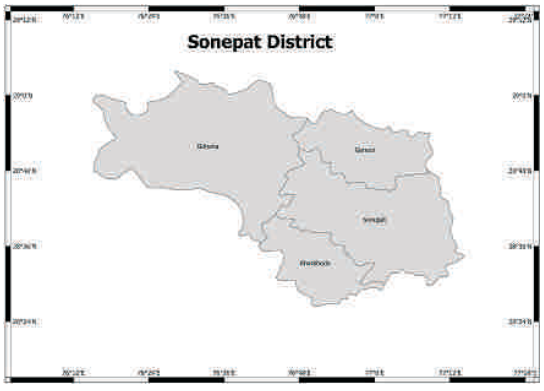

परिणाम और चर्चा :– मातृभाशा में अपना नाम पढ़ने–लिखने की योग्यता या क्षमता को साक्षरता के रूप में परिभाशित किया जाता है। 14 वर्श तक की आयु प्राप्त बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान किए जाने वाले संवैधानिक निर्देशों (अनुच्छेद–45) और क्षेत्रों के द्वारा पिछड़े समूहों तथा क्षेत्रों में शैक्षणिक विकास में वृद्धि हेतु अनेकों उपायों को अपनाए जाने के बावजूद जिले में सभी के लिए शिक्षा प्राप्ति का लक्ष्य अभी भी काफी दूर है। 2001 की जनगणना आँकड़ों के अनुसार हरियाणा में कुल 67.9 प्रतिशत व्यक्ति साक्षर थे और 2011 में कुल 75.55 प्रतिशत हो गया। सर्वाधिक चिंता का विषय यही है कि प्रत्येक जनगणनाओं के बाद असाक्षरों की संख्या अभी तक शून्य नहीं हुई है। जो यह प्रदर्शित करता है कि हम प्रति दशक बढ़ी जनसंख्या को भी साक्षर बनाने में समर्थ नहीं हैं। यह वस्तुतः एक दुश्चक्र है असाक्षरता, जनसंख्या वृद्धि का सूचक है जबकि जनसंख्या में वृद्धि का कारण निरक्षरता उन्मूलन की समस्या अधिक कठोर हो जाती है। हम सोनीपत जिले की जनसंख्या वृद्धि देखें तो 170826 बढ़ी है और साक्षरता दर 7 प्रतिशत बढ़ी है।

तालिका–1

सोनीपत जिले की जनसंख्या (2001–2011)

वर्ष	कुल जनसंख्या	पुरूष कुल जनसंख्या	महिला कुल जनसंख्या
2001	1279175	695723	583452
2011	1450001	781299	668702

स्त्रोत : भारतीय जनगणना विभाग (2001) से (2011)

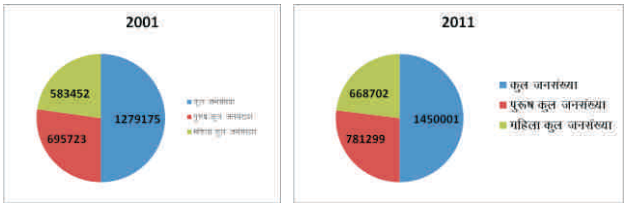

तालिका–1अगर हम तालिका प्रथम में सोनीपत जिले की जनसंख्या वृद्धि देखते हैं तो 2001 से 2011के बीच 170826 जनसंख्या वृद्धि हुई है इसमें पुरूष जनसंख्या वृद्धि 85576 और महिला जनसंख्या वृद्धि 85250 रही। पुरूष– महिला जनसंख्या वृद्धि में 326 पुरूष वृद्धि दर ज्यादा रही।

तालिका–2

सोनीपत जिले की जनसंख्या का साक्षरता प्रतिशत (2001–2011)

वर्ष	कुल साक्षर जनसंख्या प्रतिशत	पुरूष कुल जनसंख्या प्रतिशत	महिला कुल जनसंख्या प्रतिशत
2001	72.08	83.1	60.7
2011	79.1	87.1	69.8

स्त्रोत : भारतीय जनगणना विभाग (2001 से 2011)

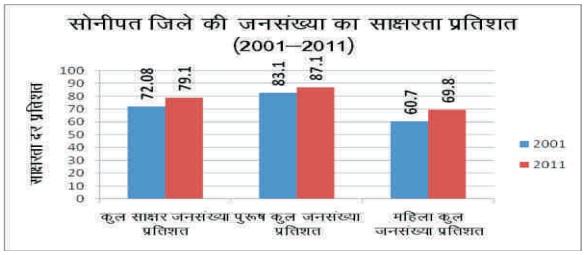

तालिका–2 सोनीपत जिले की जनसंख्या का अगर हम साक्षरता दर प्रतिशत देखते हैं तो 2001 में कुल साक्षरता दर प्रतिशत 72.8 थी जो 2011 में बढ़कर 79.1 हो गई। 10 वर्ष के अंतराल में सोनीपत जिले की जनसंख्या का साक्षरता दर प्रतिशत 7 प्रतिशत बढ़ा इसमें महिला साक्षरता दर प्रतिशत ज्यादा देखने को मिला। पुरूश साक्षरता दर की प्रतिशत की तुलना में। पुरूश साक्षरता दर प्रतिशत 5 और महिला साक्षरता दर 9 बढ़ा जो इस क्षेत्र में वृद्धि और विकास के लिए उपयुक्त माना गया है। ढलते समय के साथ सोनीपत जिले में भी शिक्षा के महत्त्व पर बल दिया गया है। पुरूश–महिला दोनों को शिक्षा का सामान अवसर प्रदान किया गया। इसका परिणाम हमारे समक्ष महिला साक्षरता दर की प्रतिशत में वृद्धि हुई है।

निष्कर्ष :– निश्कर्श के रूप में हम देखते हैं कि सोनीपत जिले की साक्षरता दर (2001–2011) के बदलते स्वरूप का तुलनात्मक अध्ययन में साक्षरता दर की वृद्धि यातायात विकास के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यालयों की स्थापना से हुई है। समाज में स्त्रियों की जनसंख्या के अनुसार साक्षरता का प्रतिशत भी प्रभावित होता है। लेकिन सोनीपत जिले की जनसंख्या के साक्षरता प्रतिशत में 2001 की तुलना में 2011 में 7 प्रतिशत की वृद्धि हुई है और महिला साक्षरता दर प्रतिशत में 9 प्रतिशत की वृद्धि हुई है और पुरूश साक्षरता दर प्रतिशत में 5 प्रतिशत की वृद्धि देखने को मिली।

जनसंख्या में साक्षरता दर में वृद्धि कारण शिक्षा के महत्त्व को समझना, स्कूल–कॉलेजों की स्थापना, समाज के विचारों में परिवर्तन और प्रत्येक व्यक्ति का अपने व्यवहार में परिवर्तन माना गया है क्योंकि शिक्षा के द्वारा हम व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन कर सकते हैं।

एक शिक्षित व्यक्ति एक शिक्षित समाज का निर्माण करता है। प्रदेश के विकास में भागीदार होता है। शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है।

संदर्भ सूची

- अहमद, ए. (1999). सामाजिक भूगोल. रावत प्रकाशन, जयपुर
- अटल, वी., बसु, के., गेरी, जी. और ली, टी. साक्षरता जाल : समाज व्यापक शिक्षा और व्यक्तिगत कौशल प्रीमियम. अंतराष्ट्रीय जर्नल ऑफ इक्नोमिक्स थ्योरी (2009). 137–48.
- कुमार, डी. (2009). हरियाणा में सामाजिक विकास का स्तर. शोध, समीक्षा और मूल्यांकन. 2(6) : 42–46
- कुमार, वी. और यादव, ए. (2018). हरियाणा में अनुसूचित जाति जनसंख्या के बीच साक्षरता दर का अध्ययन (2001–2011) अंतर्राष्ट्रीय जर्नल ऑफ रिसर्च, वाल्यूम– V.
- गोसाल, जी.एस. (1958). भारत की जनसंख्या का भौगोलिक विश्लेषण. शोधपत्र।
- चांदना, आर.सी. (2001). जनसंख्या भूगोल : अवधारणा, निर्धारक और स्वरूप. कल्याणी प्रकाशन, नई दिल्ली
- भारतीय जनगणना विभाग. (2001). जिला जनगणना पुस्तिका, सोनीपत
- भारतीय जनगणना विभाग. (2011). जिला जनगणना पुस्तिका, सोनीपत
- मौर्य, एस.डी. (2007). जनसंख्या भूगोल. शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद.
- मीनू और दीपक. (2014). हरियाणा की साक्षरता दर का विश्लेषण,. जर्नल ऑफ बिजनेस मेंनेजमेंट एंड सोशल साइंस रिसर्च, 3, (7), पृ०सं० 37.41
- मुकेश और विनय. (2011). साक्षरता में विशेश प्रतिरुप और अन्तर : हरियाणा का जिला स्तरीय विश्लेशण. अंतराष्ट्रीय जर्नल ऑफ एडवांस रिसर्च इन मेंनेजमेंट एंड सोशल साइंस, 1, (6), पृ०सृ० 137–145

नेहा रानी
शोधार्थी
भूगोल विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
अस्थल बोहर (रोहतक)
हरियाणा

डॉ0 प्रदीप कुमार शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर
भूगोल विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
अस्थल बोहर (रोहतक)
हरियाणा
124001

4

स्त्री चेतना और स्त्री का स्वत्व के लिए संघर्ष

प्रोफ़ेसर पुष्पा

सारांश

बहुत लंबे समय से स्त्री की मुक्ति, उसके वजूद और उसकी गरिमा के मद्देनज़र दुनिया के कोने–कोने में अनेकानेक आंदोलन होते रहे हैं और यह संघर्ष आज भी जारी है। हालाँकि इन सबसे कहीं ना कहीं स्त्री की आजादी और उसके अस्तित्व को सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा है भले ही थोड़ा–सा ही सही। मगर यह सच है कि स्त्री के लिए यह सब इतना आसान नहीं है। स्त्री के स्वत्व और उसकी मुक्ति के लिए हमारा पुरुष सत्तात्मक समाज एक बहुत बड़ी बेड़ी है। इसके साथ–साथ एक और बड़ी बाधा आर्थिकता भी है। इन चीजों से बाहर आने के लिए यह लाजिमी है कि स्त्री के प्रयासों के साथ–साथ पुरुष समाज भी उदारता के साथ पेश आए। क्योंकि एक लंबी और जड़ व्यवस्था जो सदियों से एक अलिखित संविधान की तरह स्थापित है उसे तोड़ पाना या एकाएक उखाड़ फेंकना इतना आसान नहीं है।

दरअसल स्त्री चेतना और उसके स्वतंत्र अस्तित्व का प्रश्न बहुआयामी है। विशेषकर आज के बदलते परिवेश में यह सब और अधिक मुश्किल हो गया है। इस माहौल में आज स्त्री आत्म सजगता और आत्म चेतना से लैस नही हुई तो यकीनन उसके अस्तित्व पर बड़ा संकट है। इसके लिए उसे सक्रिय भूमिका में आना होगा – पूरी तैयारी के साथ।

"शताब्दियों से गुलामी की जंजीरों में जकड़ी हुई भारतीय नारी को स्वतंत्र बनाकर उसे मानवीय अधिकारों से विभूषित करना, अपने में एक महान साधना है। स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने वर्षों बाद भी हमें इस कार्य में निर्णायक सफलता नहीं मिल पाई है। अधिकारों से वंचित, शोषित और पीड़ित नारी की अंतरात्मा का चीत्कार को क्षितिज के आरपार मुखरित करने का काम सिर्फ स्त्री ही कर सकती है।"

उपर्युक्त कथन के केंद्र में देखे तो यह जरूरी है कि नारी के स्वरूप और उसकी चेतना पर बात करने से पूर्व भारतीय नारी के परम्परागत स्वरूप और आज के परिवर्तित या आधुनिक स्वरूप पर विचार करना बेहद जरूरी है। यह गौरतलब है कि ' आजादी' से नवाजीं जाने वाली स्त्री आज भी मानव समुदाय में उसकी गिनती समाज की एक सजग इकाई के रूप में ना होकर सिर्फ और सिर्फ एक वस्तु की तरह होती है। ऐसी स्थिति में उसके अस्तित्व, मुक्ति या स्वरूप की बात तो कोसों दूर हो जाती है। ऐसे में यह जरूरी है कि वह अपनी इच्छा शक्ति और संघर्ष को चेतना के साथ जमीन पर लाएँ ना कि सिर्फ और सिर्फ किताबी बातें। उसे यह जानना होगा कि वह मात्र एक देह ही नहीं बल्कि उस देह के अन्दर एक मस्तिष्क भी है और अब तक जिस यथास्थिति का स्वीकार करती आई है उससे इतर एक क्रांतिचेता और संकल्प के साथ उसे आगे आना होगा। विशेषकर तब जब पितृसत्तात्म समाज में पूरी सामाजिक व्यवस्था का नियामक ही पुरुष है। क्योंकि इस विपरीत परिवेश में उसे यह लड़ाई दुगुनी शक्ति के साथ लड़नी होगी।

स्त्री की कल्पना, उसकी रूचियाँ, उसकी प्रवृति, उसकी निर्णय क्षमता को गति मिले इसके लिए उसका स्वतंत्रचेता होना अत्यावश्यक है। इतिहास गवाह है कि पुरुष हमेशा से ही अपने बल, पौरूष और बुद्धि को अहंकार के पलड़ों में तोलता रहा है। इसलिए स्त्री चेतना के लिए चिंतन और जमीनी संघर्ष की बुनियादी आवश्यकता है। नारी शोषण से मुक्ति, पुरुष सत्तात्मक समाज से मुक्ति, आर्थिक, मानसिक और दैहिक गुलामी से मुक्ति। इन सब बिलों से मुक्ति तभी संभव है जब वह प्रतिरोध क्षमता रखती हो और वह भी सही दिशा में। दरअसल वैज्ञानिक सोच के कारण स्त्री के शोषण के खिलाफ भी उसे खड़ा करने और समझने के लिए प्रेरित किया। सामाजिक नवजागरण भी यह वातावरण बनाने में आकार तैयार किया है और ये तमाम स्थितियाँ स्त्री चेतना के लिए सकारात्मक रूप से पेश आई हैं। इसे अग्रलिखित इस कथन में देखा जा सकता है।

"इसे नई सदी के द्वार पर उसके आसन्न भविष्य का नक्शा कहा जा सकता है। अभी इसकी आकृति पिछली सदी में खिंची रेखाओं से ही रचित है। स्त्री अब खुद इन आकृतियों में मन चाहा रंग भर पाने की सामर्थ्य अर्जित कर चुकी है ऐसा कहना शायद अभी इसी किस्त मी रस्म अदायगी मात्र हो जैसी इस किस्म की भविष्यवादी चिंताओं के संदर्भ में करने की प्रथा है ..... भारतीय स्त्री की स्थिति में एक गुणात्मक परिवर्तन का आभास कहा जा सकता है कि इस कुछ अंशों में स्त्री की उस छवि में बदलाव को स्वीकृति मिलने लगी है जो पिछली सदी के तीन चौथाई हिस्से में स्त्रीत्व का प्रतिमान और स्त्री के लिए आत्मोपलब्धि का पर्याय थी।"

दरअसल अँधेरे में आशा की किरण दिखने वाली इस

स्थिति का मूलाधार स्त्री की चेतना और स्वावलंबन है। क्योंकि आर्थिकता का आधार स्त्री को अपनी पुरानी छवि से मुक्ति प्रदान करने में सहायक है। दूसरी ओर आत्म चेतना और संवेदनशीलता उसे मानवीय संबंधों की संकरी गलियों से निकालकर उसे समाज के सक्रिय हिस्से से जोड़ती है यानि मनुष्य और मनुष्यता – और इसी हिस्से का हिस्सा हो लेने की लड़ाई लड़ती आई है स्त्री आज तक, जिसके लिए उसे अनेकानेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा है और आज भी कर रही है। क्योंकि संकीर्ण मानसिकता की जंजीरों ने उसे मानसिक रूप से घायल कर रखा है।

आत्म निर्णय की क्षमता का अभाव और भी घातक हो जाता है। इन तमाम स्थितियों से उबरने के लिए परिणामदायक नारी ऑदोलनों की आवश्यकता है – चेतना से लवरेज होकर, तभी स्वतत्व और अस्तित्व मिल पाना संभव होगा – एक ऐसा बेहतर समाज जहाँ उसका होना अर्थवान होगा, समाज के लिए भी और स्वयं स्त्री के लिए भी।

प्रख्यात कवयित्री कात्यायनी के शब्दों में – "नारी आदोलनों को आज किसी एक ऐसे ही सैद्धांतिक– राजनीतिक फ्रेम की जरूरत है, जो दार्शनिक–वैज्ञानिक स्तर पर समाज विज्ञान के सापेक्षिक रूप से सार्वभौमिक नियमों के अनुरूप भी हो और आज की परिस्थितियों के भी अनुरुप हो।"

इन आंदोलनों में यह बातें मुखर रूप से उभर कर बाहर आनी चाहिए कि एक सभ्य कहे जाने वाले समाज में जहाँ स्त्री और पुरुष दोनों ही मनुष्य हैं वहाँ स्त्री पर अन्याय पूर्ण सामाजिक रूढ़ियों को थोपना सर्वथा अनुचित है। यह भी बताना बेहद जरूरी है कि स्त्री के व्यक्तित्व के निर्माण में पितृसत्ता बाधक ना हो। स्त्री के शिक्षा ग्रहण करने और उसके जीवन से जुड़े महत्वपूर्ण फैसले जो उसके विकास के लिए सहायक है उसे पूर्ण स्वतंत्रता के साथ लेने का अधिकार हो। क्योंकि आज के इस परिवर्तनगामी समय में यह अति आवश्यक है।

कहने को परिवर्तन देखने को मिल रहा है। स्त्री कहीं–कहीं आजाद दिखाई दे रही है। वह काफी फैसले स्वयं ले रही है मगर यह स्थिति ऊँट के मुँह में जीरे के समान है। इसलिए इस परिवर्तन को देखकर खुश होने जैसी कोई बात नजर नहीं आती। बल्कि हकीकत यह है कि भले ही आज की स्त्री स्वयं को कितनी ही मनस्वी, तेजस्वी और प्रबुद्ध समझ रही है और अपनी बौद्धिकता को स्थापित करने के लिए कितनी ही पुरानी परम्पराओं और जँजीरां को तोड़ा हो मगर समाज निर्माण में आज भी स्त्री की उपयोगितावादी भूमिका में कोई विशेष अंतर नहीं आया है क्योंकि इस 'आधी आबादी' का बहुत बड़ा हिस्सा आज भी चूल्हे–चौके तक ही सीमित कर दिया गया है।

उधर सिनेमा, टीवी और अन्य मीडिया या बाजार के उत्पादों के साथ आजाद और आत्मनिर्भर दिखने वाली स्त्री की स्थिति जो दिख रही है उससे बिल्कुल उलट है। इस स्वप्निल और दिखावटी आधुनिकता के नाम पर भी स्त्री की दयनीय 'इमेज' ही सामने आ रही है। दूसरे शब्दों में कहें तो इस सारे 'खेल' में वह स्वयं एक वस्तु या उत्पाद बनकर रह गई है उल्लेखनीय है कि स्त्री की इस 'आजादी' के पीछे भी पुरुषसत्तात्म खेल है यही कारण है कि स्त्री आज भी शोषण रूपी पायदान पर ही खड़ी नजर आ रही है – कुछेक उपवादों को छोड़ दे तो।

स्त्री की इस स्थिति पर नज़र डालकर उसकी चेतना या स्वत्व का वह उच्चतर स्तर नजर नहीं आ रहा जिसके लिए उसके प्रयास है। वास्तविकता तो यही है कि पुरुष की तरह ही नारी भी पुरुष की तरह ही स्वतंत्र इकाई है उसकी अपनी एक स्वतंत्र और चारित्रिक पहचान है बेशर्ते कि इस विशेषता को रेंखांकित करने के वे अवसर स्त्री को मिले जिसकी वह हकदार है। मगर हकीकत यह है कि 21वीं सदीं में भी स्त्री का दोयम दर्जा उसका पीछा नहीं छोड़ रहा है। सिमोन द बोउवा के शब्दों में – 'सदियों से नकारात्मक रवैया पाते रहने के कारण स्त्रियों ने अपने अधिकारों की माँग की है। स्वतंत्रता की यह मांग किसी ऊँचे मीनार पर चढ़ना नहीं है, बल्कि ये एक स्वतंत्र इकाई के रूप में अपना स्थान पाना चाहती है। वे अपने भीतर के भय और हीन भाव से निकलकर समाज विकास की मुख्य धारा से जुड़ना चाहती है।"

दरअसल पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने ऐसा माहौल स्त्री को दिया ही नहीं कि वह एक स्वतंत्र इकाई के रूप में अपने आप को स्थापित करते हुए अपने स्वत्व और अस्तित्व के साथ मुक्ति के पायदान पर खड़ी नजर आएँ। बल्कि होना यह चाहिए कि स्त्री के बारे में पुरानी मान्यताओं से छुटकारा पाकर उसकी क्षमताओं को अवसर प्रदान किए जाने चाहिए। उन तथाकथित नैतिकताओं के लबादे से उसे बाहर निकालकर खुली हवा में साँस लेने दें ताकि पग–पग पर उसे अपने आप को साबित करने में ऊर्जा मा खरचनी पड़े। पुरुष सत्ता के सामंती दृष्टिकोण और यौन शुचिता के नाम पर उसे अपमानित करना छोड़ना होगा ताकि विज्ञान सम्मत सोच और सिमोन की 'समाज विकास' की मुख्य धारा से जुड़कर वह इसकी चेतना का भरपूर उपयोग कर सके जिससे उसे उसका स्वत्व और अस्तित्व मिल सके और उसकी पहचान दोयम दर्जे से मनुष्य में तबदील हो सके।

लेकिन इस प्रक्रिया में उसे अनेकानेक परिस्थितियों और चुनौतियों का सामना करना पड़ता है क्योंकि परिवार और समाज के कई घटक हैं। परिवार में मुख्य रूप से पिछली पीढ़ियों के आरोपण है। उनकी संकीर्ण मानसिकता की जंजीरें हैं। परिवार, समाज के

साथ–साथ माँ और सास की भी व्यक्तिगत अपेक्षाएँ है और इन सबके बीच नारी की दोहरी मानसिकता है। आत्म निर्णय की क्षमता का अभाव है खुद को खुद से ही खतरा है। अतः स्वयं से स्वयं की भी अपेक्षाएं हैं सबसे पहले उनको समझना जरूरी है। अपनी खुद की पहचान करना जरूरी है। क्योंकि परंपरागत से आधुनिकता की ओर बढ़ रही स्त्री के साथ चेतना भी लिपटी हुई है और इस आधुनिकता का अर्थ है – अपनी पहचान। स्त्री का अपने बारे में एक स्पष्ट अभिमत क्योंकि यही अभिमत उसे उसके व्यक्तित्व विकास की ओर ले जाता है।

उल्लेखनीय है कि हमारे यहाँ आधुनिकता को भी गलत संदर्भों से जोड़ दिया जाता है। इसे विकास का सोपान न मानकर आयातित संस्कृति का अधूरापन, पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण, भाषा में बनावटीपन मान लिया गया है और स्त्री को परंपरा और आधुनिकता के बीच एक विचित्र वस्तु। इसके साथ–साथ स्त्री के शिक्षित हो जाने का अर्थ विदेशी भाषा, विदेशी रहन–सहन, विदेशी परिधान, पुराने का नकार और आधुनिक का आकर्षण भर मान लिया जाता है जो स्त्री के विकास के लिए सर्वाधिक घातक है। इन सबके बीच जातिय, राष्ट्रीय संस्कृति के अनुसार सही और गलत का निर्णय, व्यक्तित्व और संकीर्ण मानसिकता से परे उदारवादी दृष्टिकोण देना ही वस्तुतः शिक्षा और आधुनिकता के अर्थ को समाहित करता है जो कि मनुष्य की चेतना का आधार है। यही चेतना संस्कार रूप में छनकर व्यक्ति को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य से जोड़ती है व्यक्ति निरंतर आत्म साक्षात्कार करता हुआ यथार्थ के स्वरूप को पहचानता रहता है।

मगर आज इक्कीसवीं सदी की चौथाई तक आते–आते भी स्त्री इन सब हकीकत से कोसों दूर है। यह विडंबना ही कही जा सकती है कि स्त्री को इस हकीकत से दूर रखने के लिए स्त्री खुद नहीं बल्कि यह पुरुष प्रधान समाज और पौरूषीय अहंकार से लिबड़ी हुई यह पितृसत्तात्मक व्यवस्था पूरी तरह से जिम्मेदार है। वह उसकी मानसिकता और देह पर पूर्ण नियंत्रण चाहती है – किसी उपनिवेशक की तरह। अग्रलिखित उदाहरण से यह स्थिति पूर्णतः स्पष्ट होती है– "स्त्री को हमेशा से 'वस्तु' या 'चीज' मानने वाली पितृसप्तात्मक व्यवस्था ने कभी यह सोचने की जरूरत ही नहीं समझी कि स्त्री देह में भी इच्छा और कामना की ऐसी रेशमी शिराएँ होती हैं जो किसी के प्रेम में तनना– सिकुड़ना चाहता है। स्त्री तन–मन को धर्म और नैतिकता की कमरपेटियों में बाँधकर रखने वाला पुरुष–समाज उसे आनंद और भोग के साधन से ज्यादा और कुछ न ही मानता ओर विडंबना यह कि सदियों से अपने पति की सेज सजाने वाली स्त्री खुद को भी उसी दृष्टि से देखने लगती है . .... इस अनवरत खेल में हमेशा से पिसती आ रही स्त्री अब इस खेल से मुक्ति चाहती है।"

मगर यह स्वप्निल मुक्ति शायद इतनी आसान नहीं है। ना तो पितृसत्तात्मक व्यवस्था इतनी आसानी से स्त्री को इस जाल से मुक्त होते देखना चाहती और चेतना का वह स्तर जहाँ एक झटके से तमाम बेड़ियाँ तोड़ दें इसके लिए स्त्री भी संभवतः तैयार नही है। इसके पीछे स्त्री–पुरुष की एक पारंपरिक सोच यह भी है कि भारतीय संदर्भ में नारी का मातृरूप सबसे ज्यादा पूजित है, अतः मात्र नारीत्व और देह प्रसाधन की कृत्रिमता भारतीय समाज में सम्मानित नहीं हो पाती जितना स्त्री का मातृत्व रूप।

विडंबना यही है कि भारतीय समाज में नारी का या तो देवी पूज्य और या कुल्टा वाला रूप। इन दोनों ही रूपों में इतिरंजना है क्योंकि व्यवहार में आते ही ये दोनों रूप ही नैपथ्य में चले जाते है। मगर स्त्री का इंसानी रूप जिसके लिए वह संघर्षरत है वह उभरकर सामने नही आ रहा है। अपने इसी इंसानी रूप की स्वीकोराक्ति चाहती है स्त्री। जबकि यथार्थ यही है कि स्त्री के वजूद की निर्मिती का रास्ता इतना आसान नहीं है।

दरअसल मानव समाज का इतिहास महिलाओं को 'सत्ता', 'प्रभुती और शक्ति से दूर रखने का इतिहास है, इसलिए प्रत्येक देश, काल, जाति, धर्म में महिलाओं को पुरुषों के बराबर ना आने देने की संरचनात्म और सांस्कृतिक बाध्याताएँ बनाई गई है। इन्हीं संरचनाओं और बाध्यताओं से मुक्ति के लिए स्त्री चेतना के स्वरों की गूँज आवश्यक है। इसी आत्म सजगता और आत्म चेतना का परिणाम है अस्तित्व बोध। वर्तमान के बदलते संदर्भों में स्त्री को एक इकाई के रूप में अपने होने के अहसास से ही अस्तित्व की पहचान होती है। मगर समाज में व्यवहारिक रूप में देखे तो सामंती वैचारिकता या पितृसत्तात्मक व्यवस्था में नारी मुक्ति का कोई आधार नहीं है और उसकी चेतना–संपन्नता को विशेष कोशिशों के द्वारा आगे नहीं आने दिया गया है।

मगर इन धीरे–धीरे बदलती सामाजिक व्यवस्था में स्त्री के प्रयासों, उसकी लड़ाई और आंदोलनों के माध्यम से एक सामुदायिक आधार बना है। मानवीय सोच के समर्थन में अस्मिता की सोच के प्रति चीजें बदलने लगी हैं।

बदलाव की इस सोच के पीछे शिक्षा सबसे बड़ा कारण है। स्त्री जैसे–जैसे शिक्षित होते गई अपने अधिकारों और वजूद के प्रति भी वह सचेत होती गई। इसी सचेतता में उसे एक स्वतंत्र इकाई होने का आभास हुआ कि आर्थिकता भी उसकी परतंत्रता का एक बड़ा कारक है इसलिए उसने पितृसत्तात्मक इस व्यवस्था से संघर्ष करके शिक्षा के रास्ते को अपनाया और स्वावलंबी होने की तरफ कदम

बढ़ाया जिससे आर्थिकता से जुड़े जीवन के निर्णय लेने में वह सक्षम होने की ओर अग्रसर होने लगी– भले ही यह गति बेहद धीमी ही क्यों ना रही हो।

"शिक्षा दवारा प्राप्त स्वाभिमान की भावना उसे पति पर बोझ होने की स्थिति स्वीकार नहीं करने देती। इसलिए वह घर की सजावट की अपेक्षा नौकरी चुन लेती है। इससे उसे अपने को प्रयोग में लाने का अवसर मिलता है और सामाजिक उपयोगिता का संतोर्ष भी।"

अगर यह परिवर्तन संकेतात्मक या प्रतीकात्मक है। आधारभूत परिवर्तन आने में अभी और समय लगेगा। क्योंकि घर की देहरी के बाहर के भी अपने खतरे हैं। भारतीय समाज सोच के स्तर पर स्त्री को अभी भी देह के अलावा स्वीकार नहीं कर रहा है यह उसकी बीमार मानसिकता का परिचय ही है। यहाँ भी ऐसी ही स्थितियाँ है। वह या तो घर की चार दीवारी में रहे और किसी आधुनिक की तरह बाहर की दुनिया से राबता स्थापित करती है तो वही बहशी दुनिया उसे अपने इशारों पर संचालित करने लगती है उसका नियामक बनकर। सार्वजनिक जीवन की अपनी दुश्वादियाँ है। उसकी चमक–दमक के पीछे स्याह अँधेरा है। खुले बाजार में उपभोक्ता संस्कृति के बीच अगर सबसे ज्यादा इसकी कीमत चुका रही है तो वह स्त्री ही है। बड़ी–बड़ी विज्ञापन कंपनी मॉडलिंग के नाम पर देह–प्रदर्शन की भारी कीमत देकर उसे छद्म आधुनिकता की घेर बंदी में जकड़ रही है। फिल्मों के व्यावसायिक दृष्टिकोण ने उसे 'सेक्स–सिंबल' बनाकर पेश किया तो समाज के एक बड़े हिस्से ने उसे हिकारत की दृष्टि से देखना शुरू कर दिया और उस बाजार में वह ना–नुकर करती है तो उसे पुरातन पंथी कहकर उस काम से ही छुटकारा दिला दिया जाता है। इस दुरुह स्थिति से निकलने के लिए आज की स्त्री के पार अगर सुदृढ़ इतिहास या मजबूत संगठन नहीं है तो कम से कम उसकी वर्तमान लड़ाई की एक ठोस रूपरेखा तो होनी ही चाहिए क्योंकि कोई भी परिवर्तन रातो रात संभव नहीं है और ना ही हवा में तीर छोड़ने से कुछ बदलाव होने वाला। इस परिवर्तन के लिए समानांतर प्रतिक्रियाओं का होना बेहद जरूरी है और ये प्रतिक्रियाएँ अगर घर, परिवार और समाज के रचनात्मक नजरिए की ओर से आती है तो स्त्री की दुनिया बेहतर और सुखद हो सकती है क्योंकि आसपास के जीवन से साक्षात्कार के मायने हैं कि आपके लिए रास्ते आसान है। आपकी अपनी दुनिया निर्मित होने में तमाम स्थितियाँ कहीं ना कहीं सहायक हो रही है। मगर यह सब तभी संभव हो पाएगा जब स्त्री की अपनी चेतना विकसित होगी और पितृसप्तात्मक सोच का रवैया उदारवादी होगा क्योकि स्वत्व की दिशा में रूढ़ियाँ और पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था ही स्त्री के विकास में बाधक हैं। उदाहरण के लिए हम दृष्टिपात करें तो चाहे स्त्री मुक्ति और उसके अधिकारों के लिए हो रहे आंदोलन हो या स्त्री लेखन या फिर कोई भी ऐसा क्षेत्र जहाँ स्त्री मुक्ति के प्रयास किए जा रहे हो वहाँ संघर्षरत स्त्री का विरोध पितृसत्ता से ही रहा है– उस पितृसत्ता से जो सदियों से किसी उपनिवेश की तरह इस 'आधी आबादी' पर राज करती आ रही है। दरअसल भारत में अनेकानेक कर्मों, संप्रदायों, जातियों और अपने–अपने समाज की मान्याताओं का एक विस्तृत जाल है, अनेकानेक सामाजिक स्तर हैं और इन तमाम स्तरों की इसकी रूढ़ियाँ और मान्यताएँ हैं, जिनमें अगर सबसे अधिक कोई पिसता है तो वह स्त्री है। सामाजिक रूढ़ियों और धार्मिक मान्यताओं ने स्त्री के व्यक्तित्व और उसकी चेतना का सबसे अधिक कुंद किया है। वर्तमान समाज एक सभ्य और सुशिक्षित समाज की श्रेणी में आता है। ऐसे में स्त्री को समाज की एक स्वतंत्र इकाई मानकर चलना होगा तभी इस समाज और स्त्री का सर्वांगीण विकास संभव है। स्त्री की स्वंतत्रता को स्वच्छंदता मानने की हमारी सोच (पितृसत्तात्मक) से बाहर आना होगा और इस सोच से भी कि 'स्त्री सिर्फ और सिर्फ आनंद की वस्तु है।'

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि भले ही स्त्री विमर्श और यह अवधारणा पुरुष सत्ता के लिए 'सोफ्ट' ना रही हो मगर स्त्री को देहरी से बाहर निकलकर अपने बारे में सोचने और अपने वजूद के सँवारने की चेतना पैदा की है। वह अपने बारे में स्थापित पूर्वाग्रहों और दुराग्रहों को अनदेखा करते हुए स्त्री चेतना और स्वतवः के लिए संघर्षरत है। अतीत से निकल कर, सुनहरे वर्तमान के बनने के लिए निरंतर प्रयासरत है और अपने लिए ठोस धरातल तलाश रही है। यह उम्मीद करते हुए कि इस विषय पर पुरुष को भी अपने दंभ और दर्प के खांचों से बाहर आना है? दिमाग से सोचने की जरूरत है। मगर स्थापित पुरुष सत्ता की नींव इतनी जल्दी हिलने वाली नही है। प्रभा खेतान के शब्दों में – "अधिकतर पुरुष उदारता का मुखौटा भले ही डाल लें किंतु वे पुरुष पहले हैं, मानवतावादी बादमें।"

प्रभा खेतान की यह धारणा ऐसे ही नही बनी बल्कि इस धारणा को पुष्ट करने वाले उदाहरण हमारे समाज में पग–पग पर देखने को मिलते है। मगर स्त्री को इन सबसे पार जाना होगा – भले ही संघर्ष करने या फिर मैत्री भाव से।

बहरहाल स्त्री अपने स्वत्व और अपने वजूद के लिए जिस संजीदगी से प्रयासरत और संघर्षरत है उसके परिणाम देर–सवेर सकारात्मक होते– ऐसा स्त्री विमर्श के ताने बारे में बुने जाने वाले स्त्री के बुहरंगी वजूद के सपनों से साफ झलकता है। भले ही यह सब समग्र रूप से संभव ना हो पाए मगर छोटे–छोटे अंशों में ही सही, एक दिशा पकड़ रहे हैं और वह दिशा जिस ओर जा रही है वहाँ मील

का पत्थर एक ना एक दिन साबित होना तय है।

संदर्भ–

1. स्त्री जागरण की दिशाएँ, डॉ0 सुधा बालकृष्णन, 'नारी : अस्तित्व की पहचान', पृ0 69, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
2. अस्मिता–विमर्श का स्त्री स्वर, अर्चना वर्मा, मेधा बुक्स, दिल्ली, पृ0 59
3. 'हंस', अगस्त 1991, पृ0 53
4. सिमोन द बोउवा– स्त्री उपेक्षिता (अनुवाद प्रभाव खेतान) पृ0 67, हिंद पॉकेट बुक्स
5. विखंडन और पुनर्गठन के बीच भूमंडलोत्तर स्त्री कहानी, राकेश बिहारी, 'आजकल', मार्च 2016, नई दिल्ली, पृ0 11
6. किरण बजाज, हिंदी कहानी नौकरीपेशा स्त्री की संक्रांत स्थिति, हिंदी कहानी : दो दशक की
7. नारीवाद का भारतीय दृष्टिकोण, समपांतर–अक्तूबर 2003, दिल्ली, पृ0 19

प्रोफ़ेसर पुष्पा

हिन्दी–विभाग

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

मोबाईल : 7988887991

5

''स्वयं सहायता समूह का स्वरूप हरियाणा के सन्दर्भ में''

डॉ0 मनजीत कुमार

सारांश

स्वयं सहायता समूह के जरिए महिलाओं में बचत को बढ़ावा मिल रहा है। जिसके चलते उन्हें सेठ (साहूकार) और महाजनों से छुटकारा मिल जाता है और उनका मानसिक तथा शारीरिक शोषण से बच जाती है। समूह के माध्यम से गांव की महिलायें इक्ट्ठी हो जाती है और वे अपने अधिकारों के विषय में भी बात करती है। समाज की सामाजिक बुराईया खत्म करने के लिए वे आगे आती है। अगर महिलायें दृढ़ हो जाए तो वे पुरूषों से ज्यादा ताकतवर साबित हो जाती है। वे अपनी दृढ़ता से इस पुरूष प्रधान समाज में कुछ भी हासिल कर सकती है। देश की नारी ही समाज व राष्ट्र की रीढ़ की हड्डी है। वो घर, समाज और प्रदेश जहां औरतों की इज्जत होती है, खुशहाली सिर्फ वहीं आ सकती है। स्वयं सहायता समूह ने हजारों गरीब तबके की महिलाओं को न केवल घर की चौखट से बाहर निकाला है बल्कि उन्हें आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने में भी समर्थ बनाया है। आने वाले समय में स्वयं सहायता समूहों का विकास और तेजी से होने की उम्मीद है और ये समूह देश की अर्थव्यवस्था में अपना महत्वपूर्ण योगदान देंगे।

स्वयं सहायता समूह किसी भी क्षेत्र में सामाजिकता पर गौर करे तो पाते हैं कि किसी भी कार्य में मदद लेना और देने की परम्परा सदियों से चली आ रही है। जैसे गांव में ''सामुदायिकता की भावना'' हर समाज की सबसे बड़ी सहायता है कि इसके सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक पहलुओं के तार भी आपस में जुड़े हुए है। परन्तु आज 21वीं सदी में पैसा बाजार प्रतियोगिता पूर्ण युग में इसका फैलाव, विकास की प्रक्रिया में संगठित हो कर नहीं किया गया। इसके बावजूद सामुदायिकता गरीब व सामाजिक तौर से पिछड़े वर्गों में आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान है।

सार तत्वः– स्वयं सहायता समूह, महिलाएं आर्थिक बचत

स्वयं सहायता समूह का इतिहास देखने से यह पता चलता है कि मुख्य रूप से इसकी शुरूआत देश के प्रतिष्ठित स्वैछिक संस्था जैसे सेल्फ एम्पलाइड वीमेन एशोसिएशन (SEWA) अहमदाबाद, बंगलौर आदि के माध्यम से हुई थी। यह संस्था 1968 से ही सामाजिक कार्य के प्रति अपनी भूमिका निभानी शुरू कर दी थी। हरियाणा के गांव में भी स्वयं सहायता समूह का तेजी से विकास हो रहा है। जिस्से महिलाएं आर्थिक सम्पन्न हो रही है। स्वयं सहायता समूह मुख्य रूप से निम्न मुद्दों पर जोर देते हैं।

- सामुदायिक क्रियाशील समूह के माध्यम से ग्रामीण शाखा पद्वति।
- महिलाओं को संगठित करना जिससे स्वयं, सहायता समूहों को बढ़ावा दिया जा सके।

हरियाणा का गठन 1 नवम्बर, 1966 को पंजाब के पूर्व राज्य के दो अलग–अलग राज्यों पंजाबी भाशी पंजाब और हिंदी भाषी हरियाणा में विभाजन के परिणामस्वरूप हुआ था। हालांकि पुर्नगठन ने एक पंजाबी सूबे, पंजाबी भाशी प्रांत के लिए सिख समुदाय द्वारा की गई मांगों का पालन किया। लेकिन इसने पंजाब के हिंदी भाषी क्षेत्र में एक विशाल हरियाणा ग्रेटर हरियाणा के लिए लोगों की आकांक्षाओं को भी पूरा किया। हरि, हिंदू भगवान विष्णु और अयन, घर से हरियाणा नाम का अर्थ है भगवान का निवास क्षेत्रफल 17,70 वर्ग मील 44,212 वर्ग किमी है। इसमें 22 जिले है।

स्वयं सहायता समूह क्या हैः– स्वयं सहायता समूह समान सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि वाले 10–20 सदस्यों का एक स्वैच्छिक समूह जो सदस्यों द्वारा हर महीने छोटी–छोटी बचत करके धनराशि इक्ट्ठा की जाती है। समूह द्वारा बचत की जाने वाली धनराशि इसकी अवधि तथा सदस्यों को किन उद्देश्यों हेतु ऋण दिया जा सकता है।

- नियमित रूप से अपनी आमदनी से थोड़ी–थोड़ी बचत करते है।
- व्यक्तिगत राशि को सामूहिक विधि में योगदान के लिए परस्पर सहमत रहते है।
- सामूहिक निर्णय लेते है।
- सामूहिक नेतृत्व के द्वारा आपसी मतभेदों का समाधान करते हैं।
- समूह द्वारा तय किये गए नियमों एवं शर्तों पर ऋण उपलब्ध कराते हैं।
- स्वयं सहायता समूह का सदस्य किन महिलाओं को बनाया जाएः–
- सदस्य महिला बी0पी0एल0 से नीचे हो।
- एक महिला एक ही स्वयं सहायता समूह की सदस्य हो।
- महिला भी स्वयं सहायता समूह से जुड़ने की इच्छुक हो।
- विधवा, तलाकशुदा निर्धन, अल्पसंख्यक महिला वर्ग को प्राथमिकता दी जाए।
- एक परिवार से एक ही महिला सदस्य हो।

स्वयं सहायता समूहों को राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) ने फरवरी 1992 में स्वयं सहायता समूहों को वाणिज्य बैंको से जोड़ने के लिये पायलेट परियोजना शुरू की थी। जिसके बाद में सरकारी बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को भी शामिल कर लिया गया। गरीब परिवारों को गरीबी से निजात दिलाने के लिए स्वयं सहायता समूह एक नई आशा की किरण लेकर आते है। स्व0 भूतपूर्व प्रधानमंत्री इन्दिर गांधी के काल से ही सरकार गरीबी हटाओं के नारे तो लगाती रही है परन्तु गरीबी खत्म होने की अपेक्षा बढ़ती चली जा रही है। स्वयं सहायता समूह महिला सदस्यों को आत्म निर्भर बनाने की कौशिश की जाती है महिलाएं आपस में मिलजुलकर एक दूसरे की मद्द करती है और अपनी समस्याओं के समाधान के लिए पहल करती है और समाधान तक पहुंचाती है। स्वयं सहायता समूहों से जुड़ कर महिलाएं शिक्षा, कानूनी अधिकार सरकार की नीतियों के बारे में स्वरोजगार कानूनी जानकारी, स्वास्थ्य व पोषण के बारे में जानकारी प्राप्त करती है। स्वयं सहायता समूह कौन–कौन से क्षेत्र में कार्य कर रहे है।

अलग–अलग क्षेत्रों की जनता यह सोच कर चलती है कि स्वयं सहायता समूह सिर्फ आर्थिक गतिविधियां ही चलाती है। परन्तु स्वयं सहायता समूह का कार्य क्षेत्र इससे काफी मात्रा मे बड़ा है। इसके द्वारा हम महिलाओं के जीवन से जुड़े विभिन्न मुद्दे जैसे कन्या भ्रूणहत्या, बाल विवाह, पदप्रिया महिला हिंसा, महिला उत्पीड़न, बालिका मजदूरी, दहेज प्रथा, अधिकारों से वंचित महिलाओं के अनेक अधिकारों से सम्बन्धित कैम्प लगाकर जागरूक करना। महिला शिक्षा परिवार से जुड़ी परेशानियों आदि स्वयं सहायता समूह समाधान के लिए आवश्यक कदम उठा सकते है। इसके अतिरिक्त समूहों के माध्यम से सदस्य शिक्षा, स्वास्थ्य, बालिका मजदूरी पोषण व देखभाल से जुड़ी अनेक महत्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त कर सकती है। परिवार नियोजन व टीकाकरण से जुड़ी बातें व इसके लिए आवश्यक मानसिक प्रेरणाएं समूह के सदस्यों को एक दूसरे से प्राप्त होती है। घर में या समाज में किसी प्रकार की संकटपूर्ण स्थिति आने पर प्राप्त होती है। घर में या समाज में किसी प्रकार की संकटपूर्ण स्थिति आने पर स्वयं सेवी संस्थाएं महत्वपूर्ण मद्दगार साबित होती है और एक दूसरे की हर सम्भव मद्द करते है। इससे महिलाओं में आपस में एक परिवार का रिश्ता बनता है और महिलाएं अपने अधिकारों और अन्याय के खिलाफ मिलकर अपनी आवाज को बुलंद करती है। अब महिला एक साथ जाकर गांव में शराब के ठेकों को बंद करवाती है और सामूहिक धरना प्रर्दशन करती है। स्वयं सहायता समूह के थोड़े से प्रयास से ही महिलाओं के विचारों से इतना बड़ा परिवर्तन आ सकता है, जोकि महिला सशक्तिकरण की और बढ़ावा देता है।

स्वयं सहायता समूह के उद्देश्यः–

(क) समूह की महिलाओं में आत्मविश्वास, नई ऊर्जा और उनकी क्षमताओं का विकास करना।

(ख) महिला सदस्यों के अन्दर बचत की आदत और उन्हें आर्थिक रूप से सक्षम बनाना।

(ग) अपने समाज में लैंगिक भेदभाव जाति प्रथा को धीरे–धीरे खत्म करना।

(घ) समाज के सामाजिक आर्थिक तथा संस्कृति रूप से महिला तथा पुरूष के बीच में समानता लाना।

(ड) महिला सशक्तिकरण की प्रक्रिया को शुरू करने के लिए समूह के माध्यम से उन्हें संगठित करना और उनके अन्दर समूह–भावना को विकास करना।

बचत की आवश्यता क्यों?:– मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है दुःख और सुख उसके साथ चलते हैं परन्तु जब मनुष्य की स्थितिसंकट काल की होती है जो दोस्त, रिश्तेदार, भाई सभी मुंह फेर लेते है। संकट काल स्थिति बिमारी, महामारी करोना आदि संकटकालीन स्थिति से निपटने के लिए हमें एक बड़ी रकम की जरूरत पड़ती है। एक आम आदमी के लिए ज्यादा पैसा इक्ट्ठा करना मुश्किल हो जाता है क्योंकि उसकी दो वक्त की रोजी–रोटी ही चल पाती है। यदि शुरू से ही थोड़ी–थोड़ी बचत की जाएं तो हमें किसी के सामने हाथ फैलाने की जरूरत नहीं पड़ेगी और हम अपनी मद्द खुद ही कर सकते हैं। इसके अलावा और अन्य निम्न कारणों से बचत जरूरी है।

- कर्जदारों के चुंगल से बचाने के लिए।
- बचत से फिजूल खर्ची पर रोक लग सकती है।
- बचत करके अपना पैसा सुरक्षित रहता है।
- जमीन, गहने आदि साहूकारों के पास गिरवी नहीं रखने पड़ते।
- जरूरी कार्यों के लिए समूह से आसानी से ऋण मिल जाता है। जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, लड़कियों की शादी के लिए आदि।
- गरीबों के बीच बचत विकास करने का माध्यम और बचत की भावना को प्रोत्साहित करते हुए संस्थागत और व्यक्तिगत विकास की ओर ले जाना।
- महिला और कमजोर वर्गों का सशक्तिकरण।
- स्वतंत्रता, समानता, आत्मनिर्भरता और सशक्तिकरण सुनिश्चित होना।
- विभिन्न प्रकार का प्रोत्साहन सहायता का उपलब्ध होना।
- अपने गांव में ही आपातकालीन उपयोग एवं उत्पादन कार्य हेतु कर्ज की उपलब्धता।

स्वयं सहायता में औपचारिक एवं अनौपचारिक ऋण व्यवस्था के **गुणों का समायोजनः–**

अनौपचारिक (पड़ौसी सेठ साहुकार महाजन)		अनौपचारिक (बैंक)	
दोष	गुण	दोष	गुण
ज्यादा ब्याज बंधक खुशामद	स्थानीय एवं परिचित समय और ऋण कर्ज लेने एवं देने वाले के बीच व्यक्तिगत सम्पर्क	छोटा कर्ज ज्यादा खर्च और लम्बी प्रक्रिया बैंक से सम्पर्क कम	शोषण नहीं कम ब्याज खुशामद नहीं

स्वयं सहायता समूह चलाने का तरीकाः–

समूह के औपचारिक गठन के बाद समूह के सदस्य थोड़ी–थोड़ी बचत इक्ट्ठी करते है। कुछ महीनों बाद समूह ऋण देने का कार्य शुरू कर देता है। ऋण देने और लेने के सम्बन्ध मे ंसमूह के सदस्य पहले ही नियम तय कर लेते हैं। स्वयं सहायता समूह का बैंक में एक खाता खुलवाना चाहिए। बैंक खाते में समूह का पैसा सुरक्षित रहता है और बैंक उस पैसा का ब्याज देते है जिस से समूह को फायदा होता है। जमा पैसे के हिसाब से बैंक समूह को कुछ पैसा ऋण के रूप में देता है। बैंक में खाता खुलवाने के लिए स्वयं सहायता समूह के सदस्यों के फोटो परिचय पत्र आधार कार्ड या राशन कार्ड की कापी या अन्य दस्तावेज, समूह का प्रस्ताव पत्र और समूह के नियम और शर्तों होती है। बैंकों द्वारा समूह को सरकार की योजना चलाने के लिए सस्ती दर पर ऋण दिया जाता है। जिससे समूह को लाभ मिल सकता है और समूह अपने कार्य में निरन्तर नई–नई योजनाएं ला कर सरकार और समूह को फायदा मिलता रहता है। हरियाणा की गरीब, दबी–कुचली और सिर्फ घर का कामों में उलझी रहने वाली महिलाओं में भी स्वयं सहायता समूह के माध्यम से अब आर्थिक सम्पन्नता की भावना का विकास हुआ है।

सुझावः–

(क) स्वयं सहायता समूह की पाक्षिक दो बैठके होनी चाहिए।

(ख) समूह की बैठक में सिर्फ समूह के सदस्य ही भाग ले।

(ग) समूह की बैठकों में 80 से 90 प्रतिशत महिलाएं शामिल हो।

(घ) जिस काम के लिए समूह के सदस्य बैंक से ऋण ले उसकी काम को करें।

(ड़) समूह के सदस्य बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ पर जोर दे।

सन्दर्भ सूची

1. सचदेवा डी0 आर, भारत में समाज कल्याण, किताब महल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2015
2. कटारिया सुरेन्द्र, सामाजिक प्रशासन, कल्याण प्रशासन, आरबीएसए प्रकाशन, जयपुर, 2021
3. पाण्डेय तेजस्कर, पाण्डेय नालेश्वर, समाज कल्याण प्रशासन, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019
4. सचदेवा डी0आर. भारत मे ंसमाज कल्याण प्रशासन किताब महल, पुरानी दिल्ली, 2017
5. गौतम विद्यापति, समाज कल्याण नीति और प्रशासन के0 के0 प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014

डॉ0 मनजीत कुमार

सहायक प्रोफेसर, विभाग राजनीति विज्ञान

एवं लोक प्रशासन विभाग

बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर,

रोहतक।

मो0–9466901260

E-mail manjeetkumarmdu@gmail.com

6

आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी जगत् के एक अतुलनीय हस्ताक्षर

डॉ0 निर्भय शर्मा

सारांश

आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी जगत् की एक ऐसी हस्ती हैं जिनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व से विश्व हिंदी जगत् सदैव अवगत रहेगा । वह एक युग प्रवर्त्तक निबंधकार एवं आलोचक हैं । इनका लेखन कार्य 1900 ई0 से 1940 ई0 तक विस्तृत रूप से देखने को मिलता है । इस दौरान वह अपने विचारों को निरंतर पुष्ट, परिष्कृत एवं परिमार्जित करते रहे हैं । इनके निबंधों में प्रौढ़ चिंतन तत्व के दर्शन होते हैं । प्रायः शुक्ल जी ने उन्हीं विषयों को विवेचन एवं विश्लेषण के लिए चुना है जो कि मानव–जीवन में उपयोगी सिद्ध हुए हैं । इनका पहला निबंध संग्रह 'विचारवीथी' 1930 ई0 में प्रकाशित हुआ । इसमें शुक्लजी के प्रारम्भिक निबंध संकलित हैं । इसके पश्चात् 1939 ई0 में उनका निबंध संग्रह 'चिंतामणि' नाम से प्रकाशित हुआ । विचारवीथी को चिंतामणि भाग 1 का पूर्वरूप स्वीकार किया गया है । इसमें मनोविकार, साहित्य सिद्धांत एवं समीक्षा संबंधी विशयों के सत्रह निबंध संकलित हैं । आचार्य शुक्लजी ने आलोचना के क्षेत्र में जो प्रतिमान स्थापित किये हैं वह आज भी प्रासंगिक हैं । उनकी समीक्षा पद्धति की निम्न विशेशताएँ हैं– उच्चकोटि की रसानुभूति और विश्लेषण शक्ति, बुद्धि और हृदय का समन्वय, विवेचक की स्पष्टता, गुण–दोष पर समान दृष्टिकोण, मनोभावों का आधार, कवि की प्रकृति खोज, हृदय और कलापक्ष दोनों पर समान दृष्टिकोण, हास्य–व्यंग्य और विनोद का पुट, आलोचय में वर्णित भावों, विचारों की आलोचना के पश्चात् उपयुक्त उद्धरणों द्वारा पुष्टि, ऐतिहासिक समीक्षा पद्धति, तुलनात्मक समीक्षा पद्धति, पाश्चात्य आलोचना पद्धति आदि के द्वारा इन्होंने अपने विचारों को पुष्ट किया है । आचार्य शुक्लजी ने वर्तमान युग के उन भारतीय समीक्षकों में अपना सर्वोच्च स्थान बनाया है जो इनसे पूर्व आलोचना पद्धति से न तो परिचित थे और न ही आलोचना के क्षेत्र में क्रियाशील ही थे । आचार्य शुक्लजी ने आलोचना के क्षेत्र में जो कार्य किया वह समग्र भारतीय साहित्य के अन्तर्गत आज भी रेखांकित किया जा सकता है ।

आलोचना के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान आचार्य शुक्ल जी का है । उन्होंने 'कविता क्या है' एवं 'साहित्य' निबंध लिखकर अपनी काव्य शास्त्रीय मेधा और स्वतंत्र चिंतन शक्ति का परिचय दिया था । लेकिन उनकी पहली सैद्धान्तिक आलोचना कृति 'काव्य में रहस्यवाद' इसी आलोचय युग में प्रकाशित हुई थी । शुक्ल जी ने भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्यशास्त्र का गंभीर अध्ययन किया था । उन्होंने हिंदी में पहली बार रस–विवेचन को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया । इस दृष्टिकोण से उनका सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ 'रस–मीमांसा' विवेच्य अवधि के पश्चात् प्रकाशित हुआ, पर उनकी इस काल में प्रकाशित आलोचना–पुसतकों में भी उनके व्यापक और गंभीर अध्ययन तथा गहरी मनोवैज्ञानिक दृष्टि का परिचय मिलता है। 'चिंतामणि' में संकलित निबंध इस कथन के प्रमाण–रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं । रस–सिद्धांत के विवेचन में शुक्ल जी ने पूर्ण मौलिकता का परिचय दिया है । उन्होंने अपने दृष्टिकोण से भाव, विभाव, रस आदि की पूर्नव्याख्या की । विभिन्न भावों की व्याख्या में उनका पाण्डित्य, मौलिकता और सूक्ष्म पर्यवेक्षण पग–पग पर दिखायी पड़ता है । क्रोचे के अभिव्यंजनावाद और कुंतक के वक्रोतिवाद का तुलनात्मक विवेचन कर अभिव्यंजनावाद को भारतीय वक्रोतिवाद का 'विलायती उत्थान' मानना भी उनके अध्ययन की गहराई का परिचायक है । हिंदी की सैद्धांतिक आलोचना का परिचय और उसके विवेचन को धरातल से ऊपर उठाकर गंभीर स्वरूप प्रदान करने का श्रेय शुक्लजी को ही जाता है ।

आचार्य शुक्लजी हिंदी के पहले समालोचक थे, जिन्होंने भारतीय और पाश्चात्य समालोचना का समन्वय स्थापित किया । एक ओर तो वे प्राचीन रसवाद के समर्थक थे और दूसरी ओर पाश्चात्य समालोचना के ऐतिहासिक,मनोवैज्ञानिक,व्याख्यात्मक आदि पक्षों के पोषक थे । उन्होंने समालोचना की जिस पद्धति को अपनाया है – वह व्याख्यात्मक और निर्णायक दोनों के बीच की है ।[1]

[2] हिंदी आलोचना में आचार्य शुक्ल का अवतरण एक महत्वपूर्ण घटना कही जा सकती है । आचार्य शुक्ल से पहले हिंदी समीक्षकों के सामने न तो कोई आदर्श थे और न कोई सिद्धांत थे । सभी अपने–अपने ढंग से आलोचना लिखा करते थे, किन्तु आचार्य शुक्ल ने हिंदी आलोचना को निश्चितम मानदण्ड प्रदान किये । उन्होंने साहित्य की सूक्ष्म शक्ति भावों के उद्वेलन की शक्ति को समीक्षा की कसौटी के रूप में स्वीकार किया । इतना ही नहीं,उन्होंने सामाजिकता और लोक मंगल की भावना को महत्व दिया तथा इसी आधार पर हिंदी आलोचना के मानदण्ड स्थापित किये । काव्य में

भाव पक्ष और कलापक्ष दोनों को समान महत्व देते हुए आचार्य शुक्ल ने 'कला कला के लिए' तथा 'कला जीवन के लिए' जैसे सिद्धांतों में सामंजस्य स्थापित किया । यह निर्विवाद सत्य है कि आचार्य शुक्ल की आलोचना पद्धति लोकमंगलवादी रही है।उन्होंने 'हिंदी–साहित्य का इतिहास,' 'जायसी ग्रंथावली की भूमिका' 'गोस्वामी तुलसीदास,' 'सूरदास,' 'मलिक मोहम्मद जायसी' पर विस्तृत समीक्षाएँ लिखी' । शुक्लजी की समीक्षा पद्धति आगे के आलोचकों के लिए प्रेरणा बनी । डॉ0 नगेन्द्र का यह कथन शत–प्रतिशत सत्य है कि ''आचार्य शुक्ल के संबंध में यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि उनके समान मेधावी आलोचक किसी भारतीय भाषा में नहीं है ।'' [2]

आचार्य शुक्ल के मनोविकार संबंधी निबंधों के अन्तर्गत भाव या मनोविकार, उत्साह, श्रद्धा,करूणा, लज्जा और ग्लानि, लोभ और प्रीति, घृणा, ईर्ष्या, भय तथा क्रोध शीर्षक से दस निबंध संकलित हैं। मनोविकारों पर तर्कमय चिंतन के साथ हिंदी में प्रथम बार किसी साहित्यकार ने विचार प्रस्तुत किये । शुक्लजी ने अपने इन निंबधों में साहित्यिक एवं सामाजिक जीवन का सम्पूर्ण अनुभव प्रकट किया है । मनोवेगों का परिश्कार एवं समाज कल्याण का भाव उनका प्रमुख उद्देश्य रहा है । सब प्रकार की प्रवृत्ति और निवृत्ति के द्योतक, मानवजीवन के प्रवर्त्तक ये भाव या मनोविकार ही होते हैं । आचार्य शुक्ल ने भाव या मनोविकारों के विकास पर विचार करते हुए कहा कि मनुष्य के हृदय में भाव क्यों और कैसे पैदा होते हैं ?इनका संबंध किसी शुद्ध आत्मा या अशुद्ध माया नाम की वस्तु से है या इनका स्त्रोत मनुश्य के सामाजिक व्यवहार, उसके भौतिक जीवन में ढूँढ़ना चाहिए ?अनुभूति के द्वंद्व ही से प्राणी के जीवन का आरंभ होता है । उच्च प्राणी मनुष्य भी केवल एक जोड़ी अनुभूति लेकर इस संसार में आता है । [3] यह द्वंद्वसुख और दुःख का है सुख और दुःख ही मूलभूत अनुभूतियाँ हैं । मूल अनुभूति ही विषयभेद के अनुसार नए–नए भाव पैदा करती है । 'नाना विशयों के बोध का विधान होने पर ही उनसे संबंध रखने वाली इच्छा की अनेकरूपता के अनुसार अनुभूति के भिन्न–भिन्न योग संघटित होते हैं जो भाव या मनोविकार कहलाते हैं।'[4] शुक्लजी के भाव या मनोविकार संबंधी निबंधों का महत्व स्थापित करते हुए कृष्णदेव झारी कहते हैं– 'शुक्लजी का मनोविज्ञान व्यावहारिक और निति प्रधान है । उसका एक ठोस सामाजिक आधार है । उनके भाव निरूपण का उद्देश्य भी व्यावहारिक, स्वाभाविक प्रवृत्ति को जगाना है । वे प्रत्येक मनोविकार का सामाजिक दृष्टि से अवश्य विचार करते हैं । [5]

प्रायः देखा गया है कि मनुष्य समाज में रहते हुए अनेक क्रियाकलाप करता है । इन सभी क्रियाकलापों को करते समय उसका ध्यान अपने हृदय में उत्पन्न होने वाले भावों और मनोविकारों पर भी होता है । समाज में विचरण करते हुए उसकी लोक रक्षा और लोकरंजन की समस्त व्यवस्था मनोविकारों द्वारा ही व्यवस्थित होती है और धर्म शासक, राजशासक भी लोभ और भय दिखाकर मनोवेगों से काम लेते हैं । इस लोभ और भय की अचार्य शुक्ल भाव या मनोविकार निबंध में इस प्रकार व्यक्त करते हैं, ' सब प्रकार के शासन में चाहे धर्म शासक हो, चाहे राज–शासन या संप्रदाय शासन मनुष्य जाति के भय और लोभ से पूरा काम लिया गया है । दंड का भय और अनुग्रह का लोभ दिखाते हुए राज–शासन तथा नरक का भय और स्वर्ग का लोभ दिखाते हुए धर्म शासन और मत शासन चलते आ रहे हैं । [6] इस प्रकार से मानव समाज में भाव या मनोविकारों का सदुपयोग भी हुआ है और दुरूपयोग भी । सामाजिक जीवन में मानव बहुत से कर्मो को करते हुए आया है, लेकिन कुछ कर्मों को वह बहुत रूचि के साथ आनंदित होते हुए करता है । उसका इस तरह से आनंदित होना ही उत्साह का द्योतक है । उत्साह का परिणाम शुभ होने से इसको प्रेश्य मनोभावों के अन्तर्गत रखा जाता है परन्तु उत्साह जब किसी व्यर्थ या अकर्त्तव्य कर्मों में दिखाया जाता है तो उसकी प्रशंसा नहीं होती । बहुत से लोग समाज सुधर के नाम पर सदाचार का ढ़ोंग भी रचते हैं । इस विषय पर आचार्य शुक्लजी कहते हैं– ' मैंने कई छिछोरों और लंपटों को विधवाओं की दशा पर दया दिखाते हुए उनके पापाचार के लंबे–चौड़े दास्तान हरदम सुनते–सुनाते पाया है । ऐसे लोग वास्तव में काम कथा के रूप में ऐसे वृत्तातों का तन्मयता के साथ कथन और श्रवण करते हैं । इस ढाँचे के लोगों से सुधार कार्य में कुछ सहायता पहुँचाने के स्थान पर बाधा पहुँचाने की ही संभावना रहती है । [7]

श्रद्धा और भक्ति मनोवेग का भी मनुश्य जीवन में काफी महत्व है । श्रद्धा प्रकट करने का हमें सामाजिक अधिकार प्राप्त है । शुक्लजी श्रद्धा की सामाजिक व्याख्या करते हुए कहते है – ' सदाचारी के प्रति यदि हम श्रद्धा नहीं रखते तो समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करते । यदि किसी को दूसरे के कल्याण के लिए स्वार्थ त्याग करते देख हमारे मुँह से धन्य–धन्य भी न निकला तो हम समाज के किसी काम के न ठहरे, समाज को हमसे कोई आशा नहीं, हम समाज में रहने योग्य नहीं ।' [8]

श्रद्धा द्वारा हम श्रद्धेय के महत्व के अधिकारी नहीं हो सकते, पर भक्ति द्वारा हो सकते हैं । इसी से आचार्य शुक्ल भक्ति के सामाजिक महत्व को और भी अधिक मानते हैं । इस संदर्भ में वह गुरू गोविंद सिंह का उदाहरण देते हुए कहते हैं– ' गुरू गोविंद सिंह को यदि केवल दंडवत करने वाले और गद्दी पर भेंट चढ़ाने वाले श्रद्धालू ही मिलते, दिन–रात साथ रहने वाले, अपने सारे जीवन को अर्पित करने वाले, भक्त न मिलते तो वे अन्याय दमन में

कभी समर्थ नहीं होते । [9] इन सब चीजों से भक्ति के सामाजिक महत्व को और लोक कल्याण करने की शक्ति को नकारा नहीं जा सकता । श्रद्धा–भक्ति में आकर्षण पर बल दिया जाता है । समाज की स्थिति भी इसी आकर्षण नियम के आधार पर कार्य करती है– 'सामाजिक महत्व के लिए आवश्यक है कि आकर्षित करो या आकर्षित हो । जैसे इस आकर्षण विधान के बिना अणुओं द्वारा व्यक्त पिंडों का आविर्भाव नहीं हो सकता, वैसे ही मानव जीवन की विषद अभिव्यक्ति भी नहीं हो सकती ।'[10] समाज में यह आकर्षण विधान अनेक रूपों में देखने को मिलता है । स्त्री–पुरूष के विवाह के अटूट बंधन में बँधना इसी आकर्शण का विधान है । दांपत्य जीवन आकर्षण का केंद्र बनता है और इससे अनेक सामाजिक संबंधों का जन्म होता है । इससे सभी को अवगत होना चाहिए तथा इसके अनुरूप हम सभी को कार्य व्यापार करना चाहिए ।

यह एक सत्यांश है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । समाज में रहते हुए हम जितना अपने कर्मो पर लज्जा का अनुभव करते हैं, उतना ही अपने संबंधियों के कार्यो पर तथा प्रसंगवष किसी बुरे या अनुपयुक्त कार्य में हमारा नाम आ जाता है तो भी हमें लज्जा होती है । इस विषय में शुक्ल जी कहते हैं–' मनुष्य लोकबद्ध प्राणी है, इससे वह अपने को उनके कर्मों के गुण–दोश को भी समझता है जिनसे उनका संबंध होता है, जिनके साथ वह देखा जाता है । पुत्र की अयोग्यता और दुराचार, भाई के दुर्गण और असभ्य व्यवहार आदि का ध्यान भी दस आदमियों के सामने सिर नीचा होता है । '[11]

लोभ का सबसे संवेदनात्मक अवयव है किसी चीज का अच्छा लगना । प्रायः देखा जाता है कि समाज में मनुष्य को बहुत सी चीजें अच्छी लगती हैं जिससे उसको सुख और आनंद का अनुभव होता है । मनुष्य समाज में यदि सबके लोभ का लक्ष्य अलग–अलग होता तो लोभ को कोई भी बुरा नहीं कहता । मनुष्य समाज में लोभ की वस्तुएँ तो पृथक्–पृथक् हैं, लेकिन उनका लक्ष्य एक ही है । लक्ष्य की इसी एकता से समाज में वैमनस्य बढ़ा है । इस संदर्भ में शुक्लजी कहते हैं– ' लक्ष्मी की मूर्ति धातुमयी हो गयी, उपासक पत्थर के हो गये धीरे–धीरे यह दशा आई कि जो बातें पारस्परिक प्रेम की दृष्टि से धर्म की दृष्टि से की जाती थीं वे भी रूपये–पैसे की दृष्टि से होने लगीं ।'[12] वर्तमान परिप्रेक्ष्य में तो पैसे की प्रधानता इतनी बढ़ गयी है कि पैसे से ही सब कुछ मिलने लगा है ।पैसा ही सफलता का एकमात्र साधन–सा बन गया है ।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने अपने आलोचनात्मक लेखन या इतिहास में कही साहित्येतर मानदंड स्वीकार नहीं किये हैं । उनकी प्रिय रचना तुलसी का रामचरितमानस रही और अधिकतर उसी में से उन्होंने अपने काव्य–मूल्य विकसित किये, जिस रचना के बारे में स्वयं कवि ने कहा– 'एहि महँ रघुपति नाम उदारा' । विलक्षण बात यह है कि इसके बावजूद उन्होंने अध्यात्म को काव्य और कला के विवेचन में कहीं प्रासंगिक नहीं माना । अपने प्रसिद्ध आलोचनात्मक निबंध ' काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था' में वे लिखते हैं–'अध्यात्म शब्द की मेरी समझ में काव्य या कला के क्षेत्र में कोई कहीं जरूरत नहीं है' । [13] आलोचना की तरह ही अपने इतिहास लेखन में भी आचार्य शुक्ल ने किसी साहित्येत्तर आधार को स्वीकार नहीं किया है । आदिकाल के विविधमुखी साहित्य में उन्होंने केन्द्र में वीरगाथा काव्य को रखा, जो कि सच्चे अर्थों में ऐहिक काव्य है । आदिकाल में जैसे वे धर्म और अध्यात्म के आक्रांतकारी प्रभाव के प्रति सजग हैं, आधुनिककाल में वैसे ही राजनीति के । आदिकाल का नामकरण उन्होंने 'वीरगाथाकाल' किया । जैन–बौद्ध या सिद्ध–सामंतकाल नहीं । आधुनिककाल का नाम उसी न्याय से दिया 'गद्यकाल', स्वतंत्रता–संघर्षकाल या पुनर्जागरणकाल नहीं । आधुनिकाल के अन्तर्गत राजनैतिक आग्रहों से मुक्त रहने की विशेष चिंता वे तब करते हैं, जब उपन्यास साहित्य के विवेचन में प्रवृत्त होते हैं । 'गद्य साहित्य की वर्तमान गति' के अन्तर्गत उपन्यास–कहानी पर विचार करते हुए वे लिखते हैं – ''कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे उपन्यासकारों को देश के वर्तमान जीवन के भीतर अपनी दृष्टि गड़ा कर आप देखना चाहिए, केवल राजनीतिक दलों की बातों को लेकर ही न चलना चाहिए । साहित्य को राजनीति के ऊपर रखना चाहिए, सदा उसके इशारों पर ही न नाचना चाहिए । '' [14]

आचार्य शुक्ल की आलोचना सामर्थ्य को ठीक–ठीक परखने के लिए उनकी आलोचना भाषा का विश्लेषण आवश्यक है । आलोचना की भाषा अपने आप में एक कठिन और सुकुमार प्रक्रिया है । अनुभव और अर्थ के जिस संश्लेष को रचनाकार भाषा के अधिकतम सर्जनात्मक रूप के सहारे व्यक्त करता है,उसे अपेक्षया सीधी–सादी भाषा में विश्लेषित और व्याख्यायित करते रहने का दायित्व समीक्षक का है । आधुनिक दृष्टि से रचना जीवन के अर्थ का विस्तार करती है, तो आलोचना फिर रचना के अर्थ का । 'आचार्य शुक्ल की आलोचना–भाषा को जाँचते समय देखा जा सकता है कि उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दावली विशिष्ट होते हुए भी परिभाषिक नहीं बनती । तभी वह रचना के अनुभव को नये और सार्थक ढंग से पकड़ पाती है । 'संश्लिष्ट चित्रण', 'विरूद्धों का सामंजस्य', लोकमंगल' उनके कुछ ऐसे ही नये और विशिष्ट प्रयोग हैं ।' [15] शुक्लजी का मानना है कि 'नाद–सौंदर्य' से कविता की आयु बढ़ती है । काव्य में शब्दों का चुनाव, आरोह–अवरोह का क्रम और एक साँस में वाक्य

पूरा हो जाने की स्थिति, ये सारे तत्व मिलकर इस ऊपर से दिखने वाली उक्ति को एक गहरी अनुभूति में बदल देते हैं ।

निष्कर्ष–

यह कहना पर्याप्त हो जाता है कि आचार्य शुक्ल ने वर्तमान युग के उन भारतीय समीक्षकों में अपना सर्वोच्च स्थान बनाया है जो इनसे पूर्व आलोचना पद्धति से न तो परिचित थे और न ही आलोचना के क्षेत्र में क्रियाशील ही थे । इन्होंने निबंध एवं आलोचना के क्षेत्र में जो ऐतिहासिक कार्य किया उससे समस्त हिंदी जगत् स्वयं को गौरवान्वित महसूस करता है । इन्होंने रस की महत्ता प्रतिपादित करते हुए रस को काव्य का मूल तत्व स्वीकार किया तथा रसवाद को मानव–मन की उदात्त भावना से जोड़ने का सफलतम प्रयास किया । आचार्य शुक्लजी ने भारतीय और पाश्चात्य दोनों परंपराओं से विचार–सामग्री ग्रहण की है लेकिन वे किसी से भी आतंकित नहीं हुए । इस प्रसंग में 'समन्वय–साधना' के बजाय उनकी आलोचना–प्रक्रिया, उन्हीं के शब्दों में 'विरूद्धों का सामंजस्य' के अधिक निकट है । दूसरी ओर परवर्ती आलोचना के कुछ बीज उसके विकास की संभावानाओं को पूरी तरह उमुक्त रखे, उनके चिंतन में मिल जाते हैं जैसे सम्पूर्ण विवेचन क्रम में रचना का महत्व, काव्य भाषा का केन्द्रीय आधार और बिंब–प्रक्रिया की विशिष्ट भूमिका । कहने का तात्पर्य यह है कि आचार्य शुक्लजी ने प्राचीन परम्परा और नवीन संभावना को बड़े ही निर्मल एवं पवित्र भावभूमि पर लाकर खड़ा कर दिया है । आचार्य शुक्लजी की साहित्य साधना अपने आप में बड़ी ही प्रासंगिक है । समाज का जब कोई साहित्य साधक अपनी महती साधना के बल पर किसी रचना को मूर्तरूप प्रदान करता है तो फिर उसे साहित्यिक कसौटी पर खरा भी उतरना पड़ता है । इस हेतु एक सच्चे समालोचक की आवश्यकता महसूस की जाती है । इस पथ पर चलना सबके वश की बात नहीं । इस संदर्भ में कहा गया है कि कवि तो सर्जना कर देता है लेकिन उसका वास्तविक आनंद तो कोई सच्चा समीक्षक ही ले पाता है । निम्न उद्धरण देखते ही बनता है–

कवि करोति काव्यं रसं जानति पण्डितः ।
सौंदर्यमपि च रूपलावण्यं न च पिता ।।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. प्रतियोगिता साहित्य सीरिज हिंदी– डॉ0 अशोक तिवारी, साहित्य भवन,प्रकाशन आगरा, पृ0 207
2. हिंदी (द्वितीय प्रश्न–पत्र) 2010–डॉ हरिचरण शर्मा, इण्डिया बुक हाउस, जयपुर, पृ0 370
3. चिंतामणि भाग–1–रामचंद्र शुक्ल, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,संस्करण 2015, पृ0 01
4. वही, पृ0 01
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल निबंध यात्रा, कृश्णदेव झारी, इतिहास शोध संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 120
6. चिंतामणि भाग–1–रामचंद्र शुक्ल, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,संस्करण 2015, पृ0 03
7. वही, पृ0 05
8. वही, पृ0 14
9. वही, पृ0 21
10. वही, पृ0 21
11. वही, पृ0 38
12. वही, पृ0 45
13. हिंदी साहित्य और संवेदाना का विकास–रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 176
14. वही, पृ0 177
15. वही, पृ0 181

डॉ0 निर्भय शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी)
ग्रेट स्कालर्स (पी0जी0) कालेज
अल्हागंज (शाहजहाँपुर)
उ0प्र0

7

डॉ0 रामनिवास 'मानव' का साहित्यिक पतन के प्रति आक्रोश

डॉ0 महिमा

सारांश

हरियाणा साहित्यकारों में डॉ0 रामनिवास 'मानव' का नाम बहुत ही आदर के साथ लिया जाता है। मानवीय संवेदनाओं के प्रति प्रतिबद्ध होने के कारण डॉ0 'मानव' का साहित्य किसी एक वर्ग–विशेष का प्रतिनिधित्व नहीं करता अपितु समाज की प्रत्येक इकाई को चुनता है। साहित्यिक पतन की चर्चा करते हुए वर्तमान साहित्यकारों द्वारा धन–लिप्सा और वासना लिप्त के प्रति आक्रोश भाव प्रस्तुत किया है। इन्होंने साहित्य को दीपक की संज्ञा दी है। दर्पण समाज को उसका यथार्थ दर्शाता है तो वहीं दीपक अपने प्रकाश से अंधकार में छुपी समस्याओं का उजागर करता है, लेकिन डॉ0 मानव का विचार है कि समाज की समस्याओं का यथार्थ चित्रण करना ही साहित्यकार का कर्म नहीं अपितु उन कुरीतियों के प्रति बुलन्द आवाज करके, उनका विरोध करना भी साहित्यकार का दायित्व होता है। आक्रोश व्यक्तिवादी भी हो सकता है और समाजवादी भी। डॉ0 मानव का आक्रोश व्यक्तिवादी न होकर समाजवादी है। आक्रोश क्या है?इसका स्वरूप क्या है?इससे पहले आक्रोश का अर्थ क्या है?पर प्रकाश डाला जा रहा ळें

आक्रोश का अर्थ :

हिन्दी–साहित्य में आक्रोश के स्वर को भली–भांति देखा जा सकता है। वैसे तो आमतौर पर आक्रोश क्रोध के लिए प्रयोग किया जाता है। शब्दकोश की नजर से देखा जाए तो आक्रोश शब्द के अनेक पर्यायवाची देखे जा सकते है। डॉ0 हरदेव बाहरी द्वारा सम्पादित शब्दकोश 'उच्चतर हिन्दी कोश' में आक्रोश शब्द के पर्याय के सन्दर्भ में लिखा गया है –जिस पर आक्रोश किया गया हो, शापित्। [1]

डॉ0 बी0 एस0 पंडित द्वारा सम्पादित 'ऑक्सफोर्ड शब्द एवं हिन्दी शब्द कोश' में आक्रोश के पयार्यवाची है– अपवाद, क्रोध, रोष, कोसना, निन्दा, शाप, गाली। [2]

एक अन्य शब्दकोश 'पारिजात–कोश' जिसके सम्पादक डॉ0 ईश्वरचन्द्र शर्मा है में आक्रोश के अर्थ–पुकार, चीख, भर्त्सना। [3]

आधुनिक हिन्दी शब्दकोश के अनुसार–आक्रोश का अर्थ किसी को क्रोधपूर्वक कहना, बुरा–भला कहना, भावनापूर्ण आक्षेप, रोशपूर्ण भावना है। [4]

उपर्युक्त शब्दकोश के माध्यम से हम इस तथ्य पर पहुंच सकते है कि आक्रोश विशेषरूप से हमारे आन्तरिक भाव है जो किसी विशेष अवसर पर ही अंकित होते है। जब कोई कार्य हमारी इच्छा के अनुकूल न हो तो हमें एक प्रकार का क्रोध उत्पन्न होता है, जिसे हमें आक्रोश कहें तो कोई गलत न होगा। हिन्दी शब्दकोश में नहीं अगर अंग्रेजी शब्दकोश की बात करें तो भी इन्हीं शब्दों के समानार्थक शब्द देखने को मिलते है :

BHARGAVA'S STANDARD/LLUSTRATED,
DICTIONARY के अनुसार आक्रोश शब्द के मीनिंग–
RESENTMENT,CHAMOUR, EXASPERTING, ANGER, INDIGNATION . [5]

डॉ0 हरदेव बाहरी द्वारा सम्पादित 'हिन्दी–अंग्रेजी शब्दकोश में आक्रोश का अंग्रेजी अर्थ'–anger, wrath, resentment, dirty words, abusive speech bilthy, rough, languge आदि दिए गए है। [6]

आक्रोश एक ऐसा भाव है जो प्रत्येक जन में किसी न किसी रूप में विद्यमान है। प्राचीन समय से ही यह हमार समाज में स्थापित है। आक्रोश के स्वरूप की बात करें तो हमें प्रत्येक प्राणी में इसका रुप देखने को मिलता हैं। जीव–जन्तु, पशु–पक्षी सभी खिन्न दोनों पे अपने आक्रोश भाव को उजागर करते है। यहां तक कि प्रकृति भी इससे अछूती नहीं है, क्योंकि जब–जब मनुष्य द्वारा प्रकृति से खिलवाड़ किया जाता है, तब–तब प्रकृति ने बाढ़, तुफान, भू–स्खलन, काल बर्फ, गर्मी, सर्दी न जाने कि–किन रूपों में अपना आक्रोश भाव–प्रकट किया है। जिस प्रकार एक छोटा बच्चा भूख लगने पर चिल्लाकर, मजदूर–वर्ग हड़ताल करके, समाज सेवक भूख हड़ताल करके और एक विद्वान काले बिल्ले लगाकर आक्रोश भाव प्रकट करता है, उसी प्रकार एक साहित्यकार समाज में शोषित वर्ग को देखकर अपने काव्य के माध्यम से अपना आक्रोश का स्वर मुखरित करता है। वह व्यक्तिवादी समस्याओं से ऊपर उठकर समाज की समस्याओं को चुनता है। वह एक समूह, समुदाय या देश–प्रदेश की नहीं बल्कि पूरे विश्व की समस्याओं को ध्यान में रखता है। वह मानव–कल्याण के विषय में चिन्तन करता है। साहित्यकार किसी एक समस्या को नहीं बल्कि विविध समस्याओं को उजागर करता है। वह यथार्थ का चित्रण करके आदर्शवाद की

प्रस्तुत करता है।

आक्रोश का स्वरूप प्रत्येक प्राणी में विद्यमान होता है। वह व्यक्ति–विशेष के प्रति भी हो सकता है और समाज के प्रति भी। साहित्यकार संवेदनशीलता से जगत् की मार्मिक पीड़ा को महसूस करके शब्द भण्डार से अपने आक्रोश भाव को साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करता है। समाज का वस्तुपरक यथार्थ चित्रण साहित्य के माध्यम से ज्ञात होता है। एक साहित्यकार के लिए हितकारी साहित्य लिखने के लिए भाषा का भी सहारा लिया जाता है। साहित्य ही समाज की प्राचीन एवं नवीन दोनों ही परिस्थितियों से अवगत कराता है। एक साहित्यकार अपनी लेखनी से दुनिया के किसी भी कोने की खबर को अपनी कल्पना और चिन्तन के माध्यम से समाज के सामने प्रस्तुत करता है। साहित्य मानव–समाज के विविध भावों एवं नित नवीन रहने वाली चेतना की अभिव्यक्ति है, तो वहीं उद्देश्यों को ध्यान में रखकर समाज के हित में साहित्य सृजन करने वाला साहित्यकार है। एक साहित्यकार सहृदय वाला होता है जो समाज की पीड़ा को अपनी पीड़ा को समझकर अपनी अनुभूति को शब्दवाणी के माध्यम से प्रस्तुत करता है। डॉ0 'मानव' का साहित्य केवल यथार्थ ही नहीं दर्शाता बल्कि अपने आक्रोश स्वर से क्रांति की भावना भी व्यक्त करता है। कवि ने सम–सामयिक परिवेश का यथार्थ चित्रण करते हुए अपनी अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है। स्वयं को सामाजिक सरोकारों से जोड़कर साहित्य के विविध विधाओं में आक्रोश भाव प्रस्तुत किया है।

डॉ0 'मानव' आधुनिक युग के क्रांतिकारी साहित्यकार है। वर्तमान में समाज के कई क्षेत्र जहां पतन की ओर जा रहे है, वहीं आज का साहित्य और साहित्यकार भी अछूता नहीं है। साहित्य के अन्दर यथार्थ और मौलिकता के नाम पर अश्लीलता का ब्खान किया जा रहा है। काव्य–सम्मेलन राजनीति और पैसे के जाल में उलझ गया है। साहित्यकार ऑख मूंदकर सच्चाई को छोड़ झूठ की जय–जयकार कर रहा है। वर्तमान कविता अपने मूल रूप को खोती जा रही है। हास्य काव्य–सम्मेलन के नाम अश्लीलता और व्यंग्य के नाम पर केवल चुटकी ली जाती है। कवि का विचार है कि एक कुशल साहित्यकार यथार्थ का ही चित्रण नहीं करता बल्कि आदर्शता के सहारे मार्गदर्शन भी करता है। आज काव्य अपनी लय–तान, उस को खोकर पैसे के अधीन हो गया है। कवि ने अपनी कृति 'रश्मि–रथ' में कुंडलियों के माध्यम से व्यक्त किया है :

हुई दुर्दशा मंच की, कविता है बेहाल।
हास्य–व्यंग्य के नाम पर, खींच रहे कवि खाल।।[7]

डॉ0 'मानव' लिखते है कि वर्तमान युग ऐसे लोग काव्य–सृजन कर रहे है जो साहित्य को पतन की ओर अग्रसर कर रहे है। आज कवि अपने आत्मा की बात स्वीकार करते हुए यथार्थ का चित्रण किया है। कवि का विचार है कि आज के युग में बुद्धिमान और श्रेश्ठ साहित्कारों की तो उपेक्षा होती है और चापलूसी करने वालों की जय–जयकार होती है। जैसे कि

जंगल और जानवर दोनों,
गये आज अरे जीत।
बुगुलों के अभिनन्दन में अब
कौवे लिख रहे गीत।।[8]

कवि का विचार है कि आज चापलूसी करने वाले कवि काव्य सृजन तो करते है, मगर शायद उन्हें इस बात का अहसास नहीं कि केवल छन्द, शब्द, प्रतीक के माध्यम से कवि नहीं बना जाता। उन्होंने माना कि जैसे फूल को पराग में और विचार को धर्म में बदलना मुश्किल है, उसी प्रकार काव्य करने के बाद भी कवि बनना मुश्किल है। जैसे कवि ने लिखा है :

जैसे कोई शिल्पी
घड़ता रहे शब्द सुन्दर
या रचता रहे छन्द टकसाली,
पर शब्द या छन्द की
रचना के बाद भी
कितना मुश्किल है कवि होना।[9]

गागर में सागर भरने वाली डॉ0 'मानव' की रचना 'बोलो मेरे राम' में भी साहित्य पतन के प्रति आक्रोश भाव व्यक्त किया है। कवि का विचार है कि आज काव्य के शब्द निरपेक्ष और अर्थ निरर्थक हो चुके है। छन्द और लय तान अपने अस्तित्व से दूर भाग रहे है। काव्य केवल दुष्ट लोगों तक सीमित रह चुका है। उनकी अश्लील टिप्पणियों से मंच पर लोगों द्वारा गद्गद होना व्यंग्य के नाम पे दमित वासना निकालना और पैसे के लिए काव्य–सम्मेलन में भाग लेना, साहित्य को पतन की ओर अग्रसर कर रहा है। कवि ने अपने दोहों में लिखा है :

आज शब्द, निरपेक्ष है, और निरर्थक अर्थ।
विस्थापित है व्यंजना, अभिधा है असमर्थ।।[10]

×××

हास्यकवि और कालगर्ल, दोनों एक समान।
दोनों को ही चाहिये, पैसा, सुख–सामान।।[11]

डॉ0 'मानव' वर्तमान साहित्यकारों की स्थिति को देखकर हैरान है। आज साहित्यकार राजसता से पुरस्कार प्राप्त करने की लालसा में लगे रहते है। यदि सता उनकी लालसा शांत नहीं करती तो वह सता के खिलाफ लिखने लगता है। आधुनिक काल में गज़लों के मसीहा रहे दुष्यन्त कुमार की रचनावली चार में भी लिखा गया है :

''आप जिस शासन की आलोचना करे, उसी की स्वीकृत और मान्यता के लिए तरसे। शब्द–छल से या आत्म–सम्मान की दुहाई देकर इसका औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता। बात असल यही है कि साहित्यकार शासन की उपेक्षा करके नहीं चल पाते, जबकि शासन साहित्य की उपेक्षा करके धड़ल्ले से चलता है।''[12]

वर्तमान नेता शासन की तारीफों के पुल बांधकर नेताओं की जी–हजूरी करती है। महान विद्वान साहित्यिक पुरस्कारों से वंचित रह जाते है और भ्रष्ट और नकलची लेखक या कवि पुरस्कार पा लेते है। कवि डॉ0 'मानव' ने लिखा है :–

गाल बाजते रह गये, लेखक खड़े उदास।
पद्म–वद्म सब ले उडत्रे, नेताजी के खास।।

× × ×

प्यादे से फर्जी हुए, जिनकी थी अप्रोच।
कवि तू कबिरा वंश का, बाल बैठकर नोच।।[13]

कवि का विचार है कि साहित्यकार को सता की ओर नहीं बल्कि समाज की ओर देखना चाहिए। साहित्यकार सता को देखकर नहीं बल्कि समाज की पीड़ा को स्वयं महसूस करके साहित्यकार बनता है। जिस दिन साहित्कार की जड़े जनता में उतनी गहरी होंगी, सता खुद नमन करने उसके पास आएगी। साहित्य तो एक जीवन–साथी की भांति है, क्योंकि जिस प्रकार एक साथी तन्हाई में साथ देता है, उसी प्रकार साहित्य भी आपका साथ देता है। जब आप उदास होते है तो वह आपमें स्फूर्ति भरता है और जब आज थकने, टूटने या बिखरने लगते है तो वह आपकी बाहें पकड़ कर आपको प्रेरणा, स्नेह और सहानुभूति देता है। यही नहीं, जब आज जीवन की सारी दिशाओं को अंधकारपूर्ण पाते है तो वह आपका मार्गदर्शन करता है और एक जीवन साथी की तरह आपको अंधकार से प्रकाश की ओर जाने में सहायता करता है।

डॉ0 'मानव' वर्तमान परिस्थितियों के सन्दर्भ पर समसामयिक साहित्य पर दृश्टि डालकर निराशा से भरे हुए है। उनका मानना है कि आज वे सारी मान्यताा बिखर गई है। वैशिष्टय का वह आग्रह टूट गया है और साहित्यकार भी अन्य बुद्धिजीवियों की तरह जनसामान्य के उसी धरातल पर उतर आया है जहॉ केवल प्रतिक्रियाओं का लहराता–उफनता सागर है, आवेश में बंधी हुई मुट्ठियॉ है और बैचेनी और दर्द से सीमा की और निहारती हुई अंकगणित ऑखे है।

कवि की साहित्य के प्रति विचारधारा है कि साहित्य का प्रायः समाज का दर्पण कहा जाता है, मगर साहित्य दर्पण नहीं, बल्कि दीपक है, जो समाज को प्रकाशमय करता है। डॉ0 'मानव' ने अपनी रचना 'मेहंदी रचे हाथ' में लिखा है :

दर्पण नहीं,
दीपक है साहित्य,
सत्य है यही।[14]

वर्तमान साहित्य भी पाश्चात्य साहित्य से अछूता नहीं है। युवा कवि पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होकर काव्य में यथार्थ के नाम पर नग्नता प्रस्तुत कर रहे है। अपनी दमित वासना को काव्य के माध्यम से सम्पूर्ण कर रहे है। हास्य कवि सम्मेलन के माध्यम से अश्लील चुटकलें, कविता व व्यंग्य लघुकथा के माध्यम तालियां और वाह–वाह बटोर रहे है। आधुनिक साहित्य अपना मूल उद्देश्य से भटक रहा है। प्रत्येक व्यक्ति बिना साहित्य का अध्ययन किए, काव्य की चोरी करक साहित्यकार बन जाता है। यही ही नहीं आज का साहित्कार सताधारियों से हाथ मिलाकर कार्य करता है। वर्तमान यथार्थ को न दिखाकर झूठे और भ्रष्टाचारी नेताओं की प्रशंसा करता रहता है। राजनेताओं से मिलकर उद्देश्य रहित काव्य का स्कूलों व कॉलेजों के सलेबस में डलवाकर युवा पीढ़ी को अन्धकार की ओर धकेल रहा है। कवि काव्य का बाजारीकरण होने पर दुःख महसूस कर रहे है। अपनी कृति 'पदे–पदे द्विपदी' में लिखते है :

कविता का बाजार सजा है।
गुटबाजी में खूब मजा है।[15]

डॉ0 रामनिवास 'मानव' को लगता है कि आधुनिक परिवेश में साहित्य की स्थिति नकारात्मक होती जा रही है। आज अराजकता का विकास, धर्म का विनाश और मानव–मूल्यों का ह्रास हो रहा है। वह देश जो कभी संसार का शिक्षित किया करता था, सदाचार का पाठ पढ़ाया करता था, वहीं आज गुरू का अनादर हो रहा है और हर क्षेत्र में अव्यवस्था व्याप्त है। विशिष्ट विद्वानों और सच्चे साहित्कारों का समाज में कोई आदर नहीं रह गया है। आज साहित्कार भी, सता के द्वार पर, पुरस्कारों के लालच में, नौकर की भॉति, हाथ बांधकर खड़ा है, जिससे उसकाा सम्मान समाप्त होता जा रहा है। वह

समाज से नहीं बल्कि राजनेताओं से सम्मान पाना चाहता है। साहित्य लेखनी पर व्यंग्य करते हुए कवि लिखता है :

लगी खेलने लेखनी, सुख–सुविधा के खेल।
फिर सता की नाक में, डाले कौर नकेल।[16]

कवि ने कविता के बारे में कहा कि उसका बाजारीकरण हो गया है। वह फैशन के दौर में व्यस्त हो गई है महान कवि अपनी रचनाओं को लिए तन्हा है तो वहीं बिकाऊ कवि फैशनेबल कविता के माध्यम से पैसे लूट रहे है। कवि ने लिखा भी है :

कवित बैठी हाट पर, लिए पराई पीर।
फैशन के इस दौर में, सस्ते हुए कबीर।।[17]

आधुनिक युग में एक सच्चा साहित्यकार ही सत्साहित्य की रचना कर सकता है। साहित्य धन–दौलत की खन खनाहट से नहीं उपज सकता। लेकिन समकालीन साहित्यकारों की धन–लिप्सा की प्रवृति ने, साहित्य की श्रेष्ठता को, अत्यधिक आघात पहुॅचाया है। मर्म के अभाव में कला नीरस और सारहीन बनती जा रही है। लेकिन दूसरी ओर साहित्य के पुरोधा कबीर, सूर, तुलसी, मीरा जैसी प्रतिभाएं आज भी साहित्य की श्री वृतिद्ध करने में तल्लीन है। अब तक न जाने कितने साहित्यकारों ने जन्म लिया है। मगर अफसोसा है कि कबीर जैसे महान् रचनाकारों की रचनाएं जीवित है। साहित्यिक परिवेश दूषित होता जा रहा है। तभी तो कवि ने कहा भी है :

मसिजीवी है माफिया, लेखक है दरवेश।
अब इतना दूषित हुआ, साहित्यिक परिवेश।।[18]
××××××××××××××××××××××

हर युग में पैदा हुए कितने–वीर।
लिख–लिखकर सारे मरे, जिन्दा सिर्फ कबीर।।[19]

डॉ0 'मानव' ने साहित्य की सत्यता के बारे में लिखा कि यह विश्वास पर आधारित है। विश्वास के अभाव में लेखक, नेता और चोर तीनों की गति एक समान हो गई है। जो बड़े–बड़े धर्म के माफिया बने है, वे धार्मिक व वेदों की नकल करके कुछ पंक्तियां लिख देते है, जिससे अपने आपको साहित्यकार मान बैठे है। उनकी न तो आत्मा जिन्दा है और न ही उनमें संवेदनशीलता है। सत्य कहने में संकोच करने वाले केवल व्यंग्य से सहारे अपने भाव कहते है। डॉ0 'मानव' लिखते है :

मरी है जिसकी आत्मा, मन के बंद गवाक्ष।
कर सकता है सत्य पर, केवल वही कटाक्ष।।
××××××××××××××××××××
कहने का साहस नहीं, जिसमें सच्ची बात।
करे व्यंग्य के नाम पर, वह कुंठित आघात।।[20]

प्राचीन समय से ही साहित्य और समाज में एकरूपता देखने को मिली है। समाज में जिस प्रकार किसी जिन्दा व्यक्ति को सम्मान नहीं मिलता और उसके मरने के बाद उसकी प्रशंसा के पुल बांधे जाते है। वैसा कहा भी गया है कि 'हाथी जिन्दा एक लाख का तो मरा हुआ सवा लाख का' यही युक्ति साहित्य में भी चरितार्थ होती है। साहित्यकार को भी जिन्दा–जी उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है और मरणोपरान्त उसे महान साहित्यकार की संज्ञा दी जाती है। कवि का हृद्य आक्रोश भाव उत्पन्न करता हुआ कह उठता है :

जीते जी दी गालियां, मरने पर गुणगान।
खूब किया है आपने, कबीरा का सम्मान।।[21]
××××××××××××××××××××
होता आया है यही, सदा कला के साथ।
जब–जब बनते ताज है, तब–तब कटते हाथ।[22]

निष्कर्ष

वस्तुतः कहा जा सकता है कि एक साहित्यकार समाज का यथार्थ चित्रण करता है। वह दुनियॉ के किसी–भी कोने की घटना को कल्पना और भाव के साथ समाज के सामने चरितार्थ करता है। वह समाज की पीड़ को अपनी पीड़ा समझकर काव्य में जगह देता है। डॉ0 'मानव' एक क्रान्तिकार साहित्यकार है। जो समाज मे फैली विषमताओं के प्रति आक्रोश भाव रखते है। कवि का विचार है कि वर्तमान साहित्य भी इससे अछूता नहीं है। आज के साहित्कारों की धन–लिप्सा की प्रवृति ने, साहित्य की श्रेष्ठता को, अत्यधिक आघात पहुंचाया है। वर्तमान कविता अपने मूल रूप को खोती जा रही है। हास्य कवि–सम्मेलन के नाम अश्लीलता और व्यंग्य के नाम पर चुटकी ली जाती है। आज साहित्यकार राजसता से पुरस्कार प्राप्त करने की लालसा में लगा रहता है। वह नेताओं के द्वार पर हाथ–जोड़कर खड़ा रहता है और चापलूसी करके बड़े–बड़े साहित्यिक सम्मान प्राप्त कर लेता है। कवि ने आधुनिक साहित्कार को पाश्चात्य संस्कृति के ओत–प्रोत माना है, जो यथार्थ के नाम पर

नग्नता पिरो रहा है। वह काव्य सम्मेलनों में अश्लील चुटकलों के माध्यम से पैसा बटोरकर काव्य मंच की गरिमा को तार–तार करता है। वह यथार्थ का चरितार्थ न करके झूठे और भ्रष्टचारी नेताओं की प्रशंसा करता है। उसमें नैतिकता, संस्कार, मूल्यों की कमी के साथ संवेदनशीलता की भी कमी खलती है। वह साहित्य को पतन की ओर अग्रसर कर रहा है।

सन्दर्भ सूची :

1 उच्चतर हिन्दी कोष, पृ0 सं0 48

2 ऑक्सफोर्ड शब्द एवं हिन्दी शब्द कोश, पृ0 सं0 129

3 परिजात कोष, पृ0 सं0 12

4 आधुनिक हिन्दी शब्द कोष, पृ0 सं0 56

5 भार्गव स्टेण्डर्ड डिक्शनरी, पृ0 सं0 732

6 हरदेव बाहरी हिन्दी–अंग्रेजी शब्द काष, पृ0 सं0 11

7 डॉ0 राम निवास ' मानव' रश्मि–रथ, पृष्ठ–47

8 वही, पृष्ठ–40

9 डॉ0 राम निवास ' मानव' सांझी है रोशनी, पृष्ठ–15

10 डॉ0 राम निवास ' मानव' , बोलो मेरे राम पृष्ठ–43

11 वही, पृष्ठ–44

12 विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग'–4, पृष्ठ–438

13 डॉ0 राम निवास ' मानव' सहमी–सहमी आग, पृष्ठ–32

14 डॉ0 राम निवास ' मानव' मेंहदी रचे हाथ, पृष्ठ–11

15 डॉ0 राम निवास ' मानव' पदे–पदे द्विपदी, पृष्ठ–14

16 डॉ0 राम निवास ' मानव' सहमी–सहमी आग पृष्ठ–32

17 वही, पृष्ठ–32

18 वही, पृष्ठ–32

19 वही, पृष्ठ–34

20 वही, पृष्ठ–34

21 वही, पृष्ठ–35

22 वही, पृष्ठ–34

प्राध्यापकः

डॉ0 महिमा

एफ. सी. कॉलेज हिसार हरियाणा

पिन न. 125001

rajkhanna2011@gmail.com

mob. 9255451522

8

दुष्यन्त कुमार का साहित्य शिल्प के प्रति सरोकार

सविता सुपुत्री श्री आत्माराम

सारांश

मनुष्य का जीवन समाजिक जीवन है; जो अपने परिवार से ह्रदय से जुड़ जाता है और समाज में होने वाली विभिन्न परिस्थितियों से भी अवगत होता है। साहित्यकार के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, नैतिक संस्कार भी सामाजिक सरोकारों के स्वरूपों को निश्चित करने में सहायक सिद्ध होते हैं। ये सरोकार कभी अभिव्यक्ति में नितांत स्फीत होते हैं तो कभी अंतः सलीला की भांति प्रच्छन्न रूप से प्रवाहमान होते रहते हैं। सामाजिक सरोकार पर विस्तृत चर्चा करने से पूर्व सरोकार' शब्द को व्याख्यायित करना आवश्यक है; क्योंकि साहित्य सामाजिक सरोकारों का ही प्रतिफल है। सामाजिक का अर्थ– समाज से जुड़ा होना है। 'सरोकार' का अर्थ–प्रयोजन, वास्ता, ताअल्लुक पहलू, संदर्भ, आयाम, सम्बन्ध तथा परिणाम आदि से है। सरोकार शब्द मूलतः फारसी भाषा का शब्द है। जिसके लिए अंग्रेजी भाषा का शब्द कन्सर्न बेहद सटीक है। प्रत्येक साहित्यकार समाज का एक अंग है। समाज की परिस्थितियों के साथ उसका भावात्मक सरोकार होता है। साहित्यकार समाज के प्रति जितना अधिक संवेदनशील होता है, उसका सामाजिक सरोकार उतना ही गहरा होता है।

उर्दू–हिन्दी कोश के अनुसार,

"सरोकार' को 'प्रयोजन, लगाव' शब्दों से अभिहित किया गया है।'[1]

भाषा शब्द–कोश के अनुसार, 'वास्ता, लगाव ताल्लुक 'सम्बन्ध 'प्रयोजन, परस्पर व्यवहार शब्द सरोकार हेतु प्रयुक्त किये गये हैं।[2]

हिन्दी ग़ज़लों के मसीहा दुष्यन्त कुमार के साहित्य की जो सीधी–सादी अभिव्यक्ति, वार्तालाप की शैली, चिरपरिचित बिंब, आम आदमी की मिली–जुली जुबान इनके साहित्य शिल्प की ऐसी सार्थक जमीन है; जो अन्य कवियों से उन्हें एकदम जुदा करती है। उन्होंने साहित्य–शिल्प को अनिवार्य तत्व माना है। चूंकि हमें उनके साहित्य शिल्प पर प्रकाश डालना है जिसके लिए हमें उनके साहित्य की कथावस्तु, पात्र चयन, प्रतीक एवं बिम्ब विधान, मुहावरे एवं लोकोक्तियों का प्रयोग, छन्द के प्रति सरोकार, शब्द भण्डार योजना आदि का मूल्यांकन कर रहें है।

किसी भी साहित्य की कथावस्तु में यथार्थतता, मौलिकता, रोचकता, मार्मिकता, सरलता, सुव्यवस्थिता, स्वाभिकता एवं विश्वसनीयता के साथ–साथ प्रवाहमयता का होना आवश्यक है। "कथानक" और "कथा" दोनों ही शब्द संस्कृत 'कथ 'धातु से उत्पन्न हैं। संस्कृत साहित्य शास्त्र में 'कथा' शब्द का प्रयोग एक निश्चित काव्यरूप के अर्थ में किया जाता रहा है किंतु कथा शब्द का सामान्य अर्थ है–"वह जो कहा जाए'। यहाँ कहनेवाले के साथ–साथ सुननेवाले की उपस्थिति भी अंतर्भुक्त है क्योंकि "कहना' शब्द तभी सार्थक होता है जब उसे सुनने वाला भी कोई हो। श्रोता के अभाव में केवल 'बोलने' या 'बड़बड़ाने' की कल्पना की जा सकती है, 'कहने' की नहीं। इसके साथ ही, वह सभी कुछ 'जो कहा जाए' कथा की परिसीमाओं में नहीं सिमट पाता। अतः कथा का तात्पर्य किसी ऐसी 'कथित घटना' के कहने या वर्णन करने से होता है जिसका एक निश्चित क्रम एवं परिणाम हो। इसके विपरीत कथानक का वह तत्त्व है जो उसमें वर्णित कालक्रम से श्रृंखलित घटनाओं की धुरी बनकर उन्हें संगति देता है और कथा की समस्त घटनाएँ जिसके चारों और ताने बाने की तरह बुनी जाकर बढ़ती और विकसित होती हैं। जैसे–

''आशा है, सुधी पाठ हमारे निष्कर्षों को घोषित पुरस्कारों से मिलाकर यह देखने की कृपा करेंगें कि यह विश्लेषण कहाँ तक सार्थक है? यदि यह सच निकला तो शायद हिन्दी का हर पाठक यही कहेगा कि ऐसे महत्त्वपूर्ण पद पर किसी गंभीर और अनुभवी व्यक्ति को बिठाया जाना चाहिए, जो साहित्य और संस्कृति का मर्म चाहे न समझता हो, पर प्रशासन और गोपनीयता का अर्थ जरूर जानता हो और वाचालता और बड़– बोलेपन से ऊपर हो।''[3]

दुष्यन्त कुमार के उपन्यास –'छोटे–छोटे सवाल' 'आंगन में एक वृक्ष' नाटक 'एक कंठ विषपायी', और अनेक कहानियों में की कथावस्तु में उपर्युक्त तत्त्वों को देखा गया है। एक ऐसे कलाकार थे जो यथार्थवादी भी थे और आदर्शवादी भी। इनकी विधाएं पढ़कर ऐसा लगता है जैसे हम नाटक, कहानी को पढ़ते समय प्रायः पाठक को अनुभव होता है कि वे सब देख रहे है। नाटककार ने कथावस्तु में अपनी ओर से कुछ न जोड़कर मौलिता की रक्षा की है। इसका विकास नाटकीय ढ़ंग से हुआ है।

किसी भी साहित्य में साहित्य में सृजन के लिए जितना आवश्यक कथानक होता है उतना ही पात्र । एक साहित्यकार अपनी अभिव्यक्ति को अपनी विधाओं के पात्र से अभिव्यक्त करवाता है। विचारों, भावनाओं आदि की अभिव्यक्ति लेखक पात्रों के माध्यम से करवाता है। हर पात्र किसी न किसी

विचार अथवा विद्यारधारा को प्रकट करता है। दुष्यंत के साहित्य में हमें पात्र विभिन्न रूपों में मिलते हैं । समाज के उच्च निम्न व मध्यम– तीनों वर्गों के पात्र चाहे वे ऐतिहासिक हो राजनीतिक अथवा काल्पनिक, इनके साहित्य में समाए हुए हैं। उनके पात्रों में वकील, शिक्षक, पूंजीपति मजदूर, किसान, जमींदार, बच्चे–बूदे. देव–दानव सभी शामिल हैं। जहाँ उनके कुछ पात्र चारित्रिक सामाजिक व नैतिक गुण को धारण कर देव तुल्य हो जाते हैं वहीं उनके साहित्य में अवसरवादी, भ्रष्टाचारी, अनैतिक पात्रों का भी चित्रण हुआ है। उनके पात्रों का निर्माण उनके साहित्य की मांग के अनुरूप हुआ है। वे यथार्थ के धरातल पर निर्मित किए गए हैं। आधुनिक काल के संदर्भ में यदि पात्रों को देखा जाए तो वे वर्तमान के जीवंत पात्र प्रतीत होते हैं। इनकी रचनाओं में कभी कोई पात्र एक व्यक्ति विशेष का प्रतिनिधित्व करता है तो कहीं सम्पूर्ण वर्ग का । इनके पात्रों के व्यक्तित्व में विषमता दृष्टिगोचर होती है। पात्रों की संख्या का चुनाव विधा पर निर्भर करता है। जैसे कि दुष्यन्त जी ने रेडियो नाटक लिखे थे तो उनका मानना था कि इस नाटक में कम–से–कम पात्रों के संवादों से पूरा कथानक प्रस्तुत किया जाना चाहिए। लेखक का अपन विचार पात्र पर थोपने नहीं चाहिए। इससे पात्र के व्यक्तित्व में मन के कोण एकांकी में दो पात्रों को लिया है। दुष्यन्त जी के पात्रों का सम्बन्ध उनके स्वयं के जीवन से रहा है। अपनी विभिन्न विधओं में पात्रों के चयन में उन्होने अपने पावित्तगत सम्बन्धों को प्राथमिकता प्रदान की है। 'आघात कहानी में कवि ने अपने ही बड़े भाई महेन्द्र प्रतापनारायण सिंह त्यागी को नायक के रूप में दर्शाया है। इसी प्रकार ने अपने उपन्यास 'आंगन में एक वृक्ष' में वर्णित पात्र 'छोटे स्वयं दुष्यन्त जी हे तो चन्दन उनके बड़े भाई। इसी प्रकार से उन्होंने महावीर' नामक अपने दोस्त को अपनी कृति एक अधूरी कवि कथा में अपने घनिष्ठ मित्र के रूप में चित्रित किया है।

रेडियो–नाटक के बारे में त्यागी जी का विचार है कि कम से कम दो पात्रों के संवादों से पूर्ण कथानक वाला नाटक अधिक उपयुक्त ठहरता है। नारी–पात्रों को जहाँ तक हो सके, रेडियो नाटक में कम ही स्थान दिया जाये । चूंकि रेडियो–नाटक पूर्णतः ध्वनि पर अबलम्बित रहता है। अतः पात्रों की कण्ठ आयु भिन्न होना आवश्यक है। ध्वनि का ध्यान रखते हुए उसी वय वाले पात्र का चुनाव किया जाना चाहिए। कहीं कहीं नाटक के पात्रों में वैचारिक द्वन्द्वकी प्रधानता अवश्य अवलोकनोप है किंतु उनमें मानसिक कशमकश, तनाव और द्वन्द्वका प्रायः अभाव सा ही है। वे घटनाओं की प्रतिक्रिया से झनझनाते नहीं प्रश्युत शांत भाव से अंतिम बिन्दु तक सब सहते जाते हैं। उदाहरण देखिए–

"क्यों, आए नहीं ?" लाला जी ने पूछा।

"जी नहीं।" प्रिंसिपल ने जवाब दिया।

"अच्छी तरयो देखखा था ?"

"जी हाँ, स्टेशन पर अब कोई यात्री नहीं है।" सत्यव्रत ने कहा।

दूध का गिलास ख़त्म करते हुए फौरन उठकर खड़े हो गए, "अच्छा तो

आप लोग बैट्ठो, मैं अब चला।"[4]

दुष्यन्त जी के पात्र वास्तविकता सी सजीवता लिए विभिन्न परिस्थितियो को चित्रित करते हैं। पाठक इन जीवत चरित्रों की विलक्षणता में खोता चला जाता है। उनकी कथाए उनके अपने व्यक्तित्व के निचोड़ के प्रस्तुत करती है। दुष्यन्त जी की पात्र योजना अत्यन्त सटीक है।

बिम्ब विधान एवं प्रतीक

बिम्ब किसी वस्तु को मानसिक प्रतिकृति है। यह अंग्रेजी भाषा के इमेज शब्द का पयार्यवाची है जिसका काम में अर्थ शब्द–चिय' माना जाता है। साहित्य में बिम्ब का प्रयोग भावों तथा विचारों के चित्रात्मक रूप को प्रकट करने के लिए दिया जाता है। विभिन्न विहनों ने बिम्ब की अलग–अला परिभाषा दी है जिनमें से कुछ इस प्रकार से कैलाश वाजपेयी ने अनुसार, बिम्ब चित्रण शब्दों के रूप में खड़ा करना मात्र न छोकर पश्या को पियार और मनोटेगों को उलित करने वालो कलापूर्ण किया ।

दुष्यन्त जी के साहित्य मे प्रतीकों एवं बिम्बों का सार्थक प्रयोग हुआ है। कला पक्ष को सजीव बनाने के लिए विविध प्रतीक और बिम्ब को सहजता से प्रस्तुत किया है। इनके साहित्य में कहीं भी बिम्ब व प्रतीक अनावश्यक रूप में दिखाई नहीं पड़ते। जहाँ–जहाँ कवि को प्रतीक एवं बिम्ब की आवश्यकता महसूस हुई वहीं त्यागी जी ने प्रयोग किया। त्यागी जी के साहित्य में यह बिम्ब बखूबी देखा जा सकता है। इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध आँख से होने के कारण ऐन्द्रिय बिम्ब की श्रेणी में आता है। त्यागी जी की प्रसिद्ध कविता 'आत्मालाप' में दृश्य–बिम्ब का उदाहरण दृष्टव्य है–

''एक ही नदी है, अपने गांव के नीचे

जिसका चैड़ा–सा पाट पार करने के बाद वह किला है

उसकी अटारी पर तू और मैं साथ ही पहुंचते थे।''[5]

उपर्युक्त पंक्तियों में नदी, गांव, अटारी दृश्य बिम्ब को प्रस्तुत करते है, वहीं उनकी कविता 'ईश्वर को सूली' में भी देखा जा सकता है।

श्रव्य बिम्ब–

श्रव्य बिम्ब का सम्बन्ध कान से होता है। इसमें ध्वनि की गूंज, कंपन आदि का सहारा लिया जाता है। त्यागी जी की कई कृतियों में इसका प्रयोग किया गया है जैसे ''काव्य–कथाः चार पत्रः एक प्रसंग'' में कुछ पंक्तियां दृष्टत्य है–

''उस धुधंली आकृतियों को पकड़ लो,
या उस भाषा को पढ़ लो
जो जाने क्या कहती है
अस्फुट शब्दों में हर वक्त
कानों में गूंजती रहती है।''[6]

गंध बिम्ब–

गंध या घ्राण बिम्ब का सम्बन्ध नासिका से है। इसके अन्तर्गत सभी पदार्थो में आने वाली सुगन्ध और दुर्गन्ध सम्बन्धी बिम्ब आते है। दुष्यन्त जी को कृति– सूखे फूलः उदास चिराग' और 'आवाजों के घेरे में गंध बिम्ब के उदाहरण देखने की मिल जाते है।

''थोडा–सा जी दुःख, कि देखों, कितने प्यारे थे ये फूल
कितनी भीनी, कितनी प्यारी होगी इसकी गंध कभी,''[7]

प्रस्तुत पंक्तियों में सुगंधित वायु का साक्षात्कार नासिका से होगा और वह चम्पे के पास में उसकी प्रतीक्षा का पैगाम भी सुना देती है। अतः इसमें गंध संवेदना से युक्त बिम्ब के साथ सुन्दर व्यंजना भी है।

स्पर्श बिम्ब–

स्पर्श बिम्ब का सम्बन्ध त्वचा से है त्वचा का सम्बन्ध किसी वस्तु या पदार्थ की कोमलता, कठोरता, चिकनाहट आदि से होता है। 'पहली पहचान' नामक कविता में स्पर्श बिम्ब के उदाहरण अवलोकनीय है–

''प्रातः सुमन की शबनम से भी,
मेरे अन्तर्भाव सुकोमल''[8]

इन पंक्तियों में त्यागी जी ने अपने हृद्य–भावों को प्रातः काल में विकसित पुष्प की पंखुड़ियों पर विद्यमान ओस की बूंदे से अधिक कोमल कहा है, जिसका अनुभव छूकर ही किया जा सकता है। अतः यहां स्पर्श बिम्ब देखा जा सकता है।

अतः कहा जा सकता है कि प्रतीकों एवं बिम्बों की झलक त्यागी जी के साहित्य में बखूखी देखी जा सकती है। प्रकृति एवं आम–आदमी से जुडों बिम्ब एवं प्रतीको का प्रयोग काव्य को प्रयोगवाद की ओर मोड़ दिया है।

पौराणिक–प्रतीक–

साहित्य मे पौराणिक प्रतीकों का सहारा आदि काल से ही लिया जा रहा है। प्रतीकों की दिशा समय–समय पर बदलती गई। प्रयोगवाद तक पहुचतें–पहुचतें कृत्रिम प्रतीकों ने स्थान ले लिया। दुष्यन्त जी ने अपनी कृत्रिम में पौराणिक–प्रतीकों को समाहित किया है। 'आवाजों के घेरे' संकलन की 'दृष्टान्त' कविता का यह दृष्य अवलोकनीय है–

''यह अभिमन्यु न बन पाने का क्लेश।
यह उससे भी कहीं अधिक क्षत–विक्षत सब परिवेश।।
उस युद्ध–स्थल से भी ज्यादा भयप्रद–शैश्व
मेरा हृदय–प्रदेश!!!''[9]

यहाँ इस कविता में देखें तो पता चलता है कि अभिमन्यु आधुनिक मानव का प्रतीक है जो समस्याओं रूपी चक्रव्यूह में घिरा खड़ा है किन्तु उसे बाहर जाने का रास्ता दिखाई नहीं पड़ता । दूसरी ओर देखें तो यहां अभिमन्यु विवके का प्रतीक है। युद्ध स्थल जहां हृदय का प्रतीक है तो वहीं कौरव मन के कलुषित पक्ष का प्रतीक है।

प्राकृतिक प्रतीक–

प्राचीन समय से ही कवि ने अपनी अनुभूति को व्यक्त करने के लिए प्रकृति का सहारा लेता आ रहा है। त्यागी जी ने काव्य में प्रकृति का मानवीकरण किया है। उन्होंने अपनी कविता 'पत्नी के प्रति' में प्रकृति के विविध रूपों की तुलना अपनी पत्नी से की है।

'गोधूली के नमित नखत से लज्जित नैन विशाल
असित सांझ के सदृश शीश पर लहरे काले बाल
गात चांदनी का, फागुन भी जिसके सम्मुख स्याह''[10]

जन–जीवन से गृहीत प्रतीक–

दुष्यन्त जी ने काव्य–विषय की तरह प्रतीकों का चयन भी आम जन–जीवन से प्रेरित होकर किया है। समाज से जुड़ी समस्याओं, शोषण, विषमताओं आदि को प्रतीकों के रूप में पिरोते हुए त्यागी जी लिखो है–

''जले जो रेत में तुलवे तो हमने ये देखा
बहुत से लोग वहीं छटपटा के बैठ गए
खड़े हुए थे अलावों की आंच लेने को,
सब अपनी–2 हथेली जला के बैठ गए।''[11]

त्यागी ने 'कुठा' नामक कविता में भी जन–जीवन से गृहीत प्रतीकों को आधार बनाया है।

यौन–प्रतीक–

साहित्य में प्रयोगवाद के आगमन पर काव्य ने प्रतीकों का नवीनीकरण हो गया था। त्यागी ने भी यौन–प्रतीकों का सटीक प्रयोग किया है। उनकी कुछ कृतियां प्रकाशित नहीं हो पाई थी। जैसे उनका गति 'पहिली पहचान' में यौन–प्रतीकों का प्रयोग करते हुए लिखते है–

''तेरी अर्द्धखिली कलियों की पखुरियों पर
खड़ा हुआ सुक वृन्दों की आशाओं का घर
सोच रहे है कभी बिहसकर फूल बनेगी, देखेंगे हम''[12]

यहां पर अर्ध विकसित कली–यौवन की कगार पर खड़ी कामिनी की प्रतीक है। तोतों का समूह–युवकों का प्रतीक है। इस प्रकार यौवन का चित्रण करते हुए कविता ''तुम एक बार मुस्का दो ना!'' में लिखते है–

''यौवन की अनुपम देन प्रिये

शोधार्थी : सविता सुपुत्री श्री आत्माराम
पंजी. संख्या–Dr/Ph.D(H)15/2019
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार–सभा,
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, चेन्नई
rajkhanna2011@gmail.com
mob. 9255451522

मधु प्यार भरा है मेरा उर
अनुराग–वर्तिका उकसा दो
देकर मुझको कल्पना मधुर,''[13]

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है कि त्यागी ने अपनी मनोवृति को स्पष्ट करने के लिए यौन–प्रतीकों का सहारा लिया। वैसे उनका झुकाव सरलता की ओर अधिक है। यौन कलात्मक प्रतीकों की संख्या सीमित है।

वस्तुतः कह सकते है कि दुष्यन्त कुमार ने अपने साहित्यिक के प्रति अपने सार्थक भाव को सार्थक किया है। अपनी लेखनी में गज़लों एवं अन्य विधाओं में एक ऐसी हिंदी भाषा का प्रयोग किया जिसमें हिन्दी के तद्भव शब्दों के अतिरिक्त अरबी–फारसी के शब्दों का सुंदर चित्रण देखा जा सकता है। लेकिन हम उनकी गज़लों को छोड़ दें तो अन्य कविताओं में ऐसी साहित्यिक हिन्दी भाषा का प्रयोग किया है जिसमें संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया गया है। लेकिन उनका यही प्रयास रहा है कि वे इस प्रकार की भाषा का प्रयोग करें जिसे आम आदमी समझ सके। कवि की आवाज सबसे प्रबल, 'सबसे मर्मभेदी और भारी' है क्योंकि उसमें युग चेतना का दर्द समाहित है। आजकल के साहित्य में शब्दों ने अनुभूतियों को ढंक लिया है और सही अर्थों की सम्भावनाएँ खोती जा रही हैं। अतः वह शब्दों की सार्थक पहचान के साथ नए अर्थों की जमीन तोड़ला है, संप्रेषणीयता की बुनियादी भूमिका पर विचार करता है।

सन्दर्भ–सूची

1 रामचन्द्र वर्मा, उर्दू–हिन्दी कोश लोकभारती प्रकाशन, पृ० सं०–325
2 रसालमाशंकर शुक्ल (सपा) भाषा शब्द–कोश, पृ० सं०––1825
3 विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली : चार, पृ.सं.–261
4 विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली : तीन, पृ.सं.–191
5 विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली, दो पृ.स.–163
6 विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली, दो पृ.स.–221
7 विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली, एक पृ.स.–438
8 विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली, चार पृ.स.–433
9 विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली, एक पृ.स.–437
10 विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली, एक पृ.स.–242
11 विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली, दो पृ.स.–267
12 विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली, एक पृ.स.–353
13 विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली, एक पृ.स.–126

9

शोधःदृष्टि और सृष्टि

डॉ0 जंग बहादुर पाण्डेय'तारेश'

सारांश

परमात्मा की सृष्टि का अनुपम और विवेकशील प्राणी मनुष्य है।जिज्ञासा उसकी जन्मजात प्रवृत्ति है।मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास को हम शोध का इतिहास भी कह सकते हैं।मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास के प्रायरू पांच सोपान(चरण) हैंरू–

1 **पाषाण युग**ः–आदि मानव जंगलों में रहता था।अपनी उदर पूर्ति के लिए जंगली जीवों का पत्थरों से शिकार करता था।जंगल के पेड़ पौधों की छाल और पतियों से अपने शरीर की रक्षा करता था।

2 **पशुपालन युग**ः– जंगलों में दो प्रकार के जीव थे हिंसक (मांसाहारी जैसे शेर,बाघ,चीता,भेड़िया भालू आदि)और अहिंसक(गाय,बैल,भैस,हिरण भेड़ बकरी आदि) मनुष्य ने सोचा सभी जीव बध लायक नहीं हैं,कुछ पालने लायक भी हैं। मनुष्य ने अहिंसक जानवरों को पालना शुरू किया।ये बड़े उपयोगी सिद्ध हुए।इनसे भोजन और आहार के रुप में दूध, घी प्राप्त हुए।मानव विकास का यह द्वितीय चरण पशुपालन युग कहा जाता है।

3 **कृषि युग**ः–मनुष्य के समक्ष पृथ्वी का विशाल भूखंड सामने था।उसकी आबादी बढ़ी, भोजन की समस्या सामने आई,उसने खेती शुरु की।पशुओं की सहायता और अपने परिश्रम से अन्न उपजाना शुरू किया। इसे कृषि युग कहते हैं।

4**औद्योगिक युग**ः–मनुष्य के विकास की यह यात्रा रूकी नहीं।मानव सभ्यता के विकास के इतिहास में 1688 में यूरोप के इग्लैण्ड में एक क्रांति हुई जिसे रक्त हीन क्रांति(ठसववक स्मे त्मअवसनजपवद)कहा जाता है।मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कल कारखानों और अन्य वैज्ञानिक तकनीकों का आविष्कार किया।यातायात के लिए मोटर गाडियां, रेल, जहाज और अन्य साधनों का आविष्कार किया।इन साधनों के आविष्कार से मानव जीवन समुन्नत हुआ।इतिहास के पन्नों में इसे औद्योगिक युग कहते हैं।

5 **सूचना जन क्रांति युग**ः–मनुष्य के विकास की यह ज्ञान यात्रा सतत् प्रवहमान रही।वह रुकी नहीं, झुकी नहीं ,आगे अपने ज्ञान और जिज्ञासा की तृप्ति के लिए हनुमानजी की तरह बढती रहीः

हनुमान तेहि परसा, कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हे बिनु, मोहि कहाँ बिश्राम।

तुलसी,मानस,सुंदर काण्ड–दोहा.1

अर्थात् मनुष्य ने 19 वीं शताब्दी में सूचना तकनीक का विकास कर नई क्रांति ला दी।आज मनुष्य ने अपने ज्ञान विज्ञान के आविष्कार की बदौलत पूरी दुनिया मुठ्ठी में कर ली है।यह सूचना जन क्रांति का फलाफल है।

मनुष्य जैसे जैसे प्रगति के पथ पर अग्रसर होता गया,उसने अपनी जिज्ञासा के समन के लिए और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नये नये आविष्कार और अनुसंधान करता गया। अस्तु मनुष्य के विकास का यह संक्षिप्त इतिहास उसकी ज्ञान यात्रा और आविष्कार एवम् अनुसंधान का इतिहास है।इसमें दो राय नहीं।

आविष्कार या अनुसंधान की यह ज्ञान यात्रा हवा हवाई नहीं हैयइसका ठोस धरातल हैयजहां से यह उड़ान भरती है और मानव कल्याणार्थ आकार ग्रहण करती है।प्रमुखतः इसके पांच अवयव(Element)हैं,जिनकी संक्षिप्त चर्चा अपेक्षित हैः–

1जिज्ञासा इच्छा(Curiosity/Desire):–

जिज्ञासा अनुसंधान और शोध की जननी है।मनुष्य संसार का सबसे जिज्ञासु प्राणी है।उसने जब अपनी पहली आंख संसार में खोली तो उसके मुखारविंद से रुदन के साथ जो ध्वनि निकली, उसे दुनिया ने सुनी थी –वह ध्वनि थी कहाँ कहाँ की। मनुष्य ने अपने जीवन की यह यात्रा कहां से शुरू की और कहाँ जाना है और कहाँ जाएंगे पर इसकी पूर्णता है।जीव क्या है?,जगत् क्या है? परमात्मा क्या है? जीव का शिव भाव क्या है? मनुष्य अपना कल्याण कैसे करेगा यह मनुष्य का जीव भाव हैऔर जगत् का कल्याण कैसे करेगा यह उसका शिव भाव है।

अतः शोध या अनुसंधान वही करेगा, जिसमे ज्ञान के प्रति ललक, उत्सुकता और जिज्ञासा होगी।जिज्ञासा के अभाव में शोध की यह ज्ञान यात्रा कतई सभंव नहीं।अस्तु जिज्ञासा शोध का मूल धरातल है।

2 आवश्यकता(Necessity)

अर्थशास्त्र में प्रो एल.एम.राय ने पढ़ाया था कि आवश्यकता आविष्कार की जननी है।(Necessity is the mother of invention) शोध के संदर्भ में यह बात पूर्णतः सत्य है। मनुष्य को जैसे जैसे आवश्यकता होती गई, वैसै वैसे वह आविष्कार करता गया और उसकी आवश्यकता की पूर्ति होती गई।भूख लगी तो अन्न

उपजाया,ठंढ लगी तो वस्त्र और घर बनाया, यातायात के लिए वाहन बनाया,मनोरंजन के लिए रेडियो और टेलीविजन तथा वार्तालाप के लिए दूरभाष एवम् मोबाइल (चलभाष)का आविष्कार किया।आकाश में उड़ने के लिए उसने वायु यान और सामुद्रिक यात्रा के लिए जलयान को बनाया।संक्षेप में ये सारे आविष्कार मनुष्य की आवश्यकता के फलाफल हैं।अतः आवश्यकता अनुसंधान का दूसरा महत्वपूर्ण अवयव है।

3 योग्यता(Ability/Capacity):–

योग्यता के बिना किसी भी प्रकार का अनुसंधान नहीं हो सकता।योग्यता वह अवयव(तत्वध्गुण) है,जिसके बिना मानव विकास की कोई यात्रा संभव नहीं है।जिज्ञासा हो,आवश्यकता भी हो और यदि योग्यता नहीं हो,तो किसी भी प्रकार का शोध संभव नहीं है।अतःहम कह सकते हैं कि योग्यता या पात्रता शोध का मूलाधार है। (Ability is the fundamental element of research.) इसीलिए विश्वविद्यालय सेवा आयोग(UGC) नई दिल्ली ने विश्वविद्यालयों मे शोध के लिए अब न्यूनतम योग्यता M-A/M-Sc-/M-Com/M-Tech-55% vad+NET निर्धारित की है।

4 परिश्रम उद्यमिता(Labour|Industrine):–

उद्यमिता और परिश्रम अनुसंधान की कुंजी है।इसके बिना जीवन में कुछ भी संभव नहीं है।मनुष्य ने आज तक अपने जीवन में जो कुछ भी पाया या कमाया है, वह सब उसकी उद्यमिता और परिश्रम का ही परिणाम है।पंचतंत्र में विष्णु शर्मा ने लिखा है कि जंगल के राजा सिंह को भी अपनी भूख मिटाने के लिए परिश्रम करना पड़ता हैरू–

उद्यमेन हि सिद्धंति कार्याणि, न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य, प्रबिसंति मुखे मृगारू।

राष्ट्रकवि दिनकर ने रश्मि–रथी में परिश्रम की महता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है किरू–

मेंहदी जब सहती प्रहार,
बनती ललनाओं का श्रृंगार।
जब फूल पिरोए जाते हैं,
हम उनको गले लगाते हैं।
खम ठोक ठेलता है जब नर,
पर्वत के जाते पांव उखड़।
मानव जब जोर लगाता है,
पत्थर पानी बन जाता है।

अस्तु कहा जाता है किः

दैवयानि याति वैफल्यम् नाभ्यस्तु कदाचन। अर्थात् भाग्य धोखा दे सकता है किंतु अभ्यास या परिश्रम नहीं।अंग्रेजी में कहावत हैः–

Labour never goes invain

अर्थात परिश्रम का फल कभी बेकार नहीं जाता।

5 तत्परता(illingness/Efforts):–

शोध की सिद्धि के लिए परिश्रम के साथ तत्परता एक महत्वपूर्ण घटक है।तत्परता का तात्पर्य है किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अविकल भाव से लग जाना।(Efforts to acquire that target/Research is called willingness)

आलसी व्यक्ति शोध नहीं कर सकता।

6 श्रद्धा और विश्वास(Respect & Belief):–

शोध के लिए श्रद्धा और विश्वास परम आवश्यक है।आचार्य देवो भवः,पितृ देवो भव,मातृ देवो भव,अतिथि देवो भवः भारतीय ज्ञान के श्रेष्ठ निदर्शन हैं।श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को प्रबोधते हुए कहा किः–

श्रद्धावान लभते ज्ञानं,तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परमं शांतिं, अचिरणेधिगच्छतिः।
वेदव्यास, गीता, 4/39

महाकवि तुलसीदास ने लिखा है कि श्रद्धा और विश्वास के बिना तो हम अपने भीतर स्थित ईश्वर को भी नहीं देख सकते हैं तो शोध की यात्रा कैसे संभव होगी!शोधार्थी को श्रद्धा और विश्वास के साथ अपने शोधकार्य में लगना चाहिए तब सफलता असंदिग्ध रहेगी।

शोध की परिभाषा और स्वरूप पर भी यत्किंचित प्रकाश डालना अपेक्षित है।यह अंग्रेजी के त्मेमंतबी का हिंदी पर्याय है।हिन्दी में शोध के लिए आविष्कार, अनुसंधान, गवेषणा, खोज आदि अनेक शब्द प्रचलित हैं।

शोध की अनेक परिभाषाएं विद्वानों द्वारा दी गई हैं।रैडमैन और मोरी ने अपनी किताब में लिखा हैरू–

नवीन ज्ञान की प्राप्ति के व्यवस्थित ज्ञान को हम शोध कहते हैं।

एडभांस लर्नर डिक्सनरी आफ करेंट इंग्लिश के अनुसाररू–

किसी भी ज्ञान की शाखा में नवीन तथ्यों की खोज के लिए सावधानी पूर्वक किये गए अन्वेषण या जांच पड़ताल को शोध की संज्ञा दी जाती है।

डॉ विनय मोहन शर्मा ने शोध की परिभाषा देते हुए अपनी पुस्तक शोध प्रविधि में लिखा है किरू–

शोध नये तथ्यों की खोज ही नहीं, उसकी तर्क सम्मत व्याख्या भी है।

व्यापक अर्थ में अनुसंधान किसी भी क्षेत्र में ज्ञान की खोज करना या विधिवत् गवेषणा करना होता है।वैज्ञानिक अनुसंधान में वैज्ञानिक विधि का सहारा लेते हुए जिज्ञासा का समाधान करने की कोशिश की जाती है।नवीन वस्तुओं की खोज और पुरानी वस्तुओं और सिद्धांतों का पुनः परीक्षण करना जिससे नये तथ्य प्राप्त हो सकें,उसे शोध कहते हैं।

शोध उस प्रक्रिया अथवा कार्य का नाम है जिसमें बोधपूर्वक प्रयत्न से तथ्यों का संकलन कर सूक्ष्म ग्राही एवम् विवेचक बुद्धि से उसका अवलोकन विश्लेषण करके नये तथ्यों या सिद्धांतों का उद्घाटन किया जाता है।

शोध की अनेक परिभाषाओं के आलोक मे यह कहा जा सकता है कि शोध ज्ञान की वह धारा है जिसमें अज्ञात तथा अप्राप्त तथ्यों की खोज ज्ञात तथा प्राप्त तथ्यों के आधार पर कर नवीन आख्यान किया जाता है। अतः मेरे विचार से ज्ञात साधनों से अज्ञात को तर्कसंगत और वैज्ञानिक तरीके से ज्ञात करना ही शोध है।

शोध का उद्देश्यः–

शोध के अनेक प्रयोजन एवम् उद्देश्य हैं जिनमें सत्यान्वेषण, ज्ञानोपार्जन, ज्ञान के क्षितिज का विस्तार, रहस्योद्घाटन, धनोपार्जन, यशोपार्जन आत्मोद्धार और जगत् का कल्याण प्रमुख हैं।काव्य–प्रयोजन के संदर्भ में आचार्य मम्मट ने काव्य प्रकाश में लिखा है किः–

काव्यं यशसे, अर्थकृते,व्यवहार विदे,शिवेतरक्षतये।

सद्यः परिनिवृतये,कांतासम्मितयोपदेशयुजे।

अर्थात् यश प्राप्ति, अर्थ प्राप्ति,व्यवहार में निपुणता, अमंगल का नाश, सद्यः आनंद की प्राप्ति और कांता सम्मित उपदेश ये काव्य के 6 प्रयोजन आचार्य मम्मट ने स्वीकार किया है। ये प्रयोजन प्रायः शोध के भी हैं।

भगवद्गीता के शब्दों में कहना चाहें तो कह सकते है कि शोध के दो ही मुख्य उद्देश्य हैंः–

आत्मोद्धाराय जगतहिताय च

अर्थात् अपना कल्याण और जगत कल्याण।

शोध का महत्वः–

शोध का महत्व मानव जीवन मे असंदिग्ध हैः–

1 शोध चूकि ज्ञान की यात्रा है।अतः शोध मानव जीवन को दिशा प्रदान करता है तथा ज्ञान भंडार को विकसित एवम् परिमार्जित करता है।

2 शोध जिज्ञासा मूल प्रवृत्ति(Curiosity Instinct) की संतुष्टि करता है।

3 शोध से व्यावहारिक समस्याओं का समाधान होता है।

4 शोध पूर्वाग्रहों के निदान और निवारण में सहायक है।

5 शोध अनेक नवीन कार्यविधियों एवम उत्पादों को विकसित करता है।

6 शोध ज्ञान के विविध पक्षो में गहनता और सूक्ष्मता लाता है।

7 शोध से व्यक्ति का बौद्धिक विकास होता है।

8 अनुसंधान हमारी आर्थिक प्रणाली में लगभग सभी सरकारी के लिए आधार प्रदान करता है।

9 अनुसंधान के माध्यम से हम वैकल्पिक नीतियों पर विचार और इन विकल्पों में से प्रत्येक के परिणामों की जांच कर सकते हैं।

10 अनुसंधान सामाजिक रिश्तों का अध्ययन करने में सामाजिक वैज्ञानिकों के लिए भी उतना ही महत्वपूर्ण जितना सामाजिक सहायक हैं।

11 अनुसंधान नये सिद्धांत का सामान्यीकरण करने के लिए हो सकता है।

12 अनुसंधान नयी शैली और रचनात्मकता के लिए हो सकता है।

शोध के प्रकार

शोध के प्रकार के कई आधार हैंः–

(1) उपाधि के आधार पर :–

(क) उपाधि सापेक्षः–

वह शोध जो विश्वविद्यालयों में किसी (पीएचडी/डी.लिट्./डी.फिल.)उपाधि के निमित्त लिखा या किया जाता है उपाधि सापेक्ष शोध कहा जाता है।इसके लिए न्यूनतम अर्हताएं होती हैं,समय सीमा होती है,निर्देशक होता है,परीक्षण होता है और परीक्षणों परांत उपाधि मिलती है।विश्वविद्यालयों में किया जाने वाला शोध प्रायः उपाधि सापेक्ष ही होता है।

(ख)उपाधि निरपेक्ष शोधः–जो विश्वविद्यालयों की परिधि के बाहर किसी उपाधि के परे लिखा या किया जाता है।इसमें समय सीमा का बंधन नहीं होता और नाहीं निर्देशक की आवश्यकता पड़ती है।राष्ट्र कवि दिनकर लिखित 'संस्कृति के चार अध्याय', आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास,'मिश्र बंधुओं रचित 'मिश्र–बंधु विनोद' उपाधि निरपेक्ष शोध के उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त न्यूटन का पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत, अल्बर्ट आइंस्टीन का E¾MC2, आर्कमिडीज का जल प्लावन सिद्धांत उपाधि निरपेक्ष आविष्कार के उदाहरण हैं।

2 तथ्य के आधार परः–

(क)तथ्यपरकः–जो विभिन्न तथ्यो या आंकडों पर आधारित होता है। यथा सांख्यिकी आदि में।

(ख) तत्वपरकः–जिसमें किसी विषय की तात्विक मीमांसा की जाती है।नयी गहन व्याख्या की जाती है।तत्व परक अनुसंधान को संपन्न करने के लिए भेदक मनीषा, गहन चिंतन,तुलनात्मक व्यापक अध्ययन और एक दार्शनिक परिप्रेक्ष्य की अपेक्षा होती है।विश्वविद्यालयों में किए जाने वाले उतम शोध इसके उदाहरण हैं।

3 विज्ञानाधारित और साहित्याधारितः–

(क)वैज्ञानिक शोधः–

जो शोध या अनुसंधान विज्ञान के क्षेत्र में या वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं

में या प्रकृति की पाठशाला में किया जाता है,उसे वैज्ञानिक शोध कहते हैं।न्यूटन, आइन्स्टीन, या आर्कमिडीज द्वारा किए गए सारे शोध वैज्ञानिक शोध के उदाहरण हैं।

(ख) साहित्यिक शोधः–

साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में किए जाने वाले शोध इसके उदाहरण हैं।आज इस प्रकार के शोध की संख्या सर्वाधिक है।

4 विषयाधारितः–

ज्ञान की जितनी शाखाएं हैं,जितने अनुशासन हैं, जितने विभाग या विषय हैं उसके आधार पर शोध के विभिन्न प्रकार संभावित हैंः–

यथाः–ऐतिहासिक शोध, भौगोलिक शोध,सामाजिक शोध,सांस्कृतिक शोध पौराणिक शोध,धार्मिक शोध,आदि।

5 वर्णनाधारित शोधः–

इस आधार पर शोध के अनेक प्रकार हैंः–

यथाः–वर्णनात्मकत्मक शोध,विवरणात्मक शोध, विश्लेषणात्मक शोध, विवेचनात्मक शोध आदि।'

हिंदी के मूर्धन्य समालोचक डा कुमार विमल ने लिखा है कि ष्शोध का उद्देश्य उपलब्ध ज्ञान के क्षितिज को व्यापक और विस्तृत बनाना है तथा अर्जित ज्ञान का निरंतर शोधन करना है,ताकि वह निर्दुष्ट और अद्यतन रह सके।इसी कारण शोध या अनुसंधान तन्कीद नहीं, तहकीक है–विशिष्ट प्रकार की सूक्ष्म खोज,जिसमें गहराई के साथ ही नैरन्तर्य हो।अतः अध्येतव्य या अनुसंधानाधीन विषय में केवल चंचु प्रवेश से शोधकर्ता का काम नहीं चल सकता।ष

शोध ईमानदारी से की गई एक प्रक्रिया है,इसमें गहनता से अध्ययन किया जाता है और विवेक एवम् समझदारी से काम लिया जाता है।चूकि यह एक ज्ञान यात्रा की लंबी प्रक्रिया है,अतः इसमें धैर्य की परम आवश्यकता होती है।

अंत में हम महाकवि कालिदास के शब्दों मे कहना चाहेंगे किः–

पुराणमित्येव न साधु सर्वं,
न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्।
संतरूपरीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते,
मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः।।

कालिदास, मालविकाग्नि मित्र E–1/2

अर्थात् सब पुराणा अच्छा ही है और सब नया खराब ही है ऐसी बात नहीं ,विद्वान परीक्षणों परांत खरे और खोटे का निर्णय करते हैं जबकि मूर्ख दूसरे की कही हुई बात को स्वीकार कर लेते हैं।

अस्तु शोध की उत्तमता या अधमता (निकृष्टता) विद्वानों द्वारा स्वीकृति या अस्वीकृति के बाद निर्णित होती है।

संदर्भ ग्रंथः–

1 विनय मोहन शर्मा,शोध –प्रविधि, नेशनल पब्लिशिंग हाउस,नई दिल्ली 1998

2 डॉ0 विजय पाल सिंह, अनुसंधान की प्रक्रिया,नेशनल पब्लिशिंग हाउस,नई दिल्ली 1990

3 डॉ0 नगेंद्र, अनुसंधान और आलोचना,नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1985

4 डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक,अध्ययन और अन्वेषण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1978

5 शोध–संदर्भ, डा गिरिराज शरण अग्रवाल, हिन्दी साहित्य निकेतन ,बिजनौर,1980

6 डॉ0 बालेंदु शेखर तिवारी सं.,अनुवाक् ,हिन्दी–विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची 2015

डॉ0 जंग बहादुर पाण्डेय'तारेश'

पूर्व अध्यक्ष, हिंदी–विभाग

रांची विश्वविद्यालय, रांची

चलभाषः 9431595318

8797687656

द्रुतडाकः pandey_ru05@yahoo-co-in

jbpandey05@gmail-com

10

गृहस्थाश्रम और महाभारत

दीपमाला

सारांश

भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत वर्णित आश्रमव्यवस्था में चार आश्रमों का उल्लेख किया गया है–

1. ब्रम्हचर्य
2. गृहस्थ
3. वानप्रस्थ
4. सन्यास।

इन चार आश्रमों में से गृहस्थाश्रम को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है तथा यहाँ तक कहा गया है कि जिस प्रकार सभी प्राणियों के जीवन का आधार वायु है ठीक उसी प्रकार सभी आश्रमों का आधार गृहस्थाश्रम है। हमारे आर्श महाकाव्य महाभारत में भी इस आश्रम को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। इसके शान्तिपर्व में कहा गया है कि एक बार धर्मराज युधिष्ठिर के मन में लोकजीवन के प्रति अनासक्ति उत्पन्न हुई तथा वे गृहस्थजीवन का त्यागकर वन में प्रस्थान करने की कामना करने लगे। जिसके पश्चात् उनके सभी भाइयों व व्यास जी ने मिलकर उन्हें समझाने का प्रयास करते हुए कुछ मन्दबुद्धि ब्राह्मण बालकों का उदाहरण देने लगे जो अल्पायु में ही गृहत्यागकर वनवासीजीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिये थे। उनकी इस स्थिति को देखकर देवराज इन्द्र ने स्वर्णिम पक्षी का रूप धारण करके उन्हें समझने का प्रयास किया–

कुटुम्बविधिनानेन यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्।

अर्थात् कौटुम्बिकजीवन व्यतीत किये बिना संन्यास लेना अनुचित है, क्योंकि गृहस्थाश्रम ही सभी वस्तुओं की प्रतिष्ठा का आधार है।

यह आश्रम सभी का सिद्धिक्षेत्र भी है–

ईहन्ते सर्वभूतानि तदि्तं कर्मसंज्ञितम्।
सिद्धिक्षेत्रमिदं पुण्यमयमेवाश्रमो महान्।।[2]

देवराज इन्द्र की प्रेरणा से अभिप्रेरित वे ब्राह्मणकुमार अपना वनवासीजीवन छोड़कर गृहस्थजीवन में वापस आ गये। महर्षि वेदव्यास के अनुसार गृहस्थ के सम्पूर्ण जीवन का पालन करना और उसका निर्वाह कर लेना मानव का परम धर्म है–

शास्त्रदष्टः परोधर्मः स्थितो गार्हथमाश्रितः।

इसी गृहस्थाश्रम का आश्रय देवता, पितर, अतिथि, भृत्य, पशु–पक्षी और अन्य प्राणी भी लिया करते है। इसलिए हमारा कर्तव्य है कि हम सदैव उनका भरण–पोषण करते रहें–

गृहस्थं हि सदा देवाः पितरोऽतिथयस्तथा।
भृत्यावूचैतोपजीवन्ति तान् भरस्व महीपते।।
वयांसी पशवश्चैव भूतानि च जनाधिप।
गृहस्थैरेव धार्यन्ते तस्माच्छेष्ठो गृहाश्रमी।।[3]

इस आधार पर व्यास जी ने धर्मराज को यह समझाने का प्रयास किया कि तुम शास्त्रों के अनुसार धर्म का पालन करते हुए गृहस्थजीवन का आचरण करो। तुम्हारे लिए इस आश्रम को छोड़कर वन में जाना उचित नहीं है–

स्वधर्मं चर धर्मज्ञ यथाशास्त्रं यथाविधि।
न हि गार्हस्थ्यमुत्सृज्य तवारण्यं विधीयमे।।[4]

शेष तीनों आश्रम इसी आश्रम पर आश्रित होते हैं तथा इसी से ही प्रत्येक पोषण प्राप्त करते हैं। इस आश्रम का प्रारम्भ व्यक्ति में वैवाहिक जीवन से होता है। हमारे हिन्दू समाज में प्रत्येक व्यक्ति के लिए विवाह करना आवश्यक माना गया है, क्योंकि शास्त्रों में सन्तानोत्पत्ति स्वर्गलाभ का कारण हुआ करती हैं। यहाँ यह भी कहा गया है कि माता बनना स्त्री का और पिता बनना पुरूष का धर्म हुआ करता है। वेदों में यह कहा गया है कि पुरुषों को अपनी पत्नी के साथ–साथ धर्माचरण करना चाहिए–

प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः संतानार्थ व मानवः
तस्मांत्साधारणो धर्मः श्रुर्तो पत्न्या सच्होदितः।।[5]

महाभारत में तो यहाँ तक कहा गया है कि विवाह करना मोक्ष का कारण हुआ करता हे। सन्तानहीनता मोक्ष में बाधक है। महर्षि नारद एक अविवाहित कन्या को विवाह हेतु उपदेश देकर स्वर्ग के महत्व को समझाते है। जिसके पश्चात् अविवाहित का कन्या ने ऋषि के साथ विवाहकर स्वर्ग को प्राप्त किया था। इससे यह ज्ञात होता है कि गृहस्थ के लिए विवाह आवश्यक है। महाभारत में पुरुष सन्तान की उत्पत्ति को पितृऋण के मुक्ति का मार्ग भी कहा गया है। इसका एक उदाहरण महाभारत में प्राप्त होता है जिसमें यमलोक में पहुँचे हुए निःसन्तान को सन्तानोत्पत्ति के अभाव में स्वर्ग की प्राप्ति नहीं हुई–

त इमें प्रसवस्यार्थे तब लोकाः समावृताः।
प्रजायस्य ततो लोकानुपमोक्ष्यसि पुष्कलान्।।[6]

महाभारत में धर्मराज युधिष्ठिर के प्रसंग में गृहस्थाश्रम का जो स्वरूप उद्घाटित किया गया है उसके अनुसार गृहस्थ के भोजन में देवता,

पितर, मनुष्य और अन्य प्राणियों का हिस्सा होता है तथा गृहस्थ का यह धर्म है कि वह अपने हाथों से भोजन न बनाने वाले संन्यासी को भोजन बनाकर दे। गृहस्थ का यह भी कर्तव्य है कि वह रोगादि से ग्रसित व्यक्ति को सोने के लिए शैय्या, थके हुए व्यक्ति को बैठने के लिए आसन, प्यासे को पानी तथा भूखे व्यक्ति को भोजन दे–

संविभागों हि भूतानां सर्वेशामेव दृष्यते।
तथैवापचमानेभ्यः प्रदेयं गृहमेधिना।।
देयमार्तस्य शयनं स्थितश्रान्तस्य चाहानम्।
तृशितस्य च पानीयं क्षुधितस्य च भोजनम्।।[7]

महाभारत में यह भी कहा गया है कि अतिथियों का सत्कार करना गृहस्थ का परमधर्म है। यह हमारा धर्म है कि द्वार पर आये हुए अतिथि के प्रति सद्व्यवहार करना चाहिए। उससे मिलकर बात करना चाहिए और उसके जाते समय कुछ दूर तक उसका अनुसरण अवश्य करना चाहिए। वह जब तक द्वार पर रहे तब तक उसके पास बैठकर सदैव सेवा करना चाहिए। गृहस्थाश्रम में निवास करने वाले गृहस्थ हेतु महाभारत में विविध नियम बनाये गये हैं–

1. वह केवल स्वनिर्मित भवन में रहे तथा अहिंसा का पालन करे।
2. गृहस्थ को दिन में शयन नहीं करना चाहिए।
3. उसे रात के पहले और पिछले भाग में भी शयन नहीं करना चाहिए।
4. गृहस्थ का कर्तव्य है कि वह सुबह और शाम दो बार ही भोजन करे। उसे मध्यकाल में भोजन नहीं करना चाहिए।
5. उसके घर पर आया हुआ अतिथि बिना सत्कार के वापस न हो।
6. कुटुम्ब में भरण–पोषण के योग्य लोगों को भोजन कराने के उपरान्त ही भोजन ग्रहण करना चाहिए।
7. गृहस्थ पुरुष का यह परमकर्तव्य है कि वह सदैव अपनी ही पत्नी से प्रेम करे।
8. उसे अपनी इन्द्रियों पर संयम रखते हुए जितेन्द्रिय बनना चाहिए।
9. उसे किसी के गुणों में दोष नहीं खोजना चाहिए।
10. उसे गुरु–पुरोहित, ऋत्विज्, अतिथि, शरणागतादि से विवाद नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार महाभारतविहित गृहस्थ के नियमों का पालन करने वाला व्यक्ति अपनी दस पीढ़ी की सन्तानों को पवित्र कर देता है–

पूर्वान् दशदश परान् पुनतिच पितामहान्।
गृहस्थवृत्तीश्चारसेता वर्वयेद् यो गतव्यथः।।[8]

इस प्रकार गृहस्थाश्रम, सभी आश्रमों में श्रेष्ठ एवं महत्त्वपूर्ण है। यदि अन्य आश्रमों से इसकी तुलना की जाये तो यह अकेले ही सर्वश्रेष्ठ है–

आश्रमांस्तुलया सर्वान् धृतानाहुर्मनीशिणः।
एकतस्य त्रयो राजन् गृहस्थाश्रम एकतः।।[9]

सन्दर्भ

1. महाभारत–शान्तिपर्व– 11/21
2. महाभारत–शान्तिपर्व– 11/15
3. महाभारत–शान्तिपर्व– 23/4–5
4. महाभारत–शान्तिपर्व– 23/3
5. महाभारत–9/96
6. महाभारत–आदिपर्व 228/13
7. महाभारत, वनपर्व– 2/53, 55
8. महाभारत–शान्तिपर्व– 243/25
9. महाभारत–शान्तिपर्व– 12/12

दीपमाला
शोधच्छात्रा–संस्कृत
डॉ0 रा0म0लो0 अवध विश्वविद्यालय,
अयोध्या।

11

आधुनिक संस्कृत महाकाव्यों की वर्तमान में प्रासंङ्गिकता

गरिमा सिंह

सारांश

काव्य जीवन की पूर्ण अभिव्यक्ति है। सच्चा कवि मानवजीवन के प्रत्येक सुख–दुःख से तादात्म्य स्थापित करता है। मनुश्य–जीवन के मार्मिक पक्षों को भी प्रभावपूर्ण भाषा में अभिव्यक्त करता है। उसके काव्यों में जनहृदय स्पन्दित होता है। भारतीय संस्कृति तथा जनजागरण के अग्रदूत संस्कृत कवि तात्कालिक जीवन के अन्तराल को परखता है और उसका सच्चा वर्णन प्रस्तुत करता है।

साहित्य दर्पणकार ने काव्य का लक्षण बताते हुए कहा है– वाक्यं रसात्मकं काव्यम् काव्य वह है जिसमें रस है। साहित्य की विविध विधाओं में महाकाव्य सबसे अधिक महत्वपूर्ण काव्य रूप है। महाकाव्य मानवजीवन के सर्वास्वरूप को प्रतिबिम्बित करने वाला काव्य का ऐसा उत्कृष्ट प्रबन्ध है जिसमें किसी जाति व देश की सांस्कृतिक धरोहर सुरक्षित रहती है। महाकाव्य मनुष्य के जीवन को उसकी सम्पूर्णता में उपस्थित करता है। उसका मूल आधार इतिहास और पुराण रहा है। क्योंकि इतिहास और पुराण दोनों जीवन और जगत् को विराट फलक पर चित्रित किया गया है। महाकाव्य का अन्य नाम सर्गबन्ध है।

आधुनिककाल में महाकाव्य–विधा–लेखन को संस्कृत में समकालीन भारतीय भाशाओं के साहित्य की अपेक्षा बहुत अधिक प्रशंसा मिली। आधुनिक कवियों ने प्राचीन आचार्यों के लक्षणों के पालन में कुछ स्वतन्त्रता बरती है। किन्तु उनका निर्वाह भी किया इस प्रकार एक ओर परम्परागत रूढ़ लक्षणों के अनुसार महाकाव्य लिखे गए तो दूसरी ओर परम्परा के आग्रह से मुक्त होकर भी महाकाव्य निर्मित हुए। आधुनिक काल में महाकाव्य विधा लेखन को संस्कृत में अधिक प्रशंसा मिली उसके अनेक कारण माने जा सकते हैं–

1. किन्हीं महापुरुषों के महनीय चरित का गुणगान करके अपनी वाणी को सार्थक बनाना।
2. उनसे स्वयं को जोड़कर साहित्य जगत् में प्रतिष्ठित होना।
3. महाकाव्य का लेखन कर महाकवि के रूप में स्वीकृति प्राप्त करना।
4. अपने कवित्व को एक विस्तृत आयाम में प्रस्तुत कर चमत्कार प्रदर्शित करना।

आज हम 21वीं शती में प्रवेश कर चुके हैं। वर्तमान समय में रचित महाकाव्यों का विविध आयामों की दृष्टि से अध्ययन करना आवश्यक हो गया है, क्योंकि साहित्य ही समाज का दर्पण है। साहित्य के माध्यम से हम तत्कालीन समाज तथा युग में विद्यमान परिस्थितियों तथा समस्याओं की जानकारी प्राप्त कर सकते है।

महाकाव्य के विकसित स्वरूप को देखते हुए विभिन्न युगों के काव्यकारों ने महाकाव्य के अलग–अलग लक्षण दिये हैं–

सर्गबन्धो महाकाव्य महता च महच्चयत्।
अग्राम्य शदुमर्थ च सालकारं सदाश्रयम्।।
मन्त्रदूत प्रयाणातिनायकाभ्युदयश्च यत्।
पचभिः सन्धिभिर्युक्त नातिव्याख्येमद्विमत्।।
चतुवर्गाभिधानेऽपि भूयसार्थोपदेशकृत।
युक्तं लोक स्वाभावेन रसैश्व सकलैः पृथक्।।

महाकाव्य की कथावस्तु का आधार व्यापक होता है। जिससे–जीवन जगत् और प्रकृति के विविध अंगों का विस्तृत रूप में चित्रण सम्भव हो सके। कथानक में काव्यसंविधान का अनुचिन्तन और पुर्ननिर्धारण अनिवार्य हो गया है। अब नेता जाति, लिंग अथवा स्थान के आधार पर नहीं चुना जाता है। राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह स्त्री हो या पुरुश अपने लोकमान्य उदात्त गुणों और कार्य क्षमताओं के आधार पर नेतृत्व कर सकता है।

इन महाकाव्यों में मुख्यतः सामाजिक चेतना, व्यक्तिगत चेतना और राष्ट्र चेतना का दर्शन होता है। इन महाकाव्यों में कुछ महाकाव्य दार्शनिक है तो कुछ ऐतिहासिकता से पूर्ण है। जो इस प्रकार है–

पं0 बालकृष्ण भारद्वाजकृत – रामकष्णपरमहंसदिव्यचरितम्
डॉ0 हरिनारायण दीक्षितकृत– भारतमाबूते
डॉ0 त्रिपाठी भास्काराचार्यकृत– साकेतसौरभम्
डॉ0 हरिनारायण दीक्षितकृत– भीष्मचरितम्
डॉ0 श्रीराम दवे– भृत्याभरणम्
डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी– आत्मविज्ञान

इस प्रकार हम देखते है कि संस्कृत साहित्य में महाकाव्य की रचना एवं परिस्थितियों से जहां एक ओर प्रभावित है, वही दूसरी ओर समाज के लिए उच्च आदर्श है।

संस्कृत महाकाव्यों की मुख्य विशेशता यह है कि वह जनसाधारण के

मनोभावों का हृदय की वृत्तियों का विभिन्न दशाओं में उत्पन्न होन वाले मानसिक विकारो का चित्रण अत्यन्त सरल और सरल भाषा में प्रस्तुत करता है। संस्कृत के सर्वासिद्ध होना चाहिए। कथानक में पंचसन्धियों का निर्वाह आवश्यक है। महाकाव्य की कथा किसी विशेष घटना पर आधारित होनी चाहिए जिसकी परिणति नायक की फल प्राप्ति में हो।

महाकाव्य में वर्तमान रूप का अवलोकन कर उसके निश्चित परिभाषा देना कठिन है। पूर्वाचार्यों के अनुसार और आर्वाचीन महाकाव्यों की प्रवृत्ति को देखकर डॉ0 रसबिहारी द्विवेदी ने महाकाव्य के लक्षण को इस प्रकार निबद्ध किया–

सर्गेर्वृनतैश्च बद्धं सहृदयहृदयाहृदिशद्धर्थरम्यं
संवादैश्चोच्चशिल्पैः सततरसमयं ग्रथिर्मुक्तसमृद्धम्
पात्रं स्वाद् यस्य मुख्यं परम गुणयुतं लोकविख्यात्वृनृम्।
भव्यं लोकस्वभावं महदपि महतां तन्महाकाव्यमास्ते

21वीं शती के कवियों की प्राचीन मानसिकता में शिथिलता आई तथा वर्णनों में संक्षिप्तता के साथ–साथ मौलिकता आने लगी।

महाकाव्य ऐसे महाकाव्य है जो कि महाकाव्यों के सम्पूर्ण लक्षणों को पूर्ण करने में समर्थ होने के साथ–साथ उच्चकोटि के महाकाव्यों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है।

आधुनिक संस्कृत महाकाव्य मानव जीवन के रूप को प्रतिबिम्बित करता है। इसमें भारत देश की संस्कृति समाज की समष्टि समग्रता तथा मानवता सुरक्षित है। इन महाकाव्यों में भारतीय संस्कृति के चारों स्तम्भों 'धमार्थकाममोक्षम्' के माध्यम से आदर्श जीवन की प्रतिश्ठा की गयी है।

वर्तमान 21वीं शताब्दी में भी अनेक महाकाव्यकारी द्वारा महाकाव्यों की रचना की गयी। जिसके अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि महाकाव्य सम्बन्धी मान्यताएं समयानुसार परिवर्तित हुई है। युगानुरूप आज राष्ट्र के संविधान संशोधन के युग कविजन जनसामान्य के जीवन से उनके हृदय में उत्पन्न होने वाली उनकी दरिद्रता से घनिष्ठ रूप से परिचय रखते है और अपने काव्यों में उनकी अभिव्यक्ति करके उन्होंने जन–जीवन के प्रति अपनी सहानुभूति का प्रकाशन भलीभांति किया है।

डॉ0 धर्मवीर सिंह कुण्ड ने श्रीभक्तफूलसिंहवरितम्' महाकाव्य में श्रीफलसिंह की विरह वेदना की अभिव्यक्ति करने से पराङ्मुख नहीं हुए। उन्होंने एक साधारण व्यक्ति के मनोभावों, उनके हृदय की वृत्तियों तथा विभिन्न दशाओं में उत्पन्न होने वाले मानसिक विकारों का चित्रण किया है।

एवं दृढ़ विनिश्चित्य रोहतके चमण्डले
सीापितवाहिन कन्यायानां खानपूरे गुरोः कुलन।।

श्रीभक्तफूलसिंहचरितम् 6/16

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- काव्य प्रकाश– आचार्य विश्वेश्वर (ज्ञानमण्डल) वाराणसी।
- साहित्यदर्पण– विश्वनाथ–श्री शालिकग्राम शास्त्री, डॉ0 सत्यव्रत सिंह (शक्तिनगर) दिल्ली।
- आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास– आचार्य बलदेव उपाध्याय (शारदा निकेतन वाराणसी)
- आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास– उमाशंकर शर्मा ऋषि (चौखम्बा सुरभारती अकादमी, वाराणसी)

गरिमा सिंह
शोधच्छात्रा – संस्कृत
डॉ0 राममनोहर लोहिया
अवध विश्वविद्यालय,
अयोध्या

12

शोध–विषय व शोध–शीर्षक का चयन

डॉ0 दिनेशमणि त्रिपाठी, डॉ0 दानपति तिवारी

सारांश

जिस प्रकार हम अपने निवासंस्थान व भवन–निर्माण के पूर्व वहाँ की परिस्थितियों का अवलोकन किया करते हैं तथा निर्धारित भूमि पर निर्माणकार्य कराना आवश्यक समझते हैं, ठीक उसी प्रकार शोधकार्य करने से पूर्व शोध–विषय का चयन भी करते हैं। शोध–विषय का चयन करते समय हमें स्थिरचित्त होकर अत्यन्त सावधानीपूर्वक कार्य करने की आवश्यकता होती है। इस कार्य में कभी भी जल्दबाजी करते हुए अविवेकपूर्ण निर्णय नहीं लेना चाहिए। इसके लिए अपने गुरुजनों, अनुभवी मित्रों और शोध–निर्देशक का परामर्श अवश्य लेना चाहिए। ऐसा न करने पर इस कार्य के विषय में सन्दिग्धता बनी रहती है तथा शोध–प्रबन्ध के साथ न्याय नहीं हो पाता है। इस सन्दर्भ में जहाँ तक संस्कृत विषय की स्थिति हैं वहाँ शोधार्थी को अत्यन्त ही विस्तृत संस्कृत–साहित्य सागर में अवगाहन करना पड़ता है। इसमें शोध की अपार सम्भावनायें हैं। इस विषय का चयन करते समय सर्वप्रथम यह ध्यान देना आवश्यक है कि हमारा शोधकार्य अतिव्याप्त और सीर्ण तो नहीं हो रहा है। उदाहरणस्वरूप हम कह सकते है कि आपने अपने शोध का विशय चुना– ''संस्कृत के ऐतिहासिक महाकाव्यों का एक समीक्षात्मक अध्ययन'' तथा जब शोधकार्य किया तो मात्र दो ऐतिहासिक महाकाव्यों का ही अध्ययन किया तो ऐसी स्थिति में आपका शोधप्रबन्ध स्वीकार्य नहीं होगा। अतः यह आवश्यक है कि आप अपने शोध–शीर्षक का निर्धारण अत्यन्त ही सोच–विचार कर करें। इस विषय को हम यदि अधोलिखित रूपों में परिष्कृत कर दें तो इस कार्य में अत्यधिक सुविधा हो सकती है–

क– संस्कृत के प्रमुख ऐतिहासिक महाकाव्यों का समीक्षात्मक अध्ययन।

ख– संस्कृत के प्राचीन/अर्वाचीन ऐतिहासिक महाकाव्यों का समीक्षात्मक अध्ययन।

वास्तव में शोध–विषय और शोध–शीर्षक का चयन करना–ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। विषय–चयन का तात्पर्य है अपनी अभिरूचि के अनुसार अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र में से शोध–विषय का ग्रहण करना। जहाँ तक संस्कृत विषय का प्रश्न है वहाँ इसमें वैदिक साहित्य से लेकर अद्यावधिपर्यन्त निरन्तर नवीन रचनायें हो रही है तथा प्रत्येक रचना के विषयक्षेत्र भी भिन्न–भिन्न है। अतः शोधार्थी को अपनी अभिरूचि और अध्यवसाय का ध्यान रखते हुए शोध–विषय का चयन करना चाहिए। यथा–वैदिक साहित्य के अन्तर्गत संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, वेदा और अनुक्रमणीग्रन्थ आते हैं। स्मृतियाँ (धर्मशास्त्र) भी अनेक हैं तथा उनमें विविध विषयों का प्रतिपादन भी किया गया है। पुराणों की स्थिति तो इससे भी भिन्न है। उसका अपना विशाल व्याकरण का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। दर्शनशास्त्र भी आस्तिक और नास्तिक भेद से अनेक शाखाओं में विभक्त है। ज्योतिष भी गणित और फालत के भेद से द्विधा विभक्त है। साहित्य में तो अनेक विधायें तथा लक्ष्य–लक्षण ग्रन्थ है। इस प्रकार संस्कृत एक वृहत्शोध का विषय है। इनकी शोध–दृष्टियाँ भी पृथक्–पृथक् है। इन मुद्रितग्रन्थों के अतिरिक्त हस्तलिखित व आर्थिक दुर्लभ पाण्डुलिपियों की भी बहुत बड़ी संख्या है, शोधार्थी इनमें से किसी भी क्षेत्र में अपनी रुचि के विशय का चयन कर सकता है, किन्तु उसे इस विशाल क्षेत्र को देखकर घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार से एक गोताखोर अपने कौशल और संसाधनों के बल पर अगाध समुद्र के मध्य से विविध रत्नों को निकाल लेता है ठीक उसी प्रकार एक निपुण शोधार्थी संस्कृत के इस विशाल समुद्र से अपना विषय–क्षेत्र चुन ही लेता है।

जब शोधार्थी अपने विषय का चयन करता है तो इसमें उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि भी सहायक होती है। यदि शोधार्थी किसी अशिक्षित परिवार का सदस्य है तो यह बिन्दु उसके लिए पास कि नहीं होगा, किन्तु वह पारम्परिक ज्ञान–सम्पन्न सांस्कारिक परिवार का सदस्य है, तो यह बिन्दु उसके लिए अवश्य विचारयोग्य है। यदि उसके परिवार की पृष्ठभूमि वेद, पुराण, ज्योतिष आयुर्वेद, संगीत, साहित्य, व्याकरणादि विशयों की है तो शोधार्थी के संस्कार में तत्तद् विषयों के बीज अवश्य विद्यमान होते है। जब यदि शोधार्थी की अभिरूचि अपनी पारिवारिक परम्परा में है तो वह उनमें से भी अपनी रूचि के विषय का चयन कर सकता है।

शोध–विषय के चयन में उसका विशेष अध्ययन भी भी प्रभावकारी होता है। प्रायः सभी विश्वविद्यालयों और उच्च शिक्षा–संस्थानों में स्नातकोत्तर की कक्षा में विद्यार्थी को स्वेच्छापूर्वक अपने विषयचयन (विशेष अध्ययन) की सुविधा प्राप्त होती है। इसके लिए पाठ्यक्रमों की वैकल्पिक व्यवस्था में से वह अपने मनोवाच्छित व्यवस्थाक्षेत्र में अध्ययन करता है। कहीं–कहीं यह सुविधा

स्नातकस्तर पर ही आनर्स के रूप में दे दी जाती है। वह वेद, व्याकरण, दर्शन, साहित्य, भाषा–विज्ञान, पालि–प्राकृत आदि में से किसी एक को अपना वैकल्पिक विषय चुनता है, तथा उसका विशेष अध्ययन करता है तथा उसके लिए विषयक्षेत्र से प्रवीणता के आधार पर शोध–विषय का चयन करना अत्युत्तम होगा।

शोध–विषय का चयन करने में शोधार्थी की सांस्कृतिक प्रतिभा भी अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। सांस्कृतिक प्रतिभासम्पन्न शोधार्थी किसी भी विषय के मूल में आसानी से प्रवेश कर सकता है। यदि उसका विशेष अध्ययन वेद वर्ग मे है तथा उसकी पारिवारिक या वैचारिक पृष्ठभूमि साहित्य, दर्शन में है तो वह इनमें से किसी को भी अपने शोध का विषय चुन सकता है तथा अपनी प्रतिभा के बल पर स्तरीय और उत्तम शोधकार्य भी सम्पन्न कर सकता है। इसके अतिरिक्त शोधार्थी की अध्यवसायक्षमता भी शोध–विषय के चयन का कारण बन सकती है, किन्तु यह एक अत्यन्त शोचनीय बिन्दु है, क्योंकि आजकल शोधार्थी अपनी बौद्धिक क्षमता के उन्नयन हेतु परिश्रम नहीं कर रहे है। उनके अन्दर ज्ञान–पिपासा का निरन्तर अभाव परिलक्षित होता है। वे येन–केन प्रकारेण शोधोपाधि प्राप्त कर लेने को ही अपना प्रमुख उद्देश्य बना लेते हैं तथा परिश्रम से दूर भागते हैं। उनमे अध्यवसाय का अभाव दृष्टिगोचर होता है। यदि शोधार्थी में अध्ययन व अध्यवसाय के प्रति समर्पण की भावना है तो यदि उन्हें शोध का विषय उनकी रूचि के विपरीत भी मिल गया हो तो भी वे अपना शोधकार्य सफलतापूर्वक कर सकते है। इसके लिए उन्हें अपना इरादा पक्का करना होगा। तथा

''प्रारम्भ चोत्तमजनाः न परित्यजन्ति'' की उक्ति को सफल करना होगा।

इस प्रकार शोधार्थी अपने शोध–विशय के चयन में अत्यन्त सावधानी बरतते हुए विवेकपूर्ण अभीश्ट शोध विशय चुन सकता है।

शोध–शीर्षक का निर्धारण

शोध–विषय के चयनोपरान्त शोध–शीर्षक के निर्धारण में कुछ आवश्यक बिन्दुओं पर आवश्य ध्यान देना चाहिए।

1. शोध–विषय की व्यापकता कहाँ से कहाँ तक है?
2. शोध–विषय किस महाविशय के अन्तर्गत है? तथा उसके भी अन्तर्गत कौन–कौन से उपविषय है?
3. शोध–शीर्षक भ्रामक, सन्दिग्ध, अतिव्यापक या सीर्ण कोटि का नहीं होना चाहिए।

इसके सन्दर्भ में प्रो0 राजेन्द्र मिश्र का कथन है कि मेरी दृष्टि में सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहा है उनकी ये दृष्टियाँ अधोलिखित हो सकती है–

क– एकल अथवा निरपेक्ष अध्ययन

ख– परिप्रेक्ष्यात्मक अध्ययन

ग– तुलनात्म्क अध्ययन

घ– समन्वयात्मक अध्ययन

ड़– समीक्षात्मक अध्ययन

एकल अथवा निरपेक्ष अध्ययन के अन्तर्गत किसी एक ग्रन्थ/ग्रन्थकार या विषय का अपनी ही सीमा के भीतर रहकर सरलतापूर्वक अध्ययन किया जाता है। जैसे 'महाकवि कालिदासप्रणीत अभिज्ञानशाकुन्तलम् का नाट्यशास्त्रीय विवेचन।' भदिृप्रणीत रावणवधः एक अध्ययन आदि। इसमें किसी अन्य ग्रन्थ से तुलना न करके केवल इसी ग्रन्थ की शोध–सामग्री का मूल्यान करना है।

परिप्रेक्ष्यात्मक अध्ययन में जब किसी ग्रन्थ या ग्रन्थकार का अध्ययन उसी विषय से जुड़े अत्यन्त प्राचीन तथा मानक–ग्रन्थ या ग्रन्थकार के परिप्रेक्ष्य में किया जाये। जैसे 'श्रीमद्भागवत महापुराण के परिप्रेक्ष्य में वामनावतरण महाकाव्य का एक समीक्षात्मक अध्ययन'। यहाँ–यह ध्यातन्य है कि बलि–वामन की कथा श्रीमद्भागवत के पचम् स्कन्ध में आयी है अब उसी पर आधारित एक अर्वाचीन महाकाव्य का अध्ययन किया जा रहा है, तो शोधार्थी का कर्तव्य है कि वह हानोपादान–पुरसर अनुसंधान सम्पन्न करे तथा प्राचीन और नवीन कथागत विभिन्नता का उल्लेख अवश्य करे। इससे दो प्रकार के लाभ होते हैं–

1. इसमें अर्वाचीनग्रन्थ के अनुसंधानात्मक अध्ययन हेतु एक ठोस आधार प्राप्त हो जाता है, क्योंकि एक ही इतिवृत्त पर दोनो ग्रन्थ आधारित है।
2. इसमें नवीन शोधकार्य प्रामाणिक व महत्त्वपूर्ण हो जाता है। तुलनात्मक अध्ययन में उन ग्रन्थों की तुलना में शोधकार्य किया जाता है जिनका मूल कथानक एक हो तथा उनकी रचना का उद्देश्य भी एक हो।

जैसे–'क्षेमेन्द्रप्रणीत चारुचर्या और गुनामीकृत उपदेशशतकम् का तुलनात्मक अध्ययन''

समन्वयात्मक अध्ययन में ऐसी कृतियों का समन्वित रूप से अध्ययन किया जाता है जो यथाकथचित् एकसूत्राबद्ध हो। जैसे–प्रो0 राजेन्द्र मिश्र प्रणीत सामाजिक/ऐतिहासिक/पौराणिक एकांकियों का समीक्षात्मक अध्ययन।

समीक्षात्मक अध्ययन में समस्त विशिष्टकोटिक अध्ययन समाहित हो जाते हैं यथा–तुलनात्मक, परिप्रेक्ष्यात्म्क, सांस्कृतिक, सामाजिक आदि।

इसके अतिरिक्त शोध–शीर्षक का निर्धारण करते समय अधोलिखित तथ्य ध्यातव्य है–

(क) शोध–शीर्षक अधिकलम्बा न होकर सूत्रवत् संक्षिप्त और सारगर्भित होना चाहिए।

कभी–कभी ऐसा देखा जाता है शोध–विषय इतना लम्बा हो जाता है कि शोध–प्रबन्ध का एक तिहाई आवरण उसी से भर जाता है। जैसे–'श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण का साहित्यिक, दार्शनिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक अध्ययन''। इस प्रकार का शीर्षक उपर्युक्त नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि इस शीर्शक के प्रत्येक पक्ष पर शोधकार्य किया जा सकता है, तथा इसमें पाँच शोध–शीर्षक बन सकते हैं, फिर भी यदि इसी शीर्षक पर कार्य करना अभिप्रेत हो तो इसे 'श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण का समग्र मूल्यान' भी किया जा सकता है तथा इस पर प्रत्येक दृष्टि से प्रकाश भी डाला जा सकता है।

(ख) शोधशीर्षक का निर्धारण करते समय हमें विषय की व्यापकता पर भी ध्यान केन्द्रित करना चाहिए तथा यह भी देखना चाहिए कि हम जिस शीर्षक का निर्धारण कर रहे है उसकी विषय के सापेक्ष उपयुक्तता है अथवा नही?कहीं हमारा शीर्षक विषय से असम्बद्ध या एकदेशीय तो नहीं है।

(ग) शोध शीर्षक भ्रामक या सन्दिग्ध नही होने चाहिए, क्योंकि एक ही नाम के ग्रन्थ व ग्रन्थकर्ता दो या दो से अधिक भी हो सकते है।

अतः शोधशीर्षक में ग्रन्थ के कर्ता का नाम अवश्य होना चाहिए। जैसे 'राजतरणिी का ऐतिहासिक अनुशीलन' यह शीर्षक भ्रामक या सन्देहास्पद है, क्योंकि इस नाम के दो ग्रन्थ है तथा उसके रचनाकार कल्हण और जोनराज भी हैं अतः शीर्षक को स्पष्ट करने के लिए वहाँ 'कल्हणप्रतीत' अथवा 'जोनराप्रणीत' अवश्य लिखना चाहिए। इसके अतिरिक्त यदि कोई ग्रन्थ एकमात्रनाम वाला है तो उसके कर्ता का नाम न लिखने पर भी स्पश्टता बनी रहेगी। जैसे–रामायण, महाभारत, अष्टाध्यायी, रघुवंशम् आदि।

(घ) शोधशीर्षक ऐसा होना चाहिए कि उसमें अतिव्याप्ति या अव्याप्ति न हो। जैसे– 'भरतमुनि–प्रणीत नाट्यशास्त्र का अनुशीलन' इस शीर्षक में अतिव्याप्ति दोष है क्योंकि यह एक ऐसा विषय है जिस पर पी0एच0डी0 ही नही डी0लिट् के भी अनेक शोध–प्रबन्ध लिखे जा सकते है तथा इसमें विषय की इतनी व्यापकता है कि कई वर्षों में भी शोधकार्य शायद ही पूर्ण हो सके। इसी प्रकार कभी–कभी शीर्षक में अव्याप्ति भी हो जाती है जैसे–कादम्बरी का नाट्यशास्त्रीय अध्ययन'। इसी तरह अतिसंकीर्ण शोधशीर्षक भी होते है।

जैसे–मेघदूत में रस–परिपाक। ऐसा शीर्षक तो शोधपत्र हेतु ही उपयुक्त होता है।

(ड़) शोध–विषय व शोधशीर्षक का चयन करते समय विषय पर उपलब्ध शोध–सामग्री पर भी ध्यान देना आवश्यक है अन्यथा शोधकार्य के पूर्ण होन में सन्देह ही बना रहेगा। कभी–कभी असावधानीवश ऐसे शीर्षक, शोधसमिति या शोध–निर्देशक द्वारा शोधार्थी को प्रदान कर दिए जाते है। जिस पर शोधसामग्री ही उपलब्ध नहीं हो पाती तो शोधार्थी को ऐसा विशय अवश्य परिवर्तित करने का निवेदन करना चाहिए।

(च) शोधशीर्षक परिमित शब्दों वाला तथा आकर्षक होना चाहिए। उसमें यथासम्भव परिनिष्ठित तथा सुन्दर शब्दावली का प्रयोग किया जाना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते है कि शोध–विषय का चयन करने तथा शोध–शीर्षक का निर्धारण करने में शोधार्थी, शोध–निर्देशक और शोध–समिति की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसमें शोधार्थी विषय का प्रस्तावक होता है तथा शेष दोनों उसके समीक्षक तथा अनुमोदक होते है। इस सन्दर्भ में शोध–निर्देशक की भूमिका प्रारम्भ से अन्त तक हुआ करती है।

डॉ0 दिनेशमणि त्रिपाठी
प्रधानाचार्य
एल0 पी0 के0 इण्टर कॉलेज,
बसडीला सरदारनगर,
गोरखपुर (उ0 प्र0)

डॉ0 दानपति तिवारी
अध्यक्ष (संस्कृत विभाग)
साकेत पी0जी0 कॉलेज,
अयोध्या (उ0 प्र0)

13

भारतीय संगीत के अवनद्व बाद्यों को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं उनका महत्त्व

डॉ0 वन्दना जोशी, पूनम आर्या

सारांश

भारतीय संगीत में अवनद्ध वाद्यो का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन काल से होता आ रहा है। गायन के साथ –साथ वाद्य संगीत का भी विकास बहुत लोकप्रिय हो गया है। स्वाति मुनि के द्वारा अवनद्ववाद्यों की उत्पत्ति सम्भावित मानी गयी है। अवनद्ववाद्यों के विकास क्रम में दो प्रकार से विचार किया गया है। प्रथम इनकी ''बनावट'' की सामग्री के दृष्टिकोण द्वारा। और द्वितीय उनकी ''ग्रॅूज'' के दृष्टिकोण द्वारा। अवनद्ववाद्यों की श्रेणी में पुष्कर, मृदंग, ढोलक, ,डमरू,तबला, पखावज विभिन्न प्रकार के ड्रम ,दुंदुभि, पटह, हुडुक्का, घडस ,ढबस, भेरी, डफ, ढोल, मादल, खंजरी आदि वाद्य आते है। भरत के नाट्यशास्त्र में मृदंग का वर्णन करते हुए बताया गया है। कि जानवरों की खाल को साफ कर ,उसे कमाकर उन्हें ताल वाद्यों के मुख पर चढ़ा कर फिर कसने की व्यवस्था करके वाद्यों में स्वरोत्पत्ति होने लगी। प्राचीन काल से ही अवनद्ववाद्यों को स्वर में मिलाकर वादन करने की प्रथा भी प्रचलित थी। महर्षि भरत ने मृदंग के मुखों को नियमानुसार स्वर में मिलाने की प्रक्रिया को ''मार्जना'' कहा।

प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से हम भारतीय संगीत के अवनद्ववाद्यों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एंव उनका महत्व के बारे में वैदिक काल से आधुनिक काल तक प्रस्तुत कर रहें है। अवनद्ववाद्यों में तबला का सर्वाधिक प्रचार एंव प्रसार है। मृदंग के अलावा प्रायः सभी अवनद्ववाद्यों में तबला के बोल ही बजाये जाते है। तबला का साहित्य अन्य अवनद्व वाद्यों के साहित्य से विशाल है। प्रारम्भ से ही गायनादि के संगत में ताल देने के लिए ताल–वाद्यों की आवश्यकता पडती थी। अतः हमारे ताल– वाद्यों का आविश्कार व विकास गायन की शैलियों के समानान्तर ही हुआ है।

भारतीय संगीत के अवनद्ववाद्यों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एंव उनका महत्व

भूमिका

वैदिक युग भारतीय सांस्कृतिक के इतिहास में प्राचीनतम युग माना गया है। वैदिक युग से तात्पर्य ''वेदों'' से है ''वेदों'' को विश्व का आधार माना जाता है, वैदिक साहित्य में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद है,वेदों मे सामवेद मे संगीत परिलक्षित हाता है,[1] वैदिक काल मे वाद्यों का चतुर्विध विकास हो गया था, इस काल में अवनद्ध वाद्यों को चर्म – वाद्य कहा जाता था। चर्म वाद्यों का निर्माण यज्ञ के समय भमि खोदकर फिर उसके ऊपर बैल के चमड़े को मढ़कर किया जाता था तथा बैल की पूछॅ से प्रहार किया जात था, सामगान के समय भूमि – दुन्दुभी नामक चर्म – वाद्यो पर ताल की संगति की जाती थी[2]। प्राचीन काल में अवनद्ध वाद्यों का वितत कहा जात था ''संगीत रत्नाकर'' में अवनद्ध वाद्य – परह, मर्दल, हुड़दका,ढक्का, खट, ढवसा, डमरू,त्रिवली, दुन्दभी,भेरी आदि की गणना की गयी है, ''संगीत पारिजात'' में अवनद्ध वाद्य मृदंग, दुन्दुभि, भेरी, डमरू, परह, चक्रवाद्य, एवं हुडुक्का आदि वाद्यों को स्वीकार किया गया है।[3]

मध्यकाल का प्रारम्भ चौदवहीं शताब्धी से अट्ठारहवीं शताब्दी तक माना गया है, इस काल को संगीत का स्वर्णिम काल कहा जाता हैं। मध्यकाल में संगीत की दो धाराएं उत्तर भारतीय तथा दक्षिण भारतीय प्रचार में आयीं, उत्तर भारतीय को हिन्दुस्तानी संगीत तथा दक्षिण भारतीय को कर्नाटक संगीत कहा गया।[4] इस काल में भारतीय संगीत में परिवर्तन प्रारंभ होने लगे। कई नवीन रागों तथा वाद्य एवंम तालों की रचना की गई,तालों में –सवारी, फरोदस्त, पश्तो, सूलताल, झूमरा एवंम् आड़ाचारताल प्रचार में लायी गयी। कई महत्वपूर्ण ग्रंथो की रचना की गई जिनमें संगीत से सम्बन्धित पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।[5]

संगीत के इतिहास में उन्नीसवी शताब्दी से आज तक का समय आधुनिक काल कहा जात है, शास्त्रीय संगीत की दो विधाएँ ध्रुवपद तथा ख्याल गायन के साथ– साथ ठुमरी, टप्पा ,तराना ,तिरवट, होरी, कजरी, चैती, आदि का गान प्रचलित हुआ, इन सभी विधाओं के लिए संगति के अनुरूप स्वर वाद्य एंवम् अवनद्ध वाद्यों का निर्माण किया गया, उत्तर भारत के संगीत वाद्यों में ''तबले का'' स्थान अवनद्ध वाद्यों में प्रमुख है। उत्तर भारत में वर्तमान समय में मृदंग, ढोलक, नगाडा, खोल, खंजरी,डफ, तबला ,नाल आदि वाद्य प्रचलित है।[6]

शोध प्रविधि– वर्णात्मक

भारतीय संगीत का जन्म वैदिक युग में हुआ। ऋचाओं के ही संगीतमय वातावरण से साम–गान का प्रथम विकास ऋषिओं द्वारा किया गया।ऋषियों के तपोवनों से उसी समय साम–गान के स्वर सुनायी देने लगे थे, ''ऋगवेद'' के मंत्रों में साम–गान का संबध एंव उनके अध्यात्म और अधिभूत अर्थो का विवेचन वैदिक साहित्य में है।

वह भारतीय संगीत के इतिहास की सामग्री है।

साम संगीत से ही भारतीय संगीत का विकास कहा जाता है। और ''गांधर्व वेद'' को सामवेद का ही उपवेद माना गया है। भारतीय संगीत के विकास में वैदिक साम–गान को प्रथम युग माना जाता है। वही द्वितीय युग ''गांधर्व'' उपवेद के विकास को कहना चाहिए। ''गांधर्व वेद'' छत्तीस हजार श्लोकों में था।[7]

अवनद्ध वाद्यों का वादन विभिन्न उत्सवों के अवसरों पर, विपत्ति की आशंका तथा शत्रु को भयभीत करने के लिए किया जाता था, वैदिक युग में ''भूमि दुन्दुभि '' के अतिरिक्त ''दुदुभि'' अवनद्व वाद्य एक महत्पूर्ण वाद्य था, शिव द्वारा भी ''अवनद्व'' वाद्य का आविष्कार ''डमरू'' को माना गया है, '' मृदंग'' नामक प्राचीन अवनद्ववाद्य के आविश्कारक पौराणिक मान्यताओं के अनुसार शिव द्वारा की गयी है।[8]

पूर्वकाल में आदिम जातियॉ अपने मनोरंजन के लिए गाना, बजाना और नाचना ये प्रमुख साधन थे, किन्तु सभ्य समाज में वाद्यों का प्रयोग मुख्य रूप से होने लगा और वाद्यों को चार वर्गो में भी बांटा गया चर्म, सुशिर, तंतु, घन, वाद्य। नवीन वाद्यों का जन्म एंव समय–समय पर इनका विकास होता रहा है।[9]

भारतीय अवनद्ववाद्यों में प्राचीन काल से अब तक निम्नलिखित वाद्य पाये जाते है–

1. डमरू 2. भुदुंदुभी 3. मृदंग 4. पुष्कर 5. पण्व 6. दुर्दुर 7. मुरज 8. आलिग्य 9. ऊर्ध्ववक 10. अंकिका 11. पटह 12. हुडुक्का 13. करटा 14. घट 15. घडस 16. ढवस 17. टक्का 18. कुडुक्का 19. कुडुवा 20. डमरूक्का 21. डक्का 22. दिण्डिया या तबुल 23. तबला 24. पखावज 25. ढोलक 26. खंजरी 27. नक्कारा

(1) डमरू – डमरू एक प्राचीन वाद्य है जिसके दोनों मुख बराबर होते है तथा दोनो मुख खाल से मढ़े रहते है, बीच में पतला भाग होता है,[10] संगीत रत्नाकार मे इस वाद्य का विस्तृत विवरण मिलता है, इसके अनुसार मध्य भाग में डमरू में सूत की दो डोरियॉ लटकी हुई बांध दी जाती है जिनके सिरों पर माटी या मोम की घुडिया लगाई जाती है, डमरू को हिलाकर इन्हीं घुडियों के टकार से डमरू का वादन होता है।[11]

(2) भूदुंदुभी – गणेश जी ने वृन्तासुर को मारकर जमीन में एक गहरा तथा बड़ा मुॅह का गड्ढा खोदा तथा उस पर वृत्तासुर की खाल से मढ़ कर बजाया गया , इसी को भूदुदुभी कहते है।[12]

(3) मृदंग – प्रीचन युग के अवनद्ध अंग वाद्यों में ''मृदंग'' सर्वाधिक महत्वपूर्ण वाद्य था और उसी को ''पौश्कर'' 'पुष्करत्रय' या 'त्रिपुष्कर' भी कहा जात था, मिट्टी के ढॉचे का बना होने से उसे 'मृदंग' और मुलायम मिट्टी से निर्मित होने के कारण 'मुरज' भी कहते है

(4) पुष्कर – पुष्कर वाद्यों की उत्पत्ति के विशय में एक कथा प्रचलित है, कि स्वाति मुनि को तालाब मे ऊर्ध्वमुखी रूप में फैले हुए कमल के पत्तो पर जल की बूॅदे गिरने की ध्वनि से पुश्कर वाद्यों का अविश्कार हुआ और उन्होने ऊर्ध्वमुखी दुंदुभि के आधार पर ही त्रिपुश्कर वाद्यों का निर्माण किया।[13]

(5)पणव – महर्शि भरत ने मृदंग के साथ–साथ पणव तथा दुर्दुद को भी स्वाति मुनि के द्वारा विश्वकर्मा की सहायता से बनाया गया है, पणव के दोनो मुख कोमल चमड़े से मढे जाते थे,

(6) दर्दुर – महर्षि भरत ने दर्दुर को अवनद्ववाद्यों में अंग वाद्य मानकर इसे पर्याप्त महत्ता प्रदान की है, इसका आकार घट के समान होता था

(7) मुरज–रांमायण में अवनद्ववाद्यों में मुरज का उल्लेख किया गया है। शारंग देव ने मुरज को मृदंग का पर्याय माना है। मुरज मुलायम मिट्टी से बनाया गया तथा पीटकर बजायी जाने के कारण इसे आतोद्य कहते थे।[14]

(8) पटह – आबनूस की लकड़ी से बनाया जाता था। इसकी लम्बाई 21/2 हाथ और मध्य मे घेरा 60 अंगुला था, दाहिने और लोहे का पट्टा और बायी ओर लताओं का पट्टा लगा होता था, उसमें चार अंगुल दूर पर लोहे निर्मित तीसरा पट्टा लगा होता था, दोनो मुख पर चमड़ा मढ़ा होता था, स्कन्द को पटह का देवता माना जाता था।[15]

(9) हुडुक्का – हुडुक्का करीब एक हाथ लम्बी होती है, 28 अंगुल का घेरा होता है,इसके दो मुख होते है, दोनो मुखो का व्यास 6 अंगुल होता है, दोनो मुखों पर चमड़े से बनी हुई, मण्डली बांधी जाती थी सप्त माता को हुडक्का की देवी माना जाता है, इसके नाम हैं – ब्राह्मी, माहेश्वरी , कौमारी, वैश्णवी, बाराही, इन्द्रणी और चौमुण्डा।[15]

(10) करटा – करटा की लम्बाई 21 अंगुल और घेरा 40 अंगुल है, इसके मुख का व्यास 14 या 12 अंगुल है, दोनो मुखों में चमड़े से मढी हुई लोह–मण्डली है, दोनो मण्डलियॉ चमड़े से मढी जाती है 'कुडुप' नामक कोण से इसका वादन करते है, इस से निकलने वाले बोल 'करट' और 'तिरिकिरि' है, करटा का देवता 'चर्चिका' (देवी का एक रूप) है।[16]

(11) घट – प्राचीन काल में घट का उल्लेख मिलता है, नाट्यशास्त्र में घट वाद्य को दर्दर वाद्य के समान कहा गया है, चमड़े से मढे–जाने वाले वाद्य का विकास त्रिमुखी एवं पंचमुखी घटों के रूप में हुआ, मुख पर चमड़ा कसकर बॉध दिया जाता है, इसका वादन दोनो हाथों से किया जाता है।

(12) घडस – लोक प्रचलित शब्दावली में घडस को डिमडिमा कहते है, इसमें दो तबले होते है, इसके पेदे में एक एक छेद होता है, दाहिने हाथ के तबले को चमड़ी की महीन झिल्ली से मढ़ा जाता है और बॉय

हाथ के तबले को कुछ मोटे चमड़े से ढीला मढते है, घडस का अधिक महत्व ना होने के कारण यह समाप्त हो गया है।[17]

(13) ढवस – विजयसार के काठ से ढवस बनाया जाता है, इसकी लम्बाई एक हाथ तथा परिधि 39 अंगुल की होती है, इसके दोनो मुख बराबर होते है व दोनो मुखों पर चमड़े को लपेटा जाता है, इसमे ढं ढं पाटाक्षर होते है, ।

(14) ढक्का– ढवस की रचना जिस प्रकार होती है,ढक्का की रचना भी उसी प्रकार की होती है,ढक्का के दोनो मुख 13–13 अंगुल के होते है, इसको बाई बगल में दबाकर दाहिने हाथ से डण्डी द्वारा बजाया जाता है, इसको धौंसा भी कहते है, इसमे ढे, ढे हें, के पाठाक्षर होते है।

(15) कुडुक्का – कुडुक्का को हुडुक्का के समान ही माना जाता है, इसका वादन कर के कोणों से होता है, ''संगीत –सुधा'' ''वाद्य प्रकाश'' आदि ग्रन्थों में कुडुक्का का नामोल्लेख मिलता है इसके देवता क्षेत्रपाल माने जाते है।

(16) कुडुवा – विजयसार की लकडी द्वारा 21 अंगुल लम्बा होता है इसमें 7–7 अंगुल चौडे दो मुख होते है, दोनो मुख पर बेल के दो कड़े चढे होते है इन्हे चमडे से मढ़ा जाता है, दोनो कड़ो में 7–7 छेद होते है,जिसमें बद्धी डालकर कसकर बॉध दिया जाता है, दोनो मुखों को डंके से बजाया जाता है।[18]

(17) डमरूका – इसकी लम्बाई एक वित्ता है, मुख का व्यास 8 अंगुल तथा मुखों को मण्डली से बांधा जाता है, मण्डली को चमड़े से मढा जाता है, इसके पटाक्षर ''डग'' है,

(18) डक्का – इसकी लम्बाई एक वित्त होती है, मुख का व्यास 8 अंगुल होता है पिण्ड का घनत्व आधा अंगुल होता है, दोनो मुखों मे दो–दो तन्त्रियों होती है, तन्त्रियों को बॉधने के लिये दोनो मुखों पर ताम्र की दो–दो खूटियॉ होती है यह हुडुक्का के समान ही होता है,

(19) दिण्डिया या तबुल – इसकी लम्बाई एक या सवा हाथ के बराबर होती है, यह वाद्य नाग स्वर की भांति है, दोनो मुखों का व्यास पौने हाथ गुना होता है, दोनो मुखों मे चमड़ा मढ़ा होता है, इसमें पटाक्षर डिं,डिं मुख्य है।[19]

(20) तबला – प्राचीन काल में तबला से मिलता जुलता एक वाद्य था जिसे ऊर्ध्वक कहते थे। वर्तमान तबले से इसकी समानता होते हुए यह सिद्ध नही होता कि इसका निर्माण काष्ठ से हुआ था या मृदा से इस वाद्य के उपलब्ध चित्र में तबले की आकृति होने पर भी उसमें लकडी के गट्टे नही है। प्राचीन काल में ऊर्ध्वक का निर्माण मिट्टी के प्रयोग द्वारा हुआ। कि यह वृहत 'टेम्बुरिन' गोलाकार चर्माच्छादित वाद्य था।[19]

(21) पखावज– भारतीय संगीत का आदि ताल वाद्य पखावज को माना जाता है। रामायण तथा महाभारत काल में परवावज (मृंदग) प्रचलित था। मृदंग वैदिग काल से ही प्रचलित हो गया था। भरत मुनि ने मुरज को ही मृदंग कहा है। इससे पूर्व इसे ''त्रिपुश्कर'' वाद्य के नाम से प्रचलन था। पखावज का प्रचलन राजा मानसिंह तोमर के समय में ध्रुपद गायन शैली के साथ हुआ।

(22) ढोलक– यह वाद्य लोक एंव फिल्म संगीत का वाद्य है। इसकी दायी पुड़ी पर स्याही नही लगायी जाती बल्कि डोरी से खींचकर स्वर चढ़ाया एंव उतारा जाता है। इसकी बायीं पुड़ी में अन्दर की ओर से अरंडी के बीज पीसकर लगा दिये जाते है। जिससे बायी पुड़ी गंभीरतापूर्वक ध्वनि करती है।[20]

(23) खंजरी– खंजरी डफली के समान ही एक वाद्य है। डफली के घेरे में तीन या चार जोड़ी झॉझ लगायी जाती है। जिससे वह खंजरी कहलाती है। इसका वादन 'चंग' की तरह हाथ की थाप से किया जाता है।

(24) नक्कारा – नक्कारे को नगाड़ा भी कहा जाता है। प्याली नुमा मिट्टी या लकड़ी की कुण्डी को चमड़े से मढकर 'नगाड़ा ' बनता है। इसे दो नुकीली लकडियों से बजाया जाता है। लोक गीतों में ,नौटंकी के तमाशे में, इसका वादन किया जाता है। ताल–लय के विविध रूप इससे प्रस्तुत किये जाते है। ''ढोल'' और ''नक्कारा''के सम्मिलित वादन को ''नौबत'' कहते है।[21]

(25) आलिंग्य – यह वाद्य मिट्टी का बना होता था तथा बीच में खाली होता था। इसकी ऊॅचाई तीन इंच तथा मुख का व्यास आठ अंगुल होता था। इसके ऊपर चमड़े की पूड़ी लगायी जाती थी। जिसे डोरी या बद्दी से कस दिया जाता था। स्वर 'मार्जना' में इसे खर्ज स्वर में मिलाया जाता था।

(26) ऊर्ध्वक – यह वाद्य एकमुखी था जिसका वादन खड़े करके किया जाता था। इसकी ऊॅचाई चार इंच तथा मुख का व्यास चौदह अंगुल होता था। यह मिट्टी का बना होता था। ऊर्ध्वक के मुख को चमड़े की पूड़ी की डोरी से कस दिया जाता था। इसे पंचम स्वर में मिलाया जाता था।

(27) आंकिक– भरत के समय में इस वाद्य को मृत्तिका से बनाया जाता था। यह दो मुखी वाद्य अंदर से पोला होता था। दोनो मुख बाहर अंगुल के होते थे। दोनो मुखों पर चमड़ा मढ़ा होता था। पूड़े के किनारे में छेद करके दोनो मुखों के पूड़ी की ढॉचे पर रखकर बद्धियों द्वारा कस दिया जाता था, आंकिक को मृदंग भी कहा गया था।[22]

निष्कर्ष – आदिकाल से भारतीय संगीत में वाद्यों का प्रयोग होता रहा है,और संगीत में इनका विशिष्ट स्थान रहा है, प्राचीन काल में अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग संगीत में मुख्यतः उपरंजन के लिए किया

जाता था, उस समय किसी अन्य ताल–धारक द्वारा करताल या किसी घन वाद्य पर ताल दिखलाया जाता था। वाद्यों के ऐतिहासिक विकास पर दृष्टि डाले तो यह स्पष्ट होता है कि प्रारम्भिक वाद्यों के उपकरण अत्यन्त स्वाभाविक प्रकृति प्रदत्त रहे है, जैसे –जैसे सभ्यता का विकास होता गया पाषाण की अपेक्षा धातु का प्रयोग तथा अन्य उपकरण का अविष्कार प्रकृति प्रदत्त के आधार पर मानव ने किया वाद्य यंत्रों का निर्माण के उपकरण भी परिवर्तित हुए, इस तरह अवनद्ध वाद्यों के निर्माण में कुछ पदार्थ ज्यों के त्यों प्रयुक्त होते रहे और कुछ परिवर्तित रूप धारण कर प्रयुक्त हुए, अवनद्ध वाद्यों के निर्माण पदार्थ के अंतर्गत मूल ढाँचे से लेकर चमड़ा,बद्धी, मुख, विलेपन, गिट्टक, रिंग्स इत्यादि पदार्थो के योग से अवनद्ध वाद्य व्यवहार में आते है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भार्गव अंजना डॉ0, भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन, प्रथम संस्करण –2002 कनष्किा पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली , पृष्ट संख्या – 11
2. मिश्र लालमणि डॉ0, भारतीय संगीत वाद्य, प्रथम संस्करण –1973, भारतीय ज्ञानपीठ नयी दिल्ली पृष्ठ संख्या –56
3. शर्मा स्वतन्त्र प्रो0,पाश्चात्य स्वरलिपि–पद्धति एवं भारतीय संगीत, प्रथम संस्करण – 2012 अनुभव पब्लिाशिंग हाउस ,पष्ठ संख्या –140–141
4. 'बम्बम' शर्मा प्रसाद महेन्द्र डॉ0, अवनद्ध वाद्य सिद्वांत एवं वादन परम्पर ,प्रथम संस्करण – 2008, अभिशेक पब्लिकेशन्स चण्डीगढ़, पृष्ठ संख्या – 69
5. शर्मा वीना श्रीमती, हिन्दुस्तानी संगीत में तत्र वादकों का योगदान, प्रथम संस्करण – कनिश्ष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 17
6. 'बम्बम' शर्मा प्रसाद महेन्द्र डॉ0, अवनद्ववाद्य सिद्वांत एवं वादन परम्परा, प्रथम संस्करण–2008, अभिशेक पब्लिेशन्स चण्डीगढ़, पृष्ठ संख्या–70
7. गर्ग लक्ष्मीनारयण डॉ0, निबन्ध संगीत, प्रथम संस्करण –2012, संगीत कार्यालय,हाथरस उ0प्र0 पृष्ठ संख्या –183–184
8. शुक्ल योगमाया (श्रीमती) डॉ0, तबले का उद्गम, विकास और वादन शौलियॉ, प्रथम संस्करण –1987, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्याालय, दिल्ली पृष्ठ संख्या – 28,29
9. जौहरी सीमा, संगीतायन, प्रथम संस्करण –2003, राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 2,34
10. शुक्ल आ0 टी0 डा0, ताल तरंग भाग–3 प्रथम संस्करण –1987, प्रकाश बुक डिपों ,बरेली पृष्ठ संख्या –08
11. 'बम्बम' शर्मा प्रसाद महेन्द्र डा0, अवनद्ववाद्य सिद्धांत एवं वादन परम्परा, प्रथम संस्करण –2008, अभिशेक पब्लिकेशन्स चण्डीगढ़, पृष्ठ संख्या –27
12. शुक्ल आर0 टी0 डा0, ताल तरंग भाग–3 प्रथम संस्करण –1987, प्रकाश बुक डिपों ,बरेली पृष्ठ संख्या –08
13. शुक्ल योगमाया (श्रमती) डा0, तबले का उद्गम विकास और वादन शैलियॉ, प्रथम संस्करण –1987, हिदीं माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविधालय,दिल्ली पृष्ठ संख्या –85,90
14. मिश्र लालमणि डा0, भारतीय संगीत वाद्य ,प्रथम संस्करण –1973 भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 171,164,188
15. शास्त्री वासुदेव के0, संगीत शास्त्र प्रथम संस्करण –1968, हिन्दी समिति सूचना विभाग उत्तर प्रदेश ,पृश्ठ संख्या – 279
16. शुक्ल आर0 टी0 डा0, ताल तरंग भाग–3 प्रथम संस्करण –1987, प्रकाश बुक डिपों ,बरेली पृष्ठ संख्या – 09
17. शास्त्री वासुदेव के0, संगीत शास्त्र प्रथम संस्करण –1968, हिन्दी समिति सूचना विभाग उत्तर प्रदेश ,पृष्ठ संख्या – 280
18. 'बम्बम' शर्मा प्रसाद महेन्द्र डा0, अवनद्ववाद्य सिद्धांत एवं वादन परम्परा, प्रथम संस्करण –2008, अभिशेक पब्लिकेशन्स चण्डीगढ़, पृष्ठ संख्या – 25,26
19. मिश्र लालमणि डा0, भारतीय संगीत वाद्य ,प्रथम संस्करण –1973 भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 157,152,149
20. शुक्ल आर0 टी0 डा0, ताल तरंग भाग–3 प्रथम संस्करण –1987, प्रकाश बुक डिपों ,बरेली पृष्ठ संख्या – 10
21. सेन कुमार अरूण डॉ0, भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन,प्रथम संस्करण –1973 मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,पृष्ठ संख्या – 144
22. मनकान सिह गुरमीत डॉ0, उत्तर भारतीय संगीत (उत्तर भारतीय संगीत के विकास का क्रमिक अध्ययन) प्रथम संस्करण –2006, महामाय पब्लिाशिंग हाऊस नई दिल्ली,पृष्ठ संख्या – 202,210
23. बसंतक, संगीत विशारद, प्रथम संस्करण –2010, संगीत कार्यालय, हाथरस उ0प्र0 पृष्ठ संख्या – 581
24. बम्बम' शर्मा प्रसाद महेन्द्र डा0, अवनद्ववाद्य सिद्धांत एवं वादन परम्परा, प्रथम संस्करण –2008, अभिशेक पब्लिकेशन्स चण्डीगढ़, पृष्ठ संख्या – 20,21

डॉ0 वन्दना जोशी
सहायक प्राध्यापक
संगीत विभाग
एस0एस0जे0परिसर अल्मोडा
उत्तराखण्ड
अल्मोड़ा

शोध छात्रा – पूनम आर्या
c/o – श्री नाथू राम
रतन कॉटेज कंपाउंड
तल्लीताल नैनीताल(उत्तराखण्ड)
पिन कोड : 263001
मो0न0: 7078576999

14

'' भारतीय शास्त्रीय संगीत में तबले के प्रमुख घरानें : एक अध्ययन

डॉ0 गोविन्द सिंह बोरा

सारांश

संगीत मानव जीवन में ईश्वरीय वरदान हैं, जो नाद युक्त तरंगों का एक विशाल सागर है , इस विशाल सागर का मूल स्रोत वेदों को माना जाता है, जो लगभग 3000 वर्ष पूर्व रचे गये, सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में संगीत को आर्यों के आमोद–प्रमोद का मुख्य साधन बताया गया है, इसके साथ ही संगीत को ईश्वर प्राप्ति का एक सुगम मार्ग बताया गया है। वर्तमान में भारतीय शास्त्रीय संगीत जगत में तबला सर्वाधिक प्रचलित एवं लोकप्रिय वाद्य माना गया है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में तबला वादन को प्रतिष्ठित करने तथा लोकप्रियता को बढ़ाने के लिए तबला वादकों ने घरानों का निर्माण किया। इस प्रकार वर्तमान में भारतीय संगीत में तबले के 6 घराने अस्तित्वान हुये।

आज किसी भी प्रकार का गायन, वाद्य तथा नृत्य तबले पर आश्रित बन चुका है। विडंम्बना यह है कि सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं उच्च कोटि के अंतर्गत आने के बाद भी तबले की उत्पत्ति के विषय में कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इसकी उत्पत्ति के विषय में विद्वानों के अनेक मत मिलते हैं। डॉ0 लालमणि मिश्र के अनुसार –''प्राचीन ग्रन्थों में कहीं भी तबला नामक वाद्य का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। यहाँ तक कि 'संगीत परिजात' और 'वाद्य प्रकाश' जैसे उत्तर मध्यकालीन ग्रन्थों में भी तबले का उल्लेख नहीं हुआ है। तबले के संदर्भ में इस अन्धकारमय स्थिति का लाभ उठाकर मुसलमान वादकों ने तबले का जन्मदाता भी अमीर खुसरों को बना दिया। अतएव जब तक इस वाद्य की उत्पत्ति तथा विकास का कोई सूत्रपात न हो, तब तक अमीर खुसरों ही इसके जन्मदाता ठहरते हैं, किंतु जैसा कि सितार के विकास के संदर्भ में कहा गया है कि अमीर खुसरो के किसी अन्तः साक्ष्य तथा वाह्य साक्ष्य से यह पता नहीं चलता उन्होंने सितार अथवा तबले का आविष्कार किया। कोई विद्वान इस बात पर विश्वास नहीं कर सकता कि 'तबला' अमीर खुसरो की ईजाद है।''[1]प्राचीनकाल में ध्रुवपद एवं धमार जैसी गम्भीर गायकियों का प्रचलन था जिसमें संगत के लिए मृदंग जैसे गम्भीर वादय यंत्रों का प्रयोग किया जाता था। उत्तर भारत में 14वीं शताब्दी में ख्यबाल गायन शैली का प्रारम्भ हो गया था। ख्याल एवं ठुमरी जैसी मधुर और श्रृंगारिक गायन शैली के लिए उपयुक्त वादय नही था। अतः किसी अन्य वादय की आश्यकता होने लगी, यही आवश्यकता ने तबले को जन्म दिया और उसका विकास हुआ। संगीत में घराना शब्द की उत्पत्ति ''घर'' से हुई है। यह शब्द 'गुरू', परम्परा, शैली विशेष, उस्ताद की वंश एवं शिष्य आदि के आधार पर प्रकाश में आया तथा धीरे–धीरे इतना विकसित हो गया कि संगीत जगत की सभी विधाओं पर अध्ययन का विषय बन गया है।

पं0 सुधीर कुमार सक्सेना जी के अनुसार – ''घराने की दस्तक 13वीं शताब्दी में पहली बार सुनाई पड़ी। घराना सम्बन्धी संगीत जीवी लोगों का आपस में घनिष्ठ रिश्ता जैसे खून का रिश्ता होता है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी चल रहा हैं, उसमें वे अपने परिवार के लोगों को ही सिखाते हैं और अपने शिष्यों के साथ अपने परिवार के बच्चों के साथ शादी–विवाह कर पारिवारिक रिश्ता बना देते हैं जिस कारण बाहरी लोगों को सीखना बहुत मुश्किल होता था। कुछ विद्वान गुरू शिष्यों को जब ही सिखाते थे जब वह उनकी कुछ विशेष बातें जो वो कहते थे उस शर्त को पूरा करते थे, तभी वह सीख पाते थे। वे अपने गुरू के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित होते थे। ध्यान देने वाली बात यह है कि सभी घरानों का अपना–अपना महत्व होता है । उनकी खुद की अलग–अलग बजाने की शैली होती है। जिन लोगों ने घराने का जन्म दिया है, वह भले ही ज्यादा पढ़े–लिखे नहीं थे, लेकिन वह अपनी विद्या के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित थे।''[2]

भारतीय शास्त्रीय संगीत में तबला वादन को प्रतिष्ठित करने तथा लोकप्रियता को बढ़ाने के लिए तबला वादकों ने घरानों का निर्माण किया और इस प्रकार वर्तमान में भारतीय संगीत में तबले के 6 घराने अस्तित्वान हुये।

1. दिल्ली घराना
2. अजराड़ा घराना
3. लखनऊ घराना
4. बनारस घराना
5. फर्रूखाबाद घराना
6. पंजाब घराना

तबले के ये घरानें किसी व्यक्ति विशेष के नाम से नहीं बल्कि मूलतः क्षेत्र विकास के नाम से जाना जाता है।

सभी घरानों के तबला वादन में पेशकार, कायदा, रेला, टुकड़ा, गत आदि बजाया जाता है किन्तु प्रत्येक घरानें के वादकों के प्रस्तुतिकरण में लय, बोलों के विकास में अन्तर होता है।

वादन शैली के आधार पर इन 6 घरानों को 2 बाजों के अन्तर्गत रखा गया।

1. पश्चिम बाज :– इसके अन्तर्गत दिल्ली और अजराड़ा बाज

2. पूरब बाज :– इसके अन्तर्गत फर्रूखाबाद, बनारस एवं लखनऊ बाज

परन्तु पंजाब पूर्णता स्वतंत्र घराना है।

दिल्ली घराना :– उस्ताद सिद्धार खां जो को तबले का प्रथम घराना, दिल्ली घराने का संस्थापक कहा जाता है। इस घराने की नींव लगभग 17वीं शताब्दी में पड़ी। उस समय उत्तर भारतीय संगीत में मुस्लिम संगीत का प्रभाव होने के साथ ही मुस्लिम तथा क्षृंगार पूर्ण गीत प्रकारों का बहुत प्रचलन था और जनता की रूचि ख्याल एवं ठुमरी आदि गीत प्रकारों की ओर बढ़ गई थी। क्षृंगार रस प्रधान गीतों तथा ख्याल गायकी के लिए पखावज, ढोलक, मृदंग आदि के स्थान पर अन्य किसी वाद्य की आवश्यकता महसूस हो रही थी तब लोगों में प्रचलित दो अंग वाले वाद्य तबला में सुधार कर, नवीन वादन शैली को प्रस्तुत किया। अपनी लगन, हुनर एवं विद्वता के कारण उन्हीं ने तबले की चाटी के तथा बाये में ढोलक के समान घुमावदार नये बोल बन्दिशों की रचना की। यह रचनाऐं ख्याल ठुमरी आदि गीत प्रकारों के साथ इतनी उपयुक्त साबित हुई कि इसे सीखने के लिये बहुत कलाकार आये और इस प्रकार परम्परा के अन्तर्गत चाँटी द्वारा प्रस्तुत बोल बन्दिशों का प्रचलन शुरू हो गया और इस परम्परा को दिल्ली नाम से जाना जाने लगा। अतः सिद्धार खाँ दिल्ली के रहने वाले थे इसलिये यह 'दिल्ली घराना' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव जी के अनुसार –''सिद्धार खाँ ने समय की बदलती रूचि का गम्भीरता से अध्ययन किया और पखावज के आधार पर तबले को ऐसा कलेवर दिया कि उसका रूप पखावज से सर्वथा भिन्न हो गया। पखावज के खुले बोलों को तबला पर बजाने योग्य बनाया, उंगलियों के रख–रखाव में परिवर्तन किया और चाँटी प्रधान कुछ नवीन रचनाऐं करके इन क्षेत्र में क्रान्तिकारी कदम उठाया। कालान्तर में उनकी वंश और शिष्य परम्परा ने उस वादन पद्धति को अधिक सुदृढ़ किया और तबला के प्रथम घरानें 'दिल्ली घराना' को स्थापित किया।''3दिल्ली घराने की वादन शैली अपनी मधुरता एवं कर्णप्रियता के कारण अन्य घरानों से भिन्न है। इस घराने में मुख्यतः तर्जनी मध्यमा एवं अनामिका उंगुलियों का प्रयोग होता है। तेटे ''और 'तिरकिट' जैसे बोलों में मात्र दो उंगुलियों का प्रयोग तथा कभी–कभी तिरकिट तीन उगुलियों का प्रयोग होने के कारण इसे दो उंगुलियों का बाज भी कहा जाता है। मुख्यतः तबले के किनार में बजने के कारण इस शैली में चाटी के बोलों की प्रधानता अधिक रहती है इसलिए इस वादन शैली को चाटी या किनार बाज भी कहते हैं। इस वादन शैली में खुले बोलों से परहेज किया जाता है तथा मधुर कर्ण प्रिय व मुलायम बोलों का अधिक प्रयोग होने के कारण इस शैली को बन्दबाज की भी संज्ञा दी जाती है। इस बाज की मुख्य विशेषता पेशकार, कायदे, मुखड़े–मोहरें छोटे–छोटे टुकड़े तथा विभिन्न प्रकार की गतें आदि है।

अजराड़ा घराना –तबला वाद्य का विकास समय के साथ तीव्रता से हुआ। दिल्ली घराने से शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात वंशजों तथा शिष्यों ने चिंतन मनन अनुभव एवं अपनी कुशाग्र बुद्धि द्वारा उस्तादों की वादन शैली की प्रक्रिया में अभूतपूर्व परिवर्तन कर तबला वादन शैली को एक नयी दिशा प्रदान की और इस प्रकार तबले के पृथक परम्परा घरानों का सूत्रपात हुआ। ऐसे ही दो विद्वान उस्ताद कल्लू खाँ और उस्ताद मीरू खाँ हुए, जो मेरठ जनपद के एक गाँव अजराड़ा ग्राम के निवासी थे। दोनों भाई कल्लू खाँ, मीरू खाँ ने दिल्ली घराने के उस्ताद बुगरा खाँ के पुत्र उस्ताद सिताब खाँ से तबला वादन की विविध और दीर्घाकालीन शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात दोनों भाई कल्लू खाँ और मीरू खाँ को तबला वादन प्रचलित एवं विकसित करने के दृष्टिकोण से अपने गाँव अजराड़ा चले गए। उस्ताद सिताब खाँ से प्राप्त परम्परागत वादन–श्शैली में अपनी कुशाग्र बुद्धि एवं मनन से मौलिक परिवर्तन कर नवीन बंदीशों का निर्माण किया। इस प्रकार दोनों भाईयों ने अपने संकल्प एवं उद्देश्य को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए निरंतर कई वर्षों तक साधना एवं अभ्यास किया। उनके इन प्रयत्नों से जिस स्वतंत्र वादन शैली का निर्माण हुआ वह अजराड़ा घराने के नाम से प्रसिद्ध हुई। दिल्ली घराने से अजराड़ा घराने का काफी निकट सम्बंध रहा हैं यदि हम अजराड़ा घराने को दिल्ली घराने की शाखा कहें तो अनुचित नहीं होगा। दिल्ली घराने के तबले का प्रभाव होने का कारण उसकी भाव की स्पष्टता और स्वच्छता दो तत्व हैं। इस कारण इस घराने का तबला वादन मध्य लय में ही बजता था और बजता है, इसके विपरीत अजराड़ा घराने के वादकों को लगा कि मध्य लय की प्रस्तुतीकरण में सौंदर्य विद्यमान है, तो यदि वादन शीघ्र गति से प्रस्तुत किया जाए तो उसमें गति, सौंदर्य पैदा होगा। इस कारण उन्होंने दिल्ली घराने के निकास शैली में कुछ ऐसे आवश्यक परिवर्तन किए जिससे हाथ कहीं अड़े बिना कोई भी बंदीश शीघ्र गति से बजाना सुलभ होगा।

इस गतिमान वादन के लिए अजराड़ा घराने के तबला वादकों ने दाएँ एवं बाएँ तबले पर निकास के लिए महत्वपूर्ण बदलाव किए।

लखनऊ घराना –उस्ताद सिद्धार खाँ के पौत्र उस्ताद मोदू खाँ और उस्ताद बख्शू खाँ ने कठिन साधना एवं मनन के साथ दिल्ली बाजकी वादन शैली को उत्कृष्ट बनाने के दृष्टिकोण से रचनाओं में परिवर्तन कर विकास के पथ पर अग्रसर किया तथा नवीन वादन

शैली का सृजन कर दिल्ली से लखनऊ आकर लखनऊ घराना एवं पूरब बाज की स्थापना की। भौगोलिक दृष्टिकोण से लखनऊ, दिल्ली के पूर्व की ओर स्थित है। अतः इस वादन शैली को पूरब बाज कहा गया।

''सांगीतिक दृष्टि से दिल्ली के पतन के पश्चात् लखनऊ कलाकारों का प्रमुख केन्द्र बना। ख्याल गायकी के प्रचार के साथ–साथ उन दिनों वहाँ ठुमरी तथा टप्पा की गायकियाँ भी पनप रही थी। रंगीन तबियत के लखनवी नबाव और रईसजादे ठुमरी जैसी श्रृंगारिक गायकी के विशेष प्रेमी थे। कत्थक नृत्य का भी वहाँ काफी प्रचार बढ़ रहा था। महाराज कालकादीन तथा महाराज बिन्दा दीन के द्वारा कत्थक नृत्य एक घराना ही बना। उन दिनों संगीत के लिए वहाँ पखावज ही एकमात्र प्रमुख ताल वाद्य था किन्तु ख्याल की स्वर प्रधान गायकी एवं ठुमरी की नजाकत के लिए पखावज का गम्भीर वादन बोझिल सा लगता था। अतः दिल्ली से आये हुये तबला वादकों ने इस अस्थिर परिस्थिति का लाभ उठाया और अपने वादन में ऐसे परिवर्तनों के विषय में गंम्भीरता से विचार किया जो तत्कालीन संगीत की संगति के लिए उपयुक्त हो। उनका ऐसा प्रयास लखनऊ के व्यवसायिक तबला वादकों की दृष्टि लखनऊ पर केन्द्रित हुई।''4लखनऊ घराने के सूत्रधार दिल्ली घराने के प्रवर्तक उस्ताद सिद्धार खाँ के पौत्र उस्ताद मोदू खाँ और उस्ताद बख्शू खाँ थे। उस समय लखनऊ क्षृंगारिक ख्याल की स्वर प्रधान गायकी तथा नजाकती गायन के कारण दिल्ली आये उस्ताद मोदू खाँ एवं बख्शू खाँ दोनों को यहॉ शीघ्र ही राजाश्रय प्राप्त हुआ। परन्तु उन्हें अपनी वादन शैली में नृत्य की प्रधानता के लिये उपयुक्त बोल निकासों के अनुसार, बदलाव लाना पड़ा। लखनऊ बाज एकमात्र नृत्य का बाज नहीं है। राजनैतिक परिस्थिति के कारण दिल्ली छोड़कर आये मोदू खाँ और बख्शू खाँ ने लखनऊ के सांगीतिक वातावरण गीत और नृत्य के लिए उपयुक्त बंदिशों की रचना की तथा नृत्य के अधिक प्रभाववश उन्होंने दिल्ली के बन्द बोलों के स्थान पर नृत्य के लिए उपयुक्त तबला वादन में खुले बोलों का प्रयोग किया जिसका आधार पखावज शैली थी।

फर्रूखाबाद घराना –जिस प्रकार तबले के दिल्ली घरानें में अजराड़ा घराना तथा लखनऊ घराना अस्तित्व में आया, ठीक उसी प्रकार तबले के लखनऊ घराने से अन्य घराने तथा परम्पराओं ने जन्म लिया। लखनऊ घराने के प्रवर्तकों में से एक उस्ताद बख्शू खाँ द्वारा फर्रूखाबाद के विलायत अली को तबले की शिक्षा प्रदान की गयी। विलायत अली की तबले के प्रति लगन एवं प्रतिभा देख बख्शू खाँ ने उनसे अपनी पुत्री का विवाह कर दिया।

तबले की शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात वह अपने मूल स्थान फर्रूखाबाद चले गये, वहाँ जाकर उन्होनें तबले का खूब प्रचार–प्रसार किया। हाजी साब ने लखनऊ घराने की बन्दिशों एवं बोल निकास की वादन शैली में मौलिक अन्तर कर एक नवीन वादन शैली का निर्माण किया, जिसे फर्रूखाबाद घराने का नाम दिया गया। किसी भी घराने की स्थापना के मूल में व्यक्ति–विशेष की श्रेश्ठ शिक्षा, लगन, मौलिक चिन्तन, विलक्षण प्रतिभा, रचनात्मक प्रवृत्ति के प्रतिफल में विशिष्ट बन्दिशों का निर्माण व वादन–पद्धति के साथ ही उसके अनुकरण हेतु कम से कम तीन पीढ़ियों तक अनुकरणीय वंश की शिष्य–परम्परा आवश्यक रहती है। इस दृष्टिकोण से देखों तो हाजी साहब ने अपनी सूझ–बूझ, मौलिक चिन्तन व विलक्षण प्रतिभा के बल पर जहाँ बेजोड़ बन्दिशों का निर्माण किया वहीं सफल वादन हेतु वादन तकनीक भी विकसित की, साथ ही अनेकों श्रेष्ठ कलाकारों को तैयार कर एक विस्तृत वंश व शिष्य–परम्परा का विकास भी किया और यही विस्तृत वंश व शिष्य–परम्परा आज ताल जगत में एक प्रतिष्ठित घरानें के रूप में स्थान रखती है।

बनारस घराना –भारतीय सांस्कृतिक नगरी बनारस प्राचीन काल से ही विश्व विख्यात रहा है। यहां संगीत शाखाओं गायन, वादन तथा नृत्य तीनों का प्रचलन है। बनारस जैसे विश्व विख्यात धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परा के मध्य तबले की परम्परा को मौलिक रूप प्रदान करने तथा विकसित करने का श्रेय पं0 राम सहाय जी को जाता है। जिन्होंने नवीन वादन शैली को जन्म देकर बनारस घराने की स्थापना की। स्वतंत्र वादन के लिये बनारस घराना बहुत सफल है, क्योंकि इस वादन शैली में जिस वादन का दर्शन होता है वह शुद्ध, मधुर एवं कर्णप्रिय है।

श्री सुधीर माईणकर जी के अनुसार– ''प्रस्तुतीकरण में बाये के दबाव–घिसाव से कलात्मक घुमाव के जरिये और नाजुक तथा सुमधुर चॉट पर के गूँज युक्त अक्षरों की मद्द से धीमी लय में प्रस्तुत की गई बोल बाँट युक्त चलन की विस्तार क्रिया आदि के माध्यम से महफिल में रंग भर जाता है। इस प्रकार महफिल जम जाने पर विविध कायदे, रेले, छंद जोरदार परन, गते, फरद इत्यादि प्रकारों से बनारस घराने का वादन प्रस्तुत होता है। घराने के कलाकारों ने वर्षों तक घंटो जबरदस्त रियाज करके वादन में सिद्धी प्राप्त की है, जिससे अक्षर मानों जाग्रत मंत्राक्षर बनकर एक अनोखा कलात्मक प्रभाव प्रस्तुत करते हैं।''[5]

पंजाब घराना –तबले के सभी पाँचों घरानों का सम्बन्ध दिल्ली घराने से है, परन्तु पंजाब घराना ही एक ऐसा घराना है जो दिल्ली घराने से कोई सम्बन्धित नहीं रखता। यह घराना एक स्वतंत्र घराना है इस घराने के सम्बन्ध में देश के सुप्रसिद्ध तबला वादकों पं0

किशन महाराज एवं उस्ताद अल्लारखाँ का मानना है कि यह घराना तबले का सबसे प्राचीनतम घराना है।

पंजाब घराने के निर्माण के सम्बन्ध में श्री मनोहर भाल चन्द्र राव मराठे अपनी पुस्तक ताल वाद्य शास्त्र में लिखते हैं कि ''भारतीय संगीत जगत में प्रतिष्ठित तबला वाद्य के समस्त घराने का सम्बन्ध दिल्ली घराना अजराड़ा फर्रूखाबाद वंशज एवं शिष्यों से रहा है, जिसके सूत्रधार सिद्धार खाँ थे। परन्तु पंजाब घराने का सम्बन्ध दिल्ली घराने में नहीं है, यह घराना अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है तथा इस घराने का विकास पखावज की वादन शैली के आधार पर हुआ है। पंजाब के भवानी दास उर्फ भवानी सिंह समकालीन थे। दोनों दिल्ली दरबार में पखावजी थे, ऐसा कहते हैं कि भवानीदास ने सिद्धार खाँ से हारकर पखावज छोड़कर तबला वादन को अपना लिया। वहाँ से वे लाहौर के एक सूबेदार के निमंत्रण पर पंजाब चले गये और वहीं उन्होंने तबले पर पखावज के आधार पर अलग तबला वादन शैली का विकास किया। वहाँ कई प्रतिभाशाली व्यक्तियों को (ताज खाँ, हद्दू खाँ, कादिर बख्श) शिष्य बनाया, इस प्रकार पंजाब घराने की परम्परा विकसित हुई। पखावज के शिष्यों में कुदऊ सिंह, जोधा सिंह प्रमुख थे। ऐसा कहते हैं कि पंजाब के लोक संगीत में दुक्कड़ के आधार पर ही तबले कीश्शैली को शास्त्रीय रूप दिया। ऐसा कहा जाता है कि समस्त भारत में तबले के प्रचार को देखकर भवानीदास के शिष्यों में से फकीर बख्श ने भवानीदास द्वारा दुक्कड़ पर बजने वाले बोलों को तबले पर स्थापित कर नई शैली को विकसित किया। फकीर बख्श के गुरू भाई पुत्र एवं शिष्यों ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया और इस प्रकार पंजाब घराना स्थापित हुआ।''[6]

अपनी मधुरता एक कर्णप्रियता के कारण पंजाब घराने की वादन शैली शेष घरानों से बिल्कुल अलग है। सोलो वादन हो या फिर संगति करना दोनों में इस घराने की प्रस्तुति लोगों में अत्यधिक लोकप्रिय है। खुले व जोरदार बोल शरीर में जोश भर देते हैं। इस घराने के तबला वादकों का प्रस्तुतीकरण बेहद दमदार एवं नाद युक्त होता है।

इस क्रम में उस्तद जाकिर हुसैन साहब का नाम तो विश्व विख्यात है। स्वतंत्र वादन में उस्ताद जाकिर हुसैन साहब ने बहुत लोकप्रियता प्राप्त की है और पंजाब घराने की वादनश्शैली को एक चमत्कारी वादन शैली के रूप में प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष –भारतीय शास्त्रीय संगीत जैसी जीती–जागती कला में परम्परा का बहुत बड़ा हाथ रहा है , बिना परम्परा को जाने हम भारतीय शास्त्रीय संगीत या हिन्दुस्तानी संगीत की कल्पना भी नहीं कर सकते। संगीत को जीवित रखने का श्रेय उन परम्पराओं को ही प्राप्त है, जो वर्षों से गुरू–शिष्य की परम्परा के रूप में चली आ रही है। इसका श्रेय निश्चित रूप से उन संगीतज्ञों को प्राप्त है जिन्होंने अपनी मेहनत, लगन तथा परिश्रम से अपने गुरूजनों की सेवा करके संगीत विद्या को प्राप्त किया तथा अपने शिष्यों को सिखाकर संगीत के प्राचीन रूप को जीवित रखने का प्रयास किया।अन्ततः हम यह कह सकते हैं कि वर्तमान में जो संगीत के जो स्वरूप को हम देखते हैं उसे यह स्वरूप देने में अनेक उदार हृदयी संगीत प्रेमी, राजाओं, महान कलाकारों तथा विद्वान कला पिपासु आचार्य का अमूल्य योगदान रहा है। ऐसे महान संगीतज्ञों की सृजित व संचित निधि को संभालने तथा पीढ़ी दर पीढ़ी उसका संवर्धन कर उस पारम्परिक संगीत को जीवित रखने में घरानों का योगदान अविस्मरणीय है।

''सन्दर्भ ग्रन्थ सूची''

1. भारतीय संगीत वाद्य, डॉ0 लालमणि मिश्रा भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–157 वर्ष 2005
2. द आर्ट ऑफ तबला रिदम, पं0 सुधीर कुमार सक्सेना डी0के0 प्रिन्ट वर्ल्ड लि0,वर्ष 2006.पृ0सं0–75
2. तालकोष, श्रीवास्तव, आचार्य गिरीश : चन्द्ररूबी प्रकाशन वर्ष 2017 पृ0सं0–166
3. पखावज और तबला के घराने एवं परम्परायें, डॉ0 आबान ए मिस्त्री, पी0 केकी एस0 जिजिना, स्वर साधना समिति, मुम्बई, द्वितीय संस्करण, वर्ष 2000. पृ0सं0–135

5. तबला वादन कला और शास्त्र, श्री सुधीर माईणकर, पृ0सं0–230

6 ताल–वाद्य शास्त्र, श्री मनोहर भाल चन्द्र राव मराठे, शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर, वर्ष 1991 पृ0सं0–141''

डॉ0 गोविन्द सिंह बोरा

विभागाध्यक्ष संगीत

एम0बी0पी0जी0 महाविद्यालय,

हल्द्वानी , नैनीताल उत्तराखण्ड

पिन कोड 263139

15

प्रेमचन्द के साहित्य में सामाजिक विडंबनाएं

सुशीला

सारांश

सामाजिक विडंबनाएं समाज की निराशाजनक स्थिति की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं। एक सभ्य समाज की दुर्भाग्यपूर्ण, हताशा से परिपूर्ण, कष्टकारी परंपराएं या मनुष्य की दकियानूसी सोच उसके स्वस्थ नैतिक विकास में बाधक बनती है। हमारे समाज में हमारे द्वारा बनाए गए अनेक नियम कुछ मुट्ठी भर लोगों की स्वार्थ सिद्धि तो करते हैं, परंतु अन्य लोगों के लिए नासूर बन जाते हैं। समाज की ऐसी विडंबनाओं को हम सामाजिक व्यथा का नाम भी दे सकते हैं।

प्रेमचंद जैसे कथा सम्राट के लिए ऐसी सामाजिक विडंबनाओं से मुंह मोड़ना संभव नहीं है। समाज की व्यथा पूर्ण स्थिति को प्रेमचंद ने बहुत करीब से जैसा देखा, परखा अपने साहित्य के फलक पर अपने अनुभव की तूलिका से वैसे ही उकेर दिया। एक महान युगप्रेरक के रूप में उन्होंने अपने साहित्य में समाज के हर पक्ष का निष्पक्षता से अवलोकन एवं मूल्यांकन किया।

ग्रामीण परिवेश में संयुक्त परिवार या परिवार व रिश्तों को सबसे ज्यादा अहमियत दी जाती है। ऐसे में अगर किसी भी कारण पारिवारिक विघटन की स्थिति उत्पन्न होती है, तो यह एक आदर्श सभ्यता व संस्कृति पर गहरी चोट है। प्रेमचंद ने इस व्यथा का चित्रांकन कभी 'बड़े घर की बेटी' आनंदी के माध्यम से जिसकी देवर संग तकरार होने पर परिवार के विभाजन की नौबत आ जाती है। तो कभी 'रंगभूमि' में ताहिर अली की विमाताओं जैनब और रकिया द्वारा अपनी स्वार्थ साधना हेतु परिवार व रिश्तों को तिलांजलि देने में कोई कसर नहीं छोड़ी जाती। स्वयं प्रेमचंद का जीवन भी विमाता के कारण अस्त व्यस्त हुआ। अपने निकम्मेपन व अर्थाभाव के कारण 'कफन' के घीसू और माधव द्वारा उनके उजड़ झोपड़े को घर की गरिमा देने वाली बुधिया की प्रसव वेदना के समय असंवेदनशीलता का प्रदर्शन रोंगटे खड़े कर देने वाला है। 'गोदाम' जैसे महाकाव्य में भी होरी के भाई हीरा द्वारा होरी की गाय की हत्या का कृत्य भले ही अक्षम्य था, लेकिन होरी ने उससे बैर रखने की बजाय परिवार की मरजाद को ऊपर रखते हुए उसके परिवार की देखरेख वाला आत्मीयता का भाव भी वास्तव में हमारी ग्रामीण संस्कृति की आत्मा है। 'बड़े घर की बेटी' आनंदी ने भी समय रहते जब अपने परिवार को बिखरने से बचा लिया तब हमें प्रेमचंद के सुधारवादी दृष्टिकोण का भी सुंदर चित्रण प्राप्त होता है। यही नहीं 'स्वामिनी', 'स्त्री और पुरुष', 'स्वर्ग की देवी', 'बैर का अंत' जैसी श्रेष्ठ रचनाएँ पारिवारिक ढांचे के जीर्ण– शीर्ण होने पर उसकी मरम्मत की और हमारा सहज ही ध्यान आकर्षित करती है ।

डॉक्टर इंद्रनाथ मतदान के मतानुसार, "सहायता और सहयोग पर आधारित सम्मलित परिवार की संस्था को वे (प्रेमचंद) आदर्श रूप देते थे।"[1]

किसान, जमींदार और महाजन के त्रिकोण से उपजी परिस्थितियों का स्टिक आंकलन प्रेमचन्द जैसे सतही व्यक्ति से ही अपेक्षित है। अन्नदाता के रूप में विख्यात कृषक वर्ग के जीवन की व्यथा का चित्रांकन 'पूस की रात' का हलकू और 'गोदान' का होरी जिस जीवंतता से प्रस्तुत करते हैं, वह सचमुच हृदय विदारक है। एक तरफ तो 'गोदान' के राय साहब होरी के सामने चिकनी चुपड़ी बातें करके अपनी जमींदारी कौम की भर्त्सना करते हैं, परंतु दूसरी ओर बेगारी के विरुद्ध मजदूरों के विरोध पर उनके साथ सख्ती दिखाकर अपने दोहरे व्यक्तित्व का परिचय देते हैं। 'प्रेमाश्रम' का ज्ञानशंकर भी जब नीचता की हर हद पार करता नजर आता है तब मन बड़ा क्षुब्ध हो उठता है। एक प्रतिशत की उम्मीद से किसान अगर जमींदार से बच भी जाता है तो वह कसर महाजन पूरी कर देते हैं। जब 'गोदान' के झींगुरीसिंह, पटेश्वरी, विधवा सहुआइन, पंडित दातादीन ने पूरे के पूरे गांव पर अपने ऋण का शिकंजा कस रखा है, तो ऐसे में भला 'बेटी का धन' के सुक्खू की क्या बिसात कि वह ऐसे शोषकों के पांव तले से अपनी गर्दन निकाल सके। बेचारा शंकर तो 'सवा सेर गेहूं' के बदले ताउम्र बंधवा मजदूर की यातना झेलता है। जमींदार महाजनों की इस अत्याचार की चक्की में किसान मजदूरों की आने वाली पीढ़ियां भी पिसती हैं, इससे बड़ी विडंबना और क्या होगी?जिस प्रकार काले बादलों में बिजली की एक चमक निराशा में आशा की मशाल जलाती है, वैसे ही 'बांका जमींदार' में बंजारो का संगठित विद्रोह 'प्रेमाश्रम' में क्रूर जमींदार का अंत व उसके बेटे द्वारा किसानों के हित में उठाया गया कदम, नई परिवर्तनकारी आशाओं का द्योतक है।

एक ही रक्त, मज्जा, मांस से निर्मित यह मानव शरीर कब, कैसे, किसके द्वारा विभिन्न वर्गों में बांट दिए गए यह तो कहना मुश्किल है। परंतु यह जातिगत भेदभाव पूर्ण परिवेश मानव जाति की

एक ऐसी विडंबना है जो मानवता की भावना को रौंदकर रख देती है। मनुष्य की स्वार्थ दृष्टि तो देखिए 'गोदान' की जिस सीलिया को मातादीन समाज के सामने अपनाने में उसका धर्म और जाति आड़े आती है। उसी सीलिया से संबंध स्थापित करने में उसे कोई लज्जा या ग्लानि का अनुभव नहीं होता ।गंगी की मजबूरी का मजाक उड़ाने वाला 'ठाकुर का कुआं' जब जोखू जैसे गरीब, बीमार की प्यास बुझाने में असमर्थ, तो भला 'सद्गति' को प्राप्त करने वाले दुखी का दर्द पंडित जैसे कुलीन ब्राह्मण कैसे समझ सकते हैं। 'कर्मभूमि' में अछूतों के मंदिर प्रवेश निषेध के विषय में डॉक्टर रामविलास शर्मा का व्यंग्य कथन दृष्टव्य है, "ब्रह्मचारीजी के लिए जूता पवित्र था, जूता बनाने वाला अपवित्र, पवित्र जूते उठाकर अपवित्र चमारों को मारने लगे।"[2]

"दूध का दाम" कहानी का मंगल जिस तरह बेमन से जूठन खाने को विवश हैं, उसकी विवशता समाज के बुद्धिजीवी वर्ग की उच्च विचारों की पृष्ठभूमि पर प्रश्नचिन्ह लगाने के लिए काफी है।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता" का हर समय गान करने वाले समाज में समय–समय पर नारी की जो दुर्गति हुई है, उसका इतिहास भी साक्षी रहा है । मेरे विचार में दृ "वेद पुराणों में पूजनीय नारी आज केवल भोग्या बनकर रह गई, समय–समय पर कितने ही कवि, लेखेकों की कलम उसकी व्यथा कह गयी।" परन्तु क्या व्यथा को शब्दबंद कर देने मात्र से कुछ सुधार हुआ है?'सेवासदन' की सुमन हालातों की भेंट चढ़कर गजाधर जैसे विधुर से विवाह करके अंततः घर से निकाल दिए जाने पर वेश्यावृत्ति के मार्ग पर चलने की विडंबना क्या कम थी, जो 'निर्मला' भी दहेज लोभियों के लोभ का शिकार बन जाती है। "अब तक ऐसा ही एक आदमी उसका पिता था जिसके सामने वह सिर झुकाकर देह चुराकर निकलती अब उसकी अवस्था का एक आदमी उसका पति था, वह उसे प्रेम की वस्तु नहीं सम्मान की वस्तु समझती थी।"[3]

वैधव्य जीवन के अभिशाप के नाना प्रकार के रूप हमें प्रेमचंद के कथा संसार में दृष्टिगोचर होते है। 'प्रतिज्ञा' की पूर्णा समाज में कमलाप्रसाद जैसे भूखे भेड़ियों की आँखों में हमेशा निशाने पर रहती है। पूर्णा जैसी निराश्रित, विधवा का जीवन संघर्ष जहाँ हृदय को बेंधने वाला है। वहीं 'प्रेमाश्रम' की गायत्री ज्ञानशंकर जैसे धनलोलुप की मीठी बातों का शिकार हो जाती । 'निर्मला' की कल्याणी, सुधा आदि भी वैधव्य जीवन का भार ढोती रहती हैं। परन्तु 'नैराश्य लीला' की विधवा कैलासी तथा 'बालक' की गोमती अपने जीवन की इस विडंबना के विरुद्ध अपनी आवाज बुलंद करती नजर आती है। 'नैराश्य लीला' की कैलासी का कथन, "मेरे लिए अपनी आत्मा की रक्षा के सिवा कोई धर्म नहीं।"[4] नारी का अपने स्वाभिमान की रक्षा का प्रचंड जयघोष है।

निष्कर्ष

प्रेमचंद जी ने अपने साहित्य की उज्ज्वल आभा से समाज में व्याप्त लगभग हर विडंबना, त्रासदी पर प्रकाश डाला है। केवल सामाजिक विडंबनाओं की भयावहता को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करके ही उन्होंने अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं की अपितु समाज को उस ओर आकर्षित कर उनके सम्मुख उनका समाधान भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। डॉक्टर रामविलास का कथन प्रेमचंद जी के संदर्भ में यहां बिल्कुल उपयुक्त बन पड़ा है, "वह एक युग निर्माता साहित्यकार थे, केवल साहित्य में युग को नाम देने वाले नहीं वरन् अपने समय के सामाजिक जीवन को एक नई गति और एक नई दिशा प्रदान करने वाले ।"[5]

संदर्भ :–

1. प्रेमचन्द : एक विवेचन, डॉक्टर इंद्रनाथ मदान, पृ.147
2. प्रेमचंदः आलोचनात्मक परिचय, डॉक्टर रामविलास शर्मा, पृ. 113–114
3. समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचंद, डॉक्टर महेंद्र भटनागर पृ. 170 ('निर्मला' से उद्धृत)
4. मानसरोवर भाग–3, पृ. 64
5. प्रेमचन्द और उनका युग, डॉ रामविलास शर्मा, पृ. 149

सुशीला
असिस्टेंट प्रोफेसर
कन्या महाविद्यालय,
खरखौदा
(सोनीपत)

16

सामाजिक वानिकी

डॉ0 रानी त्रिपाठी, ज्योत्सना गुप्ता

सारांश

सामाजिक वानिकी – जीवन हेतु महत्वपूर्ण

मनुष्य अपनी आवश्यकता के अनुरूप फल, चारा, ईंधन व कृषि के उपकरण तथा छाया इत्यादि के लिए वृक्षों को रोपित करता आ रहा है। प्राचीन ग्रंथों में भी वृक्षों वाटिकाओ को अत्याधिक महत्व दिया है। वृक्षों को देवी–देवताओं का निवास स्थल भी बताया गया है ताकि सामाजिक रूप से वृक्षारोपण को धार्मिक महत्व प्राप्त हो मानवीय आवश्यकताओं ने वनों का दोहन तीव्र गति से किया हैं। साथ ही साथ वृक्षों को सुरक्षा भी प्राप्त हो।

वृक्षों की उपयोगिता एवं उनकी महत्वपूर्ण भूमिका को विश्व के अन्य वनस्पतिशास्त्री पर्यावरण विशेषज्ञ भी अब एक स्वर से स्वीकार करने में लगे हैं । विचारवन प्रगतिशील देशों ने तो वन संपदा को बचाने व बढ़ाने ने में सरकारी व गैर सरकारी स्तर पर प्रयास भी आरंभ कर दिया है ।अपने देश में कुछ गैर सरकारी संस्थाएं वृक्षारोपण का कार्य इमानदारी से कर रही हैं जो एक न्यूनतर प्रक्रिया है। पर्याप्त संतुलन के लिए कुल भूभाग के क्षेत्रफल का 33 प्रतिशत भाग वृक्ष वनस्पतियों से ढका होना चाहिए जबकि देश की वृक्ष संपदा का वर्तमान प्रतिशत 22 ही रह गया है।

11 प्रतिशत को पूर्ण करने के लिए सरकारी तथा गैर सरकारी दोनो स्तर पर प्रयास करना होगा लेकिन यह तभी संभव है जब वृक्ष हो वनस्पति की अंधाधुन कटाई को कड़ाई से रोका जाए। इसके अतिरिक्त एक प्रक्रिया और हो सकती है किस देश का प्रत्येक व्यक्ति 12 वृक्ष स्वयं लगावे अथवा प्रत्येक परिवार अपने परिवारिक सदस्यों की संख्या के हिसाब से वृक्षारोपण का दायित्व इस उद्देश्य से उठावे कि हमें वृक्ष के विकसित होने तक इसकी प्रत्येक दृष्टि से देखभाल करनी है जो लोग स्वयं श्रम करके वृक्ष नहीं लगा सकते तो पैसे देकर दूसरों का श्रम खरीद सकते हैं

अर्थात इस प्रकार के वनीकरण से समुदाय के लोगों को रोजगार के साथ–साथ इंधन, खाद, पशुओं के लिए चारा लकड़ी व पोषक फलों की प्राप्ति होती है

राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार कुल भौगोलिक क्षेत्र का कम से कम एक तिहाई भाग

वनों से आच्छादित होना चाहिये। जिसका 60: पर्वतीय अंचल में और 20: मैदानी क्षेत्रों में होना चाहिये। यह अनुपात पर्यायावरणीय दृष्टिकोण से उचित कहा जा सकता है। परन्तु मैदानी

क्षेत्रों में बढ़ती आबादी और औद्योगिक विकास व इनकी वनों पर बढ़ती निर्भरता इस अनुपात को गलत साबित करती है।

आज के आँकड़े बताते है कि तीन करोड़ हेक्टेयर प्राकृतिक वनों में से हर साल लगभग 15 लाख हेक्टेयर वनों का नाश हो जाता है। इस बढ़ते हुए उपयोग को ध्यान में रखते हुए सामाजिक वानिकी आवश्यकता बढ़ जाती है।

सामाजिक वानिकी की आवश्यकता

समाजिक वानिक अर्थात् समाज से जुड़ा हुआ कार्य। इसका प्रमुख लक्ष्य लोगों की ईंधन, पशुचारा, लकड़ी व अन्य घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति करना तथा पर्यावरण संतुलन की दृष्टि वृहद वृक्षारोपण किया जाना है। इसके पीछे एक यह भावना भी अंतर्निहित है कि किसी भी प्रकार भारी संख्या में वृक्षारोपण भी हो और उसका आर्थिक लाभ भी जनसाधारण को मिले।

1. समाज में अन्य राष्ट्रीय समस्याओं के साथ नागरिक सजगता हम नहीं होगी किसी भी समस्या का निराकरण नहीं कर सकते । विशेषकर उन समस्याओं का जिनका संबंध पर्यावरण संतुलन में से है जैसे हम जनसंख्या वृद्धि पर नहीं लगा सकते तो हमें भुखमरी,गरीबी ,अभाव और बेरोजगारी से संघर्ष पड़ेगा । यदि हम औद्योगिक क्षेत्रों को प्रदूषण से नहीं बचा सकते तो संसार प्रदूषण ,वायु जल एवं स्थल प्रदूषण से उपजे वर्तमान संकट से हम बच ही सकते हैं। शहरों को स्वच्छ ,सुंदर ,प्रदूषण मुक्त रखने के लिए हमें सामाजिक सजगता लानी होगी और समयबद्ध कार्यक्रम अपनाकर शहरों को वृक्षों का सौंदर्य देना होगा। इस कार्य में समाजिक वानिका के साथ मिलकर काम करना बहुत आवश्यक है। सामाजिक वानिका कार्यक्रमों को नहीं अपनाते हैं तो ध्वनि तथा वायु प्रदूषण अभाव , ऑक्सीजन की कमी और धरती की गर्माहट कम करने में हम सफल हो सकते ।

2. इंधन की सुविधा जुटाने के यहां अनेक साधनों का हमारा देश में होता है कि लकड़ी एक ऐसा परंपरागत स्रोत रही है जिसका उपयोग ईंधन के लिए देश के साठ प्रतिशत ग्रामीण भू भाग द्वारा किया जाता है। यद्यपि कोयला और ऊर्जा, बायोगैस संयंत्रों से इंधन की समस्या का समाधान पर्याप्त रूप में ढूंढ लिया गया है फिर भी वनों से पास से प्राप्त जलाऊ तथा उपयोगी बहुमूल्य लकड़ी का जनजीवन के

लिए अपना अलग–अलग महत्व है।

3. जनसंख्या वृद्धि के कारण उत्पन्न हुयी विशाल समस्या स्वच्छ जल की है। जलाभाव के कारण अथवा बड़ी जनसंख्या को प्रयाप्त जल की पूर्ति न हो पाने के कारण जल–प्रदूषण से भी निबटाना पड़ता है। जल की समस्या वर्षा अधिक होने पर ही पूर्ण सम्भव हो पाती है और वर्षा का होना हरे भरे जंगलों पर निर्भर करता है। जनसंख्या वृद्धि से मानव आवश्यकताओं ने जंगलों को जलाऊ लकड़ी, तथा उपयोगी इमारती

लकड़ी और आरामदायक फर्नीचर बनाने के कारण इतना उजाड़ डाला है कि वन समाप्त हो चुके है। वन न होने से वर्षा नहीं हो पा रही है और वर्षा के न होने से कृषि, भूमि, पीने का पानी, उत्पादन, खाद्यान्न की कमी आदि अनेक समस्यायें हमारे सामने आ पड़ी है। इन समस्याओं से निपटने के वृक्षारोपण किया जाना अति अनिवार्य है। भारतवर्ष की जनसंख्या का लगभग 66 प्रतिशत गाँव में निवास करता है। पशुओं का चारा, कृषि यंत्रों हेतु काष्ठ की आवश्यकता पूर्ति व ईंधन आपूर्ति आवासीय आवश्यकताओं व आपूर्ति हेतु ग्रामीण जन वनों पर निर्भर रहते है अतएव वनों पर इनकी निर्भरता कम करने के लिये आवश्यक है कि सामाजिक वानिकी का प्रसार किया जाय और उन्हें इसकी योजनाओं का लाभ व जानकारी प्राप्त हो। जनता चाहे गाँवों की हो या कस्बों की, वन उपज से उसकी आवश्यकताओं की स्थायी रूप से एवं सरल ढंग से पूर्ति हो सके। ग्रामीण एवं शहरी आबादी के क्षेत्रो में एवं सीमाओं पर
वन–क्षेत्रों की स्थापना एवं विकास हो।

4. गरीब भूमिहीन कृषकों व श्रमिकों को सामाजिक वानिकी में कार्यरत रहने से बेरोजगारी की समाप्ति की जा सकती है और शहरीकरण में भी कमी होगी। सामाजिक वानिकी के द्वारा आर्थिक लाभ पहुँचाकर जनता के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने में सहायता दी। जा सकती है जिस कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं परिस्थिति में संतुलन को उन्नत करने की सम्भावना बढ़ सकती है।

5. आज भी ग्रामीण क्षेत्र में कृषि एवं पशुपालन तथा उनसे सम्बन्धित उद्योग ही ग्राम्य अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है। हमारे देश में कुल कृषि कार्य का लगभग 70 प्रतिशत कार्य महिलाओं के द्वारा किया जाता है। वे फसल कटने से पूर्व खेत की तैयारी खाद में बीजों की बुवाई, पौधों की रोपाई, खरपतवार फसल की कटाई, निराई, गुड़ाई आदि समस्त कार्यों में अपना पूर्ण योगदान देती की अपनी स्वयं की जमीन पर कृषि कार्य करने वाली अथवा खेतिहर मजदूर के रूप में कार्य करने वाली ये महिला शक्ति चूँकि असंगठित, अशिक्षित शोषित, रूढ़िवादी तथा सामाजिक परम्पराओं से जकड़ी हुई है, अतः इनके कार्यों का मूल्यांकन न तो इनका परिवार करता है न समाज। ये कृषक पुरूषों से अधिक 14 से 18 घंटे कृषि कार्य कर रही है इस प्रकार ग्रामीण अर्थव्यवस्था में एक प्रमुख स्तम्भ कृषि क्षेत्र में महिलाओं का है। अतएव सामाजिक वानिकी क्षेत्र में महिलाओं को भागीदार बनाकर अतिरिक्त रोजगार जुटाया जा सकता है व आधी आबादी कही जाने वाली जनशक्ति का उचित उपयोग किया जा सकता है। क्योकि इसके द्वारा वे रोजगार भी प्राप्त कर सकती है और घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति भी ।

6. तीव्रतम औद्योगीकरण व बढ़ते पेट्रोलियम उपकरणों के प्रयोग के कारण हानिकारक गैसों का उत्सर्जन शहरी क्षेत्रों में प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। विभिन्न फर्मों व मिलों से निकलने वाले धुये ने ग्रामीण क्षेत्रों के स्वच्छ वातावरण को भी निगल लिया है। वन वायुमण्डल से हानिकारक गैसों, जैसे– कार्बनडाइ–ऑक्साइड, सल्फर डाई ऑक्साइड व नाइट्रोजन ऑक्साइड का अवशोषण कर वातावरण को प्रदूषण रहित एवं स्वच्छ रखने में मुख्य भूमिका निभाते है। साथ वायुमण्डल में कार्बन–डाई–ऑक्साइड व ऑक्सीजन का संतुलन बनाये रखते है। इनसे वर्षा की सम्भावना अधिक रहती है। उष्ण प्रदेशों में इनके होने से भूमि तेज सूर्य की किरणों से सुरक्षित रहती है। औद्योगीकरण का वनों के विनाश पर अप्रत्यक्षः प्रभाव कारखानों से होने वाले वायु प्रदूषण के माध्यम से पड़ा है। वायु प्रदूषण द्वारा वायुमण्डल में सल्फर–डाई–ऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाने से तेजाबी वर्षा होने लगती है। यूरोप तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में 3.1 करोड़ हैक्टेयर वन क्षेत्र तेजाबी वर्षा के शिकार हुए। इसके कारण ये वन रूग्ण हो गये। बिना कटाव के भी ये वन वस्तुतरू मृत हो गए है। अतएव ऐसी समस्याओं के आगमन से पूर्व ही हमें सचेत हो जाना चाहिये और कारणों का निवारण करना चाहिये। सामाजिक वानिकी इस विकट समस्या का बेहतर विकल्प है।

7. वैज्ञानिकों का कथन है कि मौसम को सुव्यवस्थित बनाये रखने में वनों की महत्वपूर्ण भूमिका है। यदि पेड़ घटते जायेंगे तो उस क्षेत्र का मौसम गड़बड़ाने लगेगा, वर्षा घटेगी, सर्दी–गर्मी के बीच का अनुपात बदलेगा, जिसका मनुष्य के शारीरिक और मानसिक दोनों ही स्वास्थ्यों पर बुरा असर पड़ता है। पशु दुर्बल हो जाते है और उनकी श्रम–शक्ति तथा दूध देने की क्षमता घटती जाती है। दुर्बल व रोगी प्रकृति के मनुष्य तथा बच्चें भी इस असन्तुलन को बर्दाश्त नहीं कर पाते, परिणामतरू उनके लिए जीवन संकट खड़ा हो जाता है। इन सभी बातो के अतिरिक्त वृक्ष सभी प्रकार के प्रदूषण को रोकने में सक्षम होते है। जैसे– ध्वनि प्रदूषण, वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण इत्यादि घने पहाड़ी वनों से गुजरने के कारण गंगा के जल में औषाधीय गुण पाये जाते हैं स्वच्छ व निर्मल जल की प्राप्ति स्त्रोतों के समीप ही पायी जाती हैं। शहरों नगरो व ग्रामीण क्षेत्रों में इन नदियों

व सहायक नदियों का जल प्रदूषित ही पाया जाता है व कुछ नदियाँ तो विलुप्त हो गयी है। मानवीय जागरूकता व समुचित वृक्षारोपण इन समस्याओं का निवारण कर सकती है। भारत सरकार ने सामाजिक वानिकी की उपयोगिता को समझते हुये कई कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया व वित्तीय सहायता प्रदान की है। उपरोक्त विवरण द्वारा सामाजिक वानिकी की आवश्यकता को समझा जा सकता है उत्तर प्रदेश में सामाजिक वानिकी कार्यक्रम का महत्व

दिनो–दिन बढ़ता जा रहा है। व्यवसायिक व व्यवहारिक रूपों में सामाजिक वानिकी का महत्व इस प्रकार है–

सामाजिक वानिकी का महत्व

सामाजिक वानिकी का तात्पर्य ही है कि वह कार्यक्रम जिससे समाज ज्यादा से ज्यादा लाभान्वित हो। व्यवसायिक, व्यवहारिक, नैतिक रूपों में वानिकी का महत्व इस प्रकार है।

व्यवसायिक दृष्टि से सामाजिक वानिकी का महत्व

आज भारत की जनसंख्या एक अरब पार कर चुकी है उसके सामने अनेक समस्यायें खड़ी है। सबसे बड़ी समस्या रोजगार दिलाने की है। उत्तर सरकार सरकार ने आयोजनागत योजनाओं के अंतर्गत वृक्षारोपण योजनाओं में (राज्य सेक्टर के अन्तर्गत) 2000–2001 तक किया गया कुल व्यय लगभग 11173.21 लाख रूपये है और जिला सेक्टर के अन्तर्गत व्यय लगभग 29977.85 लाख रूपये (72.85 प्रतिशत) है। अर्थात् कुल व्यय

41151.06 लाख रूपये किया गया। राज्य सरकार द्वारा उठाये गये वृक्षारोपण सम्बन्धी कदमों ने उत्तर प्रदेश में व्यवसाय को एक नयी दिशा दी है।

1.लघु एवं कुटीर उद्योगों को संरक्षण

लद्यु एवं कुटीर उद्योगों हेतु कच्चे माल की आपूर्ति प्रायः वृक्षो पर आधारित होती हैं। उद्योगों हेतु जलौनी लकड़ी–बबूल, प्रोसोपिस सहिजन, सिरिस, सुबबूल आदि प्रजातियों द्वारा प्राप्त की जाती है। गोद हेतु बबूल, इमारती लकड़ी हेतु शीशम, आम, महुआ, सागौन, साखू, काला, शीशम इत्यादि। औषधीय वृक्ष नीम, अर्जुन, युकेलिप्टस, तेल व रंजक व्यवसाय हेतु कजी अर्जुन व युकेलिप्टस रेशम उघोग हेतु शहतूत व अर्जुन वृक्ष पर कीट पालन। कुटीर उघोग में पत्तल दोना व चटाई बनाने हेतु कच्चा माल । दियासलाई व डिब्बा उद्योग हेतु लकड़ी भी वानिकी वृक्षो द्वारा प्राप्त की जा सकती है ताकि वनो पर दबाव कम हो । श गत दस वर्षों (1990–91 से 2000–2001) के बीच उत्तर प्रदेश की जनसंख्या में 25. 8ः अर्थात् 3. 41 करोड़ की वृद्धि हुयी है जिसको लघु एवं कुटीर उद्योगों को संरक्षण देकर ही

रोजगार उपलब्ध कराया जा सकता हैं। उत्तर प्रदेश राज्य हस्तशिल्प व दस्तकारी उद्योगों में अग्रणी रहा है।

2. औद्योगिक धन्धों हेतु कच्चे माल की आपूर्ति

वन सम्पदा पर आधारित उघोगों में लोगों को प्रत्यक्ष रूप से रोजगार मिलता है। व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त वन अनेक महत्वपूर्ण उद्योगों के लिये आवश्यक कच्चे माल की पूर्ति करते है। इन उद्योगों में कच्चे माल की आपूर्ति जैसे–कागज कलम, पेन्सिल, दियासलाई, पैकिंग केस प्लाईवुड, कृषि उपकरणो के दस्ते, फर्नीचर, मोटरध्लारी के ढांचे, बीडी, लाख, कत्था, रबड़ औषधि उद्योग वनों पर आधारित होती है। रेल पथ के लिए स्लीपर, रेलगाड़ी के डिब्बों के लिए प्रकाष्ठ तथा नौकाओं और समुद्री जहाजों के लिए प्रकाष्ठ भी वन से ही प्राप्त होता है। देश में प्रतिरक्षा उपकरणों के निर्माण में लगे उद्योगो के लिए अपेक्षित काष्ठ की पूर्ति भी वन ही करते है। रेयान, लुगदी(पल्प) उद्योग के लिए कच्चे माल का स्त्रोत भी वन ही है। इस प्रकार देश के बढ़ते हुए उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराने में वर्गों की महत्वपूर्ण भूमिका है। वन विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा वर्ष 1998 में जारी किये गये एक आगणन के अनुसार, प्राकण्ठ आधारित कच्चे माल का आवश्यकता व आपूर्ति में निम्न अन्तर पाया गया।

सारिणी संख्या – 2.01

क्र.सं.	वन उत्पाद	आवश्यकता	आपूर्ति	अन्तर
1.	विशान प्रकाष्ठ हेतु कच्चा माल	3000	100	2900
2.	पल्पवुड	2500	300	2200
3.	अन्य औद्योगिक प्रकाष्ठ	3500	200	3300

स्रोत : उत्तर प्रदेश वन सांख्यिकीय की संक्षिप्त, 1999

संयुक्त उत्तर प्रदेश में वर्ष 2000 में 9 करोड़ घन मीटर प्रकाष्ठ की मांग थी जिसके विरूद्ध मात्र 6 लाख घन मीटर प्रकाष्ठ की आपूर्ति ही वनों से संभव थी। इस कमी की आपूर्ति हेतु ग्रामीण क्षेत्रों के वृक्षों का पालन आवश्यक था। जिसकी पूर्ति सामाजिक वानिकी के अन्तर्गत वृक्षारोपण कर किया जाने का प्रयास किया गया है। करके मृदाक्षरण नहीं होने देते। इसके विपरीत नवीकरण से मृदा क्षरण तीव्र गति से होता है। वृक्षों का मृदा संरक्षरण पर अनुकूल प्रभाव का महत्व उन नदी घाटियों में विशेष रूप से बढ़ जाता है जिनमें बहुद्देश्यी बाँध बनाए गए है क्योंकि ऐसी नदियों के जलागम क्षेत्रों में मृदाक्षरण का सेवा जीवन बहुत घटा देता है।

सारिणी संख्या – 2.02

भार में अवनत भूमि (मिलियन में) 8

वर्ष	भूमि अवनतिकरण का प्रकार			
	लवणता	अलमग्नता	क्षरण	कुल
1947	3.6	1.2	107.5	112.8
1950	3.9	1.4	110.4	116.2
1960	4.8	2.2	120.5	128.7
1970	6.0	3.7	131.6	143.3
1975	6.7	4.7	137.6	151.6
1980	8.0	6.0	150.6	168.4
1985	9.4	8.5	141.5	80.0
1994	10.1	11.6	162.4	191.8

1.रोजगार का साधन

सामाजिक वानिकी के अन्तर्गत होने वाले वृक्षारोपण में सबसे बड़ा महत्व रोजगार दिलाना है। भारत की एक अरब पार कर चुकी जनसंख्या के सामने रोजगार सबसे बड़ा प्रश्न है। उत्तर प्रदेश का जनसंख्या की दृष्टि से प्रथम स्थान है। वृक्षारोपण कार्यक्षेत्र में सर्वे सीमांकन व सफाई के साथ–साथ यहाँ मृदा कार्य व वृक्षारोपण होने क्षेत्र की उत्पादक बढ़ती है और रोजगार क्षेत्र भी विस्तृत होता है। अर्थात् वृक्षारोपण हेतु क्षेत्रों का सीमांकन, सफाई, अग्रिम मृदा कार्य, पौध रोपण व इसकी देख–रेख आदि सभी कार्य मुख्यतरू श्रम उन्मुख है। अतरू उस क्षेत्र के श्रमिक को पर्याप्त मात्रा में रोजगार सुलभ होता है। इसमें केवल खाद कीटनाश्क, पौध, फाबड़ा आदि छोटी मोटी वस्तुओं का ही क्रय होता है। अतरू कुल लागत का 60 से 70 प्रतिशत भाग श्रमांश होता है। पर्यावरण तथा सामाजिक वानिकी रोजगार प्राप्त होने से आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती है। फलस्वरूप उनका जीवन स्तर उन्नतशील होता है।

सामाजिक वानिकी के अन्तर्गत उन वनवासियों तथा वन के आस पास ग्रामों में रहने वाले उन अदक्ष तथा अल्पदक्ष मजदूरों को रोजगार मिलता है जिनके लिए रोजगार की कोई अन्य सुविधा नहीं है।

2. मृदा संरक्षण, बेकार बंजर व अवनत भूमि का उपयोग

मृदा संरक्षणरू वृक्ष, मृदा क्षरण रोकने मृदा जनन व मृदा संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते है। वृक्ष मृदा रक्षा के लिए तीन स्तरीय मोर्चा बनाते है। सबसे ऊपर वृक्षों के छत्र वर्षा की बूँदो को भूमि पर सीध आघात करके मृदाक्षरण करने से रोकते है। उसके नीचे तल पर पड़ा पत्तों का सड़ा स्तर वर्षा जल को सोखकर उसकी गति व मात्रा को कम करता है जिससे मृदा क्षरण न्यून हो जाता है। सबसे नीचे भूमि में वृक्षों की जड़ें मृदा को बाँधकर मृदाक्षरण को बहुत कम कर देती है। सूखे क्षेत्रों में भी वृक्ष और वन वायु के वेग को कम

सारिणी संख्या 2.03

उत्तर प्रदेश में वृक्षारोपण योग्य अनुमानित भूमि

क्र.सं.	रोपण योग्य भूमि	इकाई	अनुमानित भूमि
1	सामुदायिक भूमि	हे०	112828
2	अवनत भूमि	हे०	142211
3	कृषि के अयोग्य कृषि की निजी भूमि	हे०	29748
4	अनुमानित परती भूमि	हे०	82368

स्रोत : उत्तर प्रदेश वन सांख्यिकी, 2010

इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश में बीहड़ खादर व खोला क्षेत्रों में पायी जाने वाली अनुपजाऊ मृदा को भी वृक्षारोपण कर उपयोगी बनाने में सामाजिक वानिकी का योगदान है। भारतवर्ष में बीहड़ का कुल क्षेत्रफल लगभग 39.75 लाख हेक्टेयर है जिसमें से लगभग 12.30 लाख हेक्टेयर उत्तर प्रदेश में ही है ।

सारिणी संख्या–2.04

क्र.सं.	जनपद	खादर का अनुमानित क्षेत्रफल (हेक्टेयर)
1	मेरठ	37488
2	बदायूँ	36419
3	हरिद्वार	31700
4	बिजनौर	28872
5	इलाहाबाद	18453
6	रायबरेली	13364
7	हरदोई	15161
8	मुरादाबाद	13984
9	उन्नाव	10957
10	गाजियाबाद	9213
11	फर्रूखाबाद	9024
12	मुजफ्फरनगर	8074
13	बलिया	5931
14	एटा	5368
15	अलीगढ़	2517
16	बुलन्दशहर	2488
17	फतेहपुर	1964
	योग	255977

उत्तर प्रदेश में 34 जनपद गंगा नदी के किनारे स्थित है जिनमें सबसे अधिक खादर प्रभावित क्षेत्र मेरठ, बदायूँ, हरिद्वार एवं बिजनौर आदि है। प्रदेश में लगभग 2.56 लाख हेक्टेयर क्षेत्र खादर प्रभावित है। खादर प्रभावित प्रमुख जनपदों का विवरण तालिका में दर्शाया गया

है। वृक्षों की पत्तियों व जड़े वर्षा के पानी को शीघ्र बह कर नदियों में मिलने से रोकते हैं। जिससे यह पानी जमीन के भीतर रिस कर भूमिगत जल की मात्रा बढ़ाता है। भूमि पर छाया प्रदान करते वृक्ष भूमि की उत्पादकता बनाये रखते हैं। इनकी पत्तियों के भूमि पर गिरने तथा जड़ों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्षमता होने से भूमि की उत्पादकता बढ़ती है। जिस क्षेत्रों में वृक्ष नहीं होते वह धीरे–धीरे ऊसर बन जाता है। जल संरक्षण के साथ–साथ वृक्ष अपनी जड़ों द्वारा उपजाऊ मिट्टी को संरक्षण करते है। और मिट्टी को वर्षा के पानी हवा आदि द्वारा नदियाँ व समुद्रों में जाने से रोकते है जिससे हमारी धरती उपजाऊ बनी रहती है। वन नदियाँ के तीव्र प्रवाह को रोककर वर्षा के वेग को कम करके भूमि की अवशोषिण क्षमता बढ़ाकर भूमि व जल का संरक्षण करते हैं तथा जलवायु को मृदुल बनाने और सूखे की विभीषिका को कम करने में महत्वपूर्ण योगदान देते है।[8] (कृषि वानिकी के अन्तर्गत खेत के चारों तरफ मेड़ों पर दो या तीन पंक्तियों में अथवा खेतों के अन्दर पंक्तियों में एक निश्चित दूरी (3 मीटर के अंतराल) में फसलों के साथ वृक्षों को रोपित किया जाता है। इस पद्धति में रोपित वृक्षों के मध्य दूरी इस प्रकार रखी जाती है कि उनके मध्य में कृषि फसलों को रोपित किया जा सके तथा कृषि कार्य हेतु उनके मध्य से ट्रैक्टर आदि चलाये जा सकें।

कृषि वानिकी पद्धति को उपलब्ध स्थल एवं स्थानीय आवश्यकता की पूर्ति के अनुसार विभिन्न स्वरूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. कृषि वानिकी पद्धति
2. कृषि बागवानी पद्धति
3. कृषि बागवानी वानिकी पद्धति
4. पुष्प बागवानी, कृषि एवं वानिकी पद्धति
5. सब्जी वानिकी पद्धति
6. मत्स्य पालन वानिकी पद्धति
7. गृह वाटिका पद्धति
8. चाह वानिकी
9. जड़ी–बूटी कृषि वानिकी पद्धति हर्बल गार्डन।

1.शीघ्र बढ़ने वाला रू कृषि वानिकी के अन्तर्गत ऐसे वृक्षों को उगाना चाहिए जो बहुत तेज बढ़ने वाली हो जिससे कृषक अपने लाभ हेतु कम समय में ही उपज प्राप्त कर सकें।

2. सीधा तना : कृषि वानिकों में रोपण हेतु सीधे तर्ने, कम शाखाओं, विरल छत्र व शाख तराशी सहने वाली वृक्ष प्रजातियों को चयन में प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

3. गहरी जड़ें रू कृषि वानिकी में लम्बी जहाँ वाले वृक्षों को उगाना बहुत लाभदायक होता है। ये जड़ें भूमि में जाकर नीचे से पोषक पदार्थ ऊपर लाती है जो कृषि की फसलों को फायदा पहुँचाता है। वृक्षों की मूसला जड़ों की बढ़त इस प्रकार हो कि जल व खनिज लवणों के अवशोषण व फसलों को आवश्यकता के साथ सामंजस्य स्थापित
कर सकें।

4. कृषि वानिकी हेतु कुछ उपयोगी प्रजातियाँ रू यूकेलिप्टस, पॉपुलर, सु–बबूल, शीशम, बांस, आंवला, सागौन, जेट्रोफा आदि। 14 पॉपुलर वृक्ष प्रजाति आजकल कृषकों के मध्य लोकप्रिय है। यह तराई क्षेत्रों में कृषकों के द्वारा अपनायी जा रही है। इस प्रणाली में यूकेलिप्टस, सागौन तथा शीशम का रोपण भी क्षेत्र विशेष के अनुसार कृषकों द्वारा अपनाया जा रहा है। इससे कृषकों को सीमित क्षेत्र से अधिकतम आय प्राप्त हो रही है तथा महिलाओं द्वारा कुटीर उद्योग अपनाकर अतिरिक्त आय अर्जित की जा है।

5. प्राकृतिक वनों पर दवाब कम

उत्तरोत्तर बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रकृति के मर्मस्थल अर्थात वनों को खेत, आवास व उद्योग क्षेत्र में परिवर्तन करने तथा लकड़ी की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए निरन्तर उजाड़ा जा रहा है। 17 पुर्नगठन होने के बाद उत्तर प्रदेश में भाग 10,756 वर्ग किमी० क्षेत्र ही वन रह गये है। वर्ष 1998 तक देश का सात लाख हे० (714855.30) वन क्षेत्र अतिक्रमण के आधीन हो चुका था। विकास कार्यो व उद्योगों की स्थापना के लिए सबसे अधिक सुलभ क्षेत्र वन माने जाते थे। वर्ष 1980 से वन संरक्षण अधिनियम 1980 लागू हो जाने से वन भूमि का गैर–वानिकी कार्यो के लिये हस्तान्तरण काफी कठिन हो गया। इसके बावजूद 1980 से 1998 तक देश के लगभग 4 लाख हे० (3,77,983.18) वन क्षेत्र गैर वानिकी कार्यो के लिये हस्तान्तरित कर दिये गये थे। बढ़ती जनसंख्या के कारण वन उपज की मांग तीव्र गति से बढ़ रही है। जिसकी आपूर्ति हेतु वनों पर निर्भरता बढ़ रही है। परन्तु निरन्तर घटते वन इस आवश्यकताओं की पूर्ति में अक्षम जिसमें सामाजिक वानिकी योजनाओं ने वृक्षारोपण कर वन उपजों का उत्पादन व प्राकृतिक वनों को संरक्षण दिया। चूँकि भारत एक कृषि प्रधान देश है। अतः यहाँ दैनिक जीवन में पशुओं का विशेष स्थान है। पुर्नगठित उत्तर प्रदेश में चराई क्षेत्रों पर सर्वाधिक दवाब पूर्वी क्षेत्र है यद्यपि

ग्रामीण ठक्षेत्रों में ट्रैक्टर के बढ़ते उपयोग व घटते चराई क्षेत्र के कारण चराई करने वाले पालतू पशुओं की संख्या में कमी आ रही है किन्तु यह कमी वन क्षेत्रों के समीप में नहीं थी। परन्तु वनों लगातार घटते रहने से परिस्थितिकीय है अंसतुलन की स्थिति आ गयी है और वन्य जीवों का नगरीय क्षेत्रों को पलायन होने लगा है फलस्वरूप वे भोजन आपूर्ति हेतु जंगली जानवर ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को हानि पहुँचाने लगे है। यद्यपि कुछ जानवरो हमारी संस्कृति के द्योतक भी है। तथापि उनका अस्तित्व संकटग्रस्थ भी है। जैसे नाग, बैल, अश्व गाय आदि। सामाजिक वानिकी अन्तर्गत वृक्षारोपण कर वनों पर बढ़ते दबाव को कम ठकिया गया है और कुछ क्षेत्रों को केवल वन्य जीवों हेतु ही संरक्षित कर दिया गया है। इस वक्त उत्तर प्रदेश में एक राष्ट्रीय उद्यान (लखीमपुर खीरी) व 24 वन्य जीव विहार व पक्षी विहार विभिन्न क्षेत्रों में है। इन क्षेत्रों वृक्षारोपण कर प्राकृतिक वन भूमि क्षेत्र का विस्तार किये जाने का प्रस्ताव है। इन वृक्षों पर अनगिनत पक्षियों का आश्रय स्थल बना है। पर्यावरण की शुद्धता के लिये वृक्ष लगाना ही आवश्यक नहीं है वरन् जीवों की सुरक्षा का उतना ही महत्व है इन वृक्षों के लाभ सिर्फ मानव हेतु ही नहीं है। इससे जीव–जन्तुओं व अनेक सूक्ष्म जीवों के लिये आवास मिलता है जिससे उच्च जैविक तत्वों से युक्त पोषक तत्वों वाली कोमल मृदा का निर्माण होता है। फलस्वरूप मिट्टी का उपजाऊपन बना रहता है।

सन्दर्भ सूची **पृष्ठ सं.**

1. 21 वी सदी की वानिकी 01
2. उ० प्र० वन सांख्यकीय 01:2
3 .हम और हमारे वन 24
4. उ ऋ वन सोख्यकीय 19
5. पर्यावरण शिक्षा
6. सामाजिक वनिकी – एक मूल्यांकन
7. योजना (लेख)

शोध निर्देशिका
डॉ0 रानी त्रिपाठी
9452800885
से. नि. प्राचार्य
आर्य महिला डिग्री कॉलेज
शाहजहांपुर

शोधार्थी
ज्योत्सना गुप्ता
अली गंज रोड गोला
गोकरन नाथ (खीरी)

17

प्रेमचन्द के साहित्य में स्त्री विमर्शः–

अमित चौधरी

सारांश

प्रेमचन्द नें हिन्दी साहित्य कों कल्पना की दुनिया से हटाकर उसे यथार्थ के धरातल से जोडा तथा तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्रित किया। उनके कहानी के केन्द्र में आम लोग जिसमें किसान, मजदुर, निम्न वर्ग, निम्न मध्य वर्ग साथ ही साथ प्रेमचन्द स्त्रीयों पर हो रहें अत्याचार,नाईन्साफी का यथार्थ चित्रण करतें हे। वे केवल नारी समस्याओं की बात ही नहीं करतें है बल्कि उनका हल भी पेश करतें है। नारी मुक्ति की बात करतें है नारी शिक्षा पर बल देतें है, नारियों का स्वावलम्बी बननें की प्रेरणा देतें है तथा नारी के महत्व कों भली–भॅाति रेखांकित करतें है। वे तत्कालीन समाज में फैली बुराईयों जैसे दहेज प्रथा, बाल विवाह, वेश्यावृति, अनमेल विवाह आदि समस्याओं पर तीखा व्यंग्य करतें है तथा इन समस्याओं के दुष्प्रभाव दिखातें है तथा इन समस्याओं के समझनें का प्रयास करतें है।

प्रस्तावनाः– प्रेमचन्द का नाम केवल हिन्दी साहित्य में ही नहीं बल्कि विश्व फलक पर आज भी विद्यमान है। वो प्रेमचन्द ही थें जिन्हानें हिन्दी सहित्य कों उसके शैशव काल से निकालकर सीधें यौवन काल तक पहुॅचा दिया। उन्होनें हिन्दी साहित्य कों काल्पनिक दुनिया से हटाकर सीधे यथार्थ कें धरातल से जोड दिया। प्रेमचन्द नें आम लोगों की सभी परेशनियों, समस्याओं का यथार्थ रूप में जमानें के सामनें रखा। इस वचित वर्ग में निम्न वर्ग, किसान, मजदूर और नारी जाति मुख्यतः शामिल थी। 19वीं सदी के अंत तक भी नारी की स्थिती ज्यों की त्यों बनी हुई थी। वह प्रेशित होकर भी शोषित थी। प्रेमचन्द की दृष्टि इस और गई। प्रेमचन्द नें अपने साहित्य द्वारा नारी को दयनीय स्थिती से उबारने का प्रयास आरम्भ किया। प्रेमचन्द की कथा साहित्य का मूल उद्धेश्य था– श्नारी मुक्ति। जिसका समर्थन शंभूनाथ जी ने भी किया। वे कहतें है कि श्प्रायः सभी उपन्यासों और कहानियो में प्रेमचन्द नें सामाजिक कुप्रथाओं पर चोट की और नारी मुक्ति की आवाज उठाई।

बीज शब्दः– अनमेल विवाह, विधवा की त्रासदी, वेश्या जीवन, नारी शिक्षा, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, बेमेल विवाह।

शोध उद्धेश्यः–1. तत्कालीन समाज में फैली समस्याओं जैसे दहेज प्रथा, बाल विवाह, वेश्यावृति आदि के दुष्परिणामों का यथार्थ चित्रण करना।

2. समस्याओं का यथासम्भव समाधान पेश करना।

3. नारी कों अबला से सबला बनानें के लिए नारी शिक्षा कों बढावा देना।

शोध प्रविधिः– 1. प्रेमचन्द की कहानियों का अन्वेषण।

2. प्रेमचन्द के उपन्यास विशेशतः गोदान का गहन अध्ययन तथा अन्वेषण।

3. वेबसाईट,ब्लाग, सामचार पत्र, पत्र–पत्रिकाएं इत्यादि में उपलब्ध सबंधित सामग्री का अन्वेशण

प्रेमचन्दः– स्त्री विमर्ष की रचनाओं में।

प्रेमचन्द का जन्म 31 जुलाई 1880 को बनारस के नजदीक लमही गांव में हुआ था। इनके पिता का नाम अजायब राय तथा माता का नाम आनन्दी देवी था। प्रेमचन्द के बचपन का नाम धनपतराय था। उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द नें पहलें पहल उर्दू में लिखना शुरू किया व बाद में मुंशी जी उर्दू से हिन्दी में आए। मुंशी प्रेमचन्द ही थें जो हिन्दी साहित्य कों जासूसी और तिलस्म की दुनिया से हटाकर सामाजिक यथार्थ से जोडा। प्रेमचन्द की कहानियों, उपन्यासों में मानवीय संवेदना की तीखी अनुभूति है।

प्रेमचन्द की रचनाओं में स्त्री विमर्षः– प्रेमचन्द नें अपनी रचनाओं में सूक्ष्म दृष्टि नारी की व्यथा पर केन्द्रित की है। स्त्री विमर्ष चिंतन का वह स्वर है जों महिलाओं की दशा पर न केवल केन्द्रित है। बल्कि जो महिलाओं की स्थिती में सुधार लाकर उसे पुरूशों के बराबर अधिकार प्रदान करनें पर जोर देता हे। जहॅा बुढी काकी नामक कहानी में उन्होनें पति की मृत्यु के उपेक्षित होतें वृद्धों व नारियों की दशा का यथार्थ वर्णन किया है। जहॅा बूढी काकी अपनें पति की मृत्यु के बाद अपने ही घर में उपेक्षित जीवन जी रही है– बाद में प्रेमचन्द जी नें आदर्श स्थिती रखतें हुए कहानी में ठीक कर दिया कि काकी की बहू नें पश्चाताप् जतातें हुए बूढी काकी के आगे खेद प्रकट करतें हुए कहा किः–

काकी उठों, भोजन कर लों। मुझसें आज
बडी भूल हुई, उसका बूरा न मानना।
परमात्मा से प्रार्थना कर दों कि वह मेरा
अपराध क्षमा कर दें।

वेश्यावृत्तिः–

प्रेमचन्द जी नें वेश्यावृत्ति की समस्या कों भी ज्वलंत तरीकें से

उठाया और समाज के सामनें रखा। उन्हानें वेश्यावृत्ति के कारण, दुष्परिणाम और इसके समाधान भी पेश किए। उपन्यास सम्राट का मानना था कि वेश्यावृत्ति अपनाने वाली महिलाएँ समाज द्वारा ठुकराई हुई होती है। अगर उन्हें भी अच्छी जिंदगी मिलें तो वेश्यावृत्ति उनकी पसन्द हर्गिज न होगी।

सेवासदन में सुमन कहती हैः–

मैं जानती हूँ कि मैनें अत्यन्त निकृष्ट कार्य किया है, लेकिन मैं विवश थी। इसके सिवाए मेरे लिए कोई रास्ता ना था।सुमन आगे कहती हैः– मेरे मन में यही चिंता थी कि आदर कैसे मिलें। वेश्यावृति की कारणों पर भी प्रेमचन्द ने गहनता से विचार किया है तथा इन कारणों कों अपने रचनाओं में अभिप्यक्त किया है। सेवासदन की सुमन का पति गजाधर प्रसाद द्वारा घर से निकाल देने पर पद्म सिंह का आश्रय लेती है। किन्तु वह भी उसे कुछ समय बाद निकाल देता हे, ऐसे में सुमन भोलीबाई की शरण में गई, मगर उस दशा में भी इस कुमार्ग से भागती रही। वह कहती हैः– मैनें चाहा कि कपडें सींकर अपना निर्वाह करूं पर दुष्टों नें मुझे ऐसे तंग किया कि अन्त में मुझे इस कुएँ में कुदना पडा। इसी प्रकार प्रेमचन्द की निर्वासन कहानी की मर्यादा कों एक दलाल धोखा देकर अपने जाल में फसॉनें का प्रयत्न करता है, उसी प्रकार नरक का मार्ग कहानी की युवती विधवा कों एक वृद्धा कुटनी शडयंत्र से वैश्या बना देती है। जिसे धन की इच्छा हो उसे धन का, जिसे संतान की इच्छा हो उसें संतान का प्रलोभन देकर यह वृद्धा वश में कर लेती हे।

कन्या जन्म एक अभिशापः– प्रेमचन्द जी नें तत्कालीन समाज में कन्या जन्म कों अभिशाप समझे जानें वाली समस्या को भी उठाया है। उनके द्वारा लिखित "नैराश्य" कहानी की निरूपमा ऐसी ही अभागिनी स्त्री है। कहानी की शुरूआत में ही कहा गया है कि आज आदमी अपनी स्त्री से इसलिए नाराज रहता है कि उसके लडकियॉ क्यों होती हे। लडके क्यों नहीं होतें..... सीधें मुँह बात नही करतें, कई दिनों तक घर में ही नहीं आतें और आतें भी तो इस तरह खिंचें तनें रहतें कि निरूपमा थर–थर कॉपती रहती थी। कहीं गरज ना उठें।

ग्रामीण नारी का नारकीय जीवनः– प्रेमचन्द नें ग्रामीण जीवन का यथार्थ वर्णन करते हुए किसान की दयनीय अवस्था का वर्णन करते हुए उनकी पत्नियों के दारूण जीवन का वर्णन भी किया है। प्रेमचन्द नें अपने उपन्यास गोदान के अन्तिम दृष्य में इस सच्चाई को साक्षात प्रस्तुत कर दिया है जहॉ धनिया होरी की मृत्यु के बाद कहती हैः–

महाराज घर ना गाय है ना बछिया
ना पैसा, यही पैसें है। यहीं उनका गोदान है
और पछाड खाकर गिर पडती है।

किसानों की पत्नियों के दारूण जीवन का वर्णनः– यहॉ प्रेमचन्द नें गोदान में धनिया का एक और दृष्य उपस्थित किया हैः– उनकी ही उम्र अभी क्या थी। 36वॉ ही साल तो था पर सारें बाल पक गए थे, चेहरे पर झुर्रियॉ पड गई थी। सारी देह ढल गई थी। वह सुन्दर गेहुँआ रंग सॉवला हो गया था। और ऑखों से भी कम सूझनें लगा था। पेट की चिन्ता ही के कारण तों कभी तो जीवन का सुख न मिला। आगें फिर सें प्रेमचन्द धनिया के जीवन के बारें में प्रेमचन्द बतातें हैः– जिस गृहस्थी में पेट की रोंटियॉ भी न मिलें, उसके लिए इतनी खुशामंद क्यों इस परिस्थती से उसका मन बराबर विद्रोह किया करता था, और दो–चार घुडकियॉ खा लेनें पर ही उसे यथार्थ का ज्ञान होता था।

विधवा समस्याः– प्रेमचन्द युगीन समाज में विधवा स्त्रीयों के लिए कोई भी अधिकार स्त्रीयों के लिए कोई भी अधिकार उपलब्ध नही था, इसकें अलावा उन्हें जायदाद से भी बेदखल कर दिया जाता था। इस समस्या को प्रेमचन्द नें अपनी कई रचनाओं में प्रमुखता से उठाया था।

गबन में विधवा रतन कहती हैः– ना जानें किस पापी नें यह कानून बनाया था कि पति के मरते ही हिन्दू नारी इस प्रकार स्वत्व–वंचिता हों जाती है।

विधवा विवाहः– प्रेमचन्द जी के उपन्यास "प्रतिज्ञा" का केन्द्र बिन्दु विधवा समस्या ही है, जिसकी पूर्ण विवाह के दो वर्ष बाद ही विधवा हो जाती है। इसी तरह 'धिक्कार' कहानी की मानी सोलह वर्श की अवस्था में विधवा हो जाती हे। माता–पिता के न होनें कें कारण चाचा वंशीधर के यहॉ रहती है, जहॉ उसे महरी की भॉति रहना पडता है।

प्रेमचन्द जी के शब्दों में– न जानें क्यों चाचा और चाची उससे जलतें रहतें है। उसके आतें ही महरी भी अलग कर दी गई है। नहलानें धुलानें के लिए एक लौण्डा था उसें भी जवाब दे दिया गया पर मानी से इतनी उबार होनें पर क्यों चाचा और चाची मुँह फुलाए रहतें है। चाचा घुडकियॉ जमातें है और चाची कोसती है। बाद में मानी इन्द्रनाथ से विवाह कर लेंती हे। लेकिन चाचा के अपमानित करनें पर अपने प्राण त्याग देती है। यहॉ भी प्रेमचन्द नें इस समस्या के निराकरण के लिए विधवाओं के पुनः विवाह का समर्थन किया है। 'गोदान' में गोबर और झुनिया का विवाह भी विधवा पुनर्विवाह कों ही प्रदर्शित करता है।

बेमेल विवाहः– प्रेमचन्द नें अपनी रचनाओं में बेमेल विवाह के दुश्परिणाम के बारें में भी लिखा है। प्रेमचन्द एक कहानी 'नरक का मार्ग' मे लिखते हैंः–

स्त्री सब कुछ सह सकती है, दारूण से दारूण दुःख बडें से बडा

संकट, अगर नहीं सह सकती है तो अपने यौवन काल की उमंगों का कुचला जाना।

यहॉ लडकी के माता–पिता धन के लोभ में लडकी का बेमेल विवाह कर देतें है। बूढें पति को पाकर भी लडकी सोचती है कि वह पति की सेवा करेंगी, क्योंकि यह उसका धर्म है। लेकिन बाद में स्त्री यह महसूस करती है कि उसकी स्थिती उस चिडिया जैसी है जो पिंजरें में बंद है। 'नरक का मार्ग' कहानी मे प्रेमचन्द की स्त्री कहती है किः– श्मैं इसे विवाह का पवित्र नाम नहीं देना चाहती..... यह करावास ही है। मैं इतनी उदार नहीं हूॅ कि जिसनें मुझे कैद में डाल रखा हो उसकी पुजा करूॅ, जो मुझे लात मारें उसके पैरों कों चूॅमू।

नारी सशक्तिकरणः– प्रेमचन्द जी नें नारी को पुरूष के समान अधिकार मिलनें की भी बात समानें रखी। इनकी रचनाओ में नारी–पत्र दीन दुःखी तो है पर वह सशक्त है। वे गोदान में लिखते हैः–जब पुरूष में नारी के गुण आ जातें है तों वो महात्मा बन जाता है और अगर नारी में पुरूष के गुण आ जातें है तो वों कुलटा बन जाती है।गोदान में उद्धृत ये पक्तियॉ प्रेमचन्द का नारी को देखने का नजरिया बयॉ करता हे।

नारी की पवित्रता पर बलः– प्रेमचन्द नारी की यौन–शुचिता पर कोई ढील तथा कोई समझौता करनें को तैयार नहीं है। प्रेमचन्द साहित्य में नारी की यौन–शुचिता एंव पवित्रता के अनेक प्रसंग मिलतें है। प्रेमाश्रम नामक उपन्यास में उपन्यास गायत्री विधवा है, सम्पतिवान है और सती–साध्वी स्त्री हैं, किन्तु उसकी छोटी बहन का पति ज्ञानशंकर उसके शरीर तथा धन दोनों कों हथियाना चाहता हैं। गायत्री के पिता राय कमलानन्द अपने दामाद ज्ञानशंकर की प्रवृतियों कों समझ जातें है। राय कमलानन्द विद्या सें कहतें है– अगर उसकें सतीत्व पर जरा भी धब्बा लगा तो तुम्हारें कुल का सर्वनाश हो जाएगा। रंगभूमि उपन्यास में भी नारी की यौन–शुचिता के कई प्रसंग है। विनय और सोफिया जब भीलों की बस्ती में होतें है तो लेखक कहता है कि दोनों प्रेम में डूबे है, दोनों मिलन के लिए उद्विग्न, विकुल और अधी है, परन्तु एकान्त और स्वाधीनता होनें पर भी नैतिक बन्धनों की दृढता उन्हें मिलने नहीं देती है।

बलात्कार की समस्याः– प्रेमचन्द बलात्कार की चेष्टा पर अपराधियों को दण्डित करातें है। कायाकल्प उपन्यास में साम्प्रदायिक दंगें के दौरान ख्वाजा साहब का बेटा अहिल्या कों उठा कर ले जाता है और बलात्कार की कोशिश करता है तो अहिल्या उसकी ही छुरी से हत्या कर देती है और ख्वाजा साहब कहतें हैः– उसने हर एक लडकी के लिए नमूना पेश कर दिया। खुदा और रजूल दोनो उसे दुआ दे रहे है।

दहेज प्रथाः– भारतीय समाज में दहेज प्रथा आज भी नारी शोषण का कारण है। प्रेमचन्द युगीन समाज में भी यह कुप्रथा विद्यमान थी। लोग पुत्री के जन्म पर शोक मनाया करतें थें। उद्धार कहानी में लेखक नें दिखलाया है कि दहेज की चिंता सें कोई भी मॉ–बाप मुक्त नहीं हो सकतें, इसी कारण एक परिवार में सात पुत्री के बाद भी एक कन्या का जन्म परिवार कें लिए बोझ बनता है। 'दहेज के अभाव में कोई बुढे के गलें मे कन्या को मढकर अपना गला छुडाता है।' कुसुम कहानी का नायक अपने ससुर के पैसों से विदेश जाकर पढाई करनें के इरादें से शादी करता है, लेकिन यह इच्छा जब पूरी नहीं होती तब अपनी पत्नी कुसुम को त्याग देता है दहेज के कारण परिवार की जो दुगर्ति होती है इसके बारें में प्रेमचन्द लिखतें हैः–

जिसके घर में दो–तीन कन्याएं आ गई है, बस समझ लो उसका सर्वनाश हो गया। माता–पिता के लिए अब इसके सिवाए और कोई त्राण नहीं कि वे अपना पेट काटें, तन काटें धोखाधडी से रूपयें लाए।हिन्दु विवाह की विभिन्न समस्याओं में दहेज प्रथा प्रेमचन्द युगीन समाज की सबसें गम्भीर समस्या थी। प्रेमचन्द नें अपनी रचनाओं में जगह–जगह इस समस्या कों दिखाया हैः–

सेवासदन की गंगाजली अपने पति से अधिक दूरदर्शी है। कृष्णचन्द हाथ रोककर खर्च करना जानता ही नहीं, गंगाजली उनके इस स्वभाव को लेकर चिंतित रहती है, क्योंकि वह जानती है कि लडकियों का विवाह किसी तरह टाला नहीं जा सकता। और इसके लिए पर्याप्त धन भी चाहिए। कृष्णचन्द इन समस्याओं से स्वयं को मुक्त रखना चाहतें है। लेकिन बडी पुत्री सुमन को सोलहवीं वर्ष लग जानें पर अब कृष्णचन्द अपने से अधिक धोखा न दे सके। वर की खोज में दोडनें लगें, कई जगह से टिप्पणियॉ मॅगवाई। इसी प्रकार गोदान में प्रेमचनद अभिभावकों की इसी चिन्ता कों रेखाकिंत करतें है।

गोदान में सोना सत्रहवें साल में थी और इस साल उसका विवाह करना आवश्यक था। छोरी हो तों दो साल इसी फिक्र में था। पर हाथ खाली होनें से कोई काबू न चलता था। मगर इस साल जेसे भी हो उसका विवाह कर देना ही चाहिए, चाहें कर्ज लेना पडें चाहे खेत गिरवी रखनें पडें।दहेज जैसी कुप्रथाओं के कारण कन्या के जन्म पर अभिभावक खुश होनें की बजाय दुःखी हो जातें थें। और अगर गलती से किसी लडकी की मृत्यु हो जाए तों माता–पिता दुःखी होनें की बजाय राहत की सॉस लेतें थें। प्रेमचन्द जी ने उद्धार कहानी में इसी दृष्य को दर्शाया हे। 'ऐसे माता–पिताओं की कमी नहीं है जो कन्या की मृत्यु पर प्रसन्न होतें है मानो सिर से बाधा टली।' प्रेमचन्द ने बताया कि कैये मध्यम वर्गीय परिवारों में दहेज के मॉग के कारण उन परिवारों को कैसे कठिनाईयों का सामना करना पडता है।

मध्यमवर्ग बेटी के विवाह के लिए अलग से बचा के नहीं रख पाते इसलिए बेटी का विवाह मध्यमवर्गीय परिवार के लिए एक आर्थिक समस्या बनकर सामनें आती है। सेवासदन का दरोगा कृष्णचन्द निःस्वार्थ और निर्लोभी व्यक्ति है पुलिस में रहकर वे रिश्वत नहीं लेतें। अपनी पुत्रियों के विवाह के विषय में वे निश्चिन्त है क्योंकि वो समझतें हे कि शिक्षित परिवार में दहेज का प्रश्न उठेगा ही नहीं। समाचार पत्रों में वे जब वे दहेज के विरोध में बडे–बडें लेख पढते तो प्रसन्न होतें। चिन्ता करनें की कोई जरूरत नहीं। लेकिन इस सम्बन्ध में उन्हें कछ यथार्थ का अनभव तब हआ जब उन्होंनें सुमन के लिए वर खोजना शुरू किया। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वरों का मोल उनकी शिक्षा के अनुसार हे। राशि वर्ण ठीक हों जानें पर जब लेन–देन की बातें होने लगती तब कृष्णचन्द की ऑखों के सामनें अंधेरा छा जाता था। कोई चार हजार सुनाता तो कोई पॉच हजार और कोई इससे भी आगें बढ जाता। ऐसी स्थिती में दरोगा कृष्णचन्द के सामनें दो ही विकल्प शेष रह जाते या तो पुत्री का विवाह किसी कुपात्र से करके इस उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाए या फिर रिश्वत लेकर दहेज की रकम जुटाए। कृष्णचन्द नें दुसरे उपाय का ही आश्रय लिया। सही समस्या प्रेमचन्द ने निर्मला उपन्यास में उठाई है। निर्मला में उदयभानु अपनी पुत्री निर्मला का विवाह अपने जीवनकाल में भालचन्द्र सिन्हा के पुत्र के पुत्र भुवन मोहन से निश्चित कर चुकें थें, लेकिन उनकी मृत्यु के बाद पर्याप्त दहेज ने मिलनें की आशा के कारण भालचन्द्र सिन्हा नें यह रिश्ता तोड दिया। भालचन्द्र सिन्हा जैसे लोभी व्यक्ति स्वार्थ के लिए अपने पुत्र का विवाह उसी सें करना चाहतें है, जिसके यहॉ अधिकाधिक धन मिलें। प्रेमचन्द केवल दहेज प्रथा की समस्या को दिखातें ही नही बल्कि उसका समाधान भी पेश करतें है। कायाकल्प उपन्यास का चक्रधर साहसी नवयुवक है वह दहेज प्रथा के विरूद्ध है। उसके विवाह के लिए बात चलनें पर जब उसकी माता दहेज की बात उठाती है उस समय वह स्पष्ट से उसका विरोध करता हे। उसकी दृष्टि में विवाह के समय दहेज तय करना उसको बेचना है।

शिक्षा पर बलः– शिक्षा नारी का जन्मसिद्ध अधिकार नहींः– प्रेमचन्द जी नें शिक्षा आवश्यक माना। उनके संपूर्ण विकास के लिए आवश्यक माना। उनके अनुसार– 'जब तक स्त्रियॉ शिक्षित नहीं होगी और सब कानूनी अधिकार उनकों बराबर ना मिल जाए तब तक महज काम करनें से काम नहीं चलेगा।' प्रेमचन्द जी के अनुसार नारियों को ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए जिससें वे अपनें दायित्वों एवं उचित–अनुचित आदि समझ सकें। इसलिए गबन के एडवोंकेट इंद्रधनुश स्त्रियों के लिए शिक्षा अनिवार्य मानतें है।

गोदान उपन्यास में भी प्रोफेसर मेंहता स्त्री शिक्षा की उपयोगिता पर भाशण देतें है जो प्रेमचन्द जी के विचार लगतें है। शिक्षा पर मेहता कहतें है किः– मैं नहीं कहता, देवियो को शिक्षा की जरूरत नहीं है। है और पुरूषो से अधिक।

पर्दा प्रथा:– उस समय पर्दा प्रथा व्यापक रूप से प्रचलित थी, बल्कि आज भी 21वीं सदी में गॉवो में पर्दा प्रथा आज भी प्रचलित है। प्रेमचन्द पर्दा प्रथा के खिलाफ थें। यहॉ तक कि वों अपनी पत्नी शिवरानी देवी से भी कहतें है कि मैं तुमसें कहता हूॅ कि पर्दा क्यों नही छोडती।

नारी की विशिष्टताओं का अंकन:– प्रेमचन्द जी मानतें थें कि अगर नारी और पुरूष की तुलना की जाए तों कहीं ज्यादा श्रेष्ठतर है। प्रेमचन्द जी नें अपनी रचनाओं में अनेक जगर नारी की खुबियों उनकी विशिष्टताओ को बताया है। गोदान में मेहता कहते हैः–

देवियो, मैं उन लोगो में नही हूॅ जो कहतें है स्त्री और पुरूष मं समान शक्तियॉ है,समान प्रवृत्तियॉ है, और उनमें कोई विभिन्नता नहीं है। इससे भयंकर असत्य की मैं कल्पना नहीं कर सकता। यह वह असत्य है, जो युग–युगांतरो से संचित अनुभव को उसी तरह ढक लेना चाहता हूॅ, जैसे बादल का एक टुकड़ा सुर्य को ढक लेता है।श आगे मेहता कहता हैः–

स्त्री पुरूष सें उतनी ही श्रेष्ठ है:– जितना प्रकाश अधेरे से। मनुष्य के लिए क्षमा और त्याग और अहिंसा जीवन के उच्चतम आदर्श है। नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है।

यहॉ मानों प्रेमचन्द खुद अपनी भावनाओं कों मि. मेहता के जरिए व्यक्त कर रहें है।

स्त्री की दयनीय जीवन का यथार्थ अंकन:– प्रेमचन्द जी नें उस वक्त स्त्री की दयनीय जीवन से परिचित थें तथा उस दयनीय जीवन का उन्होनें अपनी रचनाओं में यथार्थ चित्रण किया है। उस वक्त विशेषकर निम्न मध्यमवर्गीय परिवार में या निम्न वर्गीय परिवार में स्त्री कों महज तभी तक पूछा जाता था जब तक वह स्वयं सारा काम करती थी, स्त्री बीमार हुई नहीं कि परिवार कों वह बोझ लगनें लगती थी। कफन कहानी में जब माधव की बीवी बुधिया प्रसव वेदना से कराह रही थी जब उसके पति और ससुर उसकी मदद के लिए आगें नही आए। इन्ही विशेषताओं को उद्घघाटित करनें वाला एक प्रसंग द्रष्टव्य हैः– 'घीसू नें कहा–मालूम होता है, बचेगी नहीं। सारा दिन दौडतें हो गया जो देख तो आ' माधव चिढकर बोला। श्मरना ही है तो जल्दी मर क्यों नही जाती। देखकर क्या करूं।

तू बडा बेदर्द है बें! सल भर जिसके साथ सुख–चैन से रहा, उसी के साथ इतनी बेवफाई।

स्त्री कों पुरूष की साथी होना चाहिए ना की सेविका। प्रेमचन्द ने इस बात को जोरदार तरीके सें कहा है जहॉ गोदान में धनिया होरी के हर

कदम पर हर परेशानी में साथ–साथ चलती है तथा होरी की हिम्मत बढाती है। कायाकल्प में नायक की स्त्री पुछती हैः–

नारी के लिए पुरूष सेवा से बढकर और कोई विलास, योग एवं श्रृगांर नहीं है परन्तु मौन कह सकता है कि नारी का यह त्याग उसका यह सेवा भाव ही आज उसके अपमान का कारण नहीं हो रहा है।

बाल विवाहः– प्रेमचन्द जी नें स्त्रियों की एक और समस्या बाल विवाह को भी खुलकर चित्रित किया है। प्रेमचन्द जी नें अपनी कहानी नैराष्य लीला में इस समस्या का चित्र प्रस्तुत किया। बाल विवाह कें परिणामस्वरूप छोटी उम्र की बालिकाओं का विवाह बडी उम्र के लोगों से कर दिया जाता था। जिससे बाल–विधवापन की समस्या भी उत्पन्न हुई। जैसे नैराष्य लीला में कैलासी का विवाह तो तेरह वर्ष की अपरिपक्वावस्था में ही कर दिया गया और वह इसी अवस्था में विधवा भी हो गई। प्रेमचन्द जी ने इस समस्या का समाधान भी पेश किया। वस्तुतः लडकी का छोटी उम्र में विवाह न करना और यदि इस प्रकार की गलती हो भी गई हो तों विधवा होनें पर पुनर्विवाह के द्वारा उसें फिर ठीक किया जा सकता है।

अन्तर्जातीय विवाहः– प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में अन्तर्जातीय विवाह की समस्या कों भी यथार्थ ढंग से पेश किया है। जहॉ गोदान में सिलिया ओर मातादीन इसी समस्या के शिकार है जिसमें अन्त में प्रेमचन्द नें मातादिन के हृदय में सिलिया के प्रति प्रेम भाव जागृत करकें इस समस्या का समाधान भी दिखाया जहॉ अन्त में मातादिन सिलिया सें करता है। नहीं सिलिया, जब तक प्राण है, तेरी शरण में रहूँगा। तेरी ही पूजा करूंगा।

इसी प्रकार गोबर और झुनिया का भी अर्न्तजातीय विवाह जिसके विरांध में गॉव वालों नें होरी कों जाति से बाहर कर दिया। अब कोई उसका हुक्का नही पीता, न उसके घर का पानी पीता है। इसी प्रसंग में पडित मातादीन धनिया से कहतें हैः–

गोबर का कुछ सर–सन्देश मिला कि नहीं धनिया, ऐसा कपूत निकला कि घर की सारी मरजाद बिगाड दी।श धनिया के मन में स्वयं यही भाव आतें रहतें थें उदास मन से बोंली। बुरे दिन आतें है–बाबा, तो आदमी की मति फिर जाती है, और क्या कहूँ।

ऐसे असाधारण कॉड पर गॉव में जो हलचल मचना चाहिए, वह मचा और महीनों तक मचता रहा। झुनिया कें दोनों भाई लाठियॉ लिए गोबर को खोजतें–फिरतें थें। भोला ने कसम खाई कि अब न झुनिया का मुँह देखेगें और न इस गॉव का। आगे इसके समाधान के रूप में प्रेमचन्द नें हीरा से झुनिया और गोबर के अर्न्तजातीय विवाह का निर्धारित दंड का भुगतान करा दिया। इसी प्रकार प्रेमा केशव के साथ हर तरह के कश्टों को सहने के लिए तैयार है, किन्तु केशव में इतना साहस नहीं है कि पिता की आज्ञा की अवहेलना कर वेश्या पुत्री प्रेमा से विवाह कर सकें।

निष्कर्षः– प्रेमचन्द नें नारी जीवन तथा उसकी समस्याओं कों बहुत निकट से देखा था। उस समय की नारी हर प्रकार से दुःखी एवं त्रस्त थी तथा नारकीय जीवन जीनें कों विवश थी। नारी हर रूप में चाहे वह कन्या,पत्नी, वधू, विधवा सभी रूपों में समस्याग्रस्त थी। प्रेमचन्द नें अपनी रचनाओं में न केवल चित्रित किया बल्कि उन्होनें इन समस्याओं के समाधान का भी प्रयास किया। लेकिन प्रेमचन्द युगीन समाज में नारी पुरी तरह पुरूष के अधीन रही। नारी कों केवल घर में रहने कों बाध्य किया गया। परिवार में पुरूष वर्ग का पूर्णरूपेण अधिकार रहा। लेकिन हम देखतें हे कि प्रेमचन्द युगीन समाज में स्त्री जिन समस्याऔं से घिरी हुई थी अब नारी यद्यपि उतनी समस्याओं से ग्रसित नहीं है पर अभी भी नारी कई समस्याओं से घिरी हुई है जिनमें मुख्य है– दहेज प्रथा, वेश्यावृति, अन्तर्जातीय विवाह, विधवा पुन–विवाह समस्या, महिलाओं की शिक्षा पर कम ध्यान देना आदि। अतः हमें अभी भी मैथिलीशरण गुप्त की उन पक्तियों की याद करना पडेगा जिनमे उन्होनें कहा था– अबला जीवन हाय तुम्हारी यह कहानी ऑचल में है दुध, ऑखों में है पानी।

संदर्भ सूचीः–

1. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास पृष्ठ न0 94
2. भूनाथ, प्रेमचन्द का पुनमूल्यांकन पृष्ठ न0 26
3. शिवरानी देवी, प्रेमचंद घर में, पृष्ठ न0 113
4. प्रेमचंद, नारी जीवन की कहानियॉ, पष्ठ न0 63
5. प्रेमचंद, सेवासदन उपन्यास
6. प्रेमचंद, गोदान उपन्यास, पष्ठ न0 366
7. प्रेमचंद, गबन उपन्यास
8. प्रेमचंद, गोदान उपन्यास, पृष्ठ सं. 152
9. प्रेमचंद, प्रेभाश्रम उपन्यास
10. प्रेमचंद, कायाकल्प उपन्यास।

अमित चौधरी

शोधार्थी (हिन्दी–विभाग)

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय

रोहतक (हरियाणा) –124001

18

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नारी उत्पीड़न चित्रण

डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा

सारांश

साहित्य की प्रत्येक विधा में नारी ह्रदय की अनुरक्ति एवं जीवन प्रदायिनी उष्मा सक्रिय रही है। आचार्य हजारी प्रसाद दिवेदी के मतानुसार–'पुरुष स्वभावतः निःसंग व तटस्थ होता है, नारी ही उसमें आसक्ति उत्पन्न कर उसे नव निर्माण के प्रति उन्मुख करती है।'' प्रसदा नारी को केवल श्रदा स्वरुप मानते है।'' गुप्त जी के लिए वह ऑचल में दूध और ऑखों में पानी लिए त्याग की साकार प्रतिमा है। महादेवी वर्मा के अनुसार–''नारी का मानसिक विकास पुरुष के मानसिक विकास से अधिक दुतगामी होता है। उसका स्वभाव कोमल और प्रेम, घृणा आदि भाव अधिक तीव्र और स्थायी होते है। नारी ने मानव जीवन के सभी क्षेत्रों में अपनी दया, माया, मेमता, अगाध विश्वास और समर्पण को व्यक्त किया है।

मैत्रेयी जी की नारी पात्राऍ परम्परागत विचारधाराओं और रुढ़िवादिताओं की खंडन कर रही है। मैत्रेयी की नारी पात्राऍ अदम्य साहस का प्रतीक है। विषम परिस्थितियो से जूझना जीवन के थपेडे झेलना, परन्तु पराजय स्वीकार न इनका विशेष गुण है। संघर्ष करते हुए अपनी स्थिति को उत्तमता की ओर अग्रसर करने का उनका निरन्तर प्रयत्न रहा है। परधीनता के बंधन में प्राण कैस छटपटाते है इसका मनोवैज्ञानिक यथार्थ चित्रण मैत्रेयी ने अपने साहित्य में किया है। अपने उपन्यास साहित्य द्वारा नारी को जीवन पथ पर अग्रसर होने की महान प्रेरणा दी है। यदि नारी प्रगति पथ का अवलंबन नही करेगी तो पूरे समाज की प्रगति अवरुद हो जाएगी और इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए रुढ़ियों क जर्जर भवन पर निरन्तर प्रहार करना होगा। यह विचार मैत्रेयी को सदैव प्रेरित करता रहा है मैत्रेयी जी ने नारी स्वतन्त्रता को प्रबल समर्थन करते हुए भी उसकी उच्श्रृखलता का कहीं अनुमोदन नहीं किया है। नारी के प्रति उनका व्यवहार सम्मानजनक रहा है। उन्होने अपने साहित्य में नारी जीवन की विशमताओं उसके मानसिक और शारीरिक संत्रास का भावात्मक , मनोवैज्ञानिक एवं मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।

निर्लज्जतापूर्वक अंग–अंग के सौदे की घटनाआं को अपनी ऑखों से देखा है। मधु कॉकरिया जी ने यौन दासियों की मनोदशा भी कुछ इस प्रकार व्यक्त की ''साली भांगियों से भी बदतर जिन्दगी हम रंडियों की। ठिकाने–ठिकाने का नरक धोकर भी उन्हें हमारी तरह पुलिस तो नहीं हडकाती, बीमारी तो नहीं दबोचती! वहॉ मैले की दुर्गन्ध यहॉ चाम की दुर्गन्ध'' सुकीर्ति की जिज्ञासाओं का पंछी अभी भी शान्त नहीं बैठता वह इस यौन दासियों से रुबरु होकर इनके त्रासदी भरे जीवन का अवलोकन करती है तथा उनकी प्रत्येक समस्या का पोस्टमार्टम करती नजर आती है। इंसानियत तथा मानवीय सम्बन्धों की बचीकुची मौत तब हो जाती है जब पति स्वयं दलाल बनकर अपनी घरवाली को सैक्स के इस शेयर बाजार में सड़ने के लिए धकेल देता है। जिसका पता सुकीर्ति की मनोदशा से चलता है। ''गायत्री के बारे में इधर–उधर से पूछताद कर सुकीर्ति इतना जान गई थी की तीस वषीया गायत्री दो बच्चों की मॉ है और पति द्वारा उकसाने पर ही वह पॉच वर्ष पूर्व इस पेशे में उतरी थी।'' वासना की शिकार हवसी दरिन्दों की दशा का वर्णन भी इस प्रकार किया है ''ऐसे मरे आते हैं कि दो पैसे देकर सोचते हैं कि औरत नहीं हुई कोई खुदाई हो गई बस खोदते जाओ सब कुछ मिल जाएगा प्रेम शरीर यारबाशा बोलते–बोलते एक दीर्घ निःश्वास सी छोड़ी उसने''?

आधुनिक युग की चकाचौंध में आज कलकत्ता दो विरोधी गलियों में बॅट गया है। एक तरफ विक्टोरिया मेमोरियल विशाल राजभवन, नेशनल लाईब्रेरी, बडे–बड़े चर्च, होटल बंगला ताज, होटल ग्रांड, बिड़ला मंदिर, फोर्ट विलियम, लाला बाजार, कलकत्ता म्यजियम, मेटो रेल और गगन चुम्बी अटटालिकाऍ हैं। दूसरी तरफ दुनिया का सबसे भयानक दृष्य सोनागाछी में बजबताती गन्दगी और सडान्ध के बीच हजारों झुग्गी–झोपड़ियों, कीड़े मकोड़ों की तरह बिलबिलाती जिन्दगी। सड़क पर ही मुॅह छुपाकर ऑधेरे में नित्य कर्म से निवृत्त होते लोग। एक तरफ अंग्रेजी स्कूल में पढ़ते बच्चे तो दूसरी तरफ धरती के इन अपराजेय शैतानों के कारण दुनियॉ की सबसे खौफनाक जिन्दगी काटती बच्चियॉ। मधु कॉकरिया जी ने अपने इस उपन्यास में वेश्याओं के उस खौफनाक यथार्थ का चित्रण किया है जिसे देखकर मुर्दो की रुह भी कांप उठेगी। धरती के ये शेषनाग कम उम्र वाली देह को ज्यादा इस दल–दल में धकेलते हैं। क्योंकि यौन के इस बाजार में कम उम्र वाली लड़की की मांग ज्यादा रहती है। इन कम उम्र की बच्चियों को अप्राकृतिक रुप से औरत बनाया जाता है तथा काम के पुजारियों के सामने परोसा जाता है। जैसा की गायत्री कहती है ''किसी भी छुकरी के उस अंग में ऑख से इशारा कर समझा देती है वह कौन सा अंग है शोला घुसा दिया जाता है। फिर उन्हें पानी के टब में बैठा दिया जाता है जैसे–जैसे

पानी में शोला फूलता है वैसे–वैसे गुप्तांगों में भी फैलाव आता जाता है।'' सुकीर्ति के भीतर का जिज्ञासु– मन देखता है कि सोनागाछी में वेश्याओं के धधकते यथार्थ को समाज के अन्तिम पायदान पर भी स्थान न पा सकने वाली इन बेवश नारी देह को, इनकी प्राण विवशता को, सोनागाछी,बहुबाजार और कालीघाट आदि इलाकों में टके सेर बिकती औरत की अस्मिता को–आत्माओं का होता चीर–हरण, टुकड़ों–टुकड़ों में बिकता शरीर, चौबीसों घण्टे होता बेशर्मी का नंगा नाच, सड़ान्ध भरी झुग्गी झोपड़ियों में कीड़ें की तरह बिलबिलाती जिन्दगियॉ, जिनके लिए खाकी, खादी और समाज के ठेकेदार सभी यौन के पुजारी हैं। इन्द्राणी पुलिस की मिली भगत को कुछ इस प्रकार बताती है ''पर भगवान बचाए उन हालातों से जब वेश्या और पुलिस आई.जी. और बाई जी दोनों मर्द घरवाली की तरह मिले जुले रहते है'' मात्र काम की वस्तु समझी जाने वाली इन देवदासियों ने भारतीय न्याय व्यवस्था पर भी इस प्रकार व्यंग किया है। ''इस देश में न्याय ब्रह्म को पाने से भी ज्यादा मुश्किल है पुलिस थाना, साले सब के सब बड़े–बड़े मार्केट कॉम्पलेक्स है'' परिस्थितियों ने कोड़े मार–मार इनकी शर्म, इनका स्व और इनकी अन्तर्निहित गरिमा सब कुछ छीन लिया, दरिद्रता की कोख से उपतजी पनपती और फलती–फूलती इन बेबस देह के लिए खाकी भी किसी शैतान से कम नहीं है।

प्रस्तुत उपन्यास में समाज की रखवाली करने वाली खाकी धारियों के उस रुप को दिखाया है जिसे झुठलाया नहीं जा सकता, पुलिस थाने तथा चकला घरों में इनके लिए ज्यादा अन्तर नहीं है, चकलाघर में इनके शरीर को नोंचने के पैसे मिलते हैं, परन्तु थाने में मुफत में नौंचा जाता है। मधु कॉकरिया जी ने दिखाया भी है '' उसने आनाकानी की विरोध जताया तो उसे घसीटा और फिर थाने में उसके साथ सामूहिक रुप से बलात्कार किया फ्री फंड में मिले आनन्द को जो छोड़ दे वह भारतीय पुलिस ही क्या'' इस दल–दल में कदम रखते ही अपनी मौत की ओर बढ़ती जाती हैं तथा जल्द ही अपनी जिंदगी से विदा हो जाती हैं। जिस रोग का नाम सुनकर ही हम कांप जाते हैं उन यौन रोगों से सड़ते गलते भयानक शरीर का यथार्थ वर्णन किया है कॉकरिया जी ने । इन बेबस वेश्याओं के बीच पिंकी से बात होने पर एक और खौफनाक यथार्थ सुकीर्ति के सामने आता है जब एक यौन कर्मी ने अपना दर्द बताया '' कभी सड़ा हुआ केला देखा है आप ने ठीक वैसे ही है हम लोगों का शरीर, बस सड़ान्ध अभी एक दम उपर तक नहीं आई है'' धरती पर रेंगती इन वेश्याओं की जिन्दगी का एक–एक क्षण दुख के कोढ़ से भरा पड़ा है। समाज, धर्म, कानून,मठाधीश, नेता, राजा और खाकी के साथ–साथ ईश्वर भी जिनके लिए मर चुका है। काम के पुजारी ऑधी की तरह आते हैं और इनकी आत्माओं का चीर हरण करके तूफान की तरह निकल जाते हैं। उनके बीच बनते बिगड़ते जिस्मानी रिश्ते चंद लम्हों के होते हैं। ग्राहकों के जाने के बाद चंद रुपये मुठी में दबाए फिर से वे अपनी खाल नुचवाने को तैयार हो जाती हैं। अंगिया का हुक टूट जाता है कोई परवाह नहीं, चोली कहीं फट जाती है वह वैसी ही रह जाती है,पेटीकोट फट जाता है तो सिलवाने को समय नहीं। पसलियों में दर्द हो या पेट में ऐठन भले ही होठों का स्वाद कसेल हो जाए, इनका तो बस एक ही धर्म है देह धर्म। इनका किसी से कोई रिश्ता नहीं है। इन्हें तो प्रत्येक नर देह के सामने बिछना ही पड़ता है। जैसा की एक यौन कर्मी ने कहा भी है '' जो भी डाल दे, दो पैसे बस उसी के आगे बिछ जाना पड़ता है। क्योंकि हम किसी की भी नहीं हैं। न मॉ की न बाप की न हिन्द की और न ही हिन्दुस्तान की। किसी की भी नहीं''

इन यौनदासियों की एक रहस्यमय दुनिया है। यहॉ जिन्दगी काएक अलग ही तरह का शोर शराबा है, हर कमरे का, गली का, हर चकले का एक अलग ही इतिहास है। जहॉ जीवन के कुरुप से कुरुप एवं भयंकर से भयंकर नग्न रुप देखने को मिल जाएँगे, क्योकि यहॉ संस्कृति, मर्यादा एवं परम्पराओं का कोई डर नहीं है। बन्धन नहीं है। इस रुप के बाजार का रुप विहीन जीवन अपने चरम रुप में समाज के समक्ष खुले हुए थान की तरह बेशर्मी से सजा हुआ है।

सभ्यता के अनुशासन से परे, इस दुनिया के विधान दूसरे हैं, जीने की शर्ते अलग हैं,अपनी मर्जी से इस रहस्यमय दुनियॉ में आ तो कोई भी सकती है मगर बाहर वह यमराज के साथ ही जाती है, इन यौन दासियों के लिये तो कानून भी दोगली नीति अपना रहा है। कानून एक तरफ तो अकेली औरत को अपने भरण–पोषण के लिए वेश्यावृति करने की छूट दे रहा है वही तो दूसरी तरफ यदि वेश्या संगठित होकर देह व्यापार करती हैं तो वह अपराध हैं। कानून के ठेकेदारों ने सभी नियम अपनी कामवासना को ध्यान में रखकर तय किये हैं। जैसा की अरविंद जैन ने अपनी पुस्तक '' औरत होने की सजा'' में दिया है ''अकेली औरत को रोजी रोटी भरण पोषण के लिए वेश्यावृति करने की खुली छूट लेकिन दो या दो से अधिक वेश्याओं द्वारा संगठित होकर देह व्यापार करना अपराध''रुप के इस बाजार का विस्तार बड़े–बड़े शहरों में ही नहीं बल्कि आधुनिक युग की चकाचौंध, भूमण्डलीकरण तथा ज्यादा धन कमाने की लालसा ने छोटे–छोटे कस्बों तथा गावों में भी कर दिया है। जैसा कि मोहनदास नैमिशराय ने अपने उपन्यास 'आज बाजाद बन्द है' में कहा है ''मैं सब समझता हूँ तुम्हारे अपनी जड़ों से विस्थापन होने की परिस्थितियॉ और तुम्हारी पीड़ा भी । अकेले इस शहर में ही तो कोठे

नहीं हैं। सभी शहरों में वेश्याओं के बाजार हैं। शहर ही क्यों अब तो गॉव और कस्बों में भी वे सब हैं'' वेश्याओं के विषय में जानकारी देने के लिए चलते फिरते पूछताछ केन्द्र बने, लगुवे–भड़वे दलाल शाम होते ही होटलों , सिनेमाघरों , थिएटरों, नृत्य–गृहों, स्टेशनो, मेलों, केश विन्यास गृहों आदि के आस–पास मडराने लगते हैं जैसा कि कॉकरिया जी ने दिखाया भी है– ''राहगीर को अनुकूल पाते ही लग जाते हैं घेरने साहब कुछ तफरीह करेंगे?दिखाउ कुछ बढ़ियॉ माल?चलेंगे कही मन बहलाव को''।

मधु कॉकरिया जी ने देवदासी प्रथा का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है। किसी लड़की को देवदासी बनाने के लिए उसे पहले धूमधाम से मन्दिर में ले जाया जाता है, उसके बाद देवमूर्ति के साथ उसका विवाह सम्पन्न होता है। फिर मन्दिर में बैठे मानव रुपी दानवों द्वारा प्रारम्भ होता है उनका शारीरिक शोशण। यह बड़े ही दुख का विशय है कि भारतीय समाज में सैद्वान्तिक रुप से तो नारी की पूजा की जाती है परन्तु व्यवहार में वह केवल काम की ही वस्तु रही है। इन बेबस देवदासियों की रक्षा तो मन्दिर में भगवान भी नहीं कर सका। मन्दिरों में भी इनकी भावनाओं के साथ खेला जाता था। मन्दिरों में व्याप्त कर्म कांडीय आयोजनों का खुलासा करते हुए डयूबोईस ने सीधे हिन्दू धर्म पर इस प्रकार प्रहार किया है। ''प्रायः देखा जाता है कि ये पवित्र पूत कहलाने वाले देवस्थल ही भ्रष्टाचार के अडडे होते हैं और इन मन्दिरों के पुजारी व्याभिचारियों के सिरताज। बात भी सत्य है। मनुष्य को लोक लज्जा और भय की आशंका नहीं रहती,तभी वह निशंक होकर मनमाना आचरण कर सकता है। फिर इन पाखंडियों के सिर पर रहने वाली धर्म छाया उन्हें मनमाने आचरण करने में सहायक होती है।

इस प्रकार वेश्यावृति के इतिहास पर सूक्ष्म सा प्रकाश डालते हुए कॉकरिया जी बताती हैं कि युग चाहे कोई भी हो देवताओं की झॉकी के रथ की भॉति उसे खींचने वाल महान् पुरुष युग में अवतार लेते रहे हैं। जिस कारण देह का यह व्यापार काफी फल फूल रहा है। इसके साथ ही कॉकरिया जी ने बेड़िया, नट तथा सांसी जनजातियों की बेबस जिन्दगी का भी वर्णन किया है। जो सदियों से यौन की गुलाम तथा परम्परागत रुप से देह धर्म निभा रही हैं। इनकी बेबसी भी आज तक किसी को नजर नहीं आई, न समाज सेवी संस्थाओं को, न महिला संगठनों को, न खादी और न खाकी किसी को भी नहीं। ये भी बस अपनी देह यौन के पुजारियों के सामने परोसती आ रही है।

देह के इस बाजार में फलाईग वेश्याऍ ज्यादा बढ़ रही हैं, आज स्थिति यह है कि सोनागाछी जैसे शहर में ग्राहक कम और वेश्याऍ ज्यादा हैं। इस कारण वेश्याऍ स्वयं को 20–20 रुपयों में मिनटों के हिसाब से नीलाम कर रही हैं। क्या कहा जाए इसे? सभ्यता का अन्त या मनुष्यता का चरम पतन, की आज देह की सजी दुकान एक डिपार्टमेटल स्टोर बन गई हैं। जहॉ नारी अपने अलग–अलग अंगों को घंटों और मिनटों के हिसाब से नीलाम कर रही है।

देह व्यापार का इतना यंत्रीकरण हो चुका है कि सभी मानवीय अनुभूतियॉ और मर्यादाऍ स्वाहा हो चुकी हैं। यौन कर्मी देह की इन बढ़ती दुकानों को इस प्रकार व्यक्त करती है– '' कि करोबे क्या करॅु ज्यौ–ज्यौ मॅहगाई बढ़ती जा रही है, लाइन वालियॉ भी बढती जा रही हैं। ग्राहक भी अब उतने नहीं मिलते आमदनी भी अब वैसी नहीं रही''

मानव मुक्ति का गीत गाने वाले तथा समाज के ठेकेदारों को इनका बस एक ही रुप दिखाई देता है, गौरी चमड़ी वाली वेश्या का। उन्हें दिखाई नहीं देती इनकी बेबसी, गाय, भैंस की तरह बिकने वाली इनकी देह, चकला घरों में बिलबिलाती जिन्दगी, जीवन के सभी सुख सुविधाओं से नाता तोड़ कर रेंगती इनकी जिन्दगी,पेट की आग बुझाने के लिए भटिटयों की तरह दहकता इनका शरीर। वेश्याओं के इस नरक को मोहनदास नेमिशराय के उपन्यास ''आज बाजार बन्द है में एक यौन कर्मी इस प्रकार व्यक्त करती है '' इन मर्दो ने हमारे जिस्मों को भटटी बना दिया है हम भीतर बाहर से खूब जलती हैं।

मधु कॉकरिया जी ने अपने उपन्यास के माध्यम से वेश्या जीवन की एक के बाद एक त्रासदी को समाज के सामने इस प्रकार रखा है जो देश के साथ–साथ पूरी दुनिया को झकझोर देती है। छोटी–छोटी बच्चियों की आत्माओं से खेलते यौन के दरिन्दे किस प्रकार धरती के ये अपराजय शैतान नारी को छल–बल से वेश्यावृति के दल–दल में धकेल रहे हैं। कॉकरिया जी ने देखा है वेश्यावृ के इस नारकीय दल–दल में दस–दस साल की बच्चियों को थर–थर कांपते, शरीर को नौचते यौन के पुजारियों को, आत्माओं का चीर हरण करते इन दरिन्दों को, देश की इन बेटियों के लिए इन्सान तो क्या भगवान भी मर चुका है। आखिर कहॉ गये वह लोग जो अपने आप को हिन्दुस्तानी कहते हुए गर्व करते हैं। क्या खाकी और खादी को नजर नहीं आती ये लाइनवालियॉ?क्या अन्धे हो गये धर्म के ठेकेदार? कहॉ गये भारत की विकलांग सभ्यता और संस्कृति का नगाड़ा बजाने वाले?क्या इन्हें नहीं दिखती टके शेर बिकती नारी देह?क्या समाज को नजर नहीं आता वासना का यह नंगा नाच?आखिर कौन दंड देगा इन धरती के अपराजय शैतानों को, इन शेशनागों को, यौन मंडल के चॉद सितारों को। आखिर कौन तोड़ेगा समाज की नपुंसकता के इस धनुष को?

संदर्भ

1.मधु कॉकरिया सलाम आखिरी– राजकमल प्रकाशन–पृश्ठ–14

2.वही पृ0 15

3.वही पृ0 19

4.वही पृ0 30

5.वही पृ0 80

6.वही पृ0 68

7.वही पृ0 71

8.वही पृ0 113

9.वही पृ0 93

10.वही पृ0 93

11.वही पृ0 134

12.वही पृ0 189

13.वही पृ0 134

14.अरिवंद जैन–औरत होने की सजा– राजकमल प्रकाशन–पृ0 22

15.मोहन दास नेमिशराज–आज बाजार बन्द है– वाणी प्रकाशन–पृ0 87

16.मधु कॉकरिया–सलाम आखिरी–राजकमल प्रकाशन–पृ0152

17.डॉ0 मारुती द0 शिंदे–हिन्दी उपन्यासों में चित्रित वेश्या जीवन–अन्नपूर्णा प्रकाशन पृ031

18.मधु कॉकरिया–सलाम आखिरी–राजकमल प्रकाशन–पृ071

19.मोहन दास नेमिशराय–आज बाजार बन्द है–वाणी प्रकाशन–पृ0 26

डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा

अध्यक्ष (हिन्दी–विभाग)

गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म

महाविद्यालय,

पलवल (हरियाणा)

19

हिन्दी पत्रकारिता का उद्‌भव और विकासः–

अमित चौधरी

सारांश

भारत में प्रिन्टिंग प्रेस की स्थापना पुर्तगालियों नें 1564 ईं. में गोवा में की थी। उसकें बाद भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी में शासन के बाद व्यापक स्तर पर भारत में प्रिन्टिंग प्रेस की स्थापना हुई लेकिन मुद्रण अग्रेंजी भाषा में होता था। जबकि बहुसंख्यकीय जनता हिन्दी भाषी थी। इसलिए भारत में हिन्दी पत्रकारिता की शुरूआत हुई जिसकी शुरूआत 1826 ईं. में कानपुर में उदन्त मार्तण्ड के प्रकाशन के बाद हुई। हिन्दी पत्रकारिता को बहुत समर्थन भारतेन्दु युग से मिला। जब भारतेन्दु तथा उसके मंडल के अन्य सदस्य भी हिन्दी अखबार पत्र,पत्रिकाओं को हिन्दी में निकालनें लगें। हिन्दी पत्रकारिता की सच्चे अर्थों में शुरूआत भारतेन्दु युग से होती है। लेकिन अभी भी भाषा में व्याकरणिक अशुद्धियॉ थी जिसका परिमार्जन द्विवेदी युग में हुआ। जिसकी शुरूआत सरस्वती पत्रिका सें हुई। इसके बाद तों हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं की बाढ सी आ गई।

मुख्य बिन्दुः– उदन्त मार्तण्ड, कवि वचन सुधा, सरस्वती, ब्राहमण, आनन्द,कादम्बिनी, मतवाला, कर्मवीर,प्रताप, विशाल भारत।

प्रस्तावनाः– पत्रकारिता शब्दा का सामान्य अर्थ हैः– पत्रकार का व्यवसाय या कार्य। पत्रकारिता एक व्यापक शब्द है। पहलें पत्रकारिता पत्र–पत्रिकाएं कें लेखन तक सीमित थी। किन्तु अब इसका अर्थ बहुत व्यापक ढंग में प्रयोग होनें लगा है। रामकृष्ण रघुनाथ खांडिलकर में शब्दों में, छपनें वालें लेख–समाचार तैयार करना ही पत्रकारी नहीं रह गई। आकर्षक शीर्षक देना, पृष्ठों का आकर्षक बनाव–ठनाव जल्दी से जल्दी समाचार देने की छोड सुन्दर छपाई और पाठक के हाथ में सबसें जल्दी पत्र पहुॅचा देने की त्वरा, ये सब पत्रकार कला के अन्तर्गत आ गए। पत्रकारिता का अर्थ पत्रकार का काम या पेशा, समाचार के संपादन, समाचार इकट्ठें करने आदि का विवेचन वाली विद्या। वृहत शब्दकोष में लिखा है कि पत्र का अर्थ वह कागज या साधन जिस पर कोई बात लिखी या छपी हों जो प्रमाणिक हों, जो किसी घटना के विशय कों प्रमाण रूप पेश करता है और पत्रकार का अर्थ उस पत्र, कागज कों लिखनें वाला, संपादन करनें वाला और पत्रकारिता का अर्थ उसका विवेचन करनें वाली विद्या।

शोध उद्धेश्यः– 1. हिन्दी पत्रकारिता की शुरूआत 1826 ईं. से उदन्त मार्तण्ड के प्रकाशन से हुई।

2. कवि वचन सुधा के प्रकाशन सें हिन्दी पत्रकारिता कों नई ऊर्जा प्राप्त हुई।

3. भाषायी शुद्धता का परिमार्जन सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन सें 1900 ईं. में द्विवेदी युग में हुआ।

शोध प्रविधिः– प्रस्तुत शोध कार्य में निम्नलिखित अनुसंधान प्रविधियों का प्रयोग किया गया है।

1.उपलब्ध ग्रन्थ जैसे हिन्दी पत्रकारिता–कृष्ण बिहारी मिश्र का अन्वेषण।

2.हिन्दी साहित्य का ईतिहास –डां. रामचन्द्र शुक्ल का अन्वेषण।

3.वेबसाईअ, ब्लाग, समाचार पत्रों इत्यादि में उपलब्ध संबधित सामग्री का अन्वेषण।

हिन्दी पत्रकारिताः– हिन्दी पत्रकारिता का बीजवपन होनें से पूर्व नवजागरण के अग्रदुत राजा राम मोहन राय नें संवाद कौमुदी, मिरातुल अखबार प्रकाशित किए। मद्रास के गर्वनर सर टॉमस मुनरों का कथन था।– इनकों प्रेस की आजादी देना हमारें लिख खतरनाक हैं। विदेशी शासन और समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता दोनों एक साथ नहीं चल सकतें।

राजा राममोहन राय नें सन् 1830 में प्रेस स्वतन्त्रता बाधक नियमों के विरूद्ध आन्दोलन चलाया जो सफल रहा। हिन्दी पत्रकारिता के विकास कों हम विभिन्न चरणों में बॉट सकतें है।

1. भारतेन्दु हिदी पत्रकारिता(1826 सें 1867 तक)
2. भारतेन्दु युगीन हिन्दी पत्रकारिता(1867 सें 1900 तक)
3. द्विवेदी युग(1900 सें 1920 तक)
4. गॉधी युग में हिन्दी पत्रकारिता

भारतेन्दु पूर्व हिन्दी पत्रकारिताः– हिन्दी पत्रकारिता के सुत्रधार युगल किशोर शुक्ल कों माना जाता हे। उन्होनें 30 मईं 1826 कों उदन्त मार्तण्ड साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया।

कलकतें में कोलू टोला नामक मुहल्लें के 37 नं. आमडाताल्ला गली सें श्री युगलकिशोर शुक्ल नें सन् 1826 ईं. में उदन्तमार्तण्ड नामक एक हिन्दी साप्ताहिक पत्र निकालनें का लाईसेंस दिया। उदन्त मार्तण्ड का पहला अंक 30 मई 1826 ईं. कों प्रकाशित हुआ था।

दिनकर कर प्रगटत दिनहि यह प्रकाश अठयाम, ऐसो रवि अब उग्यों महि जेहि–जेहि सुख को धाम।

उत कमलानि विकसित करत बढत– चाव चित वाम, लेत नाम था

पत्र कों छेत हर्ष अर काम।

प्रति मंगलवार कों प्रकाशित होनें वाला यह पत्र सरकारी सहायता के अभाव तथा पर्याप्त ग्राहकों की कमी के कारण अधिक दिन तक न चलकर 4 दिसम्बर 1827 कों हमेशा के लिए अस्त हो गया। 4 दिसम्बर के अन्तिम अंक में सम्पादक नें लिखा था।

आज दिवस लौं उग चुक्यों मार्तण्ड उदन्त
अस्ताचल कों जात है दिनकर दिन अब अन्त।

बंगदूतः– इस पत्र के मूल प्रेरक और संचालक राजा राममोहन राय थें। कलकता की चार प्रमूख भाषाओं– अग्रेजी, बॅगला,फारसी, और हिन्दी में यह पत्र प्रकाशित होता था। इसका प्रथम अंक 10 मई 1829 ईं. कों प्रकाशित हुआ था।

बंगदूत के हिन्दी अंश के ऊपर यह छन्द रहता था।

दूतन की यह रीति बहुत थोरें में भावैं।
लोगनि कों बहुलाभ होय याहि लें लाखैं।
बंगाला को दूत दूत यहि वायु कों जानौं।
होय विदित सब देश क्लेश को लेश न मानौं।

सामदन्त मार्तण्डः– हिन्दी के आदि पत्रकार पं. युगलकिशोर शुक्ल नें 1850 में सामदन्त मार्तण्ड प्रकाशित किया था। 23 वर्षों के बाद पं. युगलकिशोर शुक्ल नें ही इनकों संचालित किया था।

समाचार सुधावर्शणः– हिन्दी का प्रथम दैनिक पत्र समाचार सुधावर्षण 1854 के जून में कलकता से ही श्यामसुन्दर सेन नामक बंगाली सज्जन के सम्पादकत्व में निकला था।

बनारस अखबारः– उत्तर प्रदेश से श्री गोविन्द नारायण धतें के सम्पादन में जनवरी, 1845 में बनारस अखबार निकला। इसके संचालक मनीशी राजा शिवप्रसाद सितारें हिन्द थें। इसमें देवनागरी लिपि का प्रयोग होता था, लेकिन इसमें अरबी–पारसी शब्दों की भरमार थी। इसमें हिन्दी की अपेक्षा उर्दू अधिक होती थी।

सुधाकरः– सन् 1850 में श्री तारामोहन मेंत्रेय नामक बंगाली ने बनारस से सुधाकर पत्र निकाला। यह साप्ताहिक पत्र था। जो बंगला व हिन्दी दोनों में प्रकाशित होता था। भाषा की दृष्टि से सुधाकर को हिन्दी प्रदेश का पहला पत्र कहना चाहिए। सन् 1853 में यह पत्र केवल हिन्दी भाशा में ही प्रकाशित होने लगा था।

बुद्धिप्रकाशः– मुंशी सदासुखलाल के सम्पादन में सन् 1852 में आगरा से बुद्धिप्रकाश निकला। इसमें विविध विशयों जैसे–इतिहास, भूगोल, शिक्षा, गणित आदि पर लेख प्रकाशित होतें थें।

भारतेन्दु युग में हिन्दी पत्रकारिताः– भारतेन्दु हरिश्चन्द्र नें कवि वचन सुधा (1868) , हरिशचन्द्र मैगजीन(1873) और बाला बोधिनी(1874) जैसी पत्रिकाओं के सपांदन द्वारा हिन्दी पत्रकारिता की विशय वस्तु और भाषा दोनों कों संवृध्द किया। साथ ही बालकृष्ण भट्ट नें हिन्दी प्रदीप (1883) और प्रताप नारायण मिश्र नें ब्राहमण(1883) पत्र निकालकर हिन्दी भाषा कों समृद्ध किया।

भारतेन्दु के समय देश में नवीन राजनैतिक सामाजिक चेतना का उदय प्रारम्भ हो गया था। पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित समाचारों तथा लेखों पर जन सामान्य अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करनें लगा तथा उनमें व्यक्त विचारों से उद्धेलित भी होनें लगा। भारतेन्दु और अन्य पत्रकारों नें सम्पूर्ण भारतवर्ष की सांस्कृतिक एकता कों पहचानतें हुए सांस्कृतिक पुनरूत्थान कों पत्रकारिता के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण स्थान दिया। इस कारण तत्कालीन पत्रकारों नें साहित्यकार, संपादक, विचारक, समाज सुधारक और क्रांतिकारी आदि बहुमुखी दायित्वों का निर्वहन किया। सामाजिक व सास्कृतिक पुनर्जागरण द्वारा राष्ट्रीय चेतना कों जगानें के साथ–साथ बिट्रिश सरकार की अन्यायपूर्ण व दमनकारी नितियों का विरोध की भूमिका भी अत्यन्त कुशलतापूर्वक निभायी।

भारतेन्दू युग का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा संपादित साहित्यिक पत्रिका कविवचन सुधा से होता है। इसके माध्यम से हिन्दी भाषा के परिश्कार और खडी बोली हिन्दी गद्य कों व्यवस्थित रूप देने के साथ–साथ राश्ट्रीयता की भावना का भी व्यापक स्तर पर प्रचार–प्रसार हुआ।

कवि वचन सुधाः– कवि वचन सुधा के प्रकाशन से हिन्दी पत्रकारिता के दुसरें युग की शुरूआत मानी जाती है। भारतेन्दु नें 23 मार्च 1874 में कवि वचन सुधा में एक प्रतिज्ञा पत्र प्रकाशित किया था। हम लोन सर्वान्तदासी सत्र स्थल में वर्तमान सर्वद्रश्टा और नित्य सत्य परमेश्वर कों साक्षी दे कर यह नियम मानतें है और लिखतें है कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपडा नही पहिनेंगें और जो कपड़ा पहलि सें मोंल लें चुके है और आज तक हमारें पास है उन को उन के जीर्ण हों जानें तक काम में लावेंगें पर नवीन मोल ले कर किसी भॉति का विलायती कपडा न पहिरेंगें। हिन्दुस्तान का ही बना कपडा पहिरेंगें। रामचन्द्र शुक्ल नें इन पर लिखा हैः– श्उन्होनें जिस प्रकार गद्य की भाषा को परिमार्जित करके उसे बहुत ही चलता, मधुर और स्वच्छ रूप दिया, उसी प्रकार हिन्दी साहित्य को भी नए मार्ग पर ला खडा किया ।

बालबोधिनी पत्रिकाः– 9 जनवरी 1874 को भारतेन्दु ने बालबोधिनी पत्रिका निकाली। पत्रिका महिलाओं की मासिक पत्रिका थी।

हिन्दी प्रदीपः– 1 सितम्बर 1877 को प्रयाग से बालकृष्ण भट्ट नें हिन्दी प्रदीप नाम का मासिक पत्र निकाला। यह पत्र 35 वर्षों तक चला। हिन्दी प्रदीप के मुख्य पृष्ठ पर यह पंक्ति लिखी होती थी। विद्या, नाटक, इतिहास, साहित्य, दर्शन राजसबंधी इत्यादि के विशय में हर महीनें की पहिली को छपता था। हिन्दी प्रदीप के मुख्य पृष्ठ

पर यह उद्धृत रहता था।

शुभ सरस देश सेनह पूरित प्रगट है आनॅद भरें।

बाचि दुसह दुरजन वायुसौं मणिदीप समथिर नहि टरें।

सूझे विवेक विचार उन्नति कुमति सब यामैं जरै।

हिंदी प्रदीप प्रकाशि मूरखातादि भारत तम हरै।।

हिन्दी प्रदीप की भाशा संस्कृत निष्ठ थी तथा इसमें संस्कृत के श्लोंक भी रहतें थें।

ब्राहमण पत्रः– 1883 ई. में प्रकाशित ब्राहमण पत्र का संपादन प्रताप नारायण मिश्र ने किया था। इसका पहला अंक होली के दिन 15 मार्च 188 को कानपुर से प्रकाशित हुआ था। प्रथम खंड की प्रथम संख्या की इन पक्तियों से उसके प्रकाशन दिन की सूचना मिलती है।

जन्म हमारा फागुन में हुआ और हो की पैदाईश प्रसिद्ध है। कभी कोई हंसी कर बैठें, क्षमा किजिएगा।श ब्राहमण में मुख्य रूप से मिश्र जी की रचनाए छपती थी। यह उस समय का सबसे तेजस्वी पत्र था। यह पत्र फरवरी 1897 ईं. मं बन्द हो गया था।

भारत जीवनः– बाबू रामकृष्ण वर्मा नें काशी से 3 मार्च,1884 को भारत जीवन पत्र प्रकाशित हुआ। यह पत्र 30 वर्षों तक प्रकाशित हुआ।

हिन्दोस्थानः– सन् 1885 में राजा रामपाल सिंह लंदन से इसें कालाकांकर ले आए। यह उत्तर प्रदेश से पं. महामना मदन मोहन मालवीय के सपांदन में निकला। यह हिन्दी क्षेत्र से प्रकाशित होनें वाला प्रथम सम्पूर्ण हिन्दी दैनिक पत्र था। इस पत्र में सरकारी अफसरों की कटु अलोचना होती थी।

भारत मित्रः– भारत मित्र का प्रकाशन 17 मई 1878 कों आरम्भ हुआ। इसके सम्पादक पं. छोटुलाल मिश्र थें, प्रबन्धकर्ता थें, प. दुर्गाप्रसाद मिश्र। इसके मुख्य प्रश्ठ पर इसका उद्धेश्य मुद्रित था जो इस प्रकार थाः–

'ज्योडस्तु सत्यनिश्ठानां येशा सर्वे मनोरथाः।'

मूल्य था प्रति संख्या दो पैसें।

1883 ई. के भारतमित्र में इल्बर्ट बिल और बाबू सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी के सम्बन्ध में अनेक लेख प्रकाशित हुए थें। 1884 ईं. के भारतमित्र ने हिन्दी प्रचार आन्दोलन शुरू किया था।

सारसुधानिधिः– इस युग का एक अन्य तेजस्वी पत्र था सारसुधानिधि। ये पत्र साप्ताहिक था जिसें कलकता से 1879 ई में पं. सदानन्द मिश्र के सक्रिय सहयोग से पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र ने प्रकाशित किया था। 12 साल चलकर यह अखबार 1890 ईं. में बन्द हो गया। इसके प्रथम अंक के प्रथम पृष्ठ पर निम्न अंकित रहता थाः–

'कुमुद रसिक मनमोदकर हरि दुख तम सरवत्र।

जनपथ दरसावें अचल सारसुधा निधि–पत्र।।

काव्य रसायन यत्र तत्र सुदर्शन नृप चरित।

सार सुधानिधि–पत्र दोश व्यसन ज्वर विषय हर।।'

हिन्दी भाषा का आन्दोलन भी इस युग में चल रहा था। इस आन्दोलन में सारसुधानिधि नें खुलकर भाग लिया क्योंकि उसनें आरम्भ में ही प्रतिज्ञा की थी कि यथासाध्य देश प्रतिनिधि स्वरूप होकर, कर्तव्य साधन में नियुक्त रहेगा। हिन्दी शिक्षा के प्रचार के लिए सारसुधानिधि में कई टिप्पणियॉ प्रकाशित हुई। वर्ष 2, अंक 22 कें सम्पादकीय लेख कलकतें में हिन्दी शिक्षा की आवश्यकता की कुछ पक्तियॉ दृष्टव्य है।

'दुःख का विषय यह कि मुसलमानों की अग्रेंजी शिक्षा और अरबी फारसी की शिक्षा के लिए स्वतन्त्र एक बडी कालिज रहतें हुए भी मुसलमान और एक स्वतन्त्र कालिज स्थापना का प्रस्ताव कर रहें है। और उसका आन्दोलन भी हो रहा है। परन्तु कलकतें में हिन्दी शिक्षा की जों इतनी आवश्यकता रहतें भी इस विषय में कोई कुछ नही कहता, यही दुःख और आश्चर्य का विषय है।'

हिन्दी भाषा शीर्षक लेख सारसुधानिधि में प्रकाशित हुआ था। जिसकी अन्तिम पक्तियॉ वर्ष 1, अंक 14 सें यहॉ उद्धृत की जाती हैः– 'हम लोगों को मुनासब है जिसमें देश की उन्नति होय और निष्कपट और निर्दोष सभ्यता की वृद्धि होय, ऐसे उद्यम उपाय और यत्न करें। इसलिए जब हम सोचतें है तो प्रथम दृष्टि हमारी भाषा पर पडती हे, क्योंकि जब तक निष्कपट विशुद्ध भाषा की उन्नति नही होयगी तब तक निष्कपट सभ्यता और देश की उन्नति भी नहीं हेायगी।'

इस प्रकार सारसुधानिधि देश की हर दशा की खबर छापता था। तथा हिन्दी भाषा की उन्नति के लिए भी बराबर प्रयत्न करता था। इस पत्र में एक भी ऐसा शब्द नही छपता था जिसमें प्रखर राष्ट्रीयता का स्वर ना हो। कदाचित यही कारण है कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र को यह पत्र अत्यन्त प्रिय था

उचितवक्ताः– हिन्दी पत्रकारिता के उन्नायक पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र का यह अपना पत्र था,जिसका प्रकाशन 7 अगस्त, 1880 6 नं. सूतापट्टी, बडा बाजार, कलकता से हुआ था।

स्वाधीनता खो उन्नति करनें में गौरव नहीं हे। यह उचितवक्ता के पहलें अंक की पहली सम्पादकीय टिप्पणी का मूल स्वर है। प्राचीन भारतीय उन्नति सें अॅगरेजी शासनकालीन उन्नति की तुलना करतें हुए बडी स्पष्ट भाषा में सम्पादक नें लिखा था– पहिली उन्नति और अबकि उन्नति में अन्तर इतना ही है कि वह स्वाधीन भारती की उन्नति थी, उस उन्नति में उन्नतिमना स्वाधीनता

प्रिय भारत सन्तानों का गौरव था, और यह पराधीन भारत की उन्नति हो रहीं है इस उन्नति में पदानत निर्वाच्च हम भारत कुलतिनकों की अगौरव के सहित गर्दन नीचि होती जाती है। उचितवक्ता उन्नीसवीं शताब्दी का एक अत्यन्त तेजस्वी पत्र था जिसनें 12 मई 1883 ईं. कों देशी पत्रकारों को सलाह दी थी।

'देशीय सम्पादको सावधान कहीं जेल का नाम सुनकर कर्तव्य विमूढ मत हों जाना यदि धर्म की रक्षा करतें हुए यदि गर्वमेंट कों सत्परामर्श देते हुए जेल जाना पडें तों क्या चिन्ता है। इससे मान हानि नहीं होती है। हाकियों के जिन अन्याय आचरणों से गर्वमेंट पर सर्वसाधारण की अश्रद्धा हो सकती है उनका यथार्थ प्रतिवाद करनें में जेल तों क्या यदि द्वीपातरिंत भी होना पडें तो क्या बडी बात है। क्या इस सामानय विभिषिका से हम लोग अपा कर्तव्य छोड बैठें।'

यह पत्र 15 वर्ष तक प्रकाशित हुआ। इसनें इल्बर्ट बिल, प्रेस कानून, वर्नाक्युलर एक्ट का बडी निर्भाकता सें विरोध किया।

आनंदकादम्बिनी:– पं. बदरीनारायण चौधरी प्रेमचन्द द्वारा सम्पादित आनन्द कादम्बिनी मासिक पत्रिका का प्रकाशन सन् 1881 की मिर्जापुर से आरम्भ हुई थी।

पत्रिका के प्रकाशन में प्रेमधन जी कों प्रारम्भ में बडी कठिनाई हुई थी।उसके पास अपना प्रेस नहीं था। परिणामस्वरूप आनन्दकादम्बिनी के मुद्रण के लिए अनके प्रेसों की शरण लेनी पडी। यह पत्रिका प्रेमधन की जी कविताओं और लेखों से भरी रहती थी। दुसरों के लेख इसमें न के बराबर होतें थें इस पर भारतेन्दु जी नें एक बार उनसें कहा था– 'जनाब। यह किताब नहीं कि जो आप अकेलें ही हर काम फरमाया करतें है, बल्कि अखबार है जिसमें अनके जनलिखित लेख होनें आवश्यक है और यह भी जरूरत नहीं कि सब एक तरह के लिक्खाड हों।' आनन्दकादम्बिनी में समाचार तक कभी–कभी बडी रंगीन भाषा में लिखें जातें थें। सन् 1885 का एक स्थानिक संवाद दृष्टव्य है। दिव्यदेवी श्री महाराणी बडहर लाख झंझट झेल और चिरकाल पर्यत बडे–बडें उद्योग और मेल पहाड ढकेल फिर गदी पर बैठ गई। आनन्दकादम्बिनी अपने समय की बहुचर्चित पत्रिका थी।

नागरी नीरद:– सन् 1892 में पं. बदरीनारायण प्रेमधन नें ही एक नागरी नीरद के नाम सें एक साप्ताहिक पत्र निकाला। प्रेमधन जी बादल के बडे प्रेमी थें इसलिए उन्होनें नागरी नीरद के अंकों और सख्याओं के स्थान पर वर्षों और बिन्दु जैसे शब्दो का प्रयोग किया। कुछ समय बाद यह पत्र मासिक हो गया था।

राष्ट्र की चेतना को जगाना और अग्रेजों के काले कारनामों और उत्पीडन का पर्दाफाश करना इस पत्र का प्रमुख उद्धेश्य था। इस पत्र की मूल विषयवस्तु भारतीयों को जागृत करना तथा सत्य,न्याय और कर्त्तव्य निष्ठा का प्रसार करना तथा जनता में राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित करना था।

केसरी:– 1881 ईं. में केसरी का प्रकाशन आरम्भ हुआ जो राष्ट्रीय चेतना का प्रबल समर्थन करनें वाला पत्र था। 1890 ई. में इसके संपादन का भार लोकमान्य बाल गंगाधर तिलके जनता कों जागरूक करना और उनमें राष्ट्रवादी भावनाओं का संचार करना था।

द्विवेदी युग में हिन्दी पत्रकारिता:– इस यगु कें अखबारों तथा पत्र–पत्रिकाओं राष्ट्रीय गौरव की भावना से ओत–प्रोत थें, तथा यें सब–कुछ राष्ट्र पर निछावर करनें कों प्रोत्साहित करतें थें।

द्विवेदी युग में अनके ऐसी पत्र–पत्रिकाऍं, अखबार प्रकाशित हुए, जिनसें हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता विचार, भाव और राष्ट्रीय चेतना के स्तर पर समृद्ध हुई। वास्तव में हिन्दी साहित्य जगत को एक समृद्ध विरासत सौंवती द्विवेदी युगीन पत्रकारिता जनतान्त्रिक मूल्यों की स्थापना करती है। अधिकांश अखबार तथा पत्र–पत्रिकाओं नें स्वाधीनता संघर्ष में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप सें व्यापक राष्ट्रीय हिस्सेदारी में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। हिन्दी को व्यावहाारिक बनाने का कार्य द्विवेदीयुगीन पत्रकारिता की एक महत्वपूर्ण देन है। द्विवेदी युग के लाका पुरूष आचार्य महाबीर प्रसाद द्विवेदी की साहितयिक पत्रकारिता का शुभारम्भ प्रयाग से प्रकाशित होनें वाली प्रमुख साहित्यिक पत्रिका सरस्वती से हुआ था।

सरस्वती:– सन् 1900 का वर्ष हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में महत्वपूर्ण है। इसें बंगाली बाबू चिन्तामणि घोश ने प्रकाशित किया था। तथा इसे नागरी प्रचारिणी सभा जिसका गठन 1894 ईं. में सम्पादकमंडल में बाबू राधाकृष्ण दास, बाबू श्यामसुन्दरदास, बाबू कार्तिकप्रसाद स्वत्री, जगन्नाथदास रत्नाकर, किशोरीदास गोस्वामी थें। सन् 1903 में इसके सम्पादन का भार आचार्य प्रयाग सें प्रकाशित होने वाली सरस्वती पत्रिका की संपादन कला के समान संपादन कला तत्कालीन किसी पत्र–पत्रिका में दृष्टिगत नहीं होती। द्विवेदी युग में प्रयाग से ऐसी अनेक पत्र–पत्रिकाएं प्रकाशित हुई, जिनसें हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता विचार, भार और राष्ट्रीय चेतना के स्तर पर समृद्ध हुई।

अभ्युदय:– सन् 1907 में उत्तरप्रदेश में महामना पडित मदनमोहन मालवीय नें अभ्युदय का प्रकाशन आरम्भ किया। अभ्युदय साप्ताहिक पत्र था। 1918 से यह पत्र दैनिक हो गया। सरदार भगत सिंह कों फॉसी दिए जानें के बाद पत्र नें फॉसी–अंक निकाल कर क्रान्ति मचा दी।

स्वराज्य:– इलाहाबाद से सन् 1907 में सम्पादक शान्तिनारायण भटनागर के सम्पादन में स्वराज्य साप्ताहिक की प्रकाशन हुआ।

आपतिजनब सामग्रियों के प्रकाशन के अपराध में इसके सम्पादक,सहायक सभी कों न्यायालय द्वारा दंडित किया गया। रॉलेट कमीशन के सदस्यों का पोषक था। पत्र का उल्लेख कमीशन की रिपोर्ट में किया। इस पत्र में प्रकाशित सम्पादक के विज्ञापन की पक्तियॉ आज तक अविस्मरणीय हैः–

चाहिए स्वराज्य के लिए एक सम्पादक।

वेतन–दो सुखी रोटियॉ, एक गिलास ठंडा पानी और हर सम्पादकीय के लिए दस साल जेल। नृसिंहः– 1907 ई. में पं. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयाी ने नृसिँह नामक साप्ताहित पत्र प्रकाशित किया था जिसकें सम्पादक–संचालन सब–कुछ वाजपेयी जी नें अपने इस पत्र के आविर्भाव की चर्चा इस प्रकार की हैः–

मेरे पास कुछ रूपये हो गए थें, इसलिए मुझे मासिक पत्र निकालनें की सूझी। अनेक मासिक पत्र निकालतें थे परन्तु उनमें कोई राजनीतिक पत्र न था, इसलिए इस अभाव की पूतिै का ठेकेदार मैं बना। पत्र का नाम नृसिँह रखा।नृसिँह के प्रथम अंक के प्रथम पृश्ठ की सामग्री निम्न थीः–

श्री गणेशाय नमः,

नृसिंह

मसिक पत्र।

यदा यदा हि धर्म्मस्य गलानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्।।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दृष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।

नृसिँह का प्रकाशन एक वर्श तक ही रहा।

प्रताप:– प्रताप पत्र के सम्पादक बाबू गणेश शंकर विद्यार्थी थे। 1910 के साप्ताहिक पत्रो में प्रताप प्रसिद्ध था। प्रताप का ऑफिस क्रान्तिाकारियों का जमघट था। यह पत्र कानपुर से प्रकाशित होता था। अपने निष्पक्ष समाचारों के कारण इसकों मुकदमें की धमकी भी दी गई। प्रताप पर जब मुकदमा चलाया गया तो विद्यार्थी जी नें अपने सवांददाताओं के नाम बतानें से इंकार कर दिया और सहर्ष सजा पाकर पत्रकार परम्परा की नींव डाली। यह प्रताप ही था जिसनें दक्षिण अफ्रीका से विजयी होकर लोटे तथा भारत के लिए उस समय तक अनजान महात्मा गॉधी के महत्व को समझा और चम्पारण–सत्याग्रह की नियमित रिपोर्टिंग कर राष्ट्र कों गॉधी जी जैसें व्यक्तित्व से परिचित कराया। स्वतन्त्रता आंदोलन के दौरान माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा रचित सुप्रसिद्ध देशभक्ति कविता पुश्प की अभिलाशा प्रताप अखबार में ही मईं 1922 में प्रकाशित हुई।

स्वदेश:– स्वदेश का प्रकाशन गोरखपुर सें सन् 1919 में पं. दशरथप्रसाद द्विवेदी नें किया जों गणेश शंकर विद्यार्थी द्वारा प्रशिक्षित थें। इस पत्र का मूल सिद्धांत था–

'जो भरा नहीं हैं भावों से,

बहती जिसमें रसधार नहीं।

वह हृदय नहीं है, पत्थर है,

जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।।'

द्विवेदी जी के बाद इस पत्र का सम्पादन पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र नें किया।

कर्मवीर:– जबलपुर से सन् 1919 में श्री विद्यार्थी के अनन्य सहयोगी श्री माखनलाल चतुर्वेदी नें कर्मवीर पत्र निकाला। यह पत्र त्याग,तप, आहुति और क्रान्ति का उद्घोशक था। 17 जनवरी 1920 कें कर्मवीर के पहले अंक में संपादक राष्ट्रीय आत्मा माखनलाल चतुर्वेदी कहतें हैः–

'हम स्वतंत्रता के हामी हैं, मुक्ति के उपासक है.....

दासता से हमारा मतभेद रहेगा। फिर चाहें वह शरीर की हो या मन की, व्यक्तियों की हो या परिस्थितयों की।'

गॉधी युग में हिन्दी पत्रकारिता:– गॉधी जी स्वयं पत्रकार थें और पत्रकारिता को वे वैचारिक क्रान्ति का एक सशक्त माध्यम मानतें थें। उनके हाथ में अपने पत्र थें। विभिन्न भाषाओं में अनेक पत्र प्रकाशित हो रहें थे। जिन पर गॉधी–विचार का असर था। गॉधी युग की हिन्दी पत्रकारिता की सबसें बडी उपलब्धि यह है कि इस युग में साहित्यिक पत्रकारिता राजनीतिक पत्रकारिता से पृथक हुई। मतवाला,सुधा, चॉद, माधुरी, हॅस और विशाल–भारत जैसी पत्रिकाएं इसी समय निकलीं। इन पत्रिकाओं में गॉधी–युग की मूल चेतना मुखर हे। 1920 कों कलकता काग्रेंस हिन्दी पत्रकारिता के उन्नयन की दृष्टि सें अत्यन्त महत्वपूर्ण था। इसी अधिवेशन से हिन्दी की चर्चा राष्ट्रभाषा के रूप मे होने लगी। डॉ0 रामरतन भटनागर नें लिखा है कि राजनीतिक पत्रकारिता में यहीं से एक नया युग आरम्भ होता है। पत्रकारिता के उग्र तेवरों में संयम का समावेश होनें लगा। बंगाल विभाजन और जलियावाला बाग जनसहांर के कारण हिन्दी पत्रकारिता अत्यधिक उग्र हो गई थी किन्तु उन पर बापू के विचारो का इतना व्यापक प्रभाव था कि क्रान्तिकारी पत्रों तक नें अहिंसा के प्रति अपनी श्रद्धा कायम रखी।

प्रताप जैसे उग्र समाचार पत्र नें सितम्बर 1921 के एक अंक में लिखा कि हमारें सिरों पर प्रहार होनें हो तों हों। बिजलियां गिरनीं हों तो गिरें, परन्तु हमारें व्यवहार में न गरमी आए और न कोई शिथिलता ही। हम डटें रहें वहीं पर, जहॉ हम डटें हुए हैं। हमारी दृष्टि रहें उसी लक्ष्य पर जिस पर वह लगी हुई है। प्रहारों की मार से इनमें कोई अंतर न पडें और अंत में प्रहारों के करनें वालें हाथ में

शिथिलता आयेगी। और उसके साथ ही निश्चित रूप सें आएगी हमारी अंतिम विजय की सूचना।

आजः– 5 सित्म्बर 1920 की बनारस से आज का प्रकाशन शुरू हुआ, जिसें हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में एक युगान्तकारी घटना माना जाता हैं। पत्र के प्रथम अंक में लिखा गया कि भारत के गौरव की वृद्धि और उसकी राजनैतिक उन्नति आज का विशेष लक्ष्य होगा।

हिन्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय दैनित आज जो वाराणसी से प्रकाशित होता था, ने 5 सितम्बर 1920 के अंक में अपने उद्धेश्यों की चर्चा करते हुए लिखा था– 'हमारा उद्धेश्य अपने देश के लिए सर्व प्रकार से स्वातंत्रय उपार्जन हैं। हम हर बात में स्वंतत्र होना चाहतें है। हमारा लक्ष्य है कि हम अपनें देश का गौरव बढायें, अपने देशवासियों में स्वाभिमान का संचार करें। उनकों ऐसा बनाए की भारतीय होनें का उन्हे अभिमान हों, संकोच न हो।'

आज का प्रकाशन हिन्दी पत्रकारिता में उल्लेखनीय घटना है।

मतवालाः– 23 अगस्त 1923 कों मतवाला का कलकता सें प्रकाशन हुआ। यह साप्ताहिक पत्र था। मतवाला के मुख्य पृष्ठ पर निराला की कविता छपती थी। नियमादि भी मुख्य पृष्ठ पर ही रहता था। मतवाला के मुख्य पृष्ठ पर निम्न मोटों रहता था। अमिय–गरल, शशि–शीकर, रवि कर, राग विराग भरा प्याला पीतें हैं। जो साधक उनका प्यारा है यह मतवाला।श सम्पादकीय टिप्पणी का शीर्षक मुख्य पृष्ठ के शीर्ष पर अंकित रहता था। सम्पादकीय स्तम्भ के अन्तर्गत शीर्षक कें ऊपर ही अकबर की दो पक्तियॉ स्थाई रूप से रहती थीं, जो इस प्रकार हैः–

' खीचों न कमानों को न तलवार निकालों जब तोप मुकाबिल हें तो अखबार निकालों।।'

अकबर।

मतवाला की राष्ट्रीय नीति बहुत उग्र थी। विदेशी सरकार की कुटिल नीति पर वह प्रायः बडे तेज अस्त्रों से आक्रमण करता था। मतवाला की धारणा बडी सही थी कि अग्रेजों से देश को मुक्ति इसलिए नहीं मिल रही है कि हमारा सघटन दुर्बल है। अछुतोद्धार आन्दोलन का मतवाला नें खुलकर समर्थन किया था। 19 अप्रैल 1924 की सम्पादकिय टिप्पणी की अन्तिम पक्तियॉ द्रष्टव्य हैः–

'भाईयों जडता छोडो। अपने महान धर्म की उदारता पर ध्यान दों। अपने बिछडे हुए भाईयों कों गलें लगा लों। जिन्हें तुम अछुत समझ रहें हों, वें तुम्हारें जाति–देह के अंग हे। यदि अपने शरीर कों अविकल रहने देना चाहते हों, तो उन्हें अपने सें अलग ने होनें दो।'

सेनापतिः– यह सचित्र साप्ताहिक पत्र था जो 5 नवम्बर 1926 कों प्रकाशित हुआ था। श्री निहालचन्द वर्मा इसके व्यवस्थापक थें और पं. रामगोविन्द त्रिवेदी सम्पादक। लेखकों के सहयोग मॉगतें हुए सम्पादक नें सेनापति की उद्धेश्य–पूर्ति चर्चा इस प्रकार की थी।

'हमारा एक मात्र उद्धेश्य है आर्य–जाति में वीर भाव का जागरण और उसकी शक्ति का सुसंघटन।'

हिन्दु पंचः– हिन्दु पंच सचित्र साप्ताहिक पत्र था जिसें 1926 में बाबू रामलाल वर्मा नें प्रवर्तित किया था। संचालक थें बाबू मुकुन्दलाल वर्मा। इस पत्र का आदर्श वाक्य इस प्रकार था।

लज्जा रखनें कों हिन्दु की, हिन्दु–नाम बचानें कों आया हिन्दु–पंच हिन्द में, हिन्दु जाति जगानें की।।

हिन्दु पंच के प्रधान उद्धेश्य थेंः–

1.हिन्दु संगठन 2. शुद्ध संस्कार 3. अछुतोद्धार 4. हिन्दु संगठन 5. हिन्दी प्रचार। अपने उद्धेश्य के प्रति यह पत्र सदैव सचेत रहता था। अपने युग का यह अत्यन्त तेजस्वी पत्र था।

श्रीकृष्ण–सन्देशः– पं. लक्ष्मणनारायण गर्दे के सम्पादकत्व में विजयादशमी रविवार 27 दिसम्बर 1925 कों श्रीकष्ण–सन्देश प्रकाशित हुआ था जो कि एक साप्ताहिक पत्र था। पं. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी नें लिखा है कि यह 1926 तक चला।

समन्वयः– रामकृष्ण मिशन के तत्वाधान में स्वामी माधवानन्द की के सम्पादकत्व में कलकता से 1922 में समन्वय का प्रकाशन हुआ था। यह मासिक पत्र था। इसमें धार्मिक, आध्यात्मिक और सामाजिक विशयों के साथ ही साहित्यिक सामग्री भी रहती थी। इस पत्र के सम्पादन–विभाग में एक लम्बें अरसें तक निराला जी रहें। निराला जी कों इसमें आचार्य पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भेजा था। इस पत्रिता मे वैचारिक लेख अधिक प्रकाशित हुए थें। यह हिन्दी का एक अप्रितम पत्र था।

सरोजः– इसके स्वत्वाधिकारी श्री कनकाप्रसाद चौधरी थें। सम्पादक के पद पर श्री नवजादिकलाल श्रीवास्तव तथा श्री रामप्रसाद पाण्डेय थें। यह एक सचित्र मासिक पत्रिका थी। सरोज एक साहित्यिक पत्र था। साहित्यिक विशेशांक भी निकलतें थें। चुकि सरोज–सम्पादक मुशीं नवजादिकलाल हिन्दी के श्रेष्ठ पत्रकार थें। हिन्दी साहित्यकारों से उनका स्नेह–सम्बन्ध था, इसलिए उनका सक्रिय सहयोग सरोज का सहज ही उपलब्ध हो जाता था।

विशाल भारतः– भारत के महान् पत्रकार रामानन्द चट्टोपाध्याय की और से 1928 में विशाल भारत का प्रकाशन हुआ था। यह एक मासिक पत्र था जिसके सम्पादक पं. बनारसीदास चतुर्वेदी थें। चतुर्वेदी जी ने लिखा है कि बडे बाबू ने इस उद्धेश्य से विशाल भारत निकाला था कि हिन्दी जनता तक शुद्ध सात्विक मानसिक भोजन

पहुॅचें। बनारसी दास चतुर्वेदी सन् 1928 से 1937 ई. तक इसका सम्पादन कार्य करतें रहें। विशाल भारत को उसका वास्तविक रूप बनारसीदास चतुर्वेदी नें ही प्रदान किया था। चतुर्वेदी जी के बाद सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय मोहन सिंह सेगंर तथा श्रीराम शर्मा इसका सम्पादन कार्य करतें रहें।

अपने समय में सरस्वती पत्रिका के बाद यह पत्र सबसे अधिक ख्याति पत्र रहा। प्रवासी भारतीयों के प्रसंग में जों आन्दोलन प्रारम्भ हुआ था, उसका प्रमुख माध्यम विशाल भारत ही था। इसी पत्र में प्रथम बार जनपदीय साहित्य की और ध्यान दिया गया था। संस्मरण और पत्र सग्रंह की दृष्टि से भी इस पत्र का बहुत अधिक महत्व है। इसके कई विशिष्ट अंक निकलें थें, जैसे–रविन्द्र अंक,एंड्रूज अंक, पद्यसिंह शर्मा अंक, कलां अंक और राष्ट्रीय अंक, आदि। इसके लेखकों में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, हजारी प्रसाद द्विवेदी, कालिदास नाग आदि प्रमुख थें।

निष्कर्ष–

भारत में हिन्दी पत्रकारिता अपने शैशव काल जो कि 1826 ई. में उदन्त मार्तण्ड से शुरू हुआ था सें लेकर भारतेन्दु युग में पल्लिवत हुई। भारतेन्दु काल में हिन्दी पत्रकारिता कों बहुत बल प्राप्त हुआ तथा हिन्दी भाषा भी समृद्ध हुई तथा पत्रकारिता कों नए आयाम प्राप्त हुए। भारतेन्दु युग के पत्रकार निज स्वार्थ को पीछे छोडकर समाज कल्याण के कार्यों में लगे हुए थें, उस युग के मुख्य अखबार थें। हिन्दी प्रदीप, ब्राहमण, सारसुधानिधि, उचितवक्ता आदि। हिन्दी पत्रकारिता का तीसरा दौर जिसे आमतौर पर द्विवेदी युग भी कहा जाता हे की शुरूआत होती है– सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन सें। इस वक्त के सभी अखबारें में स्वतन्त्रता प्राप्त करनें की उत्कण्ठा दिखाई देती है, सभी पत्र राष्ट्रीय गौरव की भावना से ओतप्रोत थें। जिनमें मुख्य पत्र थें प्रताप, कर्मवीर, नृसिंह, अभ्युदय। चतुर्थ दौर जिसें गॉधी युग भी कहा जाता हैः– मुख्यतः आन्दोलनों का दोर था। इस वक्त प्रकाशित अखबारों तथा पत्र–पत्रिकाओं का मुख्य उद्धेश्य था–हिन्दी भाषा का प्रचार तथा समाज में जाति–प्रथा की रूढियों का ढीला करना, समाज में बराबरी का भाव जागृत करना, इस समय के प्रमुख अखबार तथा पत्र–पत्रिकांए थी–आज,मतवाला, विशाल भारत,समन्वय आदि।

संदर्भ ग्रन्थः–

1. हिन्दी पत्रकारिता :– कृष्णबिहारी मिश्र पृष्ठ 58
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास :–आचाय रामचन्द्र शुक्ल
3. हिन्दी पत्रकारिता का बृहत इतिहास :– अर्जुन तिवारी
4. पत्रकारिता के नए परिप्रेक्ष्य :– राजकिशोर
5. हिन्दी पत्रकारिता :–कृष्ण बिहारी मिश्र पृष्ठ 143
6. वाजपेयी,अम्बिका प्रसाद वाजपेयीः– समाचार पत्रों का इतिहास
7. लक्ष्मी सागर वार्श्णेयः– आधुनिक हिन्दी साहितय की भूमिका
8. रामबिलास शर्मा :– भारतेन्दु युग
9. वंशीधर लाल :– भारतेन्दु युगीन हिन्दी पत्रकारिता

अमित चौधरी
शोधार्थी (हिन्दी–विभाग)
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक (हरियाणा) –124001

20

सुदर्शन प्रियदर्शिनी का व्यक्तित्व एंव उनका साहत्यिक योगदान

Shugufta Ali

सारांश

व्यक्तित्व अंग्रेजी के "पेर्सोनाल्टी" शब्द का हिंदी रूपांतरण है स यह शब्द लेटिन भाषा के "पर्सोना" शब्द से लिया गया है।'personality' आधुनिक मनोविज्ञान का श्रेष्ठ एवं प्रधान विषय है स प्रत्येक व्यक्ति में कुछ ऐसे गुण या प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं , जो अन्य व्यक्ति में नहीं होते है , इन्हीं प्रवृतियों तथा गुणों के आधार पर एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता है और उसी आधार पर वह भिन्न–भिन्न प्रतिक्रियाएं करता है इन्हीं प्रतिक्रियाओं को एक शब्द में हम व्यक्तितव कहते है।

व्यक्ति के व्यक्तितव से ही उसके प्रति आकर्षण होता है व्यक्ति के व्यक्तितव का प्रयोग सामजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आंतरिक एवं बाह्य गुणों से किया जाता है स किसी भी रचनाकार के साहित्य– जगत को जानने से पूर्व उसके व्यक्तितव को समझना अवश्यक है क्योंकि उसके व्यक्तितव की चमक हमें उसके साहित्य में दृष्टिगत होती हैंस साहित्यकार को समाज के प्रति कैसे विचार है तथा उसके जीवन में आचरण– व्यव्हार किस प्रकार का है यह समझना भी अधिक अनिवार्य है । यही कारण है कि प्रत्येक शोधार्थी अपने शोध प्रबंध में संक्षिप्त जीवन परिचय पर अवश्य ही प्रकाश डालते है।

प्रवासी लेखिका सुदर्शन प्रियदर्शिनी का जन्म 27 अगस्त सन् 1942 में लाहौर में हुआ है । अरोड़ा परिवार में जन्मी , माता–पिता की जेष्ठ पुत्री हैं स आप के पिता का नाम वजीर चंद तथा माता जी का नाम राजा रानी है स आपके पिता जी सरकारी अधिकारी थे । इन्हें पिता जी से शिक्षा प्राप्त करने केलिए अत्यंत प्रोत्साहन मिला है स सरकारी नौकरी होने के कारण आपके पिता जी का स्थानांतरण होता रहता है जिस कारण आप की शिक्षा किसी एक ही स्थान तक सीमित नहीं रही जबकि पढाई–लिखाई के प्रति अधिक रूची रखती थी स आर्थिक संम्पंता के कारण आपका बालपन बड़े ही ऐश्वर्य में व्यतीत हुआ है । आप की आरम्भिक शिक्षा सन् 1949 में शिमला बालू गंज प्राइमरी स्कूल से हुई है । सन1957 में आप ने दसवी तथा सन् 1959 में इंटर की परीक्षा गावालियार गजरा–राजा राजकीय स्कूल से किया । सन 1962 में आप ने स्नातक की उपाधि महाविद्यालय चंडीगढ़ से प्राप्त की है इसके पश्चात स्नातकोतर की उपाधि सन् 1965 में पंजाब विश्वविद्यालय से अर्जित की । स्नातकोत्तर करने के तत्पश्चात गवर्मेंट डिग्री कॉलेज धर्ममशाला हिमाचल प्रदेश में अध्यापिका की नौकरी मिली स वहां आप ने लग भग 16 वर्षों तक हिंदी अध्यापन का कार्य किया , 25 वर्ष की आयु में उन का विवाह डॉ. इंदरजीत से संपन हुआ है । विवाह उपरांत पति के प्रोत्साहन से सन् 1982 में पी.एच.डी की उपाधि अर्जित करने में सफल हुई स इसी वर्ष पति के साथ अमेरिका चली गई है । विदेश में ही आपने रेडियो व दूरदर्शन के अनेक कार्यक्रमों का निर्माण किया । विदेश में हिंदी फिल्मों तथा नाटकों के माध्यम से हिंदी भाषा एवं भारतीय संस्कृति का प्रचार–प्रसार करने में कार्यरत रही । अंगरेजी पत्रिका 'फ्रेग्रेंस' का भी प्रकाशन सन् 1984 में करवाया जो निरंतर दस साल तक इन विषयों पर भारतीय संस्कृति एंव मूल्यों पर निकाली थी स लेखिका ने भारतीय संस्कृति को विदेश में जीवित रखने केलिए बहुत कार्य किया है । " आपने ओहायो (अमेरिका) के छोटे से नगर क्लीवलैंड में हिंदी भाषा और साहित्य को जानने–बूझने और आत्म्सात करने केलिये व्यक्तिगत स्तर पर विभिन्न आयोजन और प्रयास किये, जिसका प्रतिफलन भले ही किसी अंतर्राष्ट्रीय सम्मान या पुरस्कार का रूप न ले सका लेकिन क्लीवलैंड की वर्तमान पीढ़ी की हिंदी जुबान आप के इन प्रयासों के सदैव कृतज्ञ रहेगी । "[1] लेखिका सुदर्शन प्रियदर्शिनी जी विदेश में ऐश्वर्य पूर्ण जीवन जीने के उपरान्त भी भारतीय लोगों का दुख–दर्द टी.वी पर देख कर मन ही मन कुंठित हो जाती थी इस कथन को उन्होंने अपने शब्दों में भी व्यक्त करने का सफल प्रयास किया है । " टी.वी. पर भारत में भिखारी, लंगडे दृ लूले (जैसे यहाँ नहीं हैं) और बेबसी ही देखने को मिलती थी, मेरी आत्मा तडप उठती थी, जो निम्न है, गंदा है, दयनीय है, वही भारत है, इसी धारणा को तोड़ने केलिए और यहां के भारतीय बच्चों की आंखें खोलने केलिए मैं ने यह प्रोग्राम प्रारम्भ किया जिसका बहुत स्वगत हुआ , लोगों को हिंदुस्तान को देखने का एक नया दृष्टिकोण मिला ।"[2] आज कल स्वतंत्र लेखन में लेखिका कार्यरत हैं । आलोच्य लेखिका स्थायी रूप से क्लीवलैंड ओहायो में अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं तथा साथ ही साहित्य सर्जन में भी जुटी हुई हैं । "एक अनाम हस्ताक्षर हूँ स पिछ्ले अनगणित सालों से अपने आपको ढूँढ़ने की तलाश जारी है स अभी अपनी कोई पहचान नहीं बन पायी । परिचय के योग्य कुछ विशेष नहीं है । छिटपुट छपने से जो पहचान बन सकती है ,वही बन सकी

है ।"[3] डॉ. सोमलता सिंह लेखिका के बारे में कहती है – " यह सत्य है कि जो हम है वही हम सोचते हैं और जो हम सोचते हैं वही हम लिखते हैं स किसी भी रचनाकार के व्यक्तितव का आइना उसकी रचनाऐं होती हैं जो उसके हृदय से फूट कर कोरे कागज. पर अंगड़ाई लेती दृष्टिगत होती है स प्रियदर्शिनी जी स्वच्छ एंव निष्ठा–प्रधान धारा के कारण वे उपमेय से उपमान बन गयी हैं ।"[4]

उनके रचना संसार से हम इस बात से अवगत होते है कि वह कभी विषाद व भावुक, कठिनाईओं से डट कर मुकाबला करने वाली, संस्कृति तथा संस्कारो से सम्पूर्ण, अपनी भावनाओं से दार्शनिक तथा मनुष्य प्रेम से स्मपूर्ण व्यक्तितव की धनवान है स अतरू लेखिका का व्यक्तितव अपने आप में समस्त है ।

सुदर्शन प्रियदर्शिनी का साहितियक योगदान –

21 वीं सदी के साहित्यकारों ने हिन्दी साहित्य जगत में अपना अमूल्य योगदान दिया है , इन्हीं साहित्यकारों में सुदर्शन प्रियदर्शिनी का स्थान भी सर्वोच्च रहा है। यह किसी परिचय की अधीन नहीं है । उनका साहित्य आज भारत तथा अन्य देशों में ख्याति की सीढ़ियाँ पार कर चुका है । इनके समूचे साहित्य में इनकी अद्भुत क्षमता दृष्टिगत होती है । इनकी प्रसिद्धि का कारण उनकी सरल भाषा–शैली है स घर में साहित्यिक वातावरण होने के कारण इन्हें लिखने का शौक बचपन से ही था स लेखिका को लिखने की प्रेरणा उनकी गुरु श्रीमती गुरप्रीत से मिली स अतरू उन के व्यक्तितव के आकर्षण ने लेखिका को अधिक प्रभावित किया था । अपनी लेखनी का आरम्भ उन्होंने 16 वर्ष की आयु में 'सपना टूट गया' कहानी से किया जो'कांच के टुकड़े' कहानी संग्रह में सन् 1959 में साप्तायिक हिंदुस्तान की पत्रिका द्वारा प्रकाशित हुई स आलोच्य लेखिका का सुधा ओम ढींगरा से की गई बात चीत का अंश " साहित्य की कोई सीमा नहीं होती, इस का विभाजन नहीं किया जाना चाहिये स"5 उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन साहित्य सर्जन हेतु समर्पित कर दिया है । आप की रचनाओं ने पाठकों के हृदय में अमिटछाप छोड़ी है। अमेरिका में रहते हुऐ हिंदी साहित्य को समृद्धि करने में आप ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है स इन्होंने गद्य और पद्य दोनों विधाओं पर जैसे उपन्यास, कहानी,कविता आदि पर अपनी लेखनी चलाई हैं ।

उपन्यास

रेत के घर–2009

जलाक –2009

न भेज्यो बिदेस–2013

अब के बिछुड़े –2014

सूरज नहीं उगेगा और अरे ओ कनिका (दो लघु उपन्यास)–2017

पारो 2019

कहानी – संग्रह

कांच के टुकड़े 1959

उत्तरायण 2012

खाली हथेली 2015

आर न पार 2021

हिंदी कविता – संग्रह

शिखंडी युग 1987

बारह 2009

ये युग रावण है 2010

मुझे बुद्ध नहीं बनना 2012

पंजाबी कविता – संग्रह

मैं कौण हाँ 2011

अंग–संग 2014

उपन्यास

क . 'रेत के घर' रेत के घर उपन्यास मित्तल एण्ड सन्स द्वारा सन् 2009 में प्रकाशित हुआ ।

'रेत के घर' उपन्यास में धार्मिक समस्या तथा दाम्पत्य जीवन एवं बिखरते रिश्तों की समस्याओं को उजागर किया गया है ।

क. 'जलाक' जलाक उपन्यास आधारशिला द्वारा सन् 2009 में प्रकाशित हुआ । "जलाक अर्थात जलाने वाली हवा" यह उपन्यास पशिचमी तथा भारतीय सभ्यताओं के टकराव का प्रेफुटन है ।

क. 'न भेज्यो बिदेस' दृ न भेज्यो बिदेस उपन्यास नमन प्रकाशन द्वारा 2013 में प्रकाशित हुआ ।

इस उपन्यास में हवस,प्रवासी दर्द,स्वार्थ तथा पारिवारिक समस्याएं दृष्टिगत होती है ।

क. 'अब के बिछुड़े' अब के बिछुड़े उपन्यास नमन प्रकाशन द्वारा सन् 2014 में प्रकाशित हुआ ।

आलोच्य उपन्यास में लेखिका प्रेम की प्रमाणिकता एवं परिभाषा की खोज में जुटी हुई हैं ।

क 'अरी ओ कनिका और सूरज नहीं उगेगा' (दो लघु उपन्यास) ये दो लघु उपन्यास विश्वास प्रकाशन द्वारा 2017 में प्रकाशित हुए है । इन दो उपन्यासों में दाम्पत्य जीवन की समस्याओं के साथ–साथ पारिवारिक विघटन तथा इस सब के कारण बच्चों की मानसिकता पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव को चित्रित किया गया है ।

क.'पारो' पारो उपन्यास सभ्या प्रकाशन द्वारा 2019 में प्रकाशित हुआ ।

यह प्रेम तथा सामाजिक कर्तव्यों पर आधारित एक उत्तरकथा है

जिसका केंद्र बिदु प्रेम है ।

कुल मिलाकर उनके उपन्यासों में कुँठा, संत्रास,दामपत्य जीवन, हवस, देश–प्रदेश के द्वंद, प्रवासी जीवन के दुख–दर्द , अकेलापन, बिखरते रिश्ते आदि समस्याओं को उजागर करने का सफल प्रयास किया गया हैं ।

कहानी – संग्रह

क. 'कांच के टुकड़े' कांच के टुकड़े कहानी संग्रह साप्तायिक हिन्दुस्तानी पत्रिका 1959 में प्रकाशित हुआ स इस संग्रह में बारा कहानियाँ संग्रहित है ।

क. 'उत्तरायण' उत्तरायण कहानी संग्रह नमन प्रकाशन द्वारा 2011 में प्रकाशित हुआ । इस कहानी संग्रह में ग्यारा कहानियाँ संकलित है ।

क 'खाली हथेली' खाली हथेली कहानी संग्रह बोधि प्रकाशन द्वारा प्रकाशित हुआ । इस कहानी संग्रह में चौदा कहानियां संकलित है ।

क- 'आर न पार' यह कहानी संग्रह नमन प्रकाशन द्वारा 2021 में प्रकाशित हुआ ।यह उनीस कहानियों का संग्रह है ।

अपने लेखन के बारे में लिखती हैं "मेरा लिखना चाहे वह कहानी हो या उपन्यास, कभी सायास नहीं रहा सदैव अनायास ही होता है , एक तीव्र भावावेश की तरह, इसलिए शायद मेरी रचनाओं में वह टहराव, मनोशीलता या विचारशीलता नहीं आ पायी वह केवल एक ताजी संवेदना या तड़प ही बन कर रह जाती है ।" [6]

हिंदी कविता–संग्रह

क. 'शिखण्डी युग '– शिखण्डी युग कविता संग्रह अर्चना प्रकाशक द्वारा सन् 1987 में प्रकाशित हुआ ।

क. 'बरहा' – बरहा कविता संग्रह हिंदी बुक सेंटर द्वारा 2009 में प्रकाशित हुआ ।

क 'यह युग रावण है' दृ यह युग रावण है 2010 में अयन प्रकाशक द्वारा प्रकाशित हुआ ।

क 'मुझे बुद्ध नहीं बनना '– मुझे बुद्ध नहीं बनना कविता संग्रह अयन प्रकाशन द्वरा 2012 में प्रकाशित हुआ ।

उनके काव्य संसार का प्रवासी हिंदी साहित्य में विशेष स्थान है उनकी कविताओं की विशेष सहानुभूति असितत्व तथा स्त्री के अभिमान को स्वर देना रहा है , उनकी कविताओं का विषय जीवन की अनेकता रहा है तथा इस के साथ ही उनमें देश से बिछड़ने की पीड़ा एंव मानवीय संवेदना को बड़े ही मार्मिक डंग से प्रस्तुत किया गया है स उनके काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह हैं कि कम शब्दों में गेहरी बात कहना श्आज कल बंद रहती है खिडकियाँ, लौगबाग अपने अपने से बाहर झाँकते तक नहीं स खुली हवा का झोंका फांकते तक नहीं ।[7]

पंजाबी कविता – संग्रह

क . 'मैं कौण हां '– मैं कौण हां पंजाबी कविता संग्रह 2011 में चेतना प्रकाशक द्वरा प्रकाशित हुआ ।

क'अंग–संग ' अंग–संग पंजाबी कविता संग्रह अयन प्रकशन द्वरा 2014 में प्रकशित हुआ ।

पुरस्कार और सम्मान

गवर्नस मीडिया पुरस्कार रू ओहियो, यू.एस.ऐ सन् 1984 में आप को संस्कृति के प्रसार केलिए इस पुरस्कार से सम्मानित किया गया ।

महानता पुरस्कार रू फेडरेशन ऑफ इंडिया, ओहियो भी उन्हें संस्कृति के प्रचार केलिय सन् 1987 में आप को प्राप्त हुआ ।

महादेवी पुरसकार आपको हिंदी परिषद् टोरंटो कनाडा द्वारा काव्य संसार केलिए सन् 1990 में दिया गया ।

हिंदी चेतना एवं ढींगरा फैमिली फाउंडेशन द्वारा कहानी पुरस्कार सन् 1993 में आप को पूरे कथा साहित्य केलिए दिया गया कहानी पुरस्कार : हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा सन् 2012 में संदर्भहीन कहानी केलिए आप को प्राप्त हुआ ।

कथा देश कहानी पुरस्कार सन् 2016 में 'कभी लौट कर न आना' कहानी केलिए दिया गया ।

निष्कर्ष –

सुदर्शन प्रियदर्शिनी अत्यंत संवेदंशील तथा भावुक नारी है । उन्होंने अपने जीवन में सुख–दुःख, उतार–चढाव के होते हुए भी जो लिखा वह अद्भुत है आप ने पारिवारिक कर्तव्यों को निभाते हुए भी साहित्य सर्जन किया है । उन्होंने हिंदी तथा पंजाबी साहित्य को अनेक रचनाऐं प्रदान की है । अपनी रचनाओं के माध्यम से अपने विचार व्यक्त किये हैं । प्रवास में रहते हुए भी हिंदी भाषा का प्रचार–प्रसार किया साथ ही प्रवास के दुःख– दर्द , अकेलापन तथा बिखरते रिश्ते आदि समस्याओं से पाठकों को अवगत कराने में सफल हुई है।उनके कथा साहित्य में नैतिक मूल्य,पाश्चात्य तथा भारतीय संस्कृति का अन्तर्द्वन्द, अस्तित्व बोध, स्त्री चिन्तन, मानवीय संवेदना आदि के दर्शन होते है स अतरू सुदर्शन प्रियदर्शिनी नरेश मेहता (नदी यशस्वी है), निर्मल वर्मा (वे दिन), जैनेन्द्र (कल्याणी , त्याग पत्र) तथा महादेवी वर्मा आदि से उनका साहित्य अधिक प्रभावित दृष्टिगोचर होता है । लेखिका को इनसे प्रेरणा मिली है तथा वह इनके लेखन विधि से भी बहुत प्रभावित हुई है ।

संदर्भ सूची

1. सिंह रामकुमार दस्तक टाइक्स, राष्ट्रीय मासिक पत्रिका, नोवा पब्लिकेशन एंड प्राइवेट लिमिटेड, (जनवरी 2016) सेक्टर–59 फेस–2 फरीदाबाद, पृष्ठ. 54

2. श्रीधर (प्रो) प्रदीप, श्रीधर (डॉ) शिखा, 'प्रवासी हिंदी साहित्य और सुदर्शन प्रियदर्शिनी, शुभम् पब्लिकेशन प्रथम संस्करण 2018 पृष्ठ 57
3. प्रियदर्शिनी (डॉ) सुदर्शन, 'यह युग रावण है' अयन प्रकाशन नई दिल्ली 2010 भूमिका
4. श्रीधर (प्रो) प्रदीप, श्रीधर (डॉ) शिखा, 'प्रवासी हिंदी साहित्य और सुदर्शन प्रियदर्शिनी, शुभम् पब्लिकेशन प्रथम संस्करण 2018 पृष्ठ 240–241
5. अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, 'प्रवासी हिंदी साहित्य और सुदर्शन प्रियदर्शिनी' (21–22 मार्च 2018), संगोष्ठी के वक्तव्य का अंश ।
6. श्रीधर (प्रो) प्रदीप, श्रीधर (डॉ) शिखा, 'प्रवासी हिंदी साहित्य और सुदर्शन प्रियदर्शिनी, शुभम् पब्लिकेशन प्रथम संस्करण 2018, पृष्ठ 15
7. प्रियदर्शिनी (डॉ) सुदर्शन, कविता–संग्रह 'यह युग रावण है' अयन प्रकाशन नई दिल्ली 2010 पृष्ठ 28

Shugufta Ali
House No. 18
Chinar Avenue Colony
Naseem Bagh Bazratbal
Srinagar 190006

21

मैथिलीशरण गुप्त की भारत–भारती में राष्ट्रीय भावना

डॉ0 सुखवीर सिंह

सारांश

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक प्राणी होने के साथ–साथ वह एक भावनामय प्राणी भी है। अनादि काल से उसके भाव जगत में जननी और जन्मभूमि का सर्वोच्च स्थान रहा है।मातृभूमि के प्रति रागात्मक भाव के उदय से ही समाज राष्ट्र का नाम, रूप धारण करता है। मनुष्यों मे अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम की उत्कृट भावना होती है। राष्ट्र के प्रति प्रेम की इसी उत्कृट भावना से ही राष्टीयता का जन्म होता है। राष्ट्र के नागरिकों में राष्ट्रीय भावना जाग्रत करने के लिए राष्ट्र के सुनहले गौरवमय अतीत का स्मरण कराया जाता है। राष्ट्र की प्राचीन सभ्यता एवम् संस्कृति को उस देश के लोगों के सामने बडे सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित भारत–भारती रचना राष्ट्रीय चेतना से प्रत्यक्ष जुडी है। गुप्त जी ने भारत–भारती के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना के मंत्र का गान करके देशवासियों को उद्देश्य प्राप्ति के लिए जगाने का प्रेरणादायक कवि कर्म किया है।यही कारण है कि कवि को राष्ट्र कवि की उपाधि प्रदान करवाने में भारत–भारती का प्रमुख स्थान रहा है। भारत–भारती शुरू से लेकर अंत तक आस्था और विश्वास से भरी हुई है। भारत–भारती में गुप्त जी का राष्ट्रीय चेतना–मूलक प्रयास एकांगी नहीं, सर्वांगी है।उन्होंने इतिहास, वर्तमान सभी में अपने इस प्रयास को पुष्ट और प्रभावी बनाया है।

राष्ट्र शब्द सर्वधातुभ्यःष्ट्रन इस उणादि प्रत्यय के संयोग से रासृ शब्दे अथवा राजृ शोभने धातु से बना है।[1] इस निर्मिति से राष्ट्र शब्द का अर्थ इस प्रकार लिया जा सकता है– 'रासन्ते चारू शब्दं कुर्वते जनाः यस्मिन प्रदेशे विशेष तद् राष्ट्रम्। तात्पर्य यह है कि जिस विशेष भू–भाग के मनुष्य एक विशेष भाषा के द्वारा दैनिक आचार–व्यवहार का सम्पादन करते हैं, वह स्थल विशेष राष्ट्र है। "देश को अपना कहने वाले, उस पर परायों की ओर से आक्रमण होने पर परम्परागत आदर्शों का अखण्ड परिपालन करने के हेतु अपनी सम्पूर्ण शक्ति को जुटाकर प्रयत्न करने वाले, अपनी संस्कृति एवं परम्परा का अभिमान रखने तथा इस प्रकार एकात्मकता की प्रेम–रज्जु से आबद्ध होने के कारण एक–दूसरे के उत्कर्ष एवं सुख के हेतु सहकार्य की भावना से कार्य–प्रवृत होने वाले लोगों का समुदाय ही तो राष्ट्र है।"[2] राष्ट्र लोगों का एक समूह है जिसके निर्माण में अनेक तत्वों समान धर्म, समान इतिहास, समान भाषा, समान हित, समान परम्पराएं, समान संस्कृति, समान साहित्य, भौगोलिक एकता और राजनैतिक प्रभुसता का योगदान होता है।

राष्ट्र की भाववाचक संज्ञा राष्ट्रीयता है। इसका संबंध मानव की अन्तष्चेतना से है। "राष्ट्रीयता एक आंतरिक प्रवृत्ति है, एक ऐसी चेतना है जिसके प्रस्थान बिन्दु में वैयक्तिता और विस्तार में विश्व विद्यमान है। व्यक्ति से ही राष्ट्र का स्वरूप निर्धारित होता है। जब व्यक्ति राष्ट्र हित के लिए अपने स्वार्थों और संकुचित सीमाओं का उत्सर्ग करता है, तभी सच्ची राष्ट्रीयता का जन्म होता है।"[3] राष्ट्रीयता मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति है, जिसके कारण मनुष्य अपने राष्ट्र के प्रति अपनापन अनुभव करता है। इसका संबंध देश की भौगोलिक एकता, भाषा एवं धर्म, संस्कृति और राजनैतिक एकता से रहता है। "अपने देश और देशवासियों के प्रति मानव मात्र में अनुराग होता है। इसलिए वह उनको बंधन युक्त नहीं देख सकता है। उनके दारूण दुख को सोत्साह दूर करने का प्रयत्न करता है। यही राष्ट्रीयता है– इसके मूल में मातृभूमि का अनुराग और दुःख नाश का उत्साह रहता है।"[4] वास्तव में, राष्ट्रीय चेतना एक उदात अवस्था है। इस अवस्था को वही प्राप्त कर सकता है जिसके हृदय में जन्म भूमि के प्रति बलिदान की भावना, त्याग की भावना, देश के प्रति अनुराग की भावना तथा अपने प्रति सम्मान की भावना होती है।

मैथिलीशरण गुप्त भारतीय संस्कृति के अद्वितीय उद्गाता एवं राष्ट्रीय जागरण के कवि हैं। उनके द्वारा भारत–भारती की रचना आजादी से पूर्व सन् 1912 में देशवासियों में राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत करने के उद्देश्य से की गई थी। "बडे खेद की बात है कि हम लोगों के लिए हिन्दी में अभी तक इस ढंग की कोई कविता–पुस्तक नहीं लिखी गई जिसमें हमारी प्राचीन उन्नति और अर्वाचीन अवन्नति का भी वर्णन हो और भविष्यत् के लिए प्रोत्साहन भी।"[5] इस रचना द्वारा गुप्त जी ने प्राचीन भारतीय–सभ्यता और संस्कृति के गौरव का उद्घाटन करके उन्होंने वर्तमान अद्यःपतन की तुलना में रखा है और भविष्य के लिए पुनरूत्थान की प्रेरणा दी है। राष्ट्रीय भावनाओं की जागृति में भारत–भारती का विशेष स्थान है। "अनेक देश सेवक इसे गुन–गुनाते हुए सत्याग्रह आंदोलनों में भाग लेते थे। सभी महान नेताओं ने स्वतंत्रता संग्राम में इसके अप्रतिम योगदान की सराहना की।"[6] भारत–भारती की रचना अतीत, वर्तमान और भविष्यत तीन खण्डों में हुई है। उन्हें हम क्रमशः इस प्रकार देख

सकते हैं–

1 भारत का प्राचीन उत्थान

2 भारत का वर्तमान ह्रास

3 भारत के भावी उत्कर्ष की आशान्विता

गुप्त जी ने भारतीय परिवेश में उन्नति और पतन के क्रमिक दौर को देखते हुए दुःखी होकर कहा था–

"हम कौन थे, क्या हो गयें हैं, और क्या होंगे अभी।
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।"[7]

इन समस्याओं पर विचार करने में गुप्त जी की वृत्ति सर्वत्र नियतिवादी और आस्तिक रही है। उनके अनुसार प्रकृति का अखण्ड नियम है, जो उन्नति करता है, उसकी अवनति भी अवश्य होती है–

"उन्नति तथा अवनति प्रकृति का नियम एक अखण्ड है,
चढता जो प्रथम व्योम में गिरता वही मार्तण्ड हैं।"[8]

भारत–भारती का हिन्दी जगत में जिस समय अवतरण हुआ था, वह काल भारत की राजनैतिक दृष्टि से अत्यन्त अव्यवस्था एवं व्याकुलता का युग था।समाज का हर क्षेत्र में पतन हो चुका था। देश,समाज की पतनोन्मुख अवस्था में सुधार लाने के लिए गुप्त जी ने अतीतकालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के विशुद्ध उद्घाटन के माध्यम से लोगों में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने का प्रयत्न किया। इसके लिए उन्होंने अतीतकालीन भारत के गौरव–पूर्ण क्षणों को प्रस्तुत किया। भारत–भारती में मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीय चेतना तीन स्तरों पर अभिव्यक्त हुई है–

1 अतीतकालीन गौरव–गाथा

2 वर्तमान दशा पर क्षोभ एवं आक्रोश

3 भावी उत्कर्ष के प्रति आशान्विता

गुप्त जी ने अतीतकालीन गौरव–गाथा के चित्रण के माध्यम से भारतवर्श का उत्थान दिखाया है। अतीतकालीन गौरव–गाथा का चित्रण करते हुए गुप्त जी ने भारत भूमि में जन्म लेने वाले वीर पुरूशों की स्तुति की है। प्राचीन भारत में ऐसे महापुरूष हुए, जिनके व्यक्तित्व के समस्त गुण अनुकरणीय हैं–

"उन पूर्वजों की कीर्ति का वर्णन अतीव अपार है,
गाते नहीं उनके हमीं गुण गा रहा संसार है।
वे धर्म पर करते निछावर तृण समान शरीर थे,
उनसे वही गम्भीर थे, वरवीर थे, ध्रुवधीर थे।"[9]

प्रत्येक राष्ट्र का एक निश्चित भू–भाग होता है। इस भू–भाग के प्रति देशवासियों में अनुराग,श्रद्धा, प्रेम और त्याग की भावना विद्यमान रहती है। इसका गरिमामय में वर्णन लोगों में राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत करने के लिए किया जाता है। गुप्त जी को भारत–भूमि से बेहद प्रेम एवं लगाव था। उसकी प्राकृतिक लीला स्थली ने उन्हें बहुत ज्यादा प्रभावित किया था–

"भू–लोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला स्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है?
उसका की जो ऋशि भूमि है वह कौन?भारतवर्ष है।"[10]

गुप्त जी ने अतीत गौरव–गाथा के माध्यम से अतीतकालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के गौरवपूर्ण क्षणों की आदर्शमय झांकी प्रस्तुत की है।

गुप्त जी ने भारत वर्ष की पतनोन्मुख दशा पर क्षोभ एवं आक्रोश व्यक्त किया है–

"1हम कौन थे, क्या हो गए हैं, जान लो इसका पता,
जो थे कभी गुरू है न उनमें शिश्य की भी योग्यता।
जो थें सभी से अग्रगामी, आज पीछे भी नहीं,
है दीखती संसार में विपरीतता ऐसी कहीं।"[11]

प्राचीन भारत हर क्षेत्र में उन्नति के पथ पर अग्रसर था, उसके हर क्षेत्र में अतीत उन्नति हुई थी। लेकिन वर्तमान भारतीय समाज अनेक परम्परागत रूढियों से ग्रसत हो चुका था–

"हिन्दू समाज कुरीतियों का केन्द्र जा सकता कहा,
ध्रुव, धर्म पथ में कुप्रथा का जाल सा है बिछरहा ।
सुविचार के साम्राज्य में कुविचार की अब क्रान्ति है,
सर्वत्र पद पद पर हमारी प्रकट होती भ्रान्ति है। "[12]

गुप्त जी ने पतनोन्मुख भारत वर्ष के भावी उत्कर्ष के प्रति अपनी आशा प्रकट की है। भारतवर्ष उत्थान से पतन की ओर उन्मुख हुआ है, परन्तु कवि को आशा है कि भविष्य में एक बार फिर उसका उत्थान होगा–

"उन्नत रहा होगा कभी जो हो रहा अवनत अभी,
जो हो रहा उन्नत अभी, अवनत रहा होगा कभी।
चिन्ता नहीं जो व्योम–विस्तृत चन्द्रिका का ह्रास हो,
चिन्ता तभी है जब न उसका फिर नवीन विकास हो। "[13]

पराधीन देश के उदार का प्रथम कार्य उस देश के लोगों में आपसी प्रेम एवं सहयोग की भावना का होना है। प्रेम पूर्वक सहयोग से देश हित में लगा रहना चाहिए–

"होकर निराश कभी न बैठो, नित्य उद्योगी रहो,
सब देश हितकर कार्य में अन्योन्य सहयोगी रहो।"[14]

समाज का परम्परागत उत्थान, नारी उत्थान के साथ बंधा हुआ है। इसलिए समाज के उत्थान के लिए नारी का उत्थान आवश्यक है। नारी का उत्थान तभी संभव है, जब विलास की सामग्री से परे अर्धांगिनी के परम्परागत पद की सच्ची अधिकारिणी के रूप में उसका उनयन किया जाए–

"ऐसी उपेक्षा नारियों की जब स्वयं हम कर रहे,
अपना किया अपराध उनके शीश पर हैं धर रहे।
भागें न क्यों हमसे भला फिर दूर सारी सिद्धियाँ,
पातीं स्त्रियाँ आदर जहाँ रहती वहीं सब ऋधियाँ।" [15]

पतनोन्मुख समाज के लिए शिक्षा अन्धे के हाथ में लकडी के समान है। हमारी प्राचीन शिक्षा प्रणाली जीवन संग्राम में विजय पाने के उपयुक्त थी, परन्तु वर्तमान में शिक्षा के स्तर में गिरावट आ गई थी। समाज के उत्थान के लिए आवश्यक है कि शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाए। शिक्षित समुदाय के अभाव में समाज की उन्नति के बारें में सोचना व्यर्थ है–

सबसे प्रथम कर्तव्य है शिक्षा बढाना देश में,
"शिक्षा बिना ही पडे रहें हैं, आज हम सब कलेश में।
शिक्षा बिना कोई कभी बनता नहीं सत्पात्र है,
शिक्षा बिना कल्याण की आशा दुराशा मात्र है।"[16]

शिक्षा के अभाव में मानव अज्ञान के अंधकार में भटकता रहता है। शिक्षा ज्ञान का ऐसा प्रकाश है, जो मानव को अज्ञान के अंधकार से निकाल कर उन्नति के पथ पर अग्रसर करता है। "शिक्षा से यह आशा की जाती है कि वह अतीत, वर्तमान और भविश्य के बीच के अंतराल को दूर करेगी। वह ज्ञान के प्रकाश के द्वारा यह काम करती भी है। एक ओर यदि उपलब्ध ज्ञान का प्रसार शिक्षा का महत्वपूर्ण कार्य है तो नए ज्ञान की सर्जना भी उसका उतना ही महत्वपूर्ण उतरदायित्व है।"[17] शिक्षा के प्रचार के माध्यम से समाज को नई दिशा और नई रोशनी मिलती है। नई रोशनी एवं नई चेतना के जाग्रत हो जाने पर लोग दासता के बंधनों से मुक्ति पाने के लिए तैयार हो जाते हैं।

निष्कर्षतः मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित भारत–भारती राष्ट्रीय जागरण व निर्माण की काव्य कृति है। इस छोटी सी काव्य कृति में राश्ट्रीय भावनाएं गागर में सागर की भांति भरी हुई है। यह एक महान उद्देश्य को लेकर लिखी गई कृति है। यह विशुद्ध मानवतावाद से परिपूरित है। यह आस्था, विश्वास, त्याग, समर्पण तथा लक्ष्य प्राप्ति के लिए व्याकुलता से सम्पन्न है। इसमें कुंठा, निराशा और अवसाद के लिए कोई स्थान नहीं है। यह लोकमंगल की उदात भावना को संजोये हुए है। यह समाज के लिए प्रेरणादायक है, तथा सदैव समाज का पथ–प्रदर्शन करती रहेगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः

1 द्वारका प्रसाद एवम् वागीश झा, संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभम्, पृ0443
2 उमाकांत केशव आपटे, हमारे राष्ट्र जीवन की परम्परा, पृ03
3 मंजुलादास, प्रसादोत्तर नाटकों में राष्ट्रीय चेतना, पृ0 01
4 उमाकांत, मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता, पृ0223
5 मैथिलीशरण गुप्त, भारत–भारती, प्रस्तावना, पृ0 06
6 डॉ0 द्वारका प्रसाद मितल, मैथिलीशरण गुप्त का साहित्य, पृ0 15
7 मैथिलीशरण गुप्त, भारत–भारती, अतीत खण्ड, पृ0 11
8 मैथिलीशरण गुप्त, भारत–भारती, अतीत खण्ड, पृ0 10
9 मैथिलीशरण गुप्त, भारत–भारती, अतीत खण्ड, पृ0 13
10 मैथिलीशरण गुप्त, भारत–भारती, अतीत खण्ड, पृ0 11
11 मैथिलीशरण गुप्त, भारत–भारती, भविष्य खण्ड, पृ0143
12 मैथिलीशरण गुप्त, भारत–भारती, वर्तमान खण्ड, पृ0 127
13 मैथिलीशरण गुप्त, भारत–भारती, अतीत खण्ड, पृ0 10
14 मैथिलीशरण गुप्त, भारत–भारती, भविष्य खण्ड, पृ0 149
15 मैथिलीशरण गुप्त, भारत–भारती, वर्तमान खण्ड, पृ0 124
16 मैथिलीशरण गुप्त, भारत–भारती, भविष्य खण्ड, पृ0 157
17 श्यामचरण दुबे, शिक्षा, समाज और भविष्य, पृ0 10

डॉ0 सुखवीर सिंह
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी
राजकीय महाविद्यालय बहु, झज्जर

22

न्यू मीडिया में हिन्दी भाषा के प्रभावः एक अध्ययन

डॉ0 नरेश कुमारी

सारांश

न्यू मीडिया जिसको सोशल मीडिया भी कहा जाता है। शायद ही विश्व का कोई ऐसा देश होगा जहां के नागरिक सोशल मीडिया का उपयोग ना करते हो। न्यू मीडिया मानव इतिहास का मानव निर्मित सबसे बड़ा एवं महत्वपूर्ण मंच है, न्यू मीडिया अब न्यू मीडिया की तमाम भाशाओं मे लिखा व पढ़ा जा रहा है। अंग्रेजी के पश्चात हिन्दी के न्यू मीडिया उपयोगकता दूसरे पायदान पर है। आंकडें में 150 से भी अधिक देशों में भारतीय के लोग रहते है जो हिन्दी भाषा को मातृभाषा या दूसरी भाषा के रूप में हिन्दी को ही जानते है। लगभग सभी भारतीय प्रवासी अधिकांश आपस में सपंर्क भाषा के रूप में हिन्दी भाषा का उपयोग करते हैं। विश्व की दस सबसे प्रभावशाली भाषाओं में हिन्दी भाषा का भी अहम् स्थान है। विश्व भाषाओं में अंग्रेजी और स्पेनिश के पश्चात तीसरे स्थान पर हिन्दी भाषा सबसे लोकप्रिय है। सन् 1999 में मशीन ट्रांसलेशन शिखर बैठक में टोकियो विश्वविद्यालय के प्रोफेसर होजुमि तनाका ने जो आंकड़ें प्रस्तुत किए उनके अनुसार विश्व में चीनी भाशा बोलने वालों का प्रण्यक स्थान है द्वितीय पायदान पर हिन्दी और तृतीय पायदान है अंग्रेजी भाषा है।

मुख्य शब्दः–

न्यू मीडिया, हिन्दी भाषा का प्रभाव, युवा, उपयोग इत्यादि।

उद्देश्य एवं भाोध विधि :–

न्यू मीडिया में हिन्दी के महत्व को उजागर करना।

शोध विधि :–

प्रस्तुत शोध में वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित बनाए रखने के लिए शोध में विस्तृत शोध विधि का प्रयोग किया गया है एवं द्वितीय आंकड़ों का प्रयोग किया गया है।

परिचय :–

विश्व इतिहास में सूचनाओं का बड़ा महत्व है। इतिहास में पाया गया है कि राजाओं के गुप्तचर विभाग होता था जो राजा को प्रजा के बारे में सब दूसरे राजाओं और रियासतों की अहम् सूचना प्रदान किया करता है। राजा अपनी योजनाओं को जनता तक मुनादियों द्वारा प्रसारित किया करते थे। मुनादियों के कर्मचारी ढोल बजाकर गलियों को उच्ची आवाज में राजा की कल्याकारी योजनाओं एवं राजा के आदेशों को जनता अर्थात प्रजा में प्रसारित करते थे। प्रत्येक राज्य के राजा के पास संदेश वाहन विभाग भी होता था जो नियत्रंण, संधि निमत्रंण इत्यादि पड़ोसी या इसके राज्य में ऐसे पत्रों को देकर आते थे। शादी–ब्याह और समारोह इत्यादि के निमत्रंण भी यही विभाग देता था। इस प्रक्रिया में समय एवं धन अधिक लगता था एवं विश्वश्नीयता भी प्रमाणित नहीं रहती थी। समय के साथ–साथ विकासात्मक परिवर्तन होते है। डाकघर, तारघर, समाचार–पत्र, टेलीग्राम, टेलीफोन मोबाइल फोन, ई–समाचार–पत्र, फेसबुक, ट्वीटर, इंस्टाग्राम इत्यादि तमाम संचार के साधनों में विकासात्मक परिवर्तन हुए है। सूचना का प्रसार विशेश हाथों से आम आदमी के पास आ गया है जैसे पत्रकारिता के मोजो (मोबाइल जर्ललिज्म) यू–ट्यूब पर चैनल बनाकर कोई भी पत्रकारिता कर सकता है। वहां कोई द्धारपाल नहीं है। न्यू मीडिया ने आम–आदमी के वातावरण और व्यवहार में काफी परिवर्तन किया है। अब किसी भी समय नहीं कहीं भी वह शैक्षिक या अन्य उद्देश्यों को लेकर इंटरनेट के माध्यम से न्यू मीडिया से कहीं भी कोई सूचना प्रदान या भेजे सकते है। न्यू मीडिया में समकालीन हिन्दी साहित्य की पहुंच समार के प्रत्येक हिस्से में हो गई है। जहां भी हिन्दी साहित्य का साहित्यकार और पाठक उपस्थित है। वह न्यू मीडिया के माध्यम से हिन्दी भाषा की व्यापक पहुंच बनाने में न्यू मीडिया एवं बहुत उपयोगी भूमिका रहा है। साहित्यकारों की अभिव्यक्त की पहुंच पांरपारिक माध्यमों की तुलना में न्यू मीडिया के साधन से नहीं अधिक होनी चाहिए।

संबंधित साहित्य का अध्ययनः–

डॉ0 शलेश शुक्ला द्धारा किए गए पी–एच–डी शोध ''महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक जनसंचार एवं पत्रकारिता विभाग विशद '' न्यू मीडिया में हिन्दी की वर्तमान स्थिति'' के माध्यम से वैश्विक स्तर पर हिन्दी के प्रचार–प्रसार को और हिन्दी की वर्तमान स्थिति वो समझने का प्रयास किया गया। हिन्दी भाषा का वैश्विक नव वह बोलचाल की भाशा अध्ययन या अध्यापन, रेडियो या टेलीविजन कार्यालय हिन्दी स्थितियों का कार्यक्रम व प्रचार–प्रसार से या इंटरनेट के माध्यम से हिन्दी लिखना, पढ़ना या सीखना हो, विदेशों में हिन्दी भाषा का अनुवाद हो या विदेशी फिल्मों का हिन्दी भाषा में जब कवि टिलिन करना इन सभी पहलुओं पर न्यू मीडिया मंच के माध्यम से समझने का प्रयास किय गये है।

प्रो0 ए. के आतार. पुणे रिसर्च स्कोलर एव इंटरनेशनल इंटरडिसिपलेटी जर्नल 21 वीं सदी के न्यू मीडिया माध्यमों से हिन्दी भाषा का इंटरनेट के माध्यम से प्रचार–प्रसार हो रहा है। प्रो0 आतार कहते हैं कि हिन्दी भाषा के विकास में आधुनिक समय में न्यू मीडिया में हिन्दी भाषा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है और भविषय में न्यू मीडिया में हिन्दी का मान बढ़ेगा। हममें कार हो राम नहीं है।

विस्तार :–

समय के साथ–साथ हिन्दी भाषा एवं हिन्दी पत्रकारिता में भी परिवर्तन हो रही है। 30 मई 1826 में कलकता के जुगल किशोर ने हिन्दी के पहले समाचार–पत्र ''उदंत मार्तण्ड'' प्रकाशित किया, तब हिन्दी भाषा मात्र, प्रस्तावों, बोलचाल, और समाचार–पत्र तब ही सीमित थी। तकनीकी विकास ने हिन्दी भाषा का भी विस्तार किया है। 1880 में मार्कोनी द्धारा रेडियो का अविश्कार किया गया है। यह तकनीकी भारत में 1959 में और रेडियो और टेलीविजन के आने से हिन्दी का वर्चस्व और अधिक बढ़ा। आज हिन्दी भाषा भारतीय पत्रकारिता का प्रभावशाली बनाने में सक्षम रही है। महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, जुगल किशोर शर्मा, रविन्द्र नाथ टगौर इत्यादि समस्त पत्रकारों व इनके पश्चात प्रधान मंत्री अटल बिहारी वाजपेयी इससे बड़ी में प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी जब संवाद लिए जब हिन्दी में देश दुनिया में हिन्दी भाषा के भरोसे अपनी बात पहुंचाने के सफल हुए तो हमसे हिन्दी को संचार भाषा व रूप में एवं वैश्विक प्रतिश्ठा मिली है हिन्दी भाषा की ताकत को जानते हुए पूर्व राष्ट्रपति बराक ओबामा ने अपनी युवा पीढ़ी को हिन्दी सिखने और हिन्दी को व्यवहार में लाने की सलाह दी। पत्रकार रहे महात्मा गांधी ने बी0बी0सी0 को दिए गये एक साक्षातकार में कहा था मुझे आजादी नहीं आती पर बात दुनिया को बता है। हांलाकि अंग्रेजी में उसने समाचार–पत्र यंग इंडिया और इंडियन ओपनियन आंदोलन वह हिन्दी की ताकत को पहंचानते थे। उन्होंने वहां ''राष्ट्र भाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है। प्रधान मंत्री अटल विहारी वाजपेयी हिन्दी के सयुंक्त राश्ट्र तक ले गए। 20वीं सदी के भारत में रेडियो और अंतिम में टेलिविजन ने हिन्दी भाषा के प्रचार–प्रसार के अपनी भूमिका निभाई और साथ–साथ हिन्दी व समाचार पत्रों का भी सहयोग अतुलनीय रहा और अंतिम दशक व 21 वीं सदी में इंटरनेट ने हिन्दी भाषा का अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचार–प्रसार की गति और तीव्र कर दी, विकसित और विकाशील देशों में भी हिन्दी भाषा को लेकर उत्सुकता बढ़ रही है, क्योंकि किसी भी बहुमुखी कंपनी को अपना उत्पाद बेचने के लिए आम आदमी तक जाना होगा और वह गहन हिन्दी भाशी हो। विदेशों में 40 से अधिक देशों में 600 ये अधिक विश्वविद्यालयों और स्कलों में हिन्दी भाषा पढ़ाई जा रही है। विश्व के 36 देशों में हमारे इंडियन कल्चर सेंटर भारतीय संस्कृति देन है। हिन्दी भाषा का वर्चस्व जहां भारतीय मूल के लोग अधिक संख्या में रहते हैं। कनाडा, शरीनाम, अमेरिका, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, मालद्धीव, श्रीलंका, भारतीय संस्कृति से प्रभावित देश इंडोनेशिया, मलेशिया, याईलैंड, मंगोलिया, चीन, कोरिया, जहां की आधुनिक रूप में पढ़ाया जा रहा है। अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, यूरोप, स्वतंत्रता प्राप्ती के 8 वर्ष पूर्व 11 मई 1940 को बी0बी0सी0 ने अपनी हिन्दी प्रसारण सेवा का आरंभ किया और समय बदला और बी0बी0सी0 ने अपनी वेबसाइट की अहमीयत को पहचाना और 2001 में बी0बी0सी0 हिन्दी डॉट कॉम की शूरूआत की। भाशा अंदरेज दुनिया भर में हिन्दी वेबसाइट पाठकों तक समाचार–पत्र सामग्री पहुंचाना था। बी0बी0सी0 के अलावा हिन्दी की वेबसाइट भारत दर्शन, गीत पहल, अनुभूति, अभिव्यक्ति, अनुरोध, भजन गाधा, गमनाल, विधाओं में प्रचुर मात्रा में लिखा जा रहा और साथ उपयुक्त वेबसाइट के माध्यम से विश्वभर पर पढ़ा भी जा रहा है। आज मोबाइल और लैपटॉप बेचने वाली कंपनियों की हिन्दी बाजार मजबूरी बन गया है। लगभग नई बड़ी कंपनियां अपने मोबाईल फोन में अंग्रेजी के साथ–साथ हिन्दी भाषा को भी उपलब्ध करा रही है। चीन ने तो हर छोटे बडे फोन में हिन्दी को उपलब्ध कराया वही स्मार्ट फोन के लिए कई तरह के एप्लीकेशन भी विकसित किए गए है। इनमें कॉल अंग्रेजी भाषा में हो रही लेकिन भारत के लोग अभी भी अधिकतर हिन्दी की एप्लीकेशन का ही प्रयोग करते है फेसबुक गुगल जैसी बड़ी वेबसाइट पर उपयोगकर्ताओं को हिन्दी में भी जानकारी उपलब्ध करा रही है। उनमें शीघ्र ही गूगल और ई–मेल जैसी महत्पूर्ण सार्वेसि को भी हिन्दी में उपलब्ध कराया जाएगा। ई–मेल पता भी आज हिन्दी में लिख पाऐंगे।

विदेशों के लेखन में अपनी मूल भाषा में पुस्तकें लिखते है वो पश्चात में अपने पाठकों को हिन्दी में अनुवाद आवश्यक करा रहे हैं। वहीं हॉलीवुड की फिल्में और भारत में बनी पश्चिम की फिल्में खूब दिखाई जा रही है। या फिर उनमें हिन्दी भाषा में रीमेक किए जा रहे है। यह हिन्दी की उपयोगिता और हिन्दी के बाजार का प्रभाव जो विदेशी लेखकों की रचनाओं और विदेशी रचनाओं को हिन्दी में अनुवाद किया जा रहा है। सर्च इंजन पर हिन्दी खोज आने के बाद हमारी मूल जिज्ञासा का जवाब पलक झपकते ही हमारे सामने हिन्दी भाषा में होता है। यह सबके लिए संभब हुआ कि हिन्दी भाषा के बोलने पढ़ने वालों की संख्या बढ़ रही है। आज भारत के बाहर भी हिन्दी के समाएं, विचार, गोष्ठी आयोजित की जा रही है। हिन्दी आज भारतीय जनमानस की संपर्क भाषा है। साथ ही राकेट में दुनिया का तीसरा सबसे विशाल समूह हिन्दी भाषी है। क्योंकि सोर

संसार में किसी कोने में कही–कहीं भारतीय ने न्यू मीडिया चलते सोशल मीडिया की सहायता से हिन्दी भाषा को तवज्यो देना शुरू कर दिया है। वर्तमान समय में हिन्दी भाषा आम–बोलचाल की भाषा है। 75 प्रतिशत लोग भारत हिन्दी भाषा का प्रयोग करते है। आज हिन्दी भाषा कश्मीर से कन्या कुमारी तक भारत को जोड़ने वाली भाषा है। हिन्दी के विस्तार में न्यू मीडिया की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है। शूरीनाम, डालगोलिया, नेपाल, बांग्लादेश, कनाडा, मौरिशस में भी हिन्दी भाषा का प्रभाव है। 50 देशों में हिन्दी पढ़ाई जा रही है। वर्तमान युग हिन्दी मीडिया का युग है। हिन्दी भाषा का निर्माण और आगे बढ़ाने का काम हिन्दी मीडिया ने किया है। मोबाइल और इंटरनेट ने हिन्दी भाषा को अधिक विस्तार दिया, हिन्दी में संप्रेशण की ताकत है। इंटरनेट पर 15 से अधिक हिन्दी राजभाषा के पश्चात अब वैश्विक साइट पर हिन्दी छाई हुई है। हिन्दी राजभाषा के पश्चात अब वैश्विक भाषा बनाने की तैयारी में है। न्यू मीडिया में हिन्दी का मान अब भाषाओं की तुलना में कई गुणा बढ़ रहा है। हिन्दी आज अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को भाषा बन रही है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि राजभाषा हिन्दी आज अपनी भाषा बन चुकी है। हिन्दी भाषा के प्रचार का सारा श्रेय हिन्दी मीडिया मनोरंजन चैनल, समाचार–पत्रों धार्मिक चैनल और न्यू मीडिया को दिया जा सकता है। समाज में मीडिया की भूमिका संवाद वाहक की होती है। मीडिया विभिन्न वर्ग, सत्ता केन्द्रों व्यक्तियों, संस्थाओं और जन नायक के माध्यम एक पूल का कार्य करता है।

कुछ वर्ष पूर्व विश्व में 80 करोड़ हिन्दी भाषा समझते थे, 80 करोड़ लोग हिन्दी बोलते थे और 35 करोड़ लोग हिन्दी लिखते थे लेकिन सोशल मीडिया पर हिन्दी बढ़ते उपयोग के चलते अब अंग्रेजी उपयोगकर्ता में भी हिन्दी का आकर्षण बढ़ा है और इस संख्या से तेजी से वृद्धि हुई है। वर्तमान में भारत संसार का तीसरा सबसे बड़ा इंटरनेट उपयोगकर्ता है। जितना श्रेय हिन्दी भाषा को भी जाता है। दरअसल भारत की आबादी का एक बड़ा बनना हिन्दी भाषा के प्रति सबसे सहज है और इसे सोशल मीडिया से जोड़ने में हिन्दी का सबसे बड़ा योगदान है। भारत में 72 प्रतिशत लोग हिन्दी भाषी है। सोशल मीडिया पर हिन्दी भाषा के विस्तार की गति का अंदाजा लगाया जा सकता है। अप्रैल 2015 तक देश मे शामिल सोशल मीडिया का उपयोग करने वालों की संख्या 143 करोड़ रही जिससे ग्रामीण क्षेत्र में उपयोगिता की संख्या पिछले एक साल में 100 प्रतिशत तक बढ़ कर 11.8 करोड़ हो गई। जबकि शहरी इलाकों में यह संख्या 55 प्रतिशत, 11.8 करोड़ रही। सबसे खास बात यह है कि न केवल भारतीय, अपितु अंग्रेजी का खजाना, ज्ञान रखने वाले युवा भी अब सोशल मीडिया पर हिन्दी भाषा में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं। न्यू मीडिया हिन्दी भाषा के लिए बहुत सकारात्मक पहलू बन गया है। हिन्दी भाषा के प्रति नई पीढ़ी में उत्साह बढ़ा है।

फेसबुक, व्हाट्सऐप और ट्विटर पर युवाओं की हिन्दी में लिखी गई अभिव्यक्तियां और टिप्पणियों को पढ़कर मन में बड़ी प्रसन्नता होती है। कॉरोना काल में और लॉकडाउन के दौरान अधिकांश अपने घरों में रहे हैं ऐसे में न्यू मीडिया के विभिन्न प्लेटफार्म के लोगों की सतर्कता बढ़ी। जब सक्रमण काल में लोगों में विरोधा था इसी समय न्यू मीडिया के माध्यम से हिन्दी भाषा का प्रचार–प्रसार खूब बढ़ा। सोशल मीडिया क्रांति में हिन्दी का आगाज हुआ। महानगरों और नदियों में एकजुटता दिखी सोशल मीडिया से हिन्दी को पारंपारिक स्तर पर बड़ी पहचान मिली। इससे कोई दो राय नहीं है कि हिन्दी ने न्यू मीडिया में अपनी जगह बनाई है। क्यों भारत एक विशाल देश है और यहां के न्यू मीडिया उपयोगकर्ताओं को अंग्रेजी कम आती है तो ऐसे लोग रोमन में धीरे–धीरे टाइप करके पेस्ट करना पड़ता है। ऐसे में हिन्दी भाषा में लिखने के विभिन्न ने उक्त लोगों के लिए न्यू मीडिया उपयोग करना आसान हो गया, ऐसे कई अंग्रेजी व अन्य विदेशी भाषा न्यू मीडिया को भी हिन्दी उपयोगकर्ताओं के लिए यह विकल्प लाना पड़ा। हिन्दी के न्यू मीडिया पोटेलस, वीडियो और हिन्दी यू–ट्यूब चैनल थे भी हम बात में रखकर हिन्दी को स्थान देने के तौर पर देखा जा सकता है। न्यू मीडिया पर हिन्दी भाषा उपयोगकर्ताओं ने आने से अब हिन्दी साहित्य और इतिहास विश्व पटल पर देखा जा रहा है। सोशल मीडिया पर हिन्दी भाषा उपयोगकर्ता अधिक होने के कारण विदेशी उपयोगकर्ताओं का हिन्दी पढ़ना मजबूरी बन गई है। ऐसे सोशल मीडिया में हिन्दी को ताकत मिली ह। वही सोशल मीडिया में हिन्दी उपयोगकर्ताओं के आने से सोशल मीडिया को भी बल मिला है। बहुत सारे हिन्दी उपयोगकर्ताओं जैसे कवि और साहित्यकारों ने विश्व पटल पर अपनी और हिन्दी की पहचान बनाई है। डॉ. कुमार विश्वास , डॉ. विश्व सैक्सेना, डॉ. पंवार जैसे नामों के उदारहण के रूप में देखा जा सकता है।

निष्कर्ष :–

न्यू मीडिया में हिन्दी का उपयोग यह परिवर्तन कुछ वर्षों में ही आया है। आरंभ में न्यू मीडिया को भाषा अंग्रेजी ही थी ऐसे में दिये भाषी अपनी बात लिखने से अपहज महसूस करते थे। न्यू मीडिया में दिये गये विकल्प के साथ हो, न्यू मीडिया में परिवर्तन के दौर में एक क्रांति का उदय हुआ ह। इसके पश्चात ही न्यू मीडिया में एक बड़े बाजार का उदय हुआ। अब साफ तौर पर देखा जा रहा है। फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम से लेकर गूगल से भी नीचे दिये भाषा लिखाी जा

सकती है। पोस्ट की जा सकती। ऐसे में न्यू मीडिया में हिन्दी भाषा की ताकत बढ़ती जा रही है। अब सोशल मीडिया में नहीं मुश्किल से अंगेजी को पोस्ट नजर जाती है। आज हिन्दी भाषा में ही लिखा व पढ़ा जा रहा है। ब्लाग्स ने न्यू मीडिया में हिन्दी भाषा को अत्यधिक गति दी । आरंभ में लोग आपसी और हिन्दी भाषा का उपयोग सोशल मीडिया पर करते है परन्तु दूसरे हिन्दी भाषी उनके पोस्टों पर वृतनी त्रटि का कॉमेंट लिखते है। उन्हें यह महसूस होता तो वे भी हिन्दी भाषी लोगों को वृतनी त्रृटि और व्याकरण में सुधार करना स्वामित्व हो गया है और इससे का नितंर बल मिलना गया। विश्व में सोशल मीडिया को लगभग 200 नेटवर्किंग साइटें है। इनके लगभग 1 अरब 28 करोड़, टटाभ्रमि के 15 करोड़ ओर हिस्से पर 9 करोड़ लोग जुड रहे है यह संख्या प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। सोशल मीडिया में फेसबुक सबसे आगे है। एक रिपोर्ट के अनुसार मात्र भारत में फेसबु और ट्विटर पर सक्रिय भारतीयों की संख्या 100 मिलियन और 33 मिलियन से अधिक है। एक सर्वेक्षण के अनुसार वाट्सऐप के सबसे अधिक उपयोगकर्ता भारत में है। भारत में सोशल मीडिया हिन्दी भाषा सबसे लोकप्रिय भाषा के रूप में स्थापित होती जा रही है। भारत में अंग्रेज बोलने वालों की संख्या बहुत कम है। जैसे भारत में न्यू मीडिया को हिन्दी भाषा का हो जहां है आने वाले समय में सोशल मीडिया में हिन्दी भाषा की उपयोगिता और सविककार्यता बढ़ती ही रहेगी। यह कतई निश्चित है कि न्यू मीडिया में हिन्दी भाषा व्यापक स्तर पर अपना सामाज्य स्थापित करेगी।

संदर्भ सूची

1. डॉ. अनुराग शर्मा https//Puridunia.com
2. दैनिक ट्रिब्यून लहरें, रविवार 19 फरवरी 2017
3. संपादक– रविन्द्र जाधव और केश्व मोरे ''मीडिया और हिन्दी बदलती प्रवृत्तियां'' वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2016।
4. डॉ. मिश्र कुमार सुनील ने अपनी पुस्तक '' पत्रकारिता एवं जनसंचार आधुनिक विधाएं '' तेंज प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015 ।
5. योगेश पटेल ,सोशल मीडिया फ्रैडशिप पोर्टल्स और अतिरिक्त इनका स्त्रोत, पुस्तक महल प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012।
6. सुमन स्वर्ण , सोशल मीडिया संपर्क क्रांति का कल,आज और कल, हार्पर कॉमिक्स पब्लिकेशन्स इंडिया, प्रथम संस्करण 2014, ।
7. चतुवेर्दी जगदीश्वर ने '' मीडिया समग्र–10 ब्लाग संस्कृति तमाश बीनो की दुनिया में
8. डॉ0 दयानन्द गौतम '' मीडियाः साहित्य, समाज, एवं सरोकार ,
9. डॉ0 सुस्मिुता बाला '' बदलते दौर की पत्रकारिता।
10. डॉ0 सुशील त्रिवेदी '' मीडिया की आजादी।

डॉ0 नरेश कुमारी
सहायक प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
राजकिय महिला
स्नातकोत्तर महाविद्यालय
रोहतक (हरियाणा)

23

समाजोत्थान में आधुनिक रामकाव्यों की भूमिका

डॉ0 सुखवीर सिंह

सारांश

राम भारतीय संस्कृति के वाहक, पुरुषोत्तम परमात्मा और वंदनीय भारत–भूमि के पुत्र हैं उनका चरित्र लोक व्यापी है तथा उनकी कथा लोकमंगल का विधान करने वाली है। राम के चरित्र को लेकर अनन्तकाल से आजतक रचनाएं रची जा रही हैं। प्रत्येक काल का कवि अपने युग की आवश्यकताओं के अनुसार रामकथा में परिवर्तन करता रहा है। आधुनिक रामकाव्यों में भी इस प्रवृति को देखा जा सकता है। वास्तव में, इस परिवर्तन के पीछे कवियों की समाजोत्थान की भावना काम करती रही है।

"साहित्य सामाजिक मंगल का विधायक होता है। यह सत्य है कि वह व्यक्ति विशेष की प्रतिभा से ही रचित होता है किंतु और भी यह सत्य है कि प्रतिभा सामाजिक प्रगति की ही उपज है।"[1] साहित्य और समाज को अलग करके नहीं देखा जा सकता है। मनष्य ने अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए सामूहिक जीवन को अंगीकार किया तथा अपनी भावनाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज की रचना की। स्पष्ट है कि व्यक्ति और समाज परस्पर पूरक हैं। उनको एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। व्यक्ति के बिना समाज का कोई स्वरुप नही है तथा समाज के बिना व्यक्ति का कोई औचित्य एवं विस्तार नहीं है। व्यक्ति को गति प्रदान करने वाला और उसे प्रभावित करने वाला प्रत्येक घटक समाज में ही वर्तमान है। उक्त मान्यताओं को ध्यान में रखकर कहा जा सकता है कि रामकाव्य में सामाजिक सरोकार के अनेक स्वस्थ आयाम व्यक्त हुए है। इन आयामों से समाजोत्थान का सुंदर स्वरुप हमारे सामने प्रस्तुत हुआ है।

भारतीय समाज आरम्भ से ही अनेक वर्गों में विभक्त रहा है– कहीं धन के आधार पर और कहीं जाति के आधार पर। अनेक वर्गों, वर्णो में विश्रृंखलित– अव्यवस्थित भारतीय समाज रामकाव्यों में सुव्यस्थित एवम् नये रुप में प्रस्तुत हुआ है। शम्बूक, शबरी, निशाद आदि रामकथात्मक कृतियाँ इन्हीं आशयों को लेकर रची गई हैं। शम्बूक नामक रचना में इसी नई व्यवस्था की ओर संकेत किया गया है। यह नई व्यवस्था व्यक्ति के कर्म एवं निर्बाध विकास से सम्बद्ध है, जाति से नहीं–

"जो व्यवस्था व्यक्ति के सत्कर्म को भी मान ले अपराध
जो व्यवस्था फूल को खिलने न दे निर्बाध
जो व्यवस्था वर्ग–सीमित स्वार्थ से हो ग्रस्त
वह विषम घातक व्यवस्था शीघ्र ही हो अस्त।"[2]

शबरी की कथा में भी वर्ण मुक्त होने की चेष्टा की गई है। वर्ग एवं वर्ण व्यवस्था को त्याग कर कर्म–सिद्धांत की पालना ही नई व्यवस्था का ठोस आधार है–

"क्या आत्मा की उन्नति केवल
है उच्च वर्ग तक ही सीमित?
प्रभु तो हैं सबके पिता, भला,
उनका आराधन क्यों सीमित?"[3]

वर्ग, वर्ण, धर्म, संप्रदाय, जाति, स्थान आदि भारतीय समाज में असमानता और विभेद के प्रमुख कारण रहे हैं। इन असमानताओं और भेदों के पीछे राजनीति और स्वार्थान्ध नेता रहें हैं। उन्होंने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए इन कारणों का आश्रय लिया है और भारतीय समाज को बाँटने का प्रयास किया है। आज का भारतीय समाज वर्ग व्यवस्था की ज्वालामुखी पर बैठा हुआ है। हम वर्ग व्यवस्था से युक्त समाज में रह रहें है। वर्ग मुक्त होने की हमारी सबसे प्रमुख समस्या है। इसी समस्या के समाधान हेतु शबरी जैसी रचना का प्रणयन हुआ है। वह समाज व्यर्थ है, जहाँ सामाजिक विषमता है, ऊँच–नीच की भावना है, समत्व का अंजन दृष्टि को अंजित करने में असमर्थ है, जातिवाद की गूँज से दिशाएँ गुंजित हैं–

"व्यर्थ है, सामाज ऊँची–नीची भावना है जहाँ,
असि योजन के लिए नर हेतु नर है।
सर्प डसते हैं छूआछूत के विशैले अति,
भिन्न हैं हृदय भिन्न एक–एक कर है।
व्यर्थ है दिशाएँ जहाँ गूँज जातिवाद की है,
अंजन समत्व का न आँज दृश्टिवर है।
सबके लिए न ईश–द्वार है अनावृत जो,
मात्र मरूभूमि है न ईश्वर का घर है।"[4]

सामाजिक असमानता से मनुष्य के अस्तित्व का नाश होता है, सामाजिक समानता से मनुष्य के अस्तित्व को व्यापकता प्राप्त होती है। जिस समाज में मनुष्य अस्तित्व रहित होकर जीता है, उस समाज की न कोई पहचान होती है न ही उस समाज का कोई विस्तार होता है। ऐसा समाज विकास यात्रा के प्रारंभ बिन्दु को भी स्पर्श नहीं कर पाता है। जो व्यक्ति समता भाव के दीपक को नहीं जलाता है, स्वार्थ

में डुबा हुआ है, वह निन्दनीय अभियुक्त है –

"सम–भाव प्राण–दीए बालता मनुष्य जो न,
स्वार्थ में सना है निन्दनीय अभियुक्त है।"[5]

रामकथात्मक रचनाओं में सामाजिक समता की कामना की गई है, सामाजिक समानता के संकल्प को दोहराया गया है। समाज से वर्ग–भेद मिटने, सत्ता का दंभ हटने, विशमता के सभी गड्डे भरने, सभी देश–वासियों को मिलजुलकर रहने की कल्याण कामना की गई है–

"वर्ग मिटे, सत्ता हट जाये,
भेदभाव मिट जाये।
भरे विशमता के सब गड्डे,
सब मिलजुल कर गायें।"[6]

चित्रकूट नामक रचना में सामाजिक समानता का दार्शनिक और तात्विक आधार प्रस्तुत हुआ है। ऊँच–नीच और भेदभाव की संकीर्ण दीवारें समय की धारा में बहकर दम तोड रही हैं। मनुष्य मात्र की अलग–अलग नहीं, वरन् एक ही जाति है, जिसमें कोई आंतरिक जाति व्यवस्था नहीं है। सभी मनुष्य एक ही मांस, मज्जा, रक्त से निर्मित हैं।मानव को जाति के आधार पर बाँटना मानवता की हत्या है।

"मानव की है जाति एक ही अंतर्जाति कहाँ है?
रक्त मांस मज्जा आकृति की समता एक यहाँ है।।
जाति भेद से मानव कुल को व्यर्थ गया है बाँटा।
स्वार्थों के समुदाय बनाकर अलग–अलग है छाँटा।।
दी अछूत संज्ञा कितनों को समझा उनको नीचा।
कुल विशेष में मात्र जन्म से क्यों हो कोई ऊँचा।।
इस विभेद से मानवता की हत्या ही होती है।
उर–उर में विद्वेश भावना बीज सहज बोती है।।"[7]

सामाजिक समता के संकल्प और समाजोत्थान भावना की दृष्टि से माण्डवी नामक रचना का विशेष महत्व है।इस रचना में शूद्र बालक की शिक्षा–समस्या से समाजोत्थान की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। सामाजिक समता के अनेक पक्षों को उजागर किया गया है–

"केवट का आलिंगन करके, राघव प्रभु ने आदर्श किया।
सबको समता का स्तर दे, मानवता को उत्कर्ष दिया।"[8]

कवि की धारणा है कि जब तक पृथ्वी पर विशमता रहेगी तब तक मानवता का स्वरूप अखंड नहीं रह सकता है–

"मानवता का दर्शन तब तक,
कैसे रह सकता है अखण्ड।
जब तक धरती के प्रांगण में,
मानव के होंगे खण्ड–खण्ड।"[9]

ऊँच–नीच, छूत–अछूत और सवर्ण–अवर्ण मे बँटे रहने वाला समाज कभी भी मानवता के सम्पूर्ण दर्शन को नहीं प्राप्त कर सकता है। राम–राज्य में मानवता तभी अखण्ड थी क्योंकि वहाँ छूत–अछूत और ऊँच–नीच के लिए कोई स्थान नहीं था। सभी के स्तर समान थे, सभी को सामाजिक समानता प्राप्त थी, सभी को विकास का समान अवसर प्राप्त था–

"साकेत पुरी के शासन में,
बस मानवता है वन्दनीय।
सब जाति, वर्ण के भेद–भाव,
अरू ऊँच–नीच है निन्दनीय।
श्री राघवेंन्दु के शासन में,
सब को विकास का अवसर है।
सब आदरणीय नागरिक हैं,
सबका समान ही स्तर है।"[10]

सामाजिक समता के परिप्रेक्ष्य में शांति, सुरक्षा आदि का प्रश्न भी रामकथाकारों द्वारा उठाया गया है। शांति, सुरक्षा और समानता पर सबका अधिकार होना चाहिए। ऐसा होने पर जनता के चिरसंचित सपने साकार हो जायेंगे–

"शांति, सुरक्षा समता में
सबका हो सन्तत अधिकार।
चिरसंचित जनता के सपने,
हो जावें सब विधि साकार।"[11]

रामकाव्य सामाजिक समानता का पक्षधर है–

"सभी पृथ्वी पुत्र हैं तब जन्म से,
क्यों भेद माना जाए।
जन्मजात समानता के तथ्य पर,
क्यों खेद माना जाए।
जन्मना जायते शूद्रः
क्या नहीं सबके लिए यह सत्य।
और संस्कारात् ही द्विज उच्यते,
की घोशणा का क्यों न हो सातत्य।"[12]

शम्बूक नामक रचना में वर्ण और जन्म की अपेक्षा कर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है। वर्ण से अब मनुष्य की रक्षा नहीं हो सकती है। जन्म से किसी का वर्ण निर्धारित नहीं होगा। सम्पत्ति किसी वर्ग तक सीमित नहीं रहेगी। कर्म से ही मनुष्य का कल्याण होगा।कर्म ही श्रेष्ठता का मानक होगा–

"वर्ण से होगा नहीं अब त्राण,
कर्म से ही मनुज का कल्याण।
जन्म से निश्चित न होगा वर्ण,

वर्ण तक सीमित न होगा स्वर्ण ।
कर्म से ही श्रेश्ठता अधिकार,
कर्म सबके लिए सम आधार।"[13]

निष्कर्षतः रामकाव्य में सामाजिक समानता को एक व्यापक जीवन मूल्य के रूप में स्वीकार किया गया है। वास्तव में, यही सामाजिक समानता हमारे देश और राष्ट्र की गम्भीर आवश्यकता और अपेक्षा है। रामकाव्य का उद्देश्य एक ऐसे समाज की रचना देखना है जिसमें किसी प्रकार की जडता न हो, पुरुष और नारी में किसी प्रकार का अंतर न हो, नारी का पूरा सम्मान हो तथा वह पुरुषों के शोषण और अत्याचार से मुक्त हो। स्वस्थ नागरिक ही स्वस्थ समाज का निर्माण करते हैं। इस प्रकार आधुनिक रामकाव्यों में सामाजिक चेतना के द्वारा समाजोत्थान की भावना को अभिव्यक्त किया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 द्विवेदी, हजारी प्रसाद, विचार और वितर्क, पृ0 273
2 गुप्त जगदीश, शम्बूक, पृ0 45
3 मेहता नरेश, शबरी, पृ0 19
4 मिश्र सियाराम, बेर भीलनी के, पृ0 13
5 मिश्र सियाराम, बेर भीलनी के, पृ0 15
6 मिश्र रघुवीर शरण, भूमिजा पृ0 113
7 दुबे रामेश्वर दयाल, चित्रकूट, पृ0 28
8 तिवारी राजेन्द्र, माण्डवी, पृ0 37
9 जैदी शैलेश, अब किसे वनवास दोगे, पृ0 127
10 जैदी शैलेश, अब किसे वनवास दोगे, पृ0 43
11 पाराशर चन्दनलाल, चित्रकूट, पृ0 67
12 गुप्त जगदीश, शम्बूक, पृ0 49
13 गुप्त जगदीश, शम्बूक, पृ0 62

डॉ0 सुखवीर सिंह
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी
राजकीय महाविद्यालय बहु,
झज्जर

24

जन कवि नागार्जुनःसृष्टि और दृष्टि

डॉ0 प्रकाश कुमार

सारांश

यदि कविता लोक चित्त से जुडने का माध्यम है,तो नागार्जुन सही मायने में स्वाधीन भारत के जनकवि हैं।इस देश की करोडों–करोड़, भूखी–अधनंगी जनता की शायद ही कोई. ऐसी आकांक्षा और अनुभूति हो,जिसकी ओर नागार्जुन का ध्यान न गया हो और जिस पर उन्होंने कभी गहन संवेदनात्मक और कभी तीव्र आक्रामक टिप्पणी न की हो।उन्होंने सचमुच हिंदी कविता की विषय वस्तु को अभूतपूर्व विस्तार दिया है और सुन्दर –असुन्दर सभी प्रकार के विषयों पर अपनी बेबाक टिप्पणी की है।डा परमानंद श्रीवास्तव का यह कथन सोलह आने सही हैः

जनता के पक्ष में कविताएं लिखने वाले और भी हैं,पर जनता को अपने में आत्मसात् कर कविता लिखने वाले नागार्जुन अपने ढंग के अकेले कवि हैं।

नागार्जुन का जन्म दरभंगा जिले के तरौनी नामक ग्राम में एक रूढिवादी मैथिल परिवार में 30 जून 1911 ई.को हुआ था।एक एक कर चार भाइयों के बचपन में ही काल कवलित हो जाने के बाद पिता पं. गोकुल मिश्र ने वैद्यनाथ महादेव से संतान की याचना की थी।इसीलिए आगंतुक का नाम पड़ा वैद्यनाथ मिश्र।

वैद्यनाथ की पढाई का श्रीगणेश तत्कालीन प्रथा के अनुसार लघु सिद्धांत –कौमुदी और अमर कोष से हुआ। फिर उन्होंने वाराणसी में रहकर संस्कृत का विधिवत अध्ययन किया। 1931 में उनका विवाह अपराजिता देवी से हो गया;लेकिन इसके केवल तीन वर्ष बाद किसी बात पर रूठकर वे घर से निकल गए।वे सिंहल जाकर बौद्ध धर्म में दीक्षित हुए और नाम पडा नागार्जुन।

नागार्जुन बहुआयामी प्रतिभा के धनी साहित्यकार हैं।उन्होंने एकाधिक भाषाओं में गद्य और पद्य की अनेक विधाओं में इंद्र धनुषी साहित्य सृष्टि की है।उनका रचना संसार निम्नवत् हैरू

1संस्कृत (काव्य)–कर्यालोक– शतकम्,देश –दशकम्,कृषक– दशकम्,श्रमिक– दशकम्, लेनिन– दशकम्।

2 हिन्दी–(काव्य)–युग धारा,सतरंगे पंखोवाली,प्यासी पथराई आंखें,तालाब की मछलियां, तुमने कहा था,चंदना (लम्बी कविताएं),भस्मांकुर,भूमिजा,(खंड काव्य)खिचडी विप्लव देखा हमने,पुरानी जूतियों का कोरस,हजार हजार बांहों वाली।

उपन्यासरू रतिनाथ की चाची,बलचनमा,नई पौध,बाबा बटेसर नाथ,वरुण के बेटे,दुख मोचन,कुंभीपाक,हीरक –जयंती, उग्रतारा, इमरतिया, जमनिया के बाबा।

3 मैथिली (क)काव्यरू चित्रा, पत्र हीन नग्न गांछ।

(ख)उपन्यासरूपारो,बलचनमा,नवतुरिया

यह ठीक है कि नागार्जुन को साहित्य में प्रारंभिक प्रतिष्ठा अपने कथा साहित्य विशेष रुप से बलचनमा(1952) नामक उपन्यास के कारण मिली; जिसमें उत्तर बिहार के एक विपन्न युवक के जीवन संघर्षों का बडा ही सजीव और बेबाक अकंन हुआ है,पर उनका कवि रूप उनके कथाकार रूप से किसी तरह घटकर नहीं है।

जैसा कि डा नामवर सिंह ने लिखा है कि ष्नागार्जुन सच्चे अर्थों में स्वाधीन भारत के प्रतिनिधि जन कवि हैंष्

उन्होंने सामान्य जन के जीवन को केवल निकट से देखा ही नहीं है उसमें साझेदारी भी की है।उन्हें जनता की हर पीडा, हर बेबसी की प्रत्यक्ष अनुभूति है और उसपर अपनी गहरी प्रतिक्रिया वे निर्भीक होकर व्यक्त करते हैं;बल्कि वे केवल प्रतिक्रियाएं ही व्यक्त नहीं करते,आगे बढकर जन संघर्ष में अगुआई भी करते हैं।

नागार्जुन प्रतिहिंसा को अपनी कविता का स्थायी भाव मानते हैं।समाज की हर विषमता, हर असंगति की ओर उनकी दृष्टि जाती है और वे उस पर करारी चोट करते हैं।कविता का एक हथियार की तरह इस्तेमाल करने की बात हमने बहुत बार सुनी है,लेकिन उसका सबसे सचेष्ट और सबसे प्रभावी प्रयोग हिंदी में नागार्जुन ने ही किया है।मुट्ठी भर हड्डियों के ढांचेवाले इस कवि का जीवट और अंतर का ओज देखने योग्य हैरू

जनता मुझसे पूछ रही है,क्या बतलाऊं?
जन कवि हूँ, मैं साफ कहूंगा क्यों हकलाऊं?
और
जनकवि हूँ मैं,क्यों चांटू मैं थूक तुम्हारी?
श्रमिकों पर मैं क्यों चलने दूं बंदूक तुम्हारी?

किसानों और मजदूरों पर चलनेवाली इस बंदूक का नागार्जुन ने अपनी अनेक कविताओं में भांति भांति से विरोध किया है।शासन की बंदूक वाली कविता में कवि ने बंदूक को दमन नीति का प्रतीक मानकर उसके अनेक चित्र खडे किए हैंरू

ष्खडी हो गई चांप कर,ककांलों की हूक।
नभ में विपुल विराट सी, शासन की बंदूक।

और

जली ठूंठ पर बैठकर, गई कोकिला कूक।
बाल न बांका कर सकी,शासन की बंदूक।।

कोकिला भी काली है और बंदूक भी।किंतु दोनों के प्रतीकत्व में कितना अंतर है।एक में जीवन का उल्लास है तो दूसरी में मृत्यु का आतंक।दोनों को समानांतर प्रस्तुत कर कवि ने मौत के शिकंजे को चुनौती देती हुई अभिनव जीवन चेतना का अत्यंत सांकेतिक और व्यजंक चित्र उपस्थित कर दिया है।जो लोग नागार्जुन की कविता कोअखबारी कतरन और नारेबाजी से अधिक महत्व नहीं देना चाहते,उन्हें ऊपर की पंक्तियां तनिक ध्यान से और पूर्वाग्रह मुक्त होकर देखनी चाहिए।

फक्कड़पन और घुमक्कड़ी प्रवृति नागार्जुन के व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता रही है।व्यंग्य नागार्जुन के साहित्य में स्वभावतः समाहित है।चाहे सरकार हो,चाहे समाज हो या चाहे मित्र, उनके व्यंग्य वाण सबको बेध डालते हैं।कई बार संपूर्ण भारत का भ्रमण करने वाले इस कवि को अपनी स्पष्टवादिता और राजनीतिक कार्य कलापों के कारण कई बार जेल भी जाना पड़ा है।

कांग्रेस द्वारा गांधी जी के नाम के दुरूपयोग पर नागार्जुन ने प्रश्न उठाया हैरू–

गांधी जी का नाम बेचकर,
बतलाओ कब तक खाओगे?
यम को भी दुर्गंध लगेगी,
नरक भला कैसे जाओगे?
नागार्जुन–झंडा कविता

अंदर संकट, बाहर सकट,संकठ चारो ओर।
जीभ कटी है भारत माता,मचा न पाती शोर।
देखो धंसी धंसी ये आंखें, पिचके पिचके गाल।
कौन कहेगा आजादी के बीते तेरह साल!

नागार्जुन तो कभी सीधे सीधे आक्रोशी मुद्रा में प्रहार करते हैं,तो कभी तेवर बदलकर व्यंग्य पर उतर आते हैं।उनकी व्यंग्यात्मक कविताओं की संख्या अनगिनत है।मात्रा और बेधकता दोनों दृष्टियों से कबीर के बाद वे हिंदी के सबसे बड़े व्यंग्यकार हैं।प्रेतका बयान, बाकी बच गया अंडा, आओ रानी हम ढोएंगे पालकी,इंदुजी इंदुजी क्या हुआ आपको?,तुम रह जाते दस साल और,नया तरीका,भूले स्वाद बेर के,जयति नखरंजनी,
तीनों बंदर बापू के,यंत्र कविता, आए दिन बहार के,आदि उनकी एक से एक उत्कृष्ट व्यंग्य रचनाएं हैं।आए दिन बहार के में कलयुगी नेताजी की अच्छी खबर ली गई है रू–

श्वेत श्याम रतनार आंखियां निहार के,
सिंडीकेटी प्रभुओं की पगधूर झार के
लौटे हैं दिल्ली से कल टिकट मार के,
खिले हैं दांत ज्यों दाने अनार के।

नागार्जुन की इस तरह की कविताओं के महत्व को स्वीकारते हुए डा राम विलास शर्मा ने लिखा है कि रू–"नागार्जुन ने लोकप्रियता और कलात्मक सौंदर्य के संतुलन और सामंजस्य को जितनी सफलता से हल किया है,उतनी सफला से बहुत कम कवि –हिंदी से भिन्न भाषाओं में भी –हल कर पाए हैं।"(अस्तित्ववाद और हिंदी कविता)

सचमुच अखबारी समाचारों को कविता में रूपायित करना बड़ा कठिन होता है,क्योंकि यह बोध को अनुभव में ढालने की समस्या है।नागार्जुन की बहुतेरी कविताएं सपाटबयानी के दोष से पीडित हैं।मगर,जहाँ उनका मन सध गया है,वहाँ रचना अविस्मरणीय बन पड़ी है।जैसे अकाल और उसके बाद शीर्षक कविता।इसमें कवि ने अकाल की त्रासदी और अन्न प्राप्ति के उत्सव को कम से कम शब्दों में केवल चित्रों और बिंबों के माध्यम से व्यक्त किया हैरू–

कई दिनों तक चूल्हा रोया,चक्की रही उदास,
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास;
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकिलियों की गश्त,
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त,
××××××××××××××××××××
दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद,
धुआं उठा आंगन से ऊपर कई दिनो के बाद,
चमक उठी घर भर की आंखें, कई दिनों के बाद,
कौए ने खुजलाई पांखे,कई दिनों के बाद।

यहां कवि ने कई खंडचित्रों को पिरोकर एक संपूर्ण चित्र तो बनाया ही है,एक ही पद की आवृत्ति से प्रभाव को घनीभूत करने में भी सफलता पायी है।मानुषी स्थिति के साथ घरेलू पशु–पक्षियों और कीट–पंतगों तक को जोड़कर अकाल की व्यापकता का भी संकेत किया है।

नागार्जुन स्वभाव से घुमंतू रहे हैं।उन्होंने देश विदेश के अनेक प्राकृतिक दृश्यों को खुली आंखों देखा है और उन्हें मार्मिकता से कलमबंद किया है।ऐसी कविताओं में श्बादल को घिरते देखा हैश एक महत्वपूर्ण कविता हैरू–

तुंग हिमालय के कंधों पर,
छोटी बड़ी कई झीलें हैं,
उनके श्यामल नील सलिल में,
समतल देशों से आ आकर

पावस की ऊमस से आकुल,
तिक्त–मधुर विसतंतु खोजते,
हंसो को तिरते देखा है!
बादल को घिरते देखा है?

नागार्जुन जीवनपर्यंत यायावर जरूर रहे,लेकिन उनकी कविता में गार्हस्थिक जीवन का आकर्षण कम नहीं है।सिंदूर तिलकित भाल,यह दंतुरित मुस्कान, तन गई रीढ़, गुलाबी चूड़ियाँ आदि कविताएं पारिवारिक भावोष्णता से परिपूर्ण हैं। संक्षेप में नागार्जुन की कविता की संवेदना का वृत अत्यंत व्यापक है।उसमें महाकवि कालिदास से लेकर मादा सूअर तक का अंटाव है।एक ओर यदि नागार्जुन कालिदास से प्रश्न पूछते हैंरू–

कालिदास सच सच बतलाना,
इंदुमती के मृत्यु शोक से
अज रोया या तुम रोए थे?

तो दूसरी ओर मादा सूअर से भी सहानुभूति रखते हैंरू–

जमुना किनारे मखमली दूबों पर,
पूस की गुनगुनी धूप में,
पसर कर लेटी है
यह भी तो मादरे हिंद की बेटी है,
भूरे–पूरे बारह थनोवाली।

नागार्जुन जनकवि होने के साथ अत्यधिक अधीत और सुपठित कवि हैं।लोक जीवन, प्रकृति और समकालीन राजनीति उनकी रचनाओं के मुख्य विषय रहे हैं,विषय की विविधता और प्रस्तुति की सहजता नागार्जुन के रचना संसार को नया आयाम देती है।छायावादोत्तर काल के वे अकेले ऐसे कवि हैं जिनकी रचनाएं ग्रामीण चौपाल से लेकर विद्वानों की बैठक तक में समान रूप से आदर पाती हैं।जटिल से जटिल विषय पर लिखी गई उनकी कविताएं इतनी सहज संप्रेषणीय और प्रभाव शाली होती हैं कि पाठकों के मानस लोक में तत्काल बस जाती हैं।नागार्जुन की कविता में धारदार व्यंग्य मिलता है।जनहित के लिए प्रतिबद्धता उनकी कविता की मुख्य विशेषता है।

नागार्जुन ने छंद बद्ध और छंदमुक्त दोनों प्रकार की कविताएं लिखी हैं।उनकी काव्य भाषा में एक ओर संस्कृत काव्य परम्परा की प्रतिध्वनि है,तो दूसरी ओर बोल चाल की भाषा की रवानी और जीवंतता भी।उनके कंधे पर लटक रहे खादी के झोले में एक तरफ कालिदास का मेघदूतम मिलेगा तो दूसरी तरफ मार्क्स, लेनिन और टाल्सटाय की रचनाएं भी।

नागार्जुन अपनी साहित्यिक उपलब्धियों के लिए अनेक साहित्यिक पुरस्कारों से नवाजे गए हैं।पत्रहीन नग्न गांछ (मैथिली कविता संग्रह) के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार नवाजा।उत्तर प्रदेश सरकार ने भारत– भारती पुरस्कार, मध्यप्रदेश सरकार ने मैथिली शरण गुप्त पुरस्कार और बिहार सरकार ने राजेंद्र प्रसाद पुरस्कार से उन्हें सम्मानित किया।

नागार्जुन के काव्य में अब तक की पूरी भारतीय काव्य परम्परा जीवंत रूप मे उपस्थित देखी जा सकती है।उनका कवि व्यक्तित्व कालिदास और विद्यापति जैसे कालजयी कवियों के रचना संसार के गहन अवगाहन, बौद्ध एवम् मार्क्सवाद जैसे बहुजनोन्मुख दर्शन के व्यावहारिक अनुगमन तथा सबसे बढ़कर अपने समय और परिवेश की समस्याओं, चिंताओं और संघर्षों से प्रत्यक्ष जुड़ाव तथा लोक संस्कृति एवम् लोक हृदय की गहरी पहचान से निर्मित है।उनका यात्रीपन भारतीय मानस एवम् विषयवस्तु को समग्र और सच्चे रूप में समझने का साधन रहा है।मैथिली, हिंदी और संस्कृत के अलावा पालि,प्राकृत, बंगला सिंहली,तिब्बती आदि अनेक भाषाओं का ज्ञान भी उनके इसी उद्देश्य में सहायक रहा है।उनका गतिशील सक्रिय और प्रतिबद्ध सुदीर्घ जीवन उनके काव्य मे जीवंत रूप में प्रतिध्वनित एवम् प्रतिबिंबित है। नागार्जुन सही अर्थों में सर्वतोभावेन आधुनिक जनकवि हैं, वे न किसी से डरने वाले कवि हैं न जनपथ से डिगने वाले।उनकी यह स्पष्ट घोषणा इसी बात का द्योतक हैरू–

जनता मुझसे पूछ रही है क्या बतलाऊँ?
जनकवि हूँ मैं साफ कहूँगा क्यों हकलाऊं!

संदर्भ–ग्रंथः–

1 नागार्जुन–रचनावली, राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली 1975
2 नागार्जुन का रचना संसार सं.विजय बहादुर सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2009
3 नागार्जुन की कविता,डा अजय तिवारी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2005
4 नागार्जुन का कवि–कर्म,डा खगेन्द्र ठाकुर,प्रकाशन विभाग, भारत सरकार नई दिल्ली,2001
5 नागार्जुनरूअंतरंग और सृजन–कर्म, सं.डा मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2005
6 आलोचना(सहस्त्राब्दी अंक,43,अक्टूबर–दिसबंर 2011)सं.डा अरुण कमल,राजकमल,प्रकाशन, नई,दिल्ली
7 तुम चिर सारथि यात्री(नागार्जुन–आख्यान)ताराचंद नियोगी, अंतिका प्रकाशन, दिल्ली 2010
8 युगों का यात्री(नागार्जुन की जीवनी) ताराचंद नियोगी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,2008
9 सुकवि– समीक्षा, डा आनंद नारायण शर्मा, भारती भवन,पटना,1978

डॉ प्रकाश कुमार
हिन्दी–विभाग
मारवाड़ी कालेज, रांची
रांची विश्वविद्यालय, रांची

25

भारतीय संगीत का दिल्ली घराना दिल्ली घराने की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

डॉ0 जगदीश कुमार

सारांश

दिल्ली घराने के इतिहास के बारे में यदि हम यह बात करें, तो हमें यह ज्ञात होता है कि जब से दिल्ली शहर राजधानी बना तो यहाँ पर ऐतिहासिक क्रम से अनेक सुलतान तथा बादशाह हुए। इन्हीं सुल्तानों तथा बादशाहों का संरक्षण प्राप्त करने के लिए अनेक संगीत–कलाकार दूर–दूर के क्षेत्रों से आकर यहाँ रहने लगे और एक समय ऐसा आया कि दिल्ली नगर उच्चकोटि के संगीत कलाकारों का एक केन्द्र बन गया। यदि हम इसका ऐतिहासिक क्रम से अध्ययन करें, तो हमें यह ज्ञात होता है कि मुग़ल बादशाहों से पहले यहाँ पर सुलतान रहा करते थे जो संगीत कला के अत्यन्त प्रेमी थे। यहीं पर सन् 1253 में अबुल हसन जो कि अमीर खुसरो के नाम से प्रसिद्ध हुए जो कि संगीत के विद्वान थे जिनके संगीत कार्यों से हम भली–भाँति परिचित हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से हमें यह भी ज्ञात होता है कि एक समय में राजधानी दिल्ली में गायकों तथा वादकों का जमघट सा हो गया था यदि इस बारे में हम विचार करें कि गायन की विभिन्न विधाओं का प्रारंभ दिल्ली घराना ही रहा है तो अनुपयुक्त न होगा।

ऐसा माना जाता है कि दिल्ली शहर का नाम राजा दिलू या दीलू के नाम से रखा गया, जिनके समय के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। सबसे पहले दूसरी शताब्दी में दिल्ली शहर के नाम का उल्लेख मिलता है। अलग–अलग बादशाहों और सुलतानों आधुनिक दिल्ली के अलग–अलग स्थानों पर अपने समय में दिल्ली को बनाया। दिल्ली शहर में अनेकों बार उतार–चढ़ाव आए, लेकिन अंत में यह राजधानी बना। वर्तमान दिल्ली से प्राचीन दिल्ली बहुत अधिक भिन्न थी। दिल्ली के सभी सुलतानों और बादशाहों ने संगीत को अपने दरबार में आश्रय दिया और कलाकारों को भरपूर सम्मान दिया। इन्हीं कारणों से दिल्ली शहर में संगीत सदैव फलता–फूलता रहा।–[1]

दिल्ली घराने की शुरूआत दो संगीतज्ञ भाइयों हसन सावंत और बुला कलावंत से हुई। हसन सावंत सूफी तबीयत के थे और धार्मिक प्रवृत्ति के थे इसलिए उन्होंने सूफियों का संग किया। कव्वाली वगैरह का जो धार्मिक संगीत है उसी में ही उनकी रूचि थी, जबकि बुला कलावंत एक राजदरबार में आश्रित थे और वे राज गायक ही रहे। कलावंत शब्द पहले प्रयोग नहीं होता था, परंतु जब उन्होंने संगीत को अपनाया, तो वे कलावंत कहलाने लगे और उनकी जो संतानें थी, वे भी कलावंत के नाम से जानी जाने लगीं।–[2]

इन दोनों गायकों के बारे में एक बात यह भी ज्ञात होती है कि इन दोनों में से एक भाई गूँगा था और दूसरा भाई बहरा था। एक बार सुलतान इल्तुतमिश के दरबार में संगीत कार्यक्रम का आयोजन किया गया। उन्हें किसी ने हसन सावंत और बुला कलावंत के बारे में बताया तो बादशाह ने इन दोनों भाइयों को अपने दरबार में बुला लिया। लेकिन ये दोनों भाई क्या गाते। लेकिन हज़रत ख़्वाजा–ए–ख्वाज़गान (ख्वाज़ा मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी) को अपने ज्ञान से इन दोनों का हाल मालूम हो गया। उन्होंने इन दोनों भाइयों के लिए अल्लाह से दुआ की और अल्लाह से उनकी दुआ कुबूल कर ली। इसके बाद तुरंत ही इन दोनों भाइयों की आवाज़ खुल गई और दोनों ने बादशाह इल्तुतमिश के दरबार में गाना शुरू कर दिया।

हसन सांवत सूफी प्रवृत्ति के थे। वे दरबार में न रहकर कव्वाली आदि गाते थे। इसलिए इनकी संतानें कव्वाल या कव्वाल बच्चे कहलाईं। बूला कलावंत दरबारों में ही दरबारी गायक के रूप में रहे। इनकी संताने कलावंत या कलाकार कहलाई। इन्हीं दोनों–मीर हसन सावंत व मीर बूला कलावंत–से दिल्ली घराने का आरंभ माना जाता है। मीर शब्द अरब संस्कृति की निशानी और बाद में ख़ान शब्द का प्रयोग भारतीय सुलतानों द्वारा दिया गया ख़िताब है।–[3]

दिल्ली घराने के इन्हीं कलावंतों के परिवार में ही दो बहुत ही अच्छे गायक कलाकार हुए थे गाने वाले जिनमें से एक का नाम ज़मालुद्दीन और दूसरे का नाम कमालुद्दीन था। ज़मालुद्दीन जाने जाते थे उजाला के नाम से और कमालुद्दीन जाने जाते थे काला के नाम से। यह बड़े ही कमाल की बात थी कि जो उजाला थे उनको दिन के जितने भी राग थे उन पर पूर्ण अधिकार था और जो काला थे उनको रात्रि के सभी रागों पर पूर्ण अधिकार था अर्थात वे रात्रि के राग बड़ी ही सहजता के साथ गाते थे और इसी कारण से दोनों भाइयों का नाम उजाला तथा काला था।

इन दोनों भाइयों के असली नाम करीब–करीब लोग भूल ही गए थे। ये दोनों इस घराने के बहुत ही मशहूर कलाकार हुए थे। अठारहवीं शताब्दी में मुग़ल वंश के अंतिम बादशाह मोहम्मद शाह रंगीलें हुए। ये संगीत के अत्यन्त प्रेमी थे।

इन्हीं के दरबार में दो प्रसिद्ध गायक सदारंग–अदारंग हुए जिन्होंने हज़ारों ख़्यालों की रचना करके बहुत से शिष्य तैयार किए। इनके समय में ख़्याल गायन बहुत लोकप्रिय हुआ। उस समय ख़्याल गायन इतना लोकप्रिय हुआ जिसे हम यदि ख़्याल गायकी का स्वर्ण युग कहें तो अनुचित न होगा।–[4]

इसी दौरान आगे चलकर कलाकार भी अलग–अलग हो गए तथा अलग–अलग शाखाओं अर्थात जगहों पर बँटते चले गए जिससे कि कुछ समय के पश्चात ये शाखाएं संगीत घरानों में तबदील हो गई जिससे कि घरानों का निर्माण हुआ।

दिल्ली घराने में दो और भी प्रसिद्ध गायक कलाकार हुए जिनके नाम उमर खाँ तथा अल्ला बक़्श थे। इन दोनों गायकों की जोड़ी इला–उमरा के नाम से बहुत प्रसिद्ध हुई। इनका देहाँत लगभग सन् 1748 ई॰ में हो गया था। अल्ला बक़्श के पुत्र मोहम्मद बक़्श तथा मोहम्मद बक़्श के पुत्र उस्ताद अब्दुल गनी उर्फ संगी खाँ हुए। 18वीं शताब्दी में जब बहादुर शाह जफर का समय आया तो इन्हीं के समय में मियाँ अचपल आए जो कि कव्वाल बच्चों में से थे और किसी तरह उन्हीं से सम्बन्धित थे। मियाँ अचपल का असली नाम क्या था इस बारे में कोई ठोस प्रमाण प्राप्त नहीं होता। जहाँ तक ज्ञात होता है कि इनका असली नाम अजमल खाँ था। ये विलक्षण प्रतिभा के धनी थे और इन्होंने जो शिष्य बनाए वो भी मियाँ तानरस खाँ जैसे। मियाँ तानरस खाँ जिन्हें कि हम स्महमदकतल स्महमदकंतल म्चवदमदज व ज्ञीलंस मानते हैं। ये डासना (उ॰ प्र॰) के निवासी थे। इनके घर–परिवार में पहले से ही संगीत मौजूद थापरंतु इन्होंने मियाँ अचपल से दिल्ली घराने की गायकी की बहुत वर्षों तक तालीम प्राप्त की। लगभग 50 वर्ष की आयु में ही मियाँ अचपल खाँ की मृत्यु हो गई।

मृत्यु के पश्चात मियाँ तानरस खाँ बहादुर शाह ज़फर के दरबार में दरबारी गायक के पद पर नियुक्त हुए और ये बहादुर शाह ज़फर के गुरु भी थे। मियाँ अचपल के कोई सन्तान नहीं थी लेकिन मियाँ अचपल के एक भाई थे जिनका नाम गुलाम हुसैन था, उन्हीं की वंश–परम्परा आगे बढ़ी। गुलाम हुसैन की पुत्री ग़फ़ूरन बेग़म का विवाह दिल्ली घराने के प्रख्यात सारंगी वादक अब्दुलगनी उर्फ संगी खाँ के साथ ह्आ। इस प्रकार आगे चलकर यह घराना संगी खाँ की वंशावली के द्वारा आगे बढ़ता गया जिसे आज हम सभी दिल्ली घराना के नाम से जानते हैं।–[5]

दिल्ली घराने का परिचय : हमारा भारतीय शास्त्रीय संगीत एक विशुद्ध संगीत माना जाता है और हमारे प्राचीन संगीत शास्त्रकारों एवं संगीत विद्वानों ने नाद को ब्रह्म की संज्ञा दी है। अपने भारतीय शास्त्रीय संगीत में यदि हम संगीत घरानों की बात करें तो संगीत घरानों का हमारे यहाँ महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है और सभी संगीत घरानों की अपनी–अपनी ख़ास विशेषताएँ रही हैं। जिस प्रकार हमारे उत्तर भारत घरानों की परम्परा है उसी प्रकार दक्षिण भारत में भी है। उत्तर भारत में जिसे हम घराना कहते हैं, दक्षिण भारत में उसे सम्प्रदाय कहा जाता है। संगीत विद्वानों का मानना है कि लगातार तीन पीढ़ियों से चली आ रही गुरु–शिष्य–परम्परा को "घराना" कहा जाता है। घराना अथवा सम्प्रदाय गुरु तथा शिष्य के संयोग से ही बनता है। उत्तर भारतीय संगीत में गायन के कई घराने हमें आज भी सुनने को मिलते हैं जैसे कि ग्वालियर घराना, जयप ुर घराना, आगरा घराना, अल्लादिया खाँ का घराना, पटियाला घराना, किराना घराना, रामपुर सहसवान घराना, इन्दौर घराना तथा मेवाती घराना। इन सभी घरानों में दिल्ली घराना एक प्राचीन घराना माना जाता है। सर्वविदित है कि दिल्ली के बादशाह मोहम्मद शाह रंगीले (सन् 1719 ई॰) के दरबार में ख़्याल गायकी का खूब प्रचार था। ख़्याल के दिल्ली घराने एक नियामत खाँ (सदारंग) तथा फिरोज़ खाँ (अदारंग) ख़्याल गीतों तथा गायकी के निर्माता रहे हैं। 'मोहम्मद शाह रंगीले' के नाम से जितने भी ख़्याल सुनने को मिलते हैं वे सभी 'सदारंग' की ही ख़्याल रचनाएँ हैं। दिल्ली के अंतिम बादशाह बहादुर शाह ज़फर (सन् 1837 ई॰) ख़्याल गायकी के पोषक एवं ख़्याल गीता ें के रचनाकार भी थे।

उनके द्वारा रचित बहुत से ख़्याल आज भी 'शोखरंग' के नाम से दिल्ली घराने में सुरक्षित हैं। बहादुर शाह ज़फर के गुरु मियाँ अचपल तथा मियाँ अचपल के शिष्य उस्ताद तानरस खाँ दिल्ली घराने के ख़्याति प्राप्त तथा सर्वश्रेष्ठ कलाकार रहे हैं। पटियाला घराने के प्रख्यात गायक कलाकार उस्ताद अली बक़्श तथा उस्ताद फतेह अली जो कि अलैया–फत्तू के नाम से जाने जाते थे, उस्ताद तानरस खाँ के प्रमुख शिष्यों में से थे। इनके अतिरिक्त भी तानरस खाँ ने बहुत से शिष्य–शिष्याएँ तैयार किए थे, जिन्होंने संगीत कला क्षेत्र में बहुत अधिक ख़्याति अर्जित की। दिल्ली घराने के जो कलाकार दिल्ली में ही रहकर ख़्याल गायकी को आगे बढ़ाते रहे उनमें मियाँ अल्ला बख़्श तथा उनके भाई उमर बख़्श. इला–उमरा की जोड़ी से प्रसिद्ध हुए। इनके पश्चात उस्ताद अब्दुलगनी उर्फ संगी खाँ, उस्ताद सम्मन खाँ, उस्ताद मम्मन खाँ, उस्ताद चाँद खाँ, उस्ताद जहान खाँ, उस्ताद रमज़ान खाँ, उस्ताद उस्मान खाँ, उस्ताद हिलाल अहमद खाँ, उस्ताद नसीर अहमद खाँ, उस्ताद ज़हूर अहमद खाँ, उस्ताद लतीफ अहमद खाँ इस घराने के प्रख्यात गायक एवं वादक कलाकार थे। इस घराने को चमकाने में "संगीत मार्तण्ड" उस्ताद चाँद खाँ साहब का विशेष योगदान रहा है क्योंकि उनकी शिष्य–परम्परा बहुत ही विशाल थी और उन्ही की

शिष्य–परम्परा में "तान सम्राट" गायक स्व. उस्ताद नसीर अहमद खाँ साहब ने बहुत ही कम उम्र में बहुत अधिक ख़्याति प्राप्त की। वर्तमान में उस्ताद इक़बाल अहमद खाँ साहब (ख़लीफा गायक) उस्ताद शकील अहमद खाँ (तबला वादक) उस्ताद सईद ज़फर खाँ (सितार वादक) उस्ताद तनवीर अहमद खाँ (गायक) इमरान खाँ (गायक) कामरान खाँ (तबला वादक) कमाल अहमद (वॉयलिन वादक) उस्ताद सईद खाँ (सितार वादक), उस्ताद असगर हुसैन (वॉयलिन वादक), राशिद ज़फर खाँ (तबला वादक) अफज़ाल ज़हूर अहमद खाँ (वॉयलिन वादक) निहाल अहमद खाँ (तबला वादक), परवेज़ जहूर अहमद खाँ (वॉयलिन वादक), शरीफ भारती (तबला वादक) शाहिद ज़फर खाँ (सितार वादक), दानिश हिलाल खाँ (गायक), अकबर लतीफ खाँ, (तबला वादक), बाबर लतीफ खाँ (तबला वादक), फरीद हसन खाँ (गायक) सुहैल सईद खाँ (सितार वादक), अदनान खाँ (सितार वादक) साद इक़बाल खाँ (गायक) दिल्ली घराने के प्रख्यात गायक एवं वादक कलाकार हैं। वर्तमान में इस घराने का प्रतिनिधित्व ख़लीफा गायक उस्ताद इक़बाल अहमद खाँ साहब कर रहे थे।–[6]

दिल्ली घराने का विकास : विदुषी डॉ॰ कृष्णा बिष्ट के अनुसार : हमारे भारतीय संगीत में घराने का विकास वंश परम्परा तथा शिष्य– परम्परा दोनों से हुआ है और यह विकास तब तक होता है जब तक किसी भी घराने का गायक या वादक अपनी वंश–परम्परा तथा शिष्य–परम्परा को कायम रखता है। जहाँ पर भी ज़रा सी शिथिलता आ जा जाती है तो उस घराने का विकास रूक जाता है अर्थात वह घराना लुप्त हो जाता है। हमारे भारतीय शास्त्रीय संगीत में ख़्याल गायकी के बहुत से घराने थे। उन घरानों में बहुत से गायकों के नाम बहुत प्रसिद्ध हुए जिन्होंने बहुत ख़्याति प्राप्त की जैसे कि ग्वालियर घराने के पंडित कृष्ण राव शंकर पंडित, पटियाला घराने के उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ, आगरा घराने के उस्ताद फैयाज़ खाँ तथा किराना घराने के मूर्धन्य गायक पंडित भीमसेन जोशी आदि। इन घरानों के अन्य कई गायक आज भी शिष्य–परम्परा को कायम रखे हुए हैं तथा बख़ूबी इस परम्परा को निभा रहे हैं। यहाँ पर यदि हम दिल्ली घराने के विकास की बात करें तो यह ख़्याल गायकी का बहुत ही प्राचीन घराना माना गया है और इस घराने की वंश–परम्परा तथा शिष्य–परम्परा भी बहुत विशाल रही है। इस घराने के विषय में कुछ लोगों का मानना है कि इस घराने का संबंध सारंगी वादन से रहा है। यहाँ पर यह मानना उचित है लेकिन सारंगी वादन के साथ–साथ इस घराने में ख़्याल गायकी के उच्चकोटि के धुरंधर गायक कलाकार भी हुए। जिनके कारण इस घराने में ख़्याल गायकी का बहुत अधिक विकास हुआ। आज भी इस घराने में ख़्याल गायकों की एक लम्बी कतार है। अपनी वादन शैली में भी यह घराना बहुत प्रचलित है क्योंकि वर्तमान में इस घराने के सितार वादकों, वॉयलिन वादकों तथा तबला वादकों ने भी बहुत ख़्याति अर्जित की है।

मेरा मानना यह है कि इस घराने की गायन शैली में "संगीत मार्तण्ड" उस्ताद चाँद खाँ साहब का विशेष योगदान रहा है। वे केवल एक गायन ही नहीं अपितु एक उत्कृष्ट रचनाकार, उच्चकोटि के संगीतज्ञ तथा एक श्रेष्ठ संगीत गुरु थे। उन्होंने लगभग 1000 रचनाएँ तैयार की थी और तानों के लगभग 200 प्रकार उन्हें ज्ञात थे। खाँ साहब की शिष्य–परम्परा भी बहुत विशाल थी। वे मेरे भी संगीत गुरु थे तथा मेरी बड़ी बहन स्व॰ डॉ॰ भारती चक्रवर्ती के भी गुरु थे। हम दोनों बहनें उनकी गंडाबंध शिष्याएँ थी। इनका कोई पुत्र नहीं था, लेकिन इनके परिवार में स्व॰ उस्ताद हिलाल अहमद खाँ (गायक), स्व॰ उस्ताद नसीर अहमद खाँ (गायक) स्व॰ उस्ताद ज़हूर अहमद खाँ (वॉयलिन वादक) स्व॰ उस्ताद ज़फर अहमद खाँ (सितार वादक) सभी इनके शिष्य थे और इनके अतिरिक्त उस्ताद बुलंद इक़बाल खाँ, शाहिद अहमद देहलवी, इक़बाल बानो, कमल सहगल व कविता सहगल तथा पंडित भगवत शरण शर्मा भी इनकी शिष्य–परम्परा में थे। खाँ साहब का हृदय बहुत विशाल था और गाने का अंदाज़ भी बहुत बढ़िया था। आलाप के बाद सम का अंदाज़ कैसा हो, तान के बाद सम का अन्दाज़ कैसा हो इस बारे में वे बहुत बारीकी से सिखाते थे। वे सितार, वॉयलिन, कानून (वाद्य यन्त्र) तथा तबला वादन का भी पूर्ण ज्ञान रखते थे और इन वाद्यों को बजाने में भी पारंगत थे। इस सत्यता को हम कभी नहीं नकार सकते कि दिल्ली घराने के विकास में उस्ताद चाँद खाँ साहब का बहुत अधिक योगदान रहा है, इस विषय में खाँ साहब की सराहना करना सूर्य को दीपक दिख़ाने के समान होगा। इन्हीं की शिष्य–परम्परा ने आगे चलकर बहुत से शिष्य–शिष्याओं को दिल्ली घराने की गायकी तथा वादन शैली की शिक्षा दी जिसके कारण आज यह घराना फलता–फूलता नज़र आ रहा है।–[7]

दिल्ली घराने की शिक्षण पद्धति एवं उसकी विशेषताएँ :

दिल्ली घराने की शिक्षण पद्धति : इस बात से हम सभी भली–भाँति परिचित हैं कि सभी ललित कलाओं में संगीत को ही सर्वश्रेष्ठ कला कहा गया है। यह कला मानव जीवन के जन्म से लेकर मृत्यु तक जुड़ी हुई है। इस कला का क्षेत्र विशाल जलनिधि के समान अत्यन्त व्यापक, गूढ़ और गहरा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संगीत का अपना अलग ही महत्त्व है।

यहां पर यदि हम संगीत शिक्षण–पद्धति की बात करें तो हमें यह ज्ञात होता है कि संगीत की दो शिक्षण–पद्धतियाँ हैं। 1.

संस्थागत शिक्षण–पद्धति जो वर्तमान में चल रही है तथा 2. घरानेदार–शिक्षण पद्धति । संस्थागत शिक्षण पद्धति में व्यक्ति महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों से संगीत शिक्षा प्राप्त करता है तथा घरानेदार शिक्षण–पद्धति में वह किसी उस्ताद या गुरु से संगीत शिक्षा प्राप्त करता है। संगीत कला के क्षेत्र में कोई भी व्यक्ति तभी पारंगत हो पाता है, जब वह व्यक्ति किसी श्रेष्ठ गुरु अथवा उस्ताद की शरण में संगीत शिक्षा प्राप्त करने जाता है। इसके साथ–साथ यह भी देखा जाता है कि वह संगीत के प्रति कितनी लगन रखता है, वह कितना रियाज़ी है तथा अपने गुरु के प्रति कितनी श्रद्धा रखता है। पुराने समय में उस्ताद अथवा गुरु लोग अपने शिष्यों को सीना–बा–सीना संगीत की तालीम देते थे और उन्हें अपने सम्मुख घण्टों रियाज़ करवाया करते थे। वे शिष्य के ऊपर अपना पूरा प्यार उड़ेल दिया करते थे । उस्ताद अथवा गुरु को यह भी अधिकार प्राप्त था कि जब तक वे अनुमति न दें, तब तक उनका शिष्य किसी भी महफिल में तथा मंच पर गाना नहीं गाएगा । संगीत की यही गुरु–शिष्य– परम्परा कई वर्षों तक चलती रही और गुरु अपने शागिर्द को गंडा बांधकर शिष्य स्वीकार किया करते थे। इसी परम्परा के अनुसार ही संगीत में नवीन शैलियों के विकास के साथ–साथ घरानों का उदय हुआ। इन घरानों के माध्यम से संगीत का विकास हुआ तथा संगीत के कई घराने प्रचार में आए, जिसे हम घरानेदार शिक्षण–पद्धति कहते हैं।

यहाँ यदि हम घरानेदार शिक्षण–पद्धति की बात करें तो हमें यह ज्ञात होता है कि हमारे भारतीय संगीत में गायन तथा वादन शैली के जितने भी घराने हैं, उन सभी घरानों की शिक्षण–पद्धति में कुछ न कुछ अंतर अवश्य पाया जाता है। इसी शिक्षण–पद्धति में यदि दिल्ली घराने की शिक्षण–पद्धति की बात की जाए, तो इस घराने की शिक्षण–पद्धति भी अपनी ख़ास शिक्षण–पद्धति से प्रचलित है, जो इस प्रकार है :–

1. विभिन्न प्रकार की सरगमों, अलंकारों तथा पल्टों का अभ्यास करने की विधि :दिल्ली घराने की शिक्षण पद्धति के अंतर्गत सर्वप्रथम शिष्य को स्वरों का अभ्यास कराया जाता है जो मंद्र और अति मंद्र सप्तक में होता है। स्वरों पर मूल रूप से अधिकार पा लेने के बाद, उन्हें कुछ अलंकारिक सरगमों तथा पल्टों व उसकी तानों का अभ्यास कराया जाता है। जैसे कि, ग, रे ग, नि़ रे ग, नि़ रे नि़ ग, ध नि़ रे ग प मे ग रे ग, ग ग मे प रे ग इस प्रकार से राग यमन (कल्याण) के स्वरों का भी अभ्यास कराया जाता है। दिल्ली घराने के गायकों का कहना है कि इससे आलाप में विविधता तो आती ही है, बल्कि मे प रे ग आदि स्वर लगाते रहने से "राग" का स्वरूप भी निख़र जाता है। इस स्वरूप के विषय में विदुषी प्रो॰कृष्णा बिष्ट का विचार है – " ।ृ । कपेजपदहनपेीपदह मिंजनतम वजीम ज्ञींलंस वि क्मसीप. ळींतंद पे जीपे जींज ूपसम क्मअमसवचपदह ं दवजमए मअमद ीपहीमत दवजमे ंतम रनकपबपवनेसल नेमकण जेम ेजलसम पे ीपहीसल वि दवजमेण–[8]

2. स्वराभ्यास विधि एवं स्वर लगाने का विशिष्ट ढंग :

संगीताभ्यास के लिए यहाँ पर कुछ सरगमें दी जा रही हैं जिसे गायक अपने गले पर तथा वादक अपने वादन पर उतारते हैं । राग यमन (कल्याण) में कुछ सरगमें व तानें इस प्रकार से हैं :–

आरोह–अवरोह

1. रे ग मे प ध नि सां रें सां नि ध प मे ग रे सा।
2. रे ग मे प ध नि सां रें गं, रें सां नि ध प मे ग रे सा।
3. रे ग मे ध नि सां रें गं म, गं रें सां नी ध प मे ग रे सा।
4. सां नि ध प ध नि सां रें गं, रें सां नि ध प मे ग रे सा।
5. सां नि ध, रें सां नि, गं रें, सां नि ध प मे ग रे सा।
6. ग मे प ध, म प ध नि, सां नि ध प, मे ग रे सा।
7. प मे प, रे ग मे, ग मे, ध नि ध प, मे ग रे सा।
8. सां नि सां प ध प, ध नि, सां नि ध प मे ग रे सा।

इसके साथ ही कुछ सरगमें इस प्रकार की भी हैं, जिसे शिष्य को गले में उतारने की शिक्षा दी जाती है जो राग "यमन कल्याण" में जैसे :

1. नि़ रे ग मे, प मे, मे ग रे सा।
2. नि़ रे ग मे, नि ध प मे, मे ग रे सा।
3. नि़ रे ग मे, ध नि नि ध, प मे मे ग रे सा।
4. नि़ रे ग मे, ध नि रें सां, नि ध प मे, मे ग रे सा।
5. नि़ रे ग मे, ध नि रें गं, रें सां नि ध, प मे, मे ग रे सा।
6. नि़ रे ग मे, ध नि रें गं में पं में गं, रें सां नि ध, प मे, मे ग रे सा।

एक ही पल्टे पर जब बराबर की लय में ताल के साथ अभ्यास कराया जाता है, तब उसी एक पल्टे से विभिन्न प्रकार के तानों के गुलदस्ते तैयार हो जाते हैं। इसके साथ ही दिल्ली घराने में सर्वप्रथम शिष्य को स्वांस भरने की शिक्षा भी दी जाती है जिससे लम्बी–लम्बी तानों तथा तीनों सप्तकों में तानें गाने की शक्ति मिलने के साथ ही साथ आवाज़ में भी चमत्कारिक गूँज व ठहराव पैदा हो जाता है।

गायकी की विशेषताएँ छोड़कर जो बात हमारे सामने आकृष्ट करती है, वह है आवाज लगाने का ढंग। आवाज़ ही से घराने के अंग का परिचय मिल जाता है।

गुरु–शिष्य–परम्परा में भी आवाज़ ही महत्त्व रखती है क्योंकि शिष्य अपने गुरु के नकल करने की चेष्टा करता और उसकी उसी चेष्टा द्वारा शिक्षा व घराने का अंदाज़ा लगाया जा सकता है।–[9]

3. ख़्याल की बंदिश का भराव तथा मुखड़े की पकड़ की शिक्षण विधि : स्वर–साधना, सांस–क्रिया व अलंकारिक तानों के पश्चात् बंदिश

पर आते हैं। यहाँ पर आलाप, रचना के शब्दों को लेकर किये जाते हैं। रचना के शब्दों के साथ क्रमिक बढ़त करते–करते जब तार–सप्तक के षड़ज पर पहुँचते हैं तब तार–सप्तक में ही टीप का काम दिखाने की प्रथा इस घराने में अधिक है। पुनः अन्तरे का मुखड़ा लेते हुए तार–सप्तक की बढ़त के बाद पूरा अन्तरा गाना सिखाया जाता है। अन्तरा के खत्म होने पर थोड़ी लय बढ़ाकर रचना के शब्दों को लेकर विभिन्न प्रकार की लयकारियाँ भी सिखायी जाती हैं, जैसा कि ध्रुपद गायन में किया जाता है। लयकारी के बाद यहाँ पर तानें व सरगम लेने की प्रथा है। विलम्बित ख़्याल की सरगमों और तानों में सूत, मीड़, गमक व लहक का काम सिखाया जाता है व मध्यलय के स्वरों में आपसी लड़–गुथाव व जोड़–तोड़ के काम की भी शिक्षा दी जाती है।–[10]

4. ख़्याल गायन की बंदिशों की शिक्षा तथा विभिन्न प्रकार की तानों का अभ्यास करवाने की विधि : इस घराने में मध्यलय व अतिद्रुत लय में दोनों ही प्रकार के बंदिशों की शिक्षा दी जाती है साथ ही दोनों ही लयों में कुछ विचित्र प्रकार की तानों की भी शिक्षा दी जाती है। इस घराने में तान लेने की विचित्र पद्धतियाँ हैं जैसे :– जोड़–तोड़ की तान, सपाट तान, फंदे की तान, छूट की तान, शेर दहाड़ तान, मिश्र तान इत्यादि सभी प्रकार की तानों के लेने हेतु फिरत व सपाट तानों का अभ्यास कराया जाता है। इस घराने में विलम्बित व द्रुत ख़्याल की बंदिशें अत्यंत कलापूर्ण होती है जिनको सुस्वर गले पर स्पष्ट भाव प्रदर्शित करने हेतु स्वरों के आपसी मेल–मिलाप और स्वरों के लोच को अलग प्रकार से कहने की शिक्षा दी जाती है। साथ ही तान–बंधान आदि के काम में आकार को सही ढंग से लगाना व उसका सही प्रयोग करते हुए उनके अवगुणों से बचने की भी सूक्ष्म शिक्षा का ज्ञान कराया जाता है।–[11]

दिल्ली घराने की विशेषताएं :

हमारे उत्तर भारतीय संगीत में ख़्याल गायकी की विशेषता मुख्य रूप से रही है। वर्तमान में भी ख़्याल गायकी का ही बोलबाला है। इसी ख़्याल गायकी में हमें बहुत से घरानों की गायकी सुनने को मिलती है। ख़्याल गायकी के जितने भी घराने हैं जैसे कि – ग्वालियर घराना, आगरा घराना, किराना घराना, दिल्ली घराना, जयपुर घराना तथा पटियाला घराना इन सभी घरानों की अपनी कुछ ख़ास विशेषताएँ हैं। वर्तमान में जब हम किसी भी गायक की गायकी सुन लेते हैं तो हमें यह आभास हो जाता है कि अमुक गायक किस घराने से है। इन्हीं विशेषताओं के कारण ही घरानेदार गायकी पहचान में आ जाती है। यहां यदि हम दिल्ली घराने की गायकी विशेषताओं की बात करें, तो इस घराने की गायकी की विशेषताएं निम्न प्रकार से हैं :–कुछ समय तक इस घराने मे ं सारंगी व सुरसागर जैसे वाद्यों का बहुत ही प्रचलन होता रहा है अतः इस घराने की ख़्याल गायकी में विलम्बित लय की बंदिशों में सूत, मींड, गमक व लहक का काम विशेष रूप से दिखाई देता है।

मध्य लय की चीज़ों में स्वरों का आपसी लड़–गुथाव तथा जोड़–तोड़ का काम इस घराने की गायकी की प्रमुख विशेषता है।इस घराने की तानें कठिन, जटिल तथा बल–पेंच वाली है।घ इस घराने में तान लेने की विचित्र पद्धतियां हैं जैसे कि तानों का बनाव श्रृंगार, तानों की अदायगी का ढंग, मुंह तथा शरीर के साथ तानों का नक़्शा, प्रत्येक तान को मुनासिब ढंग से गाने का अंदाज़ तथा तान बंधान में आकार
का सही प्रयोग करना एवं उनके अवगुणों से बचना, यह सब इस घराने की गायकी में विशेष तौर पर दिखाया जाता है। ख़्याल गायन की बंदिशों में सुन्दर भावानुकूल व रसानुकूल स्वरों का प्रयोग करके कलात्मक अंगों का दिग्दर्शन इस घराने की गायकी में दिखाया जाता है।

इस घराने में ख़्याल के लयानुकूल ही, विभिन्न तालों की योजना भी निर्धारित की जाती है। विलम्बित ख़्यालों हेतु, तिलवाड़ा, एकताल, आड़ा चारताल आदि तालें व मध्यलय, द्रुत लय की रचना के लिए, तीनताल, एकताल, आड़ा चारताल तालों का चुनाव किया जाता है। यहाँ पर ठुमरी, दादरा, तराना, भजन, गज़ल आदि भी बड़ी तन्मयता के साथ गाया जाता है । पर उप–शास्त्रीय अंग की गायकी (ख़ासकर) ठुमरी अंग पर "पंजाब घराने" की (ठुमरी गायकी) की झलक का पूरा–पूरा प्रभाव यहाँ की गायकी में देखने को मिलता है। इस घराने का सूत्रपात कव्वाल बच्चों के घराने के विख्यात गायक तथा बहादुर शाह ज़फर के उस्ताद मियां अचपल खाँ साहब जो तानरस खाँ साहब के उस्ताद थे, से बताया जाता है। वे स्वयं भी कव्वाली गाते थे व अपने शिष्य तानरस खाँ साहब को भी कव्वाली गायन की कला में पारंगत किया था। अतः कव्वाली गायकी भी इस घराने की मुख्य विशेषता व अंग हैं। कव्वाली गायन में तान, पल्टा, जमजमा, बोलबाँट सभी कुछ होता है।ख़्याल गायन शैली में ख़्याल गायकी के कई प्रकार इस घराने की गायकी में सुनने को मिलते हैं। ख़ासकर तानों की विविधता और जटिलता इस घराने की गायकी को अन्य सभी घरानों की गायकी से अलग कर देती है।–[12]

इस घराने की गायकी में आलाप में बोल बनाव, लचाव, गुथाव, लहक सूत मींड तथा खटके का काम प्रचुर मात्रा में देखने को मिलता है। रागों की सच्चाई और उनके सिद्धांतों का पूर्ण रूप से पालन इस घराने में किया जाता है। इस घराने में आवाज़ को गंभीरता पूर्वक प्रयोग करके प्रत्येक शब्द का सही रूप से उच्चारण किया जाता है। राग के स्वरों की बढ़त सिलसिलेवार बहुत ही सुन्दर

ढंग के साथ की जाती है।द्रुत ख़्याल की बंदिशों में भी राग का स्वरूप बना रहता है।

राग की बढ़त करते समय स्वरों को लचाव–घुलाव के साथ सुन्दरता उत्पन्न करके प्रस्तुत किया जाता है। विलम्बित ख़्याल में तार सप्तक के सां पर जाने के बाद ही अंतरा गाया जाता है। मध्य तथा द्रुत लय की बंदिशों में सरगमों की विभिन्न प्रकार की तिहाईयों का प्रयोग करके सम पर आकर मिलना, इस घराने में विशेष तौर पर किया जाता है।–[13]

दिल्ली घराने में गाए जाने वाले ख़्यालों के प्रकार : जहाँ तक ख़्याल गायकी का विषय है, हमें यह ज्ञात हुआ है कि ख़्याल गायन शैली में ख़्याल के दो ही प्रकार सुनने को मिलते हैं जैसे कि बड़ा ख़्याल और छोटा ख़्याल अथवा द्रुत ख़्याल। लेकिन दिल्ली घराने में ख़्याल के बहुत से प्रकार सुनने को मिलते हैं जो इस घराने की अपनी ख़ास विशेषता है। ख़्याल के प्रकारों के नाम इस प्रकार हैं :–

1. सवारी के ख़्याल
2. पालकी के ख़्याल
3. पटरी के ख़्याल
4. ख़ानापूरी के ख़्याल
5. डयौढ़ी लय के ख़्याल
6. मध्य लय के ख़्याल
7. विलम्बित लय के ख़्याल
8. कुल्फी–तुर्रा के ख़्याल
9. द्रुत लय के ख़्याल
10. . तान बन्धन के ख़्याल
11. सेहरे सुहाग के ख़्याल
12. जेहजी के ख़्याल
13. मौसमी ख़्याल
14. नायकी के ख़्याल
15. नायकी के ख़्याल
16. इकसामी रागों के ख़्याल –[14]

उपरोक्त ख़्यालों के प्रकार से दिल्ली घराने के उस्तादों एवं कलाविदों ने अपनी कलात्मक योग्यता के बल पर ख़्याल गायन को विविध रंगों में रंग दिया। दिल्ली घराने के बुज़ुर्ग उस्तादों द्वारा बनाए गए ख़्याल के ये विभिन्न प्रकार आज भी गाए जाते हैं। इस घराने में गाए जाने वाले कुछ ख़्यालों की परिभाषा इस प्रकार

है :– पालकी के ख़्याल : पुराने समय में जब बादशाह की पालकी निकलती थी, तो उस पालकी की चाल में, गायक अपने गायन द्वारा भाव व्यक्त करता है जिसे पालकी के ख़्याल कहते हैं।

ख़ानापूरी के ख़्याल : जिन ख़्यालों में स्थायी अंतरा के बोलों को स्वरों के द्वारा भरा जाता है अर्थात जिसकी ख़ानापूर्ति की जाती हैं, उन्हें ख़ानापूरी के ख़्याल कहते हैं। सेहरे सुहाग के ख़्याल : ख़्याल के ये प्रकार विवाह से सम्बन्धित हैं। इस प्रकार के ख़्यालों में दूल्हा–दुल्हन प्रशंसा से संबंधित बोलों को सुन्दर भाव देकर गाया जाता है। जिन्हें कि सेहरे–सुहाग का ख़्याल कहा जाता है। ख़्याल का यह प्रकार शादी–विवाह के अवसर पर गाया जाता है। तान–बन्धान के ख़्याल : ख़्याल के इस प्रकार का सम्बन्ध केवल बोलतान से होता है। इसमें शब्दों को अर्थात स्थायी–अंतरा को सुन्दर–सुन्दर तानों में बांधकर गाया जाता है। ये ख़्याल तान–बन्धान के ख़्याल कहलाते हैं। मौसमी ख़्याल : ख़्याल के जिन प्रकारों में मौसम का वर्णन होता है उन्हें मौसमी ख़्याल कहा जाता है। जैसे कि बसंत ऋतु तथा वर्षा ऋतु इन ऋतुओं के रागों को मौसमी ख़्याल़ों में गाया जाता है।–[15]

संदर्भ

1. भारती, नयन (2000), दिल्ली घराने की संगीत परम्परा और उस्ताद चाँद खाँ, सारांश प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली पृष्ठ– 18
2. शोधार्थी द्वारा लिए गए साक्षात्कार से प्राप्त जानकारी के आधार पर
3. भारती, नयन (2000), दिल्ली घराने की संगीत परम्परा और उस्ताद चाँद खाँ, सारांश प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली पृष्ठ– 19
4. शोधार्थी द्वारा लिए गए साक्षात्कार से प्राप्त जानकारी के आधार पर
5. वही
6. मिश्र, रमेश कुमार (2001), दिल्ली घराने का संगीत में योगदान, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ – 47
7. शोधार्थी द्वारा लिए गए साक्षात्कार से प्राप्त जानकारी के आधार पर
8. मिश्र, रमेश कुमार (2001), दिल्ली घराने का संगीत में योगदान, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ – 87
9. वही पृष्ठ – 88
10. वही पृष्ठ– 89
11. वही पृष्ठ –90
12. वही पृष्ठ – 100
13. भारती, नयन (2000), दिल्ली घराने की संगीत परम्परा और उस्ताद चाँद खाँ, सारांश प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली पृष्ठ – 32
14. मिश्र, रमेश कुमार (2001), दिल्ली घराने का संगीत में योगदान,

राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ – 96
15.शोधार्थी द्वारा लिए गए साक्षात्कार से प्राप्त जानकारी के आधार पर

शोध–पत्र प्रस्तुतकर्ता :–
डॉ0जगदीश कुमार
एम.ए., नेट पीएच.डी.(संगीत गायन)
देशबन्धु गुप्ता राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
पानीपत–132103

26

विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यास– "दीवार में एक खिड़की रहती थी" में "घर" मानव और "प्रकृति"

डॉ0 राजनारायण शुक्ल, डॉ0 बीना पांडे

सारांश

काव्य साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बना लेने वाले कवि विनोद कुमार शुक्ल ने अपनी लेखन प्रतिभा का संकेत अब तक लिखें अपने तीन उपन्यास–" नौकर की कमीज" (प्रकाशन वर्ष 1979), "खिलेगा तो देखेंगे" (प्रकाशन वर्ष 1996) और "दीवार में एक खिड़की रहती थी" (प्रकाशन वर्ष 1997) द्वारा दे दिया है।

तीनों उपन्यास का कथ्य भिन्न–भिन्न होते हुए भी तथ्यगत कुछेक अंशों में समानता भी हैं। उनका पहला उपन्यास "नौकर की कमीज" में आज के बीमार प्रशासन के कुचक्र में फंसी जनता की मौन बेबसी है । "खिलेगा तो देखेंगे" में आशा –निराशा में जीते मनुष्य की बेहतर भविष्य के संघर्षमय और समर्पित वर्तमान की अभिव्यक्ति है। वही "दीवार में एक खिड़की रहती थी" में निम्न मध्यवर्गीय भारतीय परिवार का स्वरूप है जिसके पास स्वस्थ सुंदर दृष्टि है जिसमें जीवन के अभावों का दुख नहीं बल्कि उपलब्धियों की संतुष्टि और सुख व्याप्त है।

विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यासों के केंद्र में निम्न मध्यवर्गीय परिवार है जो अपनी आशा –निराशा, सुख–दुख, सफलता– असफलता के साथ जीवन –जगत की जटिलताओं और विषम परिस्थितियों का सामना करते हुए अपनी महती उपस्थिति को बनाए हुए हैं।

किसी परिवार की कल्पना एक "घर" से शुरू होती है, यह घर विनोद कुमार शुक्ल के तीनो उपन्यासों में अपने पूरे वजूद के साथ मौजूद है। आज दिनो दिन बढ़ते मकान और कम होते घरों का एहसास उपन्यासकार की सजग संवेदनशीलता का परिचायक है। मानव जीवन और समाज के सुंदरतम आरंभ और विकास के लिए "घर" की अनिवार्यता को उपन्यासकार संजीदगी से महसूस करता है। तीनो उपन्यास के केंद्रीय पात्र गृहस्थ हैं और परिवार के मधुर बंधन में बंधे वर्तमान परिस्थितियों की जटिलताओं, विसंगतियो से जूझते हुए सुखद जीवन का कोना खोज रहे हैं। इनके उपन्यासों में कहीं–कहीं अभिव्यंजनागत समरूपता भी है। विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यासों में प्रकृति अपने रंग, रूप, रस, गंध आदि उपकरणों के साथ इतनी उपस्थिति है कि लगता है उपन्यासकार मानव,घर और प्रकृति तीनों को साथ देखना चाहता है । पेड़, पौधे, पशु, पक्षी, पुष्प, नदी, पहाड़, हवा, सूर्योदय, सूर्यास्त, सूर्य, चांद, प्रकृति के विविध रूप सभी मानव जीवन के जीवन के अभिन्न हिस्से हैं जिनके बिना सुखी जीवन की कल्पना बेजान है। जीवनदायी इन्हीं स्त्रोतों की उर्जा लेकर मानव न्यस्तगामी परिस्थितियों के विरुद्ध खड़ा हो सकता है। यही साहित्य की उपादेयता भी है।

प्रकृति और मनुष्य, उसके परिवेश एवं प्रवृत्ति के मनोनुकूल घर– परिवार की अवधारणा जो कालांतर में उत्तरोत्तर विकसित होती जाती है। इस मनभावन ऐश्वर्यशाली सुखमय गृहस्थी की अदम्य चाहत वाली स्फुरण में, विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यास "दीवार में एक खिड़की रहती थी" में इन्हीं अलबेली, प्राणवंत स्फुरणाओ को टटोलने की कोशिश की गई है । यह उपन्यास निम्न मध्यमवर्गीय भारतीय परिवार के सुख दुख की अंकुठ उन्मुक्त भावपूर्ण अभिव्यक्ति है।

इस शोध का उद्देश्य वर्तमान कृत्रिम जीवन के "सुखवाद" से औपन्यासिक जीवन के सहज प्रकृतिक सुखद जीवन का फर्क दिखाते हुए उन्नत सभ्यता के विकसित दौर में मनुष्य के अपने "खोने" और "पाने" का बोध कराना है। मानव समाज को मानवीय समाज का रूप देने में जगत– जीवन के संबंधों की अंतरंगता, भावात्मकता और विश्वास अत्यावश्यक है। स्वस्थ सुंदर समाज के निर्माण के लिए उच्चतर मानवीय मूल्यों का सतत विकास होना अपेक्षित है । मनुष्य वृहत्तर समाज की इकाई है, उसके गठन की प्रारंभिक संस्था और शिक्षास्थल परिवार है जहां वह संस्कार पाता है । परिवार का निवास स्थल "घर" सिर्फ ईटों से जुड़ी दीवारों की चारदीवारी खड़ी कर लेने से नहीं बनता बल्कि बनता है उसमें रहने वाले लोगों के मन के जुड़ाव से । जितने गहरे रूप से मन के सूत्र एक दूसरे से जुड़े रहकर एकात्मय का बोध कराएंगे उतना ही मजबूत घर भी बनेगा अपनी खिड़की के साथ ।

दीवार में एक खिड़की रहती थी' में "घर", "मानव" और "प्रकृति" उपन्यास मानव जीवन को विस्तृत फलक देने का सशक्त माध्यम है । चाहे वह फलक जीवन वर्णन का हो या उसे रचने या गढ़ने का । उपन्यासकार के समक्ष एक "विजन" होता है जिसे वह अपनी सर्जना के माध्यम से लोक– चेतना तक संप्रेषित करता है । उपन्यास का अस्तित्व ही जीवन की व्यापकता और उसकी जटिलता की अभिव्यक्ति तथा आधुनिक सामाजिक आवश्यकता के तहत आया।

मेरी दृष्टि में उपन्यास का वास्तविक और पूर्ण स्वरूप सिर्फ प्रेम कथा में नहीं बल्कि प्रेम में परिपूर्ण जीवन कथा में हैं चाहे वह प्रेम प्रकृति– मानव का हो अथवा मानव– मानव के विविध संबंधों का।

विनोद कुमार शुक्ल का उपन्यास "दीवार में खिड़की रहती थी" एक ऐसे समय लिखा हुआ पारिवारिक उपन्यास है जो व्यक्ति को घर, परिवार और समाज से जोड़कर ले चलता है, जब घर का स्वरूप बिखर कर मकान बन गया है, परिवार ने वैप्यक्तिक इकाई का रूप ले लिया है तथा समाज से व्यक्ति का संबंध औपचारिक बनकर रह गया है और प्रकृति प्रसाधन मात्र बन गई है । यह एक प्रेमकथा नहीं हैं पर यह प्रेम सूत्र में बंधा हुआ है जो जीवन के मूल तत्व हैं– शवास्तविक उपन्यास प्रेमकथा में ही संभव है । यद्यपि जीवन की विशालता में अनेक भाव व्याप्त हैं, पर प्रेम जीवन में जितनी तीव्रता, व्यापकता और गहराई से परिव्याप्त है एवं प्रस्फुटित होता है उतने अन्य मनोभाव नहीं फिर जीवन के सभी राग प्रेम में समाहित भी हैं।[1]

आलोच्य उपन्यास भी प्रेम के इसी उदात्त और महान स्वरूप को लेकर सृजित हुआ है जहां प्रकृति मानव विराट मानव संसार के परिवार का आत्मीय सदस्य हो जो मानव के सुख– दुख, हर्ष –विषाद, आशा– निराशा, उत्साह –उदासी आदि पड़ावो को उसके साथ चल कर तय करती है एक सहभागी की तरह । उपन्यास का आरंभ ही जैसे प्रकृति का स्वागत है– "आज की सुबह थी। सूर्योदय पूर्व की दिशा में था। दिशा वहीं रही आई थी, बदली नहीं थी। ऐसा नहीं था कि सूर्य धोखे से निकला था, उसके निकलने पर सबको विश्वास था। किसी दिन सूर्य बादलों में छुपा हुआ निकला होता पर निकला हुआ जरूर होता था। उसका उदय और अस्त सत्य था। सूर्य के उदय होने के प्रमाण की तरह दिन था और सूर्यास्त के प्रमाण की तरह रात हो जाती थी। अभी रात काली थी। रात के काले में सब काला दिखता था। दिन ऐसा पारदर्शी गोरा था जिसमें जो रंग का था वह रंग साफ दिखता था।"[2]

सूर्य का पूर्व दिशा से निकलना, बादलों से आंख मिचौली का खेल –खेलना, उदय– अस्त होना, सुबह पर रोज नए रूप में आना , दिशाओं का अपने स्थान पर खड़े रहना, काली रात और गोरे दिल के रूप में प्रकृति हर जगह मानव के हमकदम हैं उसके साथ अपना प्रेम राग लुटा रही है । प्रकृति के अभिन्न अंग पेड़ –पौधे पक्षी भी मानव मन को अपने साथ बांध लेते हैं, आखिर मानव के बिना सृष्टि अधूरी जो है –"आज के दिन आज की चिड़ियों की चहचहाहट सुनाई दे रही थी खिड़की से जो पेड़ दिख रहे थी । खिड़की से जो पेड़ दिख रहे थे वे आज के पेड़ की तरह दिख रहे थे । आम के पेड़ थे। आम के पेड़ों के बीच वही पुराना नीम का पेड़ आज का पेड़ था। आम के पेड़ों की पत्तियां आज हरी थी। जैसे सब पेड़ों की थी। आम में बौर आ गई थी। पेड़ बौर से लदे थे। बौर के गंध में सांस खींचने से हम को चक्कर आ जाता था।[3]

नवविवाहित दंपत्ति रघुवर प्रसाद और सोनसी के घर की खिड़की के पास वह प्रकृति है जो उनके सुखमय जीवन का अभिन्न हिस्सा है । प्रकृति, पेड़– पौधे, घास,फल– फूल, हवा, झरना,जल, मिट्टी, धूप, सुगंध, पक्षी, चट्टान, नदी, तालाब जुगनू , सूर्य, चांद, सितारे, रंगोली आदि द्वारा एक ऐसे संसार की रचना करती है जो रघुवर प्रसाद और सोनसी के सपनों का संसार है जहां वे उल्लास से स्वच्छंदता पूर्ण विचरण कर आनंदित होते हैं इस रचना संसार को अतिसुंदर और पूर्ण बनाने वाली मानवीय संवेदना से आपूरित स्नेहित पवित्र आत्मा है वह है बूढ़ी अम्मा ।

रघुवर प्रसाद के घर की खिड़की के पार का संसार मानव प्रकृति की रागात्मक एकता का संसार है जिसका अनुभव दूसरों को भी होता है। रघुवर प्रसाद के महाविद्यालय के विभागाध्यक्ष के लिए भी यह अनोखा स्थान आकर्षण का केंद्र बिंदु है क्योंकि यहां आनंद की आत्मानुभूति होती है जो अनूठी है और मनोवांछित भी। रघुवर प्रसाद विभागाध्यक्ष को उस अनोखे स्थान पर ले जाते हैं और विभागाध्यक्ष प्रकृति के प्रत्येक अंग– प्रत्यंग को मुग्ध भाव से देखते हैं– "आइए सर" रघुवर प्रसाद दूसरी पगडंडी की तरफ बढ़ गए । यह पगडंडी भी गोबर से लिपी थी । पगडंडी में कहीं–कहीं गोबर की पपड़ी के नीचे से हरी दूब के गुच्छे निकल आए थे । ये दूब के गुच्छे पूरी पगडंडी पर पैर रखने के लिए हरे मखमल के टुकड़े की तरह लग रहे थे। इस तरफ हवा में गीलापन था। पगडंडी के बाई तरफ पगडंडी के साथ–साथ चट्टाने थी । इन्हीं चट्टानों के बीच से ऊपर से कहीं पानी फूट कर बह रहा था । इसकी तेज आवाज आ रही थी । आगे एक बरगद के पेड़ की छाया के नीचे चार बल्ली गाड कर बांस की छप्पर का बोरा डाल दिया था। बरगद मे छोटे छोटे लाल फल लगे थे। जमीन पर फल बिखरे पड़े थे। एक बड़ा काले मुंह का बंदर पेड़ पर बैठा हुआ चुन–चुन कर बरगद के फल खा रहा था। जब यह लोग चाय की दुकान पर पहुंचे तो कौन है में छुपा हुआ काले मुंह का एक बड़ा बंदर विभाग अध्यक्ष के पास अपनी लंबी पूछ उठाएं तेजी से निकला और भागता हुआ बरगद के पेड़ पर चढ़ गया। छोटी सी चाय की दुकान थी। चूल्हे पर चाय बनती थी। बूढ़ी अम्मा चावल पचोर रही थी। बूढ़ी अम्मा को दो चाय बना दो। सामने बड़े–बड़े पत्थर रखे थे उसी पत्थर पर दोनों बैठ गए बूढ़ी अम्मा ने चूल्हे में लकड़ी छेना डालकर आग को पर चाया और एक छोटी एल्युमीनियम की पतीली में जम्मू से पानी डालकर चूल्हे पर चढ़ाया। बूढ़ी अम्मा काले रंग की थी। पूरे सफेद बाल थे। चेहरा गहरी झुर्रियों से भरा था। झुर्रियां लकीरों जैसी थी। दो कप में अम्मा ने चाय दी।

एक कप की डंडी टूटी थी। इस टू टेक आपको रघुवर प्रसाद ने अपने लिए रखा । चाय में धुआंई–धुआंई गंध थी। पर चाय अच्छी थी। विभाग अध्यक्ष को चाय बहुत अच्छी लगी।

रघुवर प्रसाद की खिड़की के नीचे तीन पगडंडी आकर मिली थी। फिरकी से कमरे के अंदर पहले रघुवर प्रसाद घुसे इस के बाद विभागाध्यक्ष पलट कर खिड़की से सिर निकालकर गहरी सांस खींचें और कमरे के अंदर हो गए। बड़ी सुंदर जगह है रघुवर प्रसाद। यह जगह मुझे मालूम नहीं थी।[4]

प्रकृति की सहज सुंदरता जीवन तथा सूक्ष्म आत्मीयता रंगों से गुंजित परिवेश और मानवीय संबंधों की उर्वरता भौतिकता कृत्रिम था और आधुनिक विकास की किसी भी उपलब्धि को चुनौती दे सकता है।

उपन्यास में एक और दुनिया है जिसमें मन वृंदावन हो उठता है । इस दुनिया में रघुवर प्रसाद के कमरे की खिड़की से प्रवेश होता है इस खिड़की के नीचे तीन पगडडिया आकर मिलती है गोबर लिपि पगडंडीया । यहां खेत, चट्टाने, तालाब, नदी, बरगद, इमली, आम, फूलों के पेड़, महुआ और आम की बोरों की सुगंध, बगुले, गिलहरी, कोयल की कूक चिड़ियों की चहचहाहट है। नदी का पानी एकदम छिछला, स्वच्छ और ठंडा इतना साफ कि पानी के नीचे छोटे–छोटे पानी के तराशे हुए तरह–तरह के गोल पत्थर देखते हैं । उपन्यास में प्रकृति के रूप के भव्य दर्शन होते हैं।5
प्रकृति की इस भव्यता और मानव लोक के प्रति उसकी उदारता साथ ही साथ उसके सच्चे साहचर्य का अनुभव भी सहृदय व्यक्ति ही कर सकता है जिसका मन प्रेम से आपूरित हो।

शोभा और सौंदर्य की भावना के साथ साथ जिसमें मनुष्य जाति के उस समय के पुराने शहरों की वंश परंपरा स्मृति वास के रूप में बनी हुई है वह प्रकृति के खुले क्षेत्र में विद्यमान थी वहीं पूरे सहृदय कहे जा सकते हैं । पहले कह आए हैं कि वन्य व ग्रामीण दोनों प्रकार के जीवन प्राचीन है दोनों पेड़–पौधे पशु–पक्षी या नदी नालों और पर्वत मैदानों के बीच व्यतीत होते हैं अतः प्रकृति के अधिक रूपों के साथ संबंध रखते हैं । हम पेड़ पौधों पशु पक्षियों से संबंध तोड़कर नगरों में आ बसे पर उनके बिना रहा नहीं जाता । हम उन्हें हर वक्त पास ना रख कर एक घेरे में बंद करते हैं और कभी–कभी मन बहलाने को उसके पास चले जाते हैं।[6]

रघुवर प्रसाद प्रकृति के उसी सौंदर्य को अपनी पत्नी की अनुपस्थिति में सच्चे अर्थों में अनुभूति नहीं कर पाते। विभागाध्यक्ष के यह कहने पर की खिड़की के पीछे का स्थान उन्हें मालूम नहीं था वह जवाब में कहते हैं "जी सर मैं भी नहीं जानता था शादी के बाद यहां आया तब थोड़ा मालूम हुआ। सोनसी के आने के बाद ठीक से मालूम हुआ"।[7]

कुछ दिनों के लिए सोनसी भी गांव चली गई। रघुवर प्रसाद का खिड़की से कूदकर जाने का मन नहीं होता। रघुवर प्रसाद अकेले कुछ नहीं । सोनसी अकेली कुछ नहीं।[8]

रघुवर प्रसाद और शशि को जब भी अवकाश मिलता और जब भी उनकी इच्छा होती वह खिड़की से कूद कर पीछे चले जाते हैं और वहां जैसे प्रकृति उनके स्वागत में खड़ी मिलती। श्यह सारी जगह रघुवर प्रसाद के मन की जगह थी। गोबर से लिपी पगडंडी मन की पगडंडी थी। साफ सुथरा आकाश उड़ने के लिए मन का आकाश था।[9]

पति पत्नी के कीड़ालाप में समस्त प्रकृति भी सहयोग करती सी लगती है। रघुवर प्रसाद जैसे जैसे पत्नी के पास बढ़ते जाते थे चिड़ियों का कलरव बढ़ता जाता था बंदरों का कहीं दूर हुप हुप सुनाई दे रहा था कहीं बिल्कुल पास हाथी चलने की आवाज सुनाई देती थी। रघुवर प्रसाद के पैर के हल के धक्के से कपड़े से भरी बाल्टी लुढ़क गई। और साबुन की नई बट्टी पानी के तालाब के अंदर चली गई। रघुवर प्रसाद को लगा कि उन्होंने साबुन की बट्टी को पानी के अंदर जाते देखा है। पर वे भूल गए। पत्नी को पकड़े हुए एक ऊंची सूखी जगह पर वे आ गए। एक चारपाई जितनी जगह गोबर से लिपी थी। सफेद छूही मिट्टी की धूल से इधर–उधर रंगोली डाली गई थी। जहां पत्नी का सर था वहां स्वास्तिक था। जहां दोनों हाथ से वहां चक्र था। जहां पैर थे वहां शंख बना था। कमल के फूल का अल्पना पत्नी के लेटने से छुप गया था। थोड़ी दूर पर एक मछली बनी थी सन्नाटा था । शकर खोर चिड़िया रघुवर प्रसाद की पीठ पर ऊपर से नीचे फड़फड़ाते बैठ रही थी। पत्नी की दृष्टि के सामने सुबह के सूर्य पर से फिसल गई तब भी उसकी आंख में आंसू आ गए। जब शाम हो गई थी फिर रात हो गई। वे उठे तो ऐसे उठे जैसे दूसरे दिन की सुबह थी। शकरखोर चिड़िया उड़ गई।[10]

रघुवर प्रसाद के माता पिता की प्रकृति के इस आनंददाई क्रोड़ मैं जाकर अपने में जीवनी शक्ति के संचार का अनुभव कर रहे थे।–

यहां जीवन इतना अच्छा लग रहा है कि लगता है बहुत जी गए और मृत्यु यहां से समीप हो पिता ने कहा ।

इतना अच्छा की बहुत जीने के बाद भी बचा हुआ है मृत्यु यहां से पास हो परंतु वहां तक पहुंचने में बहुत देर लगेगी ।

ठीक कहती हो देर का जीवन बचा है । क्या हम यहां से मृत्यु को देख सकते हैं।

बचे हुए जीवन को देख लेने के बाद फुरसत मिलेगी तब। जीवित आंखों से मृत्यु नहीं जीवन दिखता है।

'हां' उनकी आवाज सुनकर बुढ़िया अम्मा बहार आ गई थी । हवन के धुए की गंध आ रही थी । बूढ़ी अम्मा ने दोनों को देखते ही "जीते रहो" कहा।[11]

जीवनदाई परिवेश और जीवन की कामना करने वाली बूढ़ी अम्मा जैसे घर के बाहर भी घर का अनुभव करा देती है।

इस मनुष्य दुनिया का घेरे प्रकृति की रमणीय सुखद लेकिन जीवंत पृष्ठभूमि है असल में पृष्ठभूमि कहना गलत होगा। प्रकृति का यह संसार चैतन्य में और अपनी ही मस्ती में दंग है जिसका मनुष्य के साथ संवाद संबंध है। असल में यह कहना अधिक युक्ति युक्त होगा कि यहां प्रकृति और मनुष्य एक रूप हैं नदियां हैं पेड़ हैं पेड़ों पर बंदर है तोते कौवे उल्लू बगुले कोयल चिड़िया है। चंद्रप्रकाश से अनेक रूप धारण करने वाले जल संचय हैं सूर्य उदय से सूर्यास्त तक और सूर्यास्त से सूर्योदय तक अपनी अपनी विविध क्रियाओं से मनुष्य को सुख देने वाले पवन है धूप और छाया धूप और वर्षा की सनक भरी क्रीडा हैं। लगता है इस समूची चराचर सृष्टि में एक विराट संवाद पूर्ण भाव मानव रघुवर सोनसी नवविवाहित दंपत्ति को अतयुत्कट सुख संतुष्टि सार्थकता के चार दिन व्यतीत करने के लिए सद्भावना से सक्रिय हैं और अपना दूसरा पहलू जिसमें विद्रूप है भयावहता है गंदगी है पूर्णता इनसे अलग रखकर इस ओपनन्यासीक जगत में प्रविष्ट है।[12]

दीवार की खिड़की वस्तुतः घर की खिड़की है जिससे स्वच्छ शुद्ध वायु का आगमन होता है और जिस के बाहर एक विस्तृत सुंदर प्राकृतिक दुनिया मनुष्य का स्वागत चिर परिचित सहकारी बंक उसके अभिन्न अंग के रूप में स्वागत करती है यह खिड़की मानव मन की भी है। जिसे हम खुला रखकर ही विस्तृत जगत से संपर्क और संबंध बना सकते हैं और अपने व्यक्तित्व का विकास भी कर सकते हैं। खिड़की विहीन घर मन अस्वच्छ कर परिवेश का पोषण करता है। इस मानव मन की खिड़की से जीवन के कटु यथार्थ की कड़वाहट उदासी खिन्नता निराशा से ऊपर उठ अपने स्वनिर्मित दुनिया में जी सकता है अथवा अपने जीवन के कुछ क्षणों को समेटकर आनंदमय दुनिया का निर्माण कर सकता है और स्वच्छंद पूर्वक उसमें विचरण करने का सुख प्राप्त कर सकता है तथा वहीं से ढेर सारी प्राणवायु और ऊर्जा लेकर पुनः अपने यथार्थ जगत के कार्यों को सुंदरतम ढंग से संपादित कर सकता है। मानव एक सामाजिक प्राणी है। घर परिवार और प्रकृति उसके जीवन की अनिवार्य जरूरत है जिससे कटकर वह पूर्ण और सार्थक नहीं बन सकता।

विनोद कुमार शुक्ल ने अपने उपन्यास दीवार में एक खिड़की रहती थी कि माध्यम से घर समाज और प्रकृति से मानव के अपूर्व आत्मीय संबंध को बड़ी सहजता और संजीदगी से दर्शाया है जहां बनावटीपन नहीं ।

संदर्भ सूची

1. विनोद कुमार शुक्ल श्दीवार में खिड़की रहती थीश वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ–11
2. वही, पृष्ठ–11
3. वही, पृष्ठ– 45–46
4. कश्मीर उप्पल, दीवार की वह खिड़कीश सं गिरधारी राठी 1968 समकालीन भारतीय साहित्य, द्विभाषी पत्रिका, 16 वर्ष, अंक 80, नवंबर–दिसंबर 1998, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, पृष्ठ–138
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, काव्य में प्राकृतिक दृश्य, सं विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, चिंतामणि भाग 2, तृतीय सभा संस्करण, संवत 2041, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी पृष्ठ– 8
6. विनोद कुमार शुक्ल, श्दीवार में एक खिड़की रहती थीश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, प्रश्न–34
7. कश्मीर उप्पल, 'दीवार की वह खिड़की' गिरधर राठी, 1998, समकालीन भारतीय साहित्य, द्विभाषिक पत्रिका, 16 वर्ष, अंक 80, नवंबर दिसंबर 1968, साहित्य अकादमी नई दिल्ली पृष्ठ–139
8. विनोद कुमार शुक्ल, ''दीवार में एक खिड़की रहती थी वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000 पृष्ठ–46
9. वही, पृष्ठ –50
10. वही, पृष्ठ–75
11. चंद्रकांत बंदिवाडेकर, ''दीवार में एक खिड़की रहती थी, गोपाल राय हरदयाल, समीक्षा, अक्टूबर– दिसंबर 2001, प्रश्न–8
12. विनोद कुमार शुक्ल, दीवार में एक खिड़की रहती थी, 2000 वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ– 158–159

डॉ0 राज नारायण शुक्ल
डॉ0 बीना पांडे
5H, A5 कवि नगर
गाजियाबाद– 201001
उत्तर प्रदेश
मो. 09910777666

27

मधु कॉकरिया के उपन्यास 'सलाम आखिरी'में वेश्या त्रासदी

डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा

सारांश

भारतीय धार्मिक परम्पराओं ने देह दर्शन की और अलौकिक तरीके से शुरुआत की है तथा नारी उत्पीड़न की नई परम्परा को विकसित किया है। धरती पर यौन मंडल के चांद–सितारे कौने–कौने में बिखरे हुए है जो मादा देह को ही अपना सब कुछ समझकर तीनों लोकों में खोजते फिरते है। विकलांग सभ्यता और संस्कृति का नगाड़ा बजाने वाले इस देश में बहू–बेटी तथा बहिन जैसे रिश्ते को शूली पर चढ़ाकर वेश्यावृत्ति के दल–दल में धसी वेश्याओं के उस धधकते यथार्थ का चित्रण मधु कॉकरिया जी ने किया है जो मानव की रीड़ तक को झिझोडकर रख देता है।

वेश्यावृत्ति की इस महान परम्परा के जीवाणु प्रत्येक युग में पनपते रहे है इन जीवाणुओं को देवदासी से लेकर सर्वभोग्या, रुपजीवा, नृत्यांगना, गणिका, नगरवधू, तवायफ, वारांगना , कसबिन, पतुरिया, वेश्या तथा वर्तमान में कालगर्ल के नाम से जाना जाता है। वर्तमान तथा देवदासी के समय में बस इतना अन्तर है कि देवदासी काम के साथ–साथ कला का भी बाजार लगाती थी परन्तु आज वेश्या केवल काम का ही बाजार सजाती है। लेकिन शरीर दोनों अवस्थाओं में ही नोचा जाता है। प्रत्येक युग में इन आत्माओं को बलात्कार होता रहा है।

समाज ने प्रारम्भ से ही अपनी वासना पूर्ति हेतु वेश्यावृत्ति को पनाह दी है। कामवासना के पुजारी जो अपनी इच्छा से इनके तलवे चाटते है वह तो समाज में इज्जत पाते है परन्तु अपना पेट भरने के लिए अनेक यातनाएँ सहन करके शरी को बेचने वाली या काम के दलालों द्वारा बेची गई, ये ईश्वर की लावरिस संतान की तरह जीवन यापन करने के लिए विवश है। इन्हें केवल घृणा की दृश्टि से देखा जाता है। अपनी देह बेचने वाली ये रुप जीवा अपने इच्छा से इस व्यापार में शामिल नहीं होती। अपने परिवार से अलग, बदनाम गलियों में जीवन व्यतीत करने वाली समाज द्वारा दबी–कुचली तथा हाशिये पर रख दी गई जिन्हे देखकर लोगों की दुर्गन्ध से नाक फटने लगती है।

सदियों से यौन की गुलामी का बोझ ढोने वाली, चकलाघरों में कीड़े मकोड़ों की तरह जीवन जीने वाली, अपनी अस्मिता को छोड़ स्त्री–पुरुष सम्बन्धों की शूली पर लटकने वाली तथा जिनके शरीर के साथ–साथ आत्माओं का भी चीर–हरण होता है। देश की ऐसी बेटी समाज के सामने अपनी मुक्ति का प्रश्न रखती है। प्रस्तुत उपन्यास में कॉकरिया जी ने यौन व्यापार के लिए कलकत्ता के सबके बदनाम शहर सोनागाछी, बहुबाजार, कालीघाट, बैरकपुर खिदिरपुर आदि में स्त्री के शारीरिक बलात्कार के साथ उनकी आत्माओं के भी होते बलात्कार का यथार्थ चित्रण किया है। सोनागाछी की अँधेरी, सीलन भरी बदनाम गलियों में अपने स्वाभिमान के विरुद्व उबकाई और उदास मन के साथ, चेहरे पर बनावटी और मादक हॅसी, भड़कीला मैकअप और रंगे लाल होठ, मादक भाव भंगीमाओं के साथ, बंगाली, नेपाली आगरा वाली, मुसलमानी,लगभग सभी अपने मरे हुए स्वाभिमान के साथ जिन्दा लाश की तरह किसी नर देह की प्रतीक्षा कर रही हैं क्योंकि उनकी सभी उम्मीदें यौन के उन पुजारियों से जुड़ी हैं। सोनागाछी की इन बदनाम गलियों में यौन दासियों की वेराइटी तथा विशेषता बताने के लिए ''धरती के शेषनाग'' यहॉ आने वाले सैक्स के खरीददारों का बड़े ही ईमानदारी के साथ मार्ग दर्शन करते हैं। यहॉ आने वाले काम के पुजारियों के साथ ये बड़ी इज्जत से पेश आते हैं। ''सर सुनिए तो अबकी–बहुत बेराइटी है। आगरावाली, नेपाली, बंगाली, सर मौहम्डन भी हैं खालिस मुसल्ली..... कसम से सर अरे झूठ क्यू बोलूगा सर और झूठ बोल भी दू तो क्या सोलह साल की कुड़ी तो जवान होनी ही है'' काम के इस मन्दिर में कोकशास्त्र के नियमों में पारंगत यौन के पुजारियों को प्रत्येक किस्म की मादा देह मिल जाती है '' कोई थुलथुल कोई कडियल, कोई श्याम, कोई गौर वर्ण कोई कम उम्र, तो कोई अधेड़'' यहॉ पर आने वाले देह के खरीददारों को उनकी भावनाओं शालीनता मर्यादाओं से कोई सरोकार नहीं है उन्हें तो बस मांस को नोचना खशोटना है।

सलाम आखिरी में मधु कॉकरिया जी ने वेश्याओं की उस विवशता को समाज के सामने रखा है जिसके कारण वे वेश्यावृत्ति के दल दल में धॅसती चली गई तथा मरी हुई मछली की तरह जिसके सपने भी पानी में डूब कर रह गये। पत्रकार सुकीर्ति इन काल कोठरी नुमा चकलाघरों में वेश्याओं के दहकते यथार्थ को सामने लाना चाहती है, उनकी पीड़ा, बेबसी , तथा कीड़े मकोड़ों की जिन्दगी से रुबरु होना चाहती है। वह अपनी गुम हुई सहेली तथा बाई की बेटी को खोजते हुए इन बदनाम गलियों में जाती है। वहॉ वह एक बाद एक लाइन वालियों से रुबरु होते–होते हुए आगे निकलती जाती है।

यहॉ जब वह एक यौन कर्मी से पूछती है कि तुम्हें इस तरह पराए मर्द को अपनी देह सौंपते डर नहीं लगता– तब उस यौन कर्मी का ब्यान सॉस को रोक देने वाला था। 'क्यों नही लगता है, बहुत लगता है एकदम शुरु–शुरु में तो बोटी–बोटी अकड़ गयी थी'' तो फिर क्यों करते हो?क्योंकि इससे भी ज्यादा डर एक और चीज है उससे लगता है। क्या है वह? भूख'' सोनागाछी का यह बाजार रुप के साथ–साथ कला के लिए भी विख्यात था, परन्तु कला का वह बाजार आदिकाल से ही डायनासोर की भॉति धीरे–धीरे विलुप्त हो गया, और रह गया सिर्फ गोरी चमड़ी का बाजार जहॉ केवल देह बेची और खरीदी जाती हैं। रुप के इस बाजार में एक चकला मैडम मीना का भी चलता है, जो वेश्यावृत्ति के इस बाजार की आका बन चुकी है। उसके यहॉ छः मादा देह पैसे कमाने की मशीन की तरह कार्य कर रही हैं। उसने उनके गुर तथा खासियत के अनुसार नाम भी रखे हैं। काम की सभी कलाओं में माहिर मीना उन्हें भी काम के सभी गुर सिखा रही है। इन सब की देह पर बस उसी का राज चलता है। '' हमारी मालकिन हमारी मालकिन पूरी तरह आत्मविहीन जिस किसी के साथ भी भेज दें, मालकिन, रोगी, भोगी, कुरुप, अस्वाभाविक विशय भोग चाहने वाला उसी के साथ तैयार, जे विधि राखी राम से विधि रहियें।'' धरती की सबसे बुरी औरत समझी जाने वाली सीमित शब्दों में ही जिनकी बात सिमट कर रही जाती है अंगिया, खटिया, ग्राहक,पैसे, कंडोम आदि। यौन के पुजारियों के लिंग ''यूज एंड थ्रो' का काम करने वाली इर वैश्याओं की प्रत्येक दशा का वर्णन कॉकरिया जी ने किया है। सुकीर्ति के भीतर के कॉलम्बस ने सोनागाछी बहुबाजार और कालीघाट आदि इलाकों का नरक,टके सेर बिकती औरत की अस्मिता, और निर्लज्जतापूर्वक अंग–अंग के सौदे की घटनाआं को अपनी ऑखों से देखा है। मधु कॉकरिया जी ने यौन दासियों की मनोदशा भी कुछ इस प्रकार व्यक्त की ''साली भांगियों से भी बदतर जिन्दगी हम रंडियों की। ठिकाने–ठिकाने का नरक धोकर भी उन्हें हमारी तरह पुलिस तो नहीं हडकाती, बीमारी तो नहीं दबोचती! वहॉ मैले की दुर्गन्ध यहॉ चाम की दुर्गन्ध'' सुकीर्ति की जिज्ञासाओं का पंछी अभी भी शान्त नहीं बैठता वह इस यौन दासियों से रुबरु होकर इनके त्रासदी भरे जीवन का अवलोकन करती है तथा उनकी प्रत्येक समस्या का पोस्टमार्टम करती नजर आती है। इंसानियत तथा मानवीय सम्बन्धों की बचीकुची मौत तब हो जाती है जब पति स्वयं दलाल बनकर अपनी घरवाली को सैक्स के इस शेयर बाजार में सड़ने के लिए धकेल देता है। जिसका पता सुकीर्ति की मनोदशा से चलता है। ''गायत्री के बारे में इधर–उधर से पूछताद कर सुकीर्ति इतना जान गई थी की तीस वशीया गायत्री दो बच्चों की मॉ है और पति द्वारा उकसाने पर ही वह पॉच वर्श पूर्व इस पेशे में उतरी थी।'' वासना की शिकार हवसी दरिन्दों की दशा का वर्णन भी इस प्रकार किया है ''ऐसे मरे आते हैं कि दो पैसे देकर सोचते हैं कि औरत नहीं हुई कोई खुदाई हो गई बस खोदते जाओ सब कुछ मिल जाएगा प्रेम शरीर यारबाशा बोलते–बोलते एक दीर्घ निःश्वास सी छोड़ी उसने''?

आधुनिक युग की चकाचौंध में आज कलकत्ता दो विरोधी गलियों में बॅट गया है। एक तरफ विक्टोरिया मेमोरियल विशाल राजभवन, नेशनल लाईब्रेरी, बडे–बड़े चर्च, होटल बंगला ताज, होटल ग्रांड, बिड़ला मंदिर, फोर्ट विलियम, लाला बाजार, कलकत्ता म्यजियम, मेटो रेल और गगन चुम्बी अटटालिकाऍ हैं। दूसरी तरफ दुनिया का सबसे भयानक दृश्य सोनागाछी में बजबताती गन्दगी और सडान्ध के बीच हजारों झुग्गी–झोपड़ियों, कीड़े मकोड़ों की तरह बिलबिलाती जिन्दगी। सड़क पर ही मुॅह छुपाकर अॅधेरे में नित्य कर्म से निवृत्त होते लोग। एक तरफ अंग्रेजी स्कूल में पढ़ते बच्चे तो दूसरी तरफ धरती के इन अपराजेय शैतानों के कारण दुनियॉ की सबसे खौफनाक जिन्दगी काटती बच्चियॉ। मधु कॉकरिया जी ने अपने इस उपन्यास में वेश्याओं के उस खौफनाक यथार्थ का चित्रण किया है जिसे देखकर मुर्दो की रुह भी कांप उठेगी। धरती के ये शेशनाग कम उम्र वाली देह को ज्यादा इस दल–दल में धकेलते हैं। क्योंकि यौन के इस बाजार में कम उम्र वाली लड़की की मांग ज्यादा रहती है। इन कम उम्र की बच्चियों को अप्राकृतिक रुप से औरत बनाया जाता है तथा काम के पुजारियों के सामने परोसा जाता है। जैसा की गायत्री कहती है ''किसी भी छुकरी के उस अंग में ऑख से इशारा कर समझा देती है वह कौन सा अंग है शोला घुसा दिया जाता है। फिर उन्हें पानी के टब में बैठा दिया जाता है जैसे–जैसे पानी में शोला फूलता है वैसे–वैसे गुप्तांगों में भी फैलाव आता जाता है।'' सुकीर्ति के भीतर का जिज्ञासु– मन देखता है कि सोनागाछी में वेश्याओं के धधकते यथार्थ को समाज के अन्तिम पायदान पर भी स्थान न पा सकने वाली इन बेवश नारी देह को, इनकी प्राण विवशता को, सोनागाछी,बहुबाजार और कालीघाट आदि इलाकों में टके सेर बिकती औरत की अस्मिता को–आत्माओं का होता चीर–हरण, टुकड़ों–टुकड़ों में बिकता शरीर, चौबीसों घण्टे होता बेशर्मी का नंगा नाच, सड़ान्ध भरी झुग्गी झोपड़ियों में कीड़ें की तरह बिलबिलाती जिन्दगियॉ, जिनके लिए खाकी, खादी और समाज के ठेकेदार सभी यौन के पुजारी हैं। इन्द्राणी पुलिस की मिली भगत को कुछ इस प्रकार बताती है ''पर भगवान बचाए उन हालातों से जब वेश्या और पुलिस आई.जी. और बाई जी दोनों मर्द घरवाली की तरह मिले जुले रहते है'' मात्र काम की वस्तु समझी जाने वाली इन देवदासियों ने भारतीय न्याय व्यवस्था पर भी इस प्रकार व्यंग किया

है। ''इस देश में न्याय ब्रह्म को पाने से भी ज्यादा मुश्किल है पुलिस थाना, साले सब के सब बड़े–बड़े मार्केट कॉम्पलेक्स है'' परिस्थितियों ने कोड़े मार–मार इनकी शर्म, इनका स्व और इनकी अन्तर्निहित गरिमा सब कुछ छीन लिया, दरिद्रता की कोख से उपतजी पनपती और फलती–फूलती इन बेबस देह के लिए खाकी भी किसी शैतान से कम नहीं है।

प्रस्तुत उपन्यास में समाज की रखवाली करने वाली खाकी धारियों के उस रुप को दिखाया है जिसे झुठलाया नहीं जा सकता, पुलिस थाने तथा चकला घरों में इनके लिए ज्यादा अन्तर नहीं है, चकलाघर में इनके शरीर को नोंचने के पैसे मिलते हैं, परन्तु थाने में मुफत में नौंचा जाता है। मधु कॉकरिया जी ने दिखाया भी है '' उसने आनाकानी की विरोध जताया तो उसे घसीटा और फिर थाने में उसके साथ सामूहिक रुप से बलात्कार किया फ्री फंड में मिले आनन्द को जो छोड़ दे वह भारतीय पुलिस ही क्या'' इस दल–दल में कदम रखते ही अपनी मौत की ओर बढ़ती जाती हैं तथा जल्द ही अपनी जिंदगी से विदा हो जाती हैं। जिस रोग का नाम सुनकर ही हम कांप जाते हैं उन यौन रोगों से सड़ते गलते भयानक शरीर का यथार्थ वर्णन किया है कॉकरिया जी ने । इन बेबस वेश्याओं के बीच पिंकी से बात होने पर एक और खौफनाक यथार्थ सुकीर्ति के सामने आता है जब एक यौन कर्मी ने अपना दर्द बताया '' कभी सड़ा हुआ केला देखा है आप ने ठीक वैसे ही है हम लोगों का शरीर, बस सड़ान्ध अभी एक दम उपर तक नहीं आई है'' धरती पर रेंगती इन वेश्याओं की जिन्दगी का एक–एक क्षण दुख के कोढ़ से भरा पड़ा है। समाज, धर्म, कानून,मठाधीश, नेता, राजा और खाकी के साथ–साथ ईश्वर भी जिनके लिए मर चुका है। काम के पुजारी ऑधी की तरह आते हैं और इनकी आत्माओं का चीर हरण करके तूफान की तरह निकल जाते हैं। उनके बीच बनते बिगड़ते जिस्मानी रिश्ते चंद लम्हों के होते हैं। ग्राहकों के जाने के बाद चंद रुपये मुठी में दबाए फिर से वे अपनी खाल नुचवाने को तैयार हो जाती हैं। अंगिया का हुक टूट जाता है कोई परवाह नहीं, चोली कहीं फट जाती है वह वैसी ही रह जाती है,पेटीकोट फट जाता है तो सिलवाने को समय नहीं। पसलियों में दर्द हो या पेट में ऐठन भले ही होठों का स्वाद कसेल हो जाए, इनका तो बस एक ही धर्म है देह धर्म। इनका किसी से कोई रिश्ता नहीं है। इन्हें तो प्रत्येक नर देह के सामने बिछना ही पड़ता है। जैसा की एक यौन कर्मी ने कहा भी है '' जो भी डाल दे, दो पैसे बस उसी के आगे बिछ जाना पड़ता है। क्योंकि हम किसी की भी नहीं हैं। न मॉ की न बाप की न हिन्द की और न ही हिन्दुस्तान की। किसी की भी नहीं''।

इन यौनदासियों की एक रहस्यमय दुनिया है। यहॉ जिन्दगी काएक अलग ही तरह का शोर शराबा है, हर कमरे का, गली का, हर चकले का एक अलग ही इतिहास है। जहॉ जीवन के कुरुप से कुरुप एवं भयंकर से भयंकर नग्न रुप देखने को मिल जाएँगे, क्योकि यहॉ संस्कृति, मर्यादा एवं परम्पराओं का कोई डर नहीं है। बन्धन नहीं है। इस रुप के बाजार का रुप विहीन जीवन अपने चरम रुप में समाज के समक्ष खुले हुए थान की तरह बेशर्मी से सजा हुआ है।

सभ्यता के अनुशासन से परे, इस दुनिया के विधान दूसरे हैं, जीने की शर्ते अलग हैं,अपनी मर्जी से इस रहस्यमय दुनियॉ में आ तो कोई भी सकती है मगर बाहर वह यमराज के साथ ही जाती है, इन यौन दासियों के लिये तो कानून भी दोगली नीति अपना रहा है। कानून एक तरफ तो अकेली औरत को अपने भरण–पोषण के लिए वेश्यावृति करने की छूट दे रहा है वही तो दूसरी तरफ यदि वेश्या संगठित होकर देह व्यापार करती हैं तो वह अपराध हैं। कानून के ठेकेदारों ने सभी नियम अपनी कामवासना को ध्यान में रखकर तय किये हैं। जैसा की अरविंद जैन ने अपनी पुस्तक '' औरत होने की सजा'' में दिया है ''अकेली औरत को रोजी रोटी भरण पोषण के लिए वेश्यावृति करने की खुली छूट लेकिन दो या दो से अधिक वेश्याओं द्वारा संगठित होकर देह व्यापार करना अपराध''रुप के इस बाजार का विस्तार बड़े–बड़े शहरों में ही नहीं बल्कि आधुनिक युग की चकाचौंध, भूमण्डलीकरण तथा ज्यादा धन कमाने की लालसा ने छोटे–छोटे कस्बों तथा गावों में भी कर दिया है। जैसा कि मोहनदास नैमिशराय ने अपने उपन्यास 'आज बाजाद बन्द है' में कहा है ''मैं सब समझता हूँ तुम्हारे अपनी जड़ों से विस्थापन होने की परिस्थितियॉ और तुम्हारी पीड़ा भी । अकेले इस शहर में ही तो कोठे नहीं हैं। सभी शहरों में वेश्याओं के बाजार हैं। शहर ही क्यों अब तो गॉव और कस्बों में भी वे सब हैं'' वेश्याओं के विशय में जानकारी देने के लिए चलते फिरते पूछताछ केन्द्र बने, लगुवे–भड़वे दलाल शाम होते ही होटलों , सिनेमाघरों , थिएटरों, नृत्य–गृहों, स्टेशनो, मेलों, केश विन्यास गृहों आदि के आस–पास मडराने लगते हैं जैसा कि कॉकरिया जी ने दिखाया भी है– ''राहगीर को अनुकूल पाते ही लग जाते हैं घेरने साहब कुछ तफरीह करेंगे?दिखाउ कुछ बढ़ियॉ माल?चलेंगे कही मन बहलाव को''।

मधु कॉकरिया जी ने देवदासी प्रथा का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है। किसी लड़की को देवदासी बनाने के लिए उसे पहले धूमधाम से मन्दिर में ले जाया जाता है, उसके बाद देवमूर्ति के साथ उसका विवाह सम्पन्न होता है। फिर मन्दिर में बैठे मानव रुपी दानवों द्वारा प्रारम्भ होता है उनका शारीरिक शोषण। यह बड़े ही दुख का विषय है कि भारतीय समाज में सैद्वान्तिक रुप से तो नारी की पूजा

की जाती है परन्तु व्यवहार में वह केवल काम की ही वस्तु रही है। इन बेबस देवदासियों की रक्षा तो मन्दिर में भगवान भी नहीं कर सका। मन्दिरों में भी इनकी भावनाओं के साथ खेला जाता था। मन्दिरों में व्याप्त कर्म कांडीय आयोजनों का खुलासा करते हुए डयूबोईस ने सीधे हिन्दू धर्म पर इस प्रकार प्रहार किया है। ''प्रायः देखा जाता है कि ये पवित्र पूत कहलाने वाले देवस्थल ही भ्रष्टाचार के अडडे होते हैं और इन मन्दिरों के पुजारी व्याभिचारियों के सिरताज। बात भी सत्य है। मनुष्य को लोक लज्जा और भय की आशंका नहीं रहती,तभी वह निशंक होकर मनमाना आचरण कर सकता है। फिर इन पाखंडियों के सिर पर रहने वाली धर्म छाया उन्हें मनमाने आचरण करने में सहायक होती है।

इस प्रकार वेश्यावृति के इतिहास पर सूक्ष्म सा प्रकाश डालते हुए कॉकरिया जी बताती हैं कि युग चाहे कोई भी हो देवताओं की झॉकी के रथ की भॉति उसे खींचने वाल महान् पुरुष युग में अवतार लेते रहे हैं। जिस कारण देह का यह व्यापार काफी फल फूल रहा है। इसके साथ ही कॉकरिया जी ने बेड़िया, नट तथा सांसी जनजातियों की बेबस जिन्दगी का भी वर्णन किया है। जो सदियों से यौन की गुलाम तथा परम्परागत रुप से देह धर्म निभा रही हैं। इनकी बेबसी भी आज तक किसी को नजर नहीं आई, न समाज सेवी संस्थाओं को, न महिला संगठनों को, न खादी और न खाकी किसी को भी नहीं। ये भी बस अपनी देह यौन के पुजारियों के सामने परोसती आ रही है।

देह के इस बाजार में फलाईग वेश्याऍ ज्यादा बढ़ रही हैं, आज स्थिति यह है कि सोनागाछी जैसे शहर में ग्राहक कम और वेश्याऍ ज्यादा हैं। इस कारण वेश्याऍ स्वयं को 20–20 रुपयों में मिनटों के हिसाब से नीलाम कर रही हैं। क्या कहा जाए इसे? सभ्यता का अन्त या मनुष्यता का चरम पतन, की आज देह की सजी दुकान एक डिपार्टमेटल स्टोर बन गई हैं। जहॉ नारी अपने अलग–अलग अंगों को घंटों और मिनटों के हिसाब से नीलाम कर रही है।

देह व्यापार का इतना यंत्रीकरण हो चुका है कि सभी मानवीय अनुभूतियॉ और मर्यादाऍ स्वाहा हो चुकी हैं। यौन कर्मी देह की इन बढ़ती दुकानों को इस प्रकार व्यक्त करती है– '' कि करोबे क्या करॅु ज्यौ–ज्यौ मॅहगाई बढ़ती जा रही है, लाइन वालियॉ भी बढती जा रही हैं। ग्राहक भी अब उतने नहीं मिलते आमदनी भी अब वैसी नहीं रही''

मानव मुक्ति का गीत गाने वाले तथा समाज के ठेकेदारों को इनका बस एक ही रुप दिखाई देता है, गौरी चमड़ी वाली वेश्या का। उन्हें दिखाई नहीं देती इनकी बेबसी, गाय, भैंस की तरह बिकने वाली इनकी देह, चकला घरों में बिलबिलाती जिन्दगी, जीवन के सभी सुख सुविधाओं से नाता तोड़ कर रेंगती इनकी जिन्दगी,पेट की आग बुझाने के लिए भटिटयों की तरह दहकता इनका शरीर। वेश्याओं के इस नरक को मोहनदास नेमिशराय के उपन्यास ''आज बाजार बन्द है में एक यौन कर्मी इस प्रकार व्यक्त करती है '' इन मर्दो ने हमारे जिस्मों को भटटी बना दिया है हम भीतर बाहर से खूब जलती हैं।

मधु कॉकरिया जी ने अपने उपन्यास के माध्यम से वेश्या जीवन की एक के बाद एक त्रासदी को समाज के सामने इस प्रकार रखा है जो देश के साथ–साथ पूरी दुनिया को झकझोर देती है। छोटी–छोटी बच्चियों की आत्माओं से खेलते यौन के दरिन्दे किस प्रकार धरती के ये अपराजय शैतान नारी को छल–बल से वेश्यावृति के दल–दल में धकेल रहे हैं। कॉकरिया जी ने देखा है वेश्यावृत्के इस नारकीय दल–दल में दस–दस साल की बच्चियों को थर–थर कांपते, शरीर को नौचते यौन के पुजारियों को, आत्माओं का चीर हरण करते इन दरिन्दों को, देश की इन बेटियों के लिए इन्सान तो क्या भगवान भी मर चुका है। आखिर कहॉ गये वह लोग जो अपने आप को हिन्दुस्तानी कहते हुए गर्व करते हैं। क्या खाकी और खादी को नजर नहीं आती ये लाइनवालियॉ?क्या अन्धे हो गये धर्म के ठेकेदार? कहॉ गये भारत की विकलांग सभ्यता और संस्कृति का नगाड़ा बजाने वाले?क्या इन्हें नहीं दिखती टके शेर बिकती नारी देह?क्या समाज को नजर नहीं आता वासना का यह नंगा नाच?आखिर कौन दंड देगा इन धरती के अपराजय शैतानों को, इन शेशनागों को, यौन मंडल के चॉद सितारों को। आखिर कौन तोड़ेगा समाज की नपुंसकता के इस धनुष को?

संदर्भ

1. मधु कॉकरिया सलाम आखिरी– राजकमल प्रकाशन–पृष्ठ–14
2. वही पृ0 15
3. वही पृ0 19
4. वही पृ0 30
5. वही पृ0 80
6. वही पृ0 68
7. वही पृ0 71
8. वही पृ0 113
9. वही पृ0 93
10. वही पृ0 93
11. वही पृ0 134
12. वही पृ0 189
13. वही पृ0 134

14.अरिवंद जैन–औरत होने की सजा– राजकमल प्रकाशन–पृ0 22
15.मोहन दास नेमिशराज–आज बाजार बन्द है– वाणी प्रकाशन–पृ0 87
16.मधु कॉकरिया–सलाम आखिरी–राजकमल प्रकाशन–पृ0152
17.डॉ0 मारुती द0 शिंदे–हिन्दी उपन्यासों में चित्रित वेश्या जीवन–अन्नपूर्णा प्रकाशन पृ031
18.मधु कॉकरिया–सलाम आखिरी–राजकमल प्रकाशन–पृ071
19.मोहन दास नेमिशराय–आज बाजार बन्द है–वाणी प्रकाशन–पृ0 26

डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा
अध्यक्ष (हिन्दी–विभाग)
गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म
महाविद्यालय,
पलवल (हरियाणा)

28

अभिमन्यु अनत कृत उपन्यास का कथानक तथा मारिशस जीवन पर गांधी जी का प्रभाव

डॉ0 संगीता वर्मा

सारांश

गांधी जी अपने जीवन काल में ही लोखो आदमियों के लिए प्रेरणा स्त्रोत और प्रकाशस्तम्भ बन गए थे। उन्होंने अपने दूरगामी मौलिक विचारों से दुनिया भर के शोषितों, अन्याय सहने वालों और उत्पीड़ितों को अपनी अस्मिता को पहचानने, स्वयं को स्थापित करने के लिए संगठित होने और शिक्षा प्राप्त कर ज्ञान के आलोक से अपने अंधकार पूर्ण भविष्य के मार्ग को प्रशस्त करने की प्ररेणा दी। गांधी जी 1901 ई० में मारिशस पहुंचे थे उन्होंने प्रवासी भारतीय मजदूरों को भावी पीढ़ियों की दशा सुधारने के लिए बच्चों को समुचित शिक्षा दिलाने और अपने में राजनीतिक चेतना पैदा करके राजनीति में भाग लेने का परामर्श दिया था। गांधी जी के आगमन से पूर्व मारिशस के प्रवासी भारतीय मजदूर लगभग दासों की तरह जीवन व्यतीत करते थे और अशिक्षा के कारण मानते थे कि उनके बच्चों को भी दास का–सा जीवन व्यतीत करते हुए गोरे मालिक की सेवा करनी है।

'गांधी जी बोले थे' (1984) उपन्यास में अभिमन्यु अनत ने प्रवासी भारतीय मजदूरों को मर्मभेदी गरीबी, उनकी बहुविध जड़ताओं, गोरे मालिकों की फूट डाल शासन करने की नीति और कुछेक बस्तियों (गांवों) के बलिदानी स्वभाव के युवकों का सत्ताधीशों से संघर्ष का व्यापक, रोचक एवं विश्वसनीय चित्रण किया है। अनत के विचारानुसार प्रस्तुत उपन्यास की कथा 1901 ई0 से 1922 ई० तक के मारिशस जीवन का उद्घाटन करती है श्र' ''[247] इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में मारिशस की वैचारिक क्रांति में बापू जी के सहयोग क़ो रेखांकित किया गया है।

प्रस्तुत उपन्यास तीन भागों में विभक्त है। मारिशस के मजदूरों की दयनीय स्थिति और महात्मा गांधी के आगमन, ताहर बाग में उनके ऐतिहासिक भाषण और गांधी जी के सुझावों को व्यवहारिक रूप देने के प्रारम्भिक प्रयासों का वर्णन प्रथम भाग में किया गया है। दूसरे भाग में 10 वर्ष का अन्तराल दिखाया गया है। प्रवासी भारतीय मजदूरों की बस्तियों में स्कूलों की स्थापना, अंग्रेजी–फ्रेंच भाषाओं के अध्ययन और अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष तेज करने की कथा प्रस्तुत की गई है। तीसरे भाग में राजनीतिक चेतना के उदय होने और चुनावों में भाग लेने की तीव्र इच्छा का उद्घाटन किया गया है।

"लाल पसीना" उपन्यास की कथा को ही 'गांधी जी' बोले थे" उपन्यास में आगे जीवन और उससे मुक्ति पाने के संघर्ष की अश्रुपूर्ण गाथा कही गई है। सीता के पति विवेक ने जब गोरे मालिकों की कूटनीति का मोहरा बनने से इन्कार कर दिया, तब मालिक ने उसकी बड़ी सफाई से हत्या करवा दी। विधवा सीता अपने ग्यारह वर्षीय बेटे प्रकाश के लालन–पालन के कठोर कर्तव्य के प्रति समर्पित हो गई। वस्ती का मालिक उग्र विचारों वाले क्रांतिकारी देवराज के प्राणों का प्यास बन गया, तब देवराज भूमिगत हो गया और अवसर पाते ही उसने मालिक के दो वफादारों की हत्या कर दी। गोरे मालिक के बहस करने की उदण्डता करने के कारण देवराज की हत्या की योजना बनी थी। उस समय गोरे मालिक के सामने बोलना गोरों की दृष्टि में अक्षम्य अपराध था। देवराज की हत्या मजदूरों से करवाई गई थी और हत्यारों को मालिक ने एक बीघा जमीन देकर सम्मानित किया। उस समय किसी भी ऐसे मजदूर की हत्या करवा दी जाती थी, जो प्रबुद्ध होता और साथी मजदूरों में असंतोष उत्पन्न करता। मंगरू के बेटे की इसलिए हत्या करवा दी गई। मालिक के खूंखार कुत्तों से धनलाल तथा देवलाल को लहूलुहान करवा दिया।

"लाल पसीना" उपन्यास की कथा को ही गांधी जी बोले थे उपन्यास में आगे जीवन और उससे मुक्ति पाने के संघर्ष की अश्रुपूर्ण गाथा कही गई है।

सीता के पति विवेक ने जब गोरे मालिकों की कूटनीति का मोहरा बनने से इन्कार कर दिया, तब मालिक ने उसकी बड़ी सफाई से हत्या करवा दी। विधवा सीता अपने ग्यारह वर्षीय बेटे प्रकाश के लालन–पालन के कठोर कर्तव्य के प्रति समर्पित हो गई। वस्ती का मालिक उग्र विचारों वाले क्रांतिकारी देवराज के प्राणों का प्यास बन गया, तब देवराज भूमिगत हो गया और अवसर पाते ही उसने मालिक के दो वफादारों की हत्या कर दी। गोरे मालिक के बहस करने की उदण्डता करने के कारण देवराज की हत्या की योजना बनी थी। उस समय गोरे मालिक के सामने बोलना गोरों की दृष्टि में अक्षम्य अपराध था। देवराज की हत्या मजदूरों से करवाई गई थी और हत्यारों को मालिक ने एक बीघा जमीन देकर सम्मानित किया। उस समय किसी भी ऐसे मजदूर की हत्या करवा दी जाती थी, जो प्रबुद्ध होता और साथी मजदूरों में असंतोष उत्पन्न करता। मंगरू के

बेटे की इसलिए हत्या करवा दी गई। मालिक के खूंखार कुत्तों से धनलाल तथा देवलाल को लहूलुहान करवा दिया।

"लाल पसीना" उपन्यास का नायक मदन अन्धा होने के बाद संघर्ष को जारी रखने के लिए दिशा–निर्देश ही दे सकता था। मदन ने मीरा के प्रति अपने प्रणय को आजीवन बनाये रखा पर प्रणय को परिणय में नहीं बदला, भले ही मौत की हार्दिक इच्छा उससे विवाह करने की थी। मीरा, अपने नामानुरूप मदन के प्रति एकान्त भाव से समर्पित है, उसकी सेवा करने में दित्य आनन्द की अनुभूति प्राप्त करती है। सीता के बेटे परकाश में भावी नेता की सम्भावनाएं देखकर मदन उसे अंग्रेजी तथा फ्रेंच भाषा की शिक्षा दिलाना चाहता था साथ ही यह चाहता था कि उसके गांव के बच्चे नियमित रूप से स्कूल में शिक्षा प्राप्त करें, क्योंकि गांधी जी ने सुझाव दिया था कि अपने बच्चों को शिक्षा अवश्य दिलानी चाहिए और प्रवासी भारतीयों को राजनीति में भाग लेना चाहिए। गांधी जी के सुझावों का दूरगामी प्रभाव पड़ा। मदन के प्रयत्नों से पड़ोस की कोठी के एक शिक्षित व्यक्ति प्रेमसिंह ने परकाश को अत्यन्त मेधावी लडका देखकर पढ़ाना शुरू कर दिया और मदन की बस्ती के पच्चीस बच्चो को स्कूल में प्रवेश दिलवा दिया। कोठी के मालिक ने मजदूरों में जागृति के संकेत देखकर उनमें भेदभाव उत्पन्न करके उन पर अपना शासन बनाये रखने का प्रयत्न किया। मालिकों की ओर से हरूख और नाले ताम्ब दोनों भारतीयों को यह जिम्मेदारी सौंपी गई, लेकिन मदन परकाश आदि के कारण मजदूरों की एकता भंग नहीं हुई। बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध स्कूल में हो गया है। इस सुखद सूचना पर उपन्यास का प्रथम भाग समाप्त होता है।

उपन्यास के दूसरे भाग में गांव का नेतृत्व मदन के स्थान पर परकाश के हाथ में आ गया। परकाश अंग्रेजी–फ्रेंच की शिक्षा प्राप्त करके एक सरकारी स्कूल में अध्यापक नियुक्त हो गया। सम्पूर्ण उत्तर–पूर्वी क्षेत्र का पहला प्रवासी भारतीय मजदूर का बेटा परकाश सरकारी अध्यापक बना। इसलिए दोनों गांवों में खूब आनन्दपूर्वक समारोह मनायें गए। परकाश के गांव में स्कूल का भवन बनना शुरू हुआ। साथ ही लोगों ने उत्साह से एक पक्के मन्दिर का निर्माण शुरू किया। पड़ोसी कोठी का प्रेम सिंह मजदूरों का संगठन के लिए दिन–रात एक कर रहा था। परकाश और प्रेम सिंह के सहयोग से 12 गांवों के प्रतिनिधियों की एक सभा परकाश के गांव में हुई। मालिकों ने परकाश को डराने–धमकाने के लिए अपने सरदारों और रखवारों को नियुक्त किया। उन्होंने मजदूरों में जाति एवं प्रान्तीयता के आधार पर फूट डालनी शुरू कर दी। भारते और बलराम को गोली मारकर हत्या कर दी। पुलिस और मालिकों की मिली भगत के कारण पुलिस हत्याओं के प्रति उदासीन रही। सारे गांव वालों ने थाने को घेर लिया पर इसका कोई प्रभाव न देखकर पन्द्रह सौ मजदूरों ने जिला न्यायालय के सामने धरना दे दिया। परकाश को सरकारी नौकरी से निकाल दिया गया। भारत में गांधी जी के काम को आगे बढ़ाने के लिए बैरिस्टर मणिलाल मारिशस पहुंचे। उधर गांधी जी के दक्षिणी अफ्रीका आन्दोलन का प्रभाव मारिशस के भारतीयों पर पड़ रहा था। • मारिशस के वकील बुधन ने भी मजदूर नेताओं को सहयोग दिया। मालिकों ने परकाश की शक्ति समाप्त करने के लिए गुण्डों और पुलिस का आश्रय लिया। परकाश को चोरी में फंसाने के लिए उसके घर से दो पिस्तौलें और आभूषण पकडे गए और दिखाए गए। परकाश ने 35 गांवों के मजदूरों की सभा का आयोजन किया और सबसे उसे नेता स्वीकार किया। वकील ने सुझाव दिया कि मजदूर संघ को रजिस्ट्रर्ड संघ बना दो ताकि यह राजनीतिक दल बन जाए। एक महीने बाद सारी औपचारिकताएं पूरी होने पर मजदूर संघ रिजिस्टर्ड संघ बन गया।

उपन्यास के तीसरे भाग की कथा पांच–छरू वर्ष के अंतराल को प्रकट करती है। परकाश और सीमा का विवाह है। परकाश की आंशका थी कि सीमा के घर वाले शायद उसे चोर ही समझते हो। मीरा के प्रयत्नों से परकाश और सीमा का पुनर्मिलन सम्भव हो सका।

क. मारिशस जीवन पर गांधी जी का प्रभावः

मदन की बस्ती में शहर के डॉक्टर साकीर ने संदेश भिजवाया कि भारत के एक वकील मोहनदास करमचन्द गांधी आए हुए हैं, कल ताहेर में उनकी बड़ी अच्छी तकरीर हुई और दो दिन बाद नदियां रामपार की बस्ती में उनका भाषण होगा। मदन अपनी बरती के 30 लोगों के साथ नदियां रामपार रेलवे स्टेशन पर पहुंचा। लगता था गाड़ी के सारे लोग गांधी के भाषण को सुनने जा रहे थे। विशाल पण्डाल झण्डियां से सजाया गया था। गांधी जी के पहुंचते ही लोगों में आपाधापी शुरू हो गई थी। मंच की ओर सबसे आगे बढ़ने की इच्छा से ठेलाठाली शुरू हो गईं लोगों ने देखा –– गांधी जी काले सूट में थे। सफेद कमीज पर सादे रंग की टाई थी। उनके सिर पर बारीक सी पगड़ी बंधी थी। नारे गूंज उठे– वकील मोहनदास करमचन्द गांधी की जय, दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों को प्रतिष्ठा देने वाले गांध की जी की ..जय |298 गांधी जी ने अपने भाषण में कहा–भारतीय मजदूरों के घोर श्रम से यह देश समृद्ध हुआ है, यहां पर मजदूरों की स्थिति दयनीय है। उन्होंन लोगों से दो अनुरोध किये–आप लोगों को सक्रिय रूप से राजनीति में भाग लेना होगा। आपके प्रतिनिधि ा को विधानसभा के भीतर से अपने अधिकारों का तकाजा करना होगा। दूसरा अनुरोध है आप जी–जान से अपने बच्चों को पढ़ाइये। 249 गांधी जी के विचारों ने मानों अज्ञान

के अन्धकार के भटकते हुए भारतीय मजदूरों के हाथों में मसाले थमा दी। इस प्रकार मारिशस का नवासी भारतीय मजदूरों में जागृति लाने का श्रेय महात्मा गांधी को प्राप्त है।

संदर्भ

1. अभिमन्यु अनत, गांधी जी बोले थे, पृ0 66
2. वही, पृ0 67

डॉ0 संगीता वर्मा
सहायक प्रोफेसर (हिन्दी)
इसिटटयूट ऑफ ला एण्ड रिसर्च
जसाना (फरीदाबाद) हरियाणा

29

हिंसा रहित प्रबुद्धसमाज का अन्वेषण

डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा

सारांश

हिंसा की विभिशिकाका प्रकटन सृष्टि के आरम्भ से लेकर अब तक समाज में अनेक बार होता रहा है। रावण, कंस, दुर्योधन, वृत्रासुर, महिशासुर, भस्मासुर आदि अनेक ऐसे राजा या शासक हुए जिन्होंने हिंसा के बल पर अपना राज्य चलाया तथा हिंसा को पालित–पोषित किया। इसके बाद अनेक ऐसे समुदाय समय–समय पर होते रहे जिन्होंने इन्हीं के स्तर की हिंसा को उग्र एवं उद्वत बनाया। वस्तुतः असुरता के सम्मुख जब–जब प्रतिकार का खतरा उत्पन्न हुआ है तब–तब उसने भयंकर हिंसा की है। अकारण ही किसी जीव–विशेष को पीड़ित करना, दुःख देना, उसकी जीविका उपार्जन के साधनों को नष्ट करना अथवा प्राण ले लेना हिंसा है। हिंसा तीन प्रकार की मानी गई है 1. मानसिंक हिंसा 2. वाचिक हिंसा 3. कायिक हिंसा।

मनसिक हिंसा वह है जिसमें मनुष्य किसी दोष के किसी प्राणी के अनिष्ट की कामना करें, उसे विनाश एवं हानि पहुॅचाने के विषय में विचार करें।

कसी निर्दोष व्यक्ति को कटुवचनों से, मिथ्या भाषण से अथवा उग्रवचनो का प्रयोग करते हुए जब दुःख पहुॅचाया जाए तो वह वाचिक हिंसा कहलाती है।

कसी निर्दोष प्राणी को अकारण ही मारना–पीटन अथवा उसे जान से मार डालना कायिक हिंसा कहलाता है।

वैदिक काल में यज्ञों में दी जाने वाली पशु बलि तथा नर–बलि हिंसा ही थी। काममोहित क्रौज्च पक्षी की हिंसा ने ही आदि कवि वाल्मीकि को भावुक कवि बनाया तथा एक नए छनद और रामायण का आविर्भाव हुआ। महाभारत का युद्व दुर्योधन आदि की हिंसा का ही परिणाम था।

वर्तमान में तो हिंसा की स्थिति और भी अधिक चिंतनीय है। पूरा विश्व ही हिंसक आतंकवाद के शिकंजे में कसा हुआ है। आज निर्दोशों को मारने के लिए, हिंसा के नए–नए आयाम सिखाने के लिए प्रशिक्षिण शिविर चलाए जा रहे हैं। हिंसा का ही वर्चस्व स्थापित करने हेतु नए–नए हथियार खोजे जा रहे हैं। इतना ही नहीं आज क्षुद्र राजनैतिक स्वार्थी के लिए नेताओं द्वारा एक दूसरे के प्रति नफरत और घृणा का वातावरण बनाया जा रहा है। अधिकाधिक धन प्राप्ति की ईहा में मजदूरों एवं गरीबों का शोषण किया जा रहा है। परिणाम स्वरुप हिंसक घटनाऍ बढ़ती ही जाती हैं। अतः आज पुनः हिंसा रहित प्रबुद्वसमाज के अन्वेशण की आवश्यकता है।

अतः आज सर्वभूत हितमयी वेद वाणियों को पुनः मानव जाति को प्रेरणा स्रोत बनाये जाने की आवश्यकता है क्योंकि वेद वाणियां ही त्याग भावना का महत्व बताती हैं और प्रबुद्वसमाज की स्थापना की पक्षधर हैं।

बिखराव एवं टकराव को एकता व समता के केन्द्र बिन्दु तक पहुॅचाने में भी वेद–वाणियां ही हमारा पथ–प्रदर्शन करती हैं। विश्वबन्धुत्व का महान संदेश हमें वेदों से ही मिलता है। 'सभी प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखो। 'यह अपना है या पराया ऐसा तो क्षुद्र हदय वाले सोचते हैं ,उदार चरित प्राणियों के लिए तो पूरी वसुधा ही कुटुम्ब होती है, आदि उक्तियां व्यक्ति को गलत राह पर जाने से रोकती हैं तथा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का उद्घोश पारस्परिक मित्रता को बढ़ाता है और इस प्रकार जो समाज बनता है वह हिंसा से परे एक प्रबुद्वसमाज होता है। एक ऐसा प्रबुद्वसमाज जो भगवान श्री कृष्ण के 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' को जीवन का मूलमंत्र बनाते हुए स्वयं भी सत्कर्मो की ओर उन्मुख होता है और समाज को भी कर्म के पथ पर चलने के लिए प्रेरित करता है।

समाज से भेदभाव तथा असमानता को देर करने के लिए हमें अध्यात्म प्रधान भारतीय संस्कृति का सहारा लेना होगा। अध्यात्म का अर्थ है–आत्मा में परमात्मा का निवास अर्थात् इस सम्पूर्ण जगत में उस परम सत्ता का ही निवास है। सब उस परमपिता की ही संतानें हैं तथा अन्त में उसी में लीन हो जाता है।यह सम्पूर्ण जगत मिथ्या है सत्य तो केवल वही शुद्व, बुद्वमुक्त सच्चिदानन्द परम सत्ता है। वह ब्रहम ही सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है।

हिंसा रहित प्रबुद्वसमाज के अन्वेषण के लिए यह नितान्त अनिवार्य है कि प्राचीन वैदिक वाड्मय और भारतीय संस्कृति का अनुपालन किया जाए। विश्वसाहित्य की प्राचीनतम रचना वेद ब्रह्माण्ड के प्रबुद्वतम ईश्वर द्वारा रचित माने जाते हैं। इसीलिए वेदों को देववाणी भी कहा जाता है और इसीलिए उन्हें श्रुति भी कहते हैं। भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वान वेदों को एक मत से परम सत्य स्वीकार करते हैं। वेदों में आध्यात्मिक और भौतिक दोनों प्रकार का ज्ञान भरा हुआ है। डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार 'ऋग्वेद के सूक्त इस अर्थ में दार्शनिक है कि वे संसार के रहस्य की व्याख्या किसी अतिमानवीय

अन्तदृर्ष्टि अथवा असाधारण दैवी प्रेरणा द्वारा नहीं अपितु स्वतन्त्र तर्क द्वारा करने का प्रयत्न करते हैं। प्रो. मैक्समूलर का कथन इस तथ्य को और अधिक पुष्ट करता है– 'भारत में दर्शन का अध्ययन मात्र ज्ञान प्राप्त करने के लिए नहीं, वरन् जीवन के चरम उददेश्य की प्राप्ति के लिए किया जाता है।'

वेदों में जीवन के लक्ष्यों के विषय में भी विस्तार से वर्णन उपलब्ध होता है। ज्ञान और सुख की प्राप्ति ही वेद का परम लक्ष्य है। वैदिक ऋशि प्रकृति के रहस्यों को जानना और परम सत्य की खोज कर उसकी स्थापना का लक्ष्य लेकर चले थे। वेद मानवीय जीवन के सुख–दुख, आने वाली कठिनाईयों से भी परिचित दिखायी देते हैं। सांसरिक दुखों से छुटकारा और मृत्यु, भय, वैदिक ऋषियों के चिन्तन के विषय थे। वेदों के अनुसार जीवात्मा और परमात्मा का एक्य ही परम लक्ष्य को पाने का एकमात्र मार्ग हैं।

वेद ज्ञान का भंडार है। अतः प्रबुद्वसमाज की संरचना के लिए वेदों का अनुसरण परम सहायक है। वेदों के साथ–साथ उपनिशद, जो वेदांत भी कहते हैं उनका अनुसरण भी समाज के निर्माण हेतु परमावश्यक है। उपनिशदों के अनुसार अविद्या अज्ञान ही बन्धन का कारण है। इस अज्ञान से अहंकार उत्पन्न होता है और अहंकार ही जीवात्मा को बंधन में डालता है। प्रो. रानाडे के अनुसार 'उपनिशद हमें एक ऐसी दृष्टि दे सकते हैं जो मानव की दार्शनिक, वैज्ञानिक और धार्मिक मांगों को एक साथ पूर्ति कर सके। महात्मा गांधी, श्री अरविन्द, विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, डॉ. राधाकृण्णन आदि भारतीय प्रबुद्वजनों को उपनिशदों से प्रेरणा मिली है और इन महापुरुशों ने प्रबुद्वसमाज के लिए मार्गदर्शन दिया। वस्तुतः उपनिशद् अध्यात्मवाद का प्रतिनिधित्व करते हैं। अध्यात्म के परिवेश में आवृत सांसारिक जगत का उपभोग भारतीय संस्कृति की ऐसी विशिश्टता है जो उसे अन्य सभी से पृथक् करती है और सहनीय बनाती है। उपनिशदों का मूल आधार ज्ञान है। उपनिषद् जीवन सम्बन्धी चिन्तन पर बल देते हैं। पाश्चात्य विद्वान शोपेनहावर ने उपनिशद् की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि पूरे विश्व में उपनिशद् जैसे ग्रंथ नहीं है। उपनिशदों में भौतिक जगत को समझाने के लिए बहुत सटीक, सार्थक एवं सुन्दर उपमान दिए गए हैं जैसे प्रज्जवलित अग्नि से चिनगारियों निकलती हैं, सोने से गहने बन जाते हैं, मोती से चमक उत्पन्न होती है वैसे ही ब्रह्म से जगत का निर्माण होता है। उपनिशदों में विश्व को भ्रमजाल नहीं कहा गया है। उपनिशद् के रचयिता प्राकृतिक जगत में रहते हुए जीवन यापन करते थे और इस विश्व से पलायन करने का विचार उनके हदय में नही आया। उपनिशद् के ऋषियों ने जगत् को निर्जन एवं शून्य नहीं कहा है। उपनिशदों ने अनेकशः जगत् को ब्रहा का विकास कहा है। कठोपनिषद् का ऋषि सम्पूर्ण मानव जाति को अपने उद्बोधन में बताता है कि इस लोक में दो मार्ग हैं। एक श्रेयसृ दूसरा प्रेयस्। इनमें से जो श्रेयस् मार्ग का अनुसरण करता है उसे अन्त में अपनी लक्ष्य सिद्वि प्राप्त होती है तथा जो प्रेयस् मार्ग का अनुसरण करता है वह अपने उदिष्ट लक्ष्य को खो देता है। इस तरह उपनिषद् का ऋषि स्पष्ट करता है कि इन्द्रिय विषयों में चमक–दमक व सम्मोहन अवश्य है और मनुष्य स्वभावतः इनकी ओर आकर्षित भी होता है पर यदि नित्यानित्य विवेक की दृष्टि से युक्त होकर दृष्टिपात किया जाए तो सम्मोहन का सारा जाल–जंजाल छिन्न विचिछन्न हो जाता है और यथार्थता प्रकट हो जाती है।

दूसरी ओर आत्मचेतना को ब्रहमचेतना से जोड़ने वाले योगी स्वरुप को भिन्न–भिन्न प्रकार से व्याख्यायित किया गया है। इसी प्रकार बृहदारण्यक उपनिशद संसार में रहते हुए जीवनोदेश्य की प्राप्ति का रहस्योद्घाटन करता हुआ बताता है–

''जो आत्म–संयमी कर्म में अनासक्ति, धैर्य–सहिण्णुता तथा आत्म–संचय का जीवन व्यतीत करता है, वही लक्ष्य प्राप्त करता है। दुष्कर्म उस पर कोई प्रभाव नहीं रखते, क्योंकि उसने दुष्कर्मो को परास्त कर दिया है। पाप उसे पीड़ित नहीं करता, क्योंकि उसने पापों को भस्म कर दिया है। दोशमुक्त,पापमुक्त, अशुचिमुक्त, सन्देहमुक्त होकर वह समुचित रुप से प्रकुद्वत्व का अधिकारी हो जाता है।''

छान्दोग्य उपनिषद् आध्यात्मिक स्थिति तथा सांसारिक विषयों से प्राप्त होने वाले सुखों की स्थिति में अन्तर स्पष्ट करते हुए बताता है कि इन दोनों में ही आनन्द है, परन्तु एक में यथार्थ है और दूसरे में वह प्रतिभासित होता है वास्तव में होता नहीं जिसे उसी तरह हस्तागत नहीं किया जा सकता, जिस तरह दर्पण में पड़ने वाली अपनी परछाई को। वास्तविक आनन्द आत्मा के दर्शन, श्रवण ध्यान में है। इसी प्रकार श्रीमदभगवत गीता निष्काम कर्म करने के लिए प्रेरित करती है । गीता के योगी श्री कृष्ण ने स्पष्ट कहा है 'योगः कर्मसु कौशलत' 2.50 अर्थात् कर्म –कौशल ही योग है। ''योगिनः कर्म कुर्वन्ति संग त्यत्तकात्मशुद्वये'' अर्थात् 'योगी वह है, जो आत्मशुद्वि के लिए मोहासक्ति छोड़ कर कर्म करता है।''

प्रबुद्वसमाज के निर्माण में श्री मद्भगवत गीता मील का पत्थर सिद्वहो सकती है। भगवद् गीता में तत्व विचार, नैतिक नियम, ब्रह्म विद्या और योग शास्त्र निहित है। गीता समस्त भारतीय दर्शन का निचोड़ है। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के अनुसार, ''श्रीमद् भगवद्गीता हमारे धर्म ग्रंथों में एक अत्यन्त तेजाबी और निर्मल हीरा है।'' श्री अरविन्द ने भगवद् गीता को भारतीय आध्यात्मिकता का परिपक्व सुमधुर फल कहा है। वस्तुतः गीता के सिद्वान्त और संदेश

सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक हैं। भगवद् गीता की सबसे बड़ी विशेषता उसका जीवन के व्यावहारिक पक्ष को प्रमुखता देना है।

गीता भक्ति, ज्ञान और कर्म के माध्यम से प्रबुद्धसमाज का विनिर्माण करने की पक्षधर है। भगवद् गीता मानव को ज्ञान सम्पन्न होने के लिए प्रेरित करती है क्योंकि अज्ञानता ही मनुष्य को बंधन में डालती है। ज्ञान से अमृत की प्राप्ति होती है। कर्मो की अपवित्रता का नाश होता है। श्रीकृष्ण ने स्पष्ट घोषणा की है कि 'जो ज्ञाता है वह मुझे सभी भक्तों में प्रियः है क्योंकि जो ईश्वर को जानता है वह उसकी आराधना भी करता है। गीता का दूसरा मार्ग है भक्ति मार्ग। इसमें भक्त स्वयं को ईश्वर के प्रति समर्पित कर देता है। इसकी विशेशता यह है कि यह सबके लिए खुला है। भगवद् गीता के ज्ञान और भक्ति में निकटता है, भक्ति के लिए श्रद्वा को परम आवश्यक माना गया है।

गीता का मुख्य उपदेश कर्मयोग है। श्रीकृष्ण निरन्तर कर्म करते रहने के संदेश को देते हैं। गीता के अनुसार मानव मन की सबसे बड़ी दुर्बलता यह है िकवह कर्म के परिणामों के सम्बन्ध में चिन्तनशील रहता है और इस भय से कर्म त्याग कर देता है। इसीलिए श्रीकृष्ण ने निष्काम कर्म की प्रेरणा दी है उसी का श्रेष्ठ माना है। गीता का प्रतिपाद्य विषय ही है निष्काम कर्म योग। अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्ण संन्यास से श्रष्ठ निष्काम कर्मयोग को बताते हुए कहते है–'' कर्मो का संन्यास और निष्काम कर्म–योग यह दोनों ही परम कल्याण करने वाले हैं परन्तु उन दोनों में भी कर्मो के संन्यास से निष्काम कर्मयोग श्रष्ठ है'' सम्पूर्ण भगवद् गीता मानव जाति को कर्म करने के लिए प्रेरित करती है। प्रो. हिरयन्ना ने भगवद् गीता के सम्बन्ध में विचार देते हुए कहा है कि भगवद् गीता कर्मो को त्याग देने का संदेश नहीं देती अपितु कर्मो में त्याग भावना को स्थापित करती है। श्रीकृष्ण ने बारम्बार यही उपदेश दिया है कि कर्म का प्रेरक फल प्राप्ति नहीं होना चाहिए। इस प्रकार श्रीकृष्ण का आशय त्याग या संन्यास से नहीं हैं वरन् विवेक के मार्ग पर चलते हुए प्रबुद्व समाज की स्थापना करना है। भगवद् गीता में श्रीकृष्ण इन्द्रियों को बुद्विद्वारा नियन्त्रित कर उसे सन्मार्ग पर चलाने का संदेश देते हैं। अर्जुन जो कर्म का परित्याग कर युद्वन करने की बात श्रीकृष्ण से करता है त बवह उसे यही समझते है कि कर्म कर, धर्म युद्व जो तुझे स्वतः ही प्राप्त हुआ है उसे कर।

श्रीकष्ण लोक कल्याण के पक्षधर हैं। ज्ञान, भक्ति और कर्म का चमत्कारी सामंजस्य गीता में परिलक्षित होना है। प्रबुद्वसमाज के लिए यह नितान्त अनिवार्य है कि वह इन तीनों मार्गो का अनुसरण करे किन्तु एक ही मार्ग अपना लिया जाए तो भी ईश्वर तक पहुॅचा जा सकता है श्रेष्ठ को प्राप्त किया जा सकता है।गीता का भक्ति मार्ग संवेदनशीलता का द्योतक है तो ज्ञान मार्ग बुद्विका सूचक और कर्म मार्ग क्रियात्मक है। ये तीनों एक दूसरे के पूरक हैं, प्रबुद्वसमाज के अन्वेषण के लिए, उसके निर्माण के लिए यदि मात्र भगवद् गीता का ही अनुसरण कर लिया जाए तो पूर्णरुपेण सफलता प्राप्त की जा सकती है।

प्रबुद्वसमाज एक ऐसे समाज को कह सकते हैं जिसमें आत्मपरिष्कार की क्षमता हो, सत्प्रवृत्तियों के संवर्धन और पुण्य परमार्थ कर सकने की प्रचण्ड शक्ति हो और जो मानवी गरिमा के अनुरुप अपने गुण, कर्म, स्वभाव को ढालकर संचित कुसंस्कारों का परिमार्जन कर सके।

ऐसी क्षमता एवम् शक्ति केवल अध्यात्म के अवलम्बन से ही आ सकती है। योग और तप इसी निमित्त साधे जाते हैं। ज्ञान योग, कर्म योग, भक्तियोग का आश्रय इसी निमित्त लिया जाता है। अध्यात्म के अपनाने का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह व्यक्ति को उत्कृष्ट उदात्त जीवन जीने के लिए प्रेरित करता है उसका आचरण सहज ही आदर्श बन जाते है।

हिंसा से परे प्रबुद्वसमाज के निर्माण के लिए यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि अहिंसा के महत्व को समझा जाए। आचार्य मनु ने अपनी मनु स्मृति में धर्म के लक्षणों में अहिंसा को सबसे पहला एवं श्रेष्ठ लक्षण माना है। पदम पुराण में धर्म के विविध रुपों परोपकार, यज्ञ, दान, सत्याचरण आदि सभी में अहिंसा को श्रेश्ठ एवम् परम धर्म बताया गया है। यजुर्वेद भी प्राणियों को हिंसा न करने का निर्देश देता है। पतज्जलि ने अहिंसा के आचरण से वैर भाव का त्याग होता है, ऐसा माना है। पतज्जलि ने यमों में सर्वप्रथम यम अहिंसा को ही माना है। श्रीमद् भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने दैवीसम्पद्प्रसग में अहिंसा का सर्वप्रथम वर्णन किया है।

वस्तुतः अहिंसा प्रचण्ड शास्त्र है, अहिंसा वीर पुरुष की शोभा है, उसका सर्वस्व है वह भीरु से दूर–दूर भागती है। अहिंसा शुष्क, नीरस एवम् जड़ पदार्थ नहीं है अपितु यह चेतनमय है। यह आत्मा का विशेष गुण है। अहिंसा प्रेम है सूर्य है और हिंसा रुपी वैरभाव धोर अन्धकार है।

हिंसा से परे प्रबुद्वसमाज की खोज के लिए यह अत्यावश्यक है कि प्राचीन भारतीय ऋषि मुनियों ने जिस दिव्य चेतना को प्राप्त करके अतीन्द्रिय व अतिमानसिक ज्ञान द्वारा सम्पूर्ण जीव–जगत के परमार्थिक स्वरुप को प्रत्यक्ष देखा था जिनकी सम्यक्–सम्बुद्व चेतना के सामने परम सत्य ने अनावृत और अविदित रुप से अपने स्वरुप को प्रकट किया था, उनकी दिव्यवाणियों को समाज में न केवल प्रचार एवम् प्रसार किया जाए अपितु उसे अपने जीवन में उतारने के लिए हर मानव का बाध्य किया जाए।

''नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्ववित्' अर्थात् तत्त्ववेत्ता जानता है कि आत्मसत्ता स्वयं स्थूल कर्म नहीं करती, कर्म तो इन्द्रियादिक द्वारा आत्मचेना की उपस्थिति में सम्पन्न हो रहे हैं। इसी प्रकार, 'समत्वं योग उच्यते' अर्थात् समत्व बुद्वि, सुसंतुलित मनः स्थिति ही योग है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्राचीन अध्यात्मपरक भारतीय संस्कृति व्यक्तित्व का विकास करती है, उसकी संकीर्णताओं को नष्ट कर उसे प्रखर परिष्कृत एवम् प्रबुद्वबनाती है, तथा इन्हीं सिद्वान्तों पर चलकर एक प्रबुद्व समाज की परिकल्पना की जा सकती है जो हिंसा से परे हो।

सन्दर्भ

1. मा निशाद प्रतिश्ठां त्वमगमः, शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौच्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् रामायण 1.2.25
2. ेन त्यक्त तेन भुज्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्वनम्।
यजुर्वेद 40–1
3. संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानतम्। ऋग्वेद 10.19.2
4. मित्रस्य मा चक्षुशाः सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। यजुर्वेद 36.18
5. अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।। हितोपदेश 1.69
6. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेशु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सगेऽस्त्वकर्मधि।। श्रीमद्भगवत्गीता 2.46
7. अयमात्मा ब्रहम। बृहदारण्यक 2.5.19
8. अहम् ब्रहमास्मि। बृहदारण्यकोपनिशद 1.4.10
9. तत्वमसि। छान्दोग्य उपनिशद 6.8.7
10.प्रज्ञानं ब्रहा। ऐतरेय ब्राहाण 5.3
11-Indian Philosophy –Vo. 1, Page 71
12.Upnisads are capable of giving us a view of reality which would satisfy the scientific, the philosophic as well as religious aspiration of men-constructive survey of upnisadic philosophy Page 1-2
13.In the whole world there is no study so beneficial and so elevating as that of the upnisads. It has been the solace of my life. It will be the solace of my death.
14.गीता रहस्य–पृ.17
15.भगवद् गीता– 8.8
16.यदा संहरते चायं कूर्मोऽडगसीव सर्वशः।
17.भगवद्गीता 5.2
18.In other words the Gita teaching stands not for renunationi of action but for renunciation in action- outlines of Indian philociophy. Page 121
19.अहिंसा सत्यमस्तेय शौर्चामन्द्रियनिग्रहः।
एवं सामासिक धर्म चातुर्वण्येऽब्रवीन्मनुः।। मनुस्मति 10–63
20.अहिंसा परमो धर्म हाहिंसैव परं तपः।
अहिंसा परमं दानमित्याहुर्मनीशिणः।। पद् मपुराण,स्वर्गखण्ड 31
21.मा हिंसीः पुरुशं जगत्। यजुर्वेद 16.3
22.अहिंसा प्रतिष्ठायॉ तत्सन्निधौ वैरत्यागः। योगसूत्र 235
23.अहिंसासत्यास्तेय ब्रहाचया परिग्रहा यमाः। योगसूत्र 2–30
24.अहिंसासत्यमक्रोधसत्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेश्वलोलुपत्वं मार्दवं हीरचापलम्।
श्रीमद् भागवत गीता 16–2

डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा
सहप्रोफेसर हिन्दी
गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय
पलवल (हरियाणा)

30

उत्तर–आधुनिकता की ध्वनि और प्रतिध्वनि का व्याकरण

डॉ० लक्ष्मी कान्त त्रिपाठी '

सारांश

एक अवधारणा के रूप में उत्तरआधुनिकता का आरम्भ सामान्यतः1960 के दशक के उत्तराद्ध में होता है। इस पद का प्रयोग सबसे पहले इतिहासकार अर्नाल्ड टायनबी ने 1947 में पाश्चात्य इतिहास के तत्कालीन, चौथे और अंतिम चरण की व्याख्या करने के लिए किया था।[1] सबसे पहले वास्तुकला में उत्तरआधुनिकता की विशेषता को देखा गया और बाद में अन्य अनुशासनों जैसे राजनीति, इतिहास, कला और संस्कृति की व्याख्या में भी इस पद का प्रयोग किया जाने लगा । राजनीति, साहित्य, कला, व अन्य सामाजिक अनुशासनों पर व्यापक प्रभाव के बाबजूद उत्तर–आधुनिकता एक अस्पष्ट अवधारणा है। अपनी अभिव्यक्ति में उत्तरआधुनिकतावाद बहबाची है इसलिए अपने सिद्धांत के अनुरूप ही उसकी अनेक व्याख्यायें की जाती रही हैं। लियोतार यदि एक जगह इसे भविष्य और वर्तमान के अंतर्विरोध के रूप में देखते हैं तो दूसरी जगह वह इसे आधुनिक और उत्तरआधुनिक वास्तुकला में आये अंतर के रूप में देखते हैं जहाँ उत्तरआधुनिक वास्तुकला ने आधुनिक वास्तुकला की मानव जाति के सम्पूर्ण अधिकार–क्षेत्र में एक अतिम पुरनर्नेर्माण की परियोजना को त्याग दिया है।[2]

उत्तरआधुनिकता की एक समस्या आधुनिकता से उसके सम्बन्ध को निश्चित करने की है । कुछ विचारक उसे कला और साहित्य में आधुनिकता से असहमति और फलस्वरूप उसकी समाप्ति के पश्चात् एक शैली या भाव के उदय के रूप में देखते हैं तो कुछ इसे आधुनिकता के विस्तार के रूप में देखते हैं। कतिपय विचारक उसे उत्तरसंरचनावाद और विखण्डनवाद से सम्बन्धित करते हैं तो कुछ के लिए वह पश्चिम की नवीनतम सांस्कृतिक अवस्था है । कतिपय विचारक साहित्य औरकला मे उत्तरआधुनिकता को आधुनिकता का विस्तार और उसका हिस्सा मानते हैं जबकि राजनीति विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, इतिहास और दर्शन आदि में उसका विरोधी मानते है।

उत्तरआधनिकता स्रजन और सौंदर्यशास्त्रीय क्रियाशीलता का कोई नया क्षेत्र निर्धारित नही करती बल्कि इसका महत्व आधुनिकता और पूर्वआधुनिकता के अभिलेखों के मख्य (और प्रायः गौण) कार्यों को सीमान्तीकृत,परिसीमित,विकीर्णित और विकेन्द्रित करने में हैं। ङ आधुनिकता के सांस्कृतिक अभितेखों की एक मुख्य उपस्थिति महावृतांतश हैं जिसकी वैधता को उत्तरआधुनिकतावादी प्रश्नगत करते हैं।

वे मानते हैं कि महावृतांतों ने अपनी विश्वसनीयता खो दी है क्योंकि अपने संचालन में वे एक शक्ति की व्यवस्था हैं जो कुछ निश्चित विशेषताओं को प्रतिनिधित्व की अनुमति देते हैं जबाक अन्य को अवरूद्ध, अवैध या निषिद्ध करते है। उत्तरआधुनिकतावादी आधुनिकता और उसकी सहायक शक्तियों जैसे विज्ञान आदि की आलोचना करते हैं क्योकि इन्होने मानव–जाति को स्वतंत्र कराने के स्थान पर उसे और भी संकटग्रस्त किया है। मनुष्य के विकास और प्रगति का आश्वासन कैसे उसके विनाश और अवरोध में बदल गया, इसे उत्तरआधुनिकता रेखांकित करती है। यह आधुनिकता की समीक्षा द्वारा सम्भव नहीं था क्योंकि वह अपने प्रतिमानों के घेरे में रहते हुए अपनी परिणतियों की निष्पक्ष पड़ताल नहीं कर सकती थी। इसलिए उत्तरआधुनिकता की समीक्षा एनलाइटेनमेंट एज से प्रारम्भ होती है जहां से आधुनिकता का उदय और विकास होता है। सत्य, ज्ञान और तर्क की सर्वोच्ता और उसकी केन्द्रीयता को उत्तरआधुनिकता नष्ट करती है और इनके विरोधी पदों के सह अस्तित्व की प्रस्तावना करती है। एक सांस्कृतिक अवस्था के रूप में उत्तरआधुनिकता के स्वरूप को स्पष्ट करना, उसके अंतविरोधों की पहचान करना और वर्तमान परिप्रेक्षय में उसकी अभिव्यक्ति को निश्चित करना एक कठिन कार्य है। उत्तरआर्धनिकता के सांस्कृतिक पक्ष को जेमेसन ने अपनी महत्वपूर्ण व्याख्याओं में स्पष्ट किया है। जेमेसन ने पहली बार विकसित पँज़ीवाद – जिसने स्वयं को एक विश्व–्व्यवस्था सिद्ध किया है– के प्रभाव, उसके विभिन्न रूप और बदल रही समकालीन संस्कृति से उसके अंर्तसंम्बन्धों को प्रामाणिक ढंग से व्याख्यायित किया। जेमेसन उत्तरआधुनिकता को वृद्ध पूंजीवाद का सांस्कतिक तर्क मानते हैं। उनका विश्लेशण मेंडल के पूंजी केशोध–निष्कर्षों पर आधारित है लेकिन इसका उपयोग वे समकालीन समय की सांस्कृतिक विशेषताओं को स्पष्ट करने में करते हैं। उत्तरआधुनिकता का निषेधात्मक पक्ष इन व्याख्याओं से ही स्पष्ट होता है। मेण्डेल के सिद्धान्त[4] के अनुसार पुँजीवादी समाज की तीन अवस्थाएँ होती हैं। पूँजीवादी अवस्था का प्रारम्भिक चरण बाजार कापुँजीवाद है । दूसरा चरण है एकाधिकार पर आधारित पूँजीवाद और तीसरा चरण बहुराष्ट्रीय पुंजीवाद है। जेमेसन पूंजीवाद की इन

तीन अवस्थाओं के अनुरुप ही संस्कृति की अवस्थाओं और उसके स्वरूप की पहचान करते हैं । संस्कृति की पहली दो अवस्थाओं का विश्लेषण तो विकासक्रम और उनकी ऐतिहासिकता को समझने के लिए है, वस्तुतः संस्कृति की तीसरी अवस्था उत्तरआधुनिकता को समझने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि इस स्थिति में प्रतीक या चिह् किसी को संकेत नहीं करते और वे स्वतः एक सत्ता के रूप में प्रतिष्टित हो जाते हैं। इस स्थिति में संस्कृति इन प्रतीकों में सन्निहित होती है और इतना होने के नाते ही संस्कृति सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों का मुखोटा नहीं होती पर स्वतः सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों का स्थान ले लेती है। संस्कृति और व्यवसाय का भेद मिट जाता है। संस्कृति और व्यवसाय का अभेदीकरण, यही है वह उत्तरआधुनिक विशेषपता जिस पर जेमेसन चोट करते हैं। संस्कृति अपनी अलग और विशिष्ट सत्ता को खो देती है और एक परम्परागत स्मृति में अवशिष्ट बोध के रूप में बची रहती है। उत्तरआधुनिक समय में संस्कृति का अलग से कोई निश्चित और विशिष्ट स्वरूप नही बनाया जा सकता क्योंकि वह व्यवसाय या पूंजी के साथ एक नवनिर्मित सम्बन्ध में गुंथ कर फैल चुकी है। इस बदले हुए परिद्रश्य में संस्कृति अपने आप में उत्पाद बन गयी है। बाजार अपना स्वयं विकल्प बन गया है। इस रूप में संस्कृति न तो समाज की संरचना के मूल चारित्रिक लक्षणों या उसके विशिष्ट रूपाकारों को व्यक्त करती है और न ही जीवन–मूल्यों की परम्परगत अवधारणा को सामने रखती है बल्कि बाजार–व्यवस्था केउत्पादन से जुड़कर वह पहले अपने को ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भों से नियंत्रण–मुक्त करती है और अंत में पूरी व्यवस्था को अपने नियंत्रण में ले लेती है। नव उपनिवेशवादी व्यवस्था में, जो कि पूंजीवाद के सार्वभौमीकरण या उसके भूमण्डलीकरण की अवस्था है संस्कृति का यह नया स्वरूप अपनी स्थानीयता को अतिक्रमित करजाता है।यह पूंजी और संस्कृति या पूंजी की संस्कृति की नयी ताकत का रूप है, जिसमें एक ही व्यवस्था, प्रतीक, जीवन–शैली और ज्ञान के विस्तार का आक्रामक विचार निहित है। पूंजी की इस नयी संस्कृति ने एक नयी दासता की स्थिति को जन्म दिया है क्योंकि इसमें जाहिर है कि संस्कृति का स्वरूप वहीं से बनता है जहाँ पूंजी का वर्चस्व है। इसलिए अल्पविकसित देशों या विकासशील देशों में विकसित देशों में विकसित देशों के अनुकरण में अपने को व्यक्त करने की चेष्टा देखी जा सकती है और यह ज्ञान, तकनीकी और सूचना से लेकर रहन–सहन और फैशन तक की निर्भरता में देखा जा सकता है। अल्पविकसित देशों की स्थिति स्वीकार के छोर (तमबमपअपदह मदक) पर है और उनके सामने सबसे बड़ा संकट अपने धार्मिक–सांस्कृतिक रूपों और उनमें व्यक्त प्रतीकों की सुरक्षा व अविकृति का हैं। किसी भी समाज की परम्परागत स्मृति जिसमें धर्मिक और सांस्कृतिक अनुभव, पुराण और मिथक की चेतना और एक साझी भाषा जिसमें उसके दीर्घकालीन संचित अनुभव व्यक्त होते हैं, समाप्त हो रहे हैं। यदि माइकल जैक्सन अमेरिका के सांस्कृतिक–बोध में व्यक्त होता है तो अब वह अन्य देशों के सांस्कतिक–बोध में भी व्यक्त हो रहा है। कोका– कोला और कोई खाद्य–पदार्थ यदि किसी विकतित देश के रहन–सहन और भोजन की आदतों में हैं तो वह कमोबेश उन जगहों पर भी पहुँच रहे हैं जहां की अधिसंख्य जनता के लिए पीने का शुद्ध पानी भी उपलब्ध नहीं है। जेमेसन की व्याख्या में उत्तरआधुनिकता का निषेधात्मक पक्ष प्रस्तुत होताहै। नवउपनिवेशवादी व्यवस्था में पूंजीवाद की केन्द्रीयता, उपभोक्तावाद का प्रभाव, मीडिया का अनवरत विस्तार, जीवन–शैली का अनुकरणात्मक हो जाना और इन सभी रूपों पर विज्ञापन का एक गहरा नियंत्रण या विज्ञापन संस्कृति द्वारा समूची सभ्यता का आच्छादन, उत्तरआधुनिकता के वे जीवन–लक्षण कहे जा सकते हैं जो स्थानीय विशेषताओं को अतिक्रमित कर सार्वभौमिक हो चुके हैं।

उत्तरआधुनिकता अधिकांशतया संस्कृति–आलोचना की ओर उन्मुख होती है जबकि उत्तरसंरचनावाद (भाषिक) पद्धति पर बल देता है। उत्तरसंरचनावाद ने संरचनावाद की अपर्याप्ता को उद्घाटित किया और उनके सिद्धान्तों को संशोधित किया। उत्तससरचनावाद सास्यूर के इस सिद्धान्त की आलोचना करता है कि एक बार अर्थ पा लेने के बाद चिन्ह अपने आप में पूर्ण हो जाता है,नियत हो जाता है और अर्थसूचक व अर्थसूच्य अविभाजित हो जाते हैं।अविभाजनीय हो जाते हैं। उत्तरसंरवनावादी मानते हैं कि किसी शब्द के अर्थ को बताने का प्रयास करना, उसके लि कोई निश्चत बिन्दु खीचना अपरिहार्य रूप से अर्थेसूचक की वृत्तीयता में समाप्त होती हैं जहां अर्थसूचक अर्थसूच्य के सातत्यक क्षेत्र में खिसकते रहते हैं। कोई ऐसा निश्चित बन्दु नहीं हैं जहां अर्थसूचक की फिसलन को रोका जा सके और वह किसी निश्चित अर्थसूच्य को व्यक्त कर सके क्योंकि उस अर्थसुच्य के लिए डिफ़रेंसश (दरिदा का शब्द) को प्रक्रिया में एक दूसरा अर्थसूचक आ जाता है। देरिदा इस पद्धति का विस्तार पाठ की व्याख्या में करते हैं। पाठ को यदि भाषा के आधार पर समझा जाना है तो उसका कोई निश्चित अर्थ इसतलिए नहीं हो सकता कि भाषा अर्थसूचकों के एक जाल द्वारा बंधी होती है और उनके निरंतर बदलते रहने के कारण किसी निश्चित और अपरिवतनीय अर्थसूच्य तक नहीं पहुंचा जा सकता है। इस तरह उत्तरसंरचनावाद इस धारणा को समाप्त करता है कि पाठ कोई निश्चित और अंतिम अर्थ होता है और उसे एक निश्चित पद्धति या

व्याख्या द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इसीलिए उत्तरआधुनिक पाठ कोॅ तपजमतसल ज्म•ज कहा जाता है क्योंकि प्रत्येक वाचन के बाद पाठक उसे अपने ढंग से लिख सकता है। पाठ, पाठक और लेखक की आधुनिक अवधारणा पर उत्तर–आधुकता क्रमशः प्रश्नवाचक चिन्ह लगाती है और उन्हें निरस्त कर उनकी नयी भूमिकाओं की प्रस्तावना करती है।

उत्तर–आधुनकिता में पाठ और पाठक के महत्व की स्थापना है। पाठ की केन्द्रीयता और अर्थों की इस बहुलता को सम्भव करते हुए रोला बार्थ कहते हैं पाठ, संस्कृति के असंख्य केन्द्रों से लिए गए उद्धरणों का एक टेष्यू है।

राजनीति, सत्ता और संस्कृति–समीक्षा के संदर्भ मे देखें, तो उत्तरआधुनिकता का स्वरूप समस्यामूलक ही दिखायी देता है। उत्तरआधुनिकता की एक बड़ा समस्या उसके पाठ को बनाने की है अर्थात उत्तर–आधुनिकता आधुनिकता का हो विस्तार है या उसका खण्डन ? यदि वह आधानिकता का ही विस्तार है तो एक अवधारणा या जीवन–दृष्टि के रूप में उसकी सार्थकता क्या है? यदि वह आधुनिकता खण्डन है तो बन रही नयी समस्याओं के बारे में उसका समाधान क्या है ? जैसे भूमण्डलीकरण में सबकी आवाज को सुने जाने का विचार अपरिहार्य है किन्तु प्रश्न यह है कि किसकी आवाज सुनी जा रही है? और क्या एक वर्चस्व की समाप्तिके साथ दूसरे वर्चस्व का अस्तित्व में आ जाना किसी समाधान को प्रस्तुत करता है? उत्तर–आधुनिकता के विषय में ये कुछ महत्वपूर्ण और प्रासंगिक प्रश्न हैं जिनपर सम्यक विचार करना अपरिहार्य है।

संदर्भः

1- Waugh & Rice: Modern Literary Theory (Ed-) p-307
2. Lyotard : Post&Modernism ICA Documents Edited by Lisa Appignanesi p-5
3. Hugh-J- Silverman : Post Modernism
4. रामकष्णमणि त्रिपाठी रू उत्तरआधुनिकता रू कतिपय मान्यताएं और भारतीय संदर्भ साखी पत्रिका, पृ. 42)
5. रामकृष्णमाणि त्रिपाठी : उत्तरआधुनिकता : कतिपय मान्यताएं और भारतीय संदर्भ साखी पत्रका, पृ. 42)
6. सुधीश पचौरी रू उत्तर–आधुनिकता और उत्तर–संरचनावाद
7. Roland Barth:The Death of the Author

————————

सम्पर्कः

डॉ० लक्ष्मी कान्त त्रिपाठी,

एसो० प्रोफेसर,

राजनीति विज्ञान विभाग, फ़ीरोज़ गांधी कालेज,

रायबरेली(उप्र)पिन 229001

Email: &lktripathi7@gmail-com

31

EARTHQUAKE: A CONCEPTUAL FRAMEWORK IN INDIAN PERSPECTIVE

Udit Rana

Abstract:

Earthquake is one of the worst natural disasters. It causes a catastrophe. Earthquakes can be classified within or between two fundamental categories, those that are not even registered and those that can destroy and decimate whole cities along with their population. It is such a natural geological disaster that causes social-economic and environmental loss in both long and short terms. Therefore, a proper scientific study and research of earthquakes is very important. There is a technical phraseology that is used to describe activity regarding earthquakes. The phrase is seismic activity, which designates the frequency, size (on Richter scale) of the earthquake and frequency of the earthquake in a particular area.

Keywords: Earthquake, Seismograph, Tectonic Plate.

Introduction:

Earthquake is one of the major natural disasters. It is one of the most disasters natural phenomenon which cause a huge life and property loss all around the world. All over the world approximately thirty lakh earthquakes are recorded though ninety eight percent of them are less than a magnitude of 3.Earthquakes occur naturally for example tectonic and volcanic earthquakes and also due to a result of human activity such as explosion, mine collapse, and reservoir-induced etc.

Proper strategies and awareness about disaster management is the utmost importance. This could protect us from losses and help to cope up with these hazards. An earthquake can be defined as the shaking of the surface of the earth due to the sudden release of energy in the earth's crust. The sudden release of the earth's energy results in the formation of S waves. The type and intensity of the earthquake determine the seismic activity of an area.A seismometer helps to detect the vibrations caused by an earthquake.The seismograph is an instrument that is used to measure and record the details related to earthquakes for example- force, duration, etc.This paper aims to provide a systematic and precise understanding of earthquakes, their types, causes, impact and earthquake in the Indian context.

Types of Earthquakes:

There are mainly three different types of earthquakes: tectonic, volcanic, and explosion. The type of earthquake highly depends on the occurring region. It also depends onthe geological make-up of that region. Among three of them, tectonic earthquake are the most common. The movement of the tectonic plates sets into motion all the other materials in the ground which finally results in the breaking of the rocks in the earth's crust. Volcanic earthquakes are caused by the eruption of volcanoes. Another type of earthquake which should a point for concern is the man-made earthquake. It is the result of chemical activities and nuclear explosions in which the earthquake is first affected in the underground caverns and caves which then results in a much bigger earthquake. This sort of earthquake is called in technical phraseologycollapse earthquake.Thus, the main reason behind explosion earthquakes is humans or anthropogenic activities. Global Positioning System (GPS) is used to monitor the movement of plates by measuring the exact position of the station near an active fault line that is relative to each other. It is instrumental for the measurement of an earthquake.

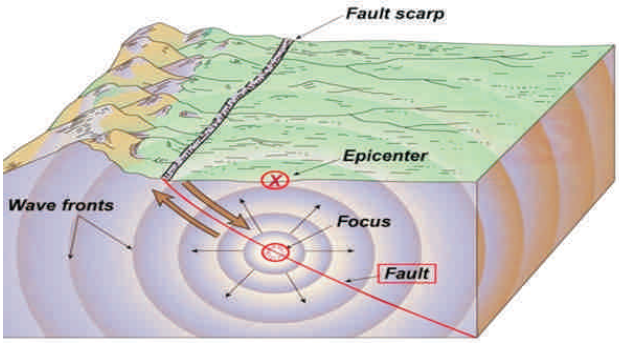

Occurrence of Earthquake:

The prediction of an earthquake is difficult. It can occur anywhere on the earth however most of the time it occurs near the tectonic plates that have active faults. The sliding of the tectonic plates against each other creates movements which causes sudden movements in the earth's crust and results in earthquakes. Such disturbances create vibrations that spread widely in all directions. Due to the relative motion of these plates, stress built up. The stored energy released by it is known as shock waves.

There are four major layers of the earth: (1) The inner core, (2) the outer core, (3) the mantle and (4) the crust. The crust

and the top of the mantle preparers a thin skin on the surface of our plane but this thin skin is not altogether in one piece.It is constituted of many pieces.Slowly, these pieces move around, slid past one another and bump into each other. These pieces are called tectonic platesand the edges of the tectonic plates are called the plate boundaries**.**These plate limits are comprised of a few flaws. The greater part of the quakes all over the planet happen on these flaws of the plate limits of structural plates. Since the edges of the plates are unpleasant some of the time they stall out while the remainder of the plate continues to move. Toward the end when the plate has moved far enough, the edges unstick on one of the deficiencies and there is a tremor.The tectonic plates divide the earth's crust into distinct "plates" that is always slowly moving.

Tectonic earthquakes are the most common (Bolt, 1993) and are explained by the theory of plate tectonics. The plate tectonic theory merges the ideas of continental drift and sea-floor spreading and argues that the surface of the earth is divided into a number of relatively thin rigid segments or plates that constantly move relative to each other over a semi-plastic layer (asthenosphere) beneath the earth's crust. These plates are not static in positioning rather they diverge, converge, and slide past one another at their boundaries.

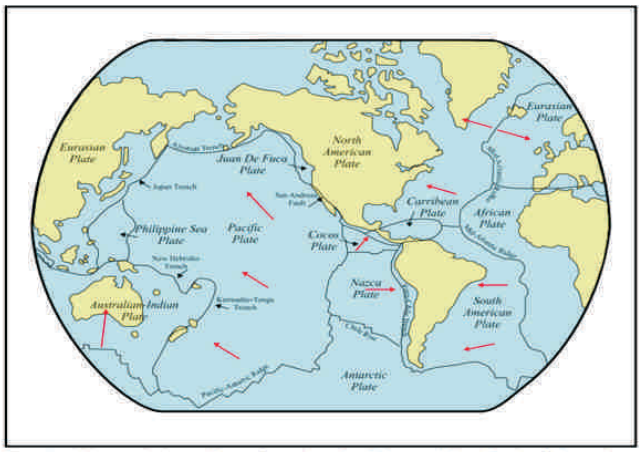

Figure 1. Major tectonic plates, midocean ridges, and trenches. Red arrows indicate direction of plate motion. Plate boundaries are approximated. (Modified from Wallace, R. E., ed., 1990.)

Another factor contributing to earthquakes is human activities. There are many human activities or anthropogenic causes that resultin an earthquake. Building skyscrapers can be considered as a good example that may cause an earthquake. Many engineers and scientists are now concerned about the types of buildings in construction and their possible impact. Another reason could be a volcanic eruption. Though tectonic earthquakes are suspected of trigging volcanic eruptions however few studies suggests that volcanic eruptions can also cause earthquakes.

Earthquakes in India:

In June 1505 the first earthquake in India was recorded. It was located in Saldang and Karnali zone. The most recent one occurred on 31st January.India has experiencedlarge number of greatest damaging earthquakes in the last century. In India, more than 50% area is considered prone to damaging earthquakes.The north-eastern area of the India and the whole Himalayan belt is exceptionally inclined to incredible seismic tremors of extent. The principal purpose for the tremors in these areas is because of the development of the Indian plate towards the Eurasian plate that is at the pace of around 50 mm consistently. Aside from the Himalayan locale and the Indo-Gangetic fields, the peninsular India is likewise inclined to harming quakes. There are some surprising highlights in Indian quake that have suggestions on procedures and the board anticipating decreasing tremor catastrophes in the country This paper shall cover a brief andan overall perspective of past Indian earthquakes also the interesting features of the same.

Earthquake Zone in India: It is defined as the zone on the earth's surface around which the majority of earthquakes occur also known as the seismic zone or the earthquake belts.

There are a total of five followings earthquake zones in India:

- Zone 1 and 2: Low damage risk.
- Zone 3: Moderate damage risk. It includes Western Himalayan plains, Andaman and Nicobar Islands.
- Zone 4: Parts of Delhi, Jammu, Bihar and Indo-Gangetic basin; and
- Zone 5: Highly prone to earthquakes i.g. Punjab, Kashmir, and North-East India.

Indian subcontinent has suffered some of the greatest earthquakes in the world. For example, in a short span of about 50 years, four such earthquakes have occurred: Assam earthquake of 1897 (magnitude 8.7) (Oldham, 1899), Kangra earthquake of 1905 (magnitude 8.6) (Middlemiss, 1910), Bihar-Nepal earthquake of 1934 (magnitude 8.4) (GSI, 1939), and the Assam-Tibet earthquake of 1950 (magnitude 8.7) (CBG, 1953). Significance of such earthquakes can be gauged from the fact that in his famous book on Engineering Seismology (Richter, 1958) Professor C.F. Richter (known for the Richter scale) devotes an entire chapter entitled “Some Great Indian Earthquakes” to introduce the nature of earthquakes: the book has no similar

chapter for great earthquakes in other regions.

- Cutch earthquake of 1819 Cutch being far away from the plate-boundaries, this earthquake is one of the largest intra-plate earthquakes that have occurred in the world. So far followings are the major earthquake occurred in India

- The Assam earthquake of June 12, 1897 (magnitude 8.7) caused severe damage in an area of about 500 km radius (as against the area of about 10 km radius that sustained severe damage in the Latur earthquake. The earthquake caused extensive liquefaction in the alleviated plains of Brahmaputra.

- Bihar-Nepal Earthquake 1934. This earthquake had a magnitude 8.4. It occurred on January 15, 1934 and broughtwide-spread damage in the northern Bihar and in Nepal (GSI, 1939).

- Koyena earthquake 1967. This was a magnitude of 6.5 earthquakes that took place close to the 103 metre concrete gravity dam at Koyna (Berg et al., 1969). Prior to this earthquake, the area used to be considered aseismic. It is after the construction of dam and filling up of reservoir in 1962, the seismic activity increased significantly.

- Bihar-Nepal Earthquake 1988. This magnitude of 6.6 earthquakes shook northern Bihar and Nepal on August 21, 1988 at 04:39 hours (e.g., GSI, 1993; Jain, 1992; Jain et al., 1991, Subramanyam, et Thakkar).

- Uttarakhand Earthquake 1991. An earthquake of magnitude 6.6 shook the districts of Uttarkashi, Tehri, and Chamoli in the state of Uttar Pradesh on October 20, 1991 at 2:52 hours (GSI, 1992; Jain et al., 1992).

- KillariLatur Earthquake 1993. On September 30, 1993 a magnitude 6.4 earthquakes shook the area near village Killari in Latur district.

- Jabalpur Earthquake 1997 is the first moderate earthquake (magnitude 6.0) to have occurred close to a major Indian city in recent times: Jabalpur has a population of about 1.2 million people (Jain et al., 1997; Rai et al., 1997). It provided some indication of what type of seismic performance to expect out of modern Indian constructions.

Major Earthquakes and Human Loss:

The earth's seismicity is centred primarily along the plate boundaries. More than 90 percent of the seismic energy release occurs where plate boundaries converge and where the Earth's crust is consumed along trenches. Approximately five percent of the world's seismic energy is released along the ocean-ridge system where plate boundaries diverge, forming new oceanic crust. The remaining seismic energy is released through interpolate earthquakes which occur within the interior of a plate (Bolt, 1993).

Environment Effect and Precautions:

There are multiple negative effects can be in terms of social, environmental and economic. An earthquake can bring great impacts to the society.

- The destructive effects of earthquakes are from landslides, tsunamis, fires, and fault rupture. The ground shakes violently and produces the greatest property losses and personal injuries.Earthquake destruction begins with the earth's violent shaking that can rupture the earth, trigger landslides and turn the surface of the earth to liquid. The serious damaging shaking of such severe earthquakes can be felt hundreds of miles away.

- One of the biggest impacts of earthquakes is the social impact on survivors.

- The environment also gets negatively impacted. Tsunamis are tidal waves that are created by the sudden movement of plates under the sea-floor during an underwater earthquake. For example, on December 26, 2004, a tsunami hit some nations around the Indian Ocean and caused hundreds of thousands of deaths. Landslides are also caused by earthquakes. It is very dangerous especially for buildings in hillsides or mountain area which is very vulnerable to earthquakes.

- Aftershocks are also effects of earthquakes. Aftershocks are small tremors which disperse it to other places and other people can feel it after the main shocks of an earthquake. For instance,when an earthquake happened in Sumatra, it was so great that in Penang, Malaysia where there were no earthquakes people experienced aftershocks.

- Apart from social and environmental impacts, earthquakes also have negative effects on a nation's economy. Governments have to be responsible for the damage caused by earthquakes. As we can see, earthquakes cause infrastructures to collapse, reservoirs dams, shops, and hospitals are devastated after an earthquake. Earthquakes also cause the spending of the capital to distribute food and medicine to victims. Economy and Marketsmay be disrupted.

Conclusion:

Earthquakes are hard to predict and can occur at any time. Tectonics plate movement, human activities and volcanic eruptions are three of the causes of earthquakes, whose effects can be realised socially, environmentally, and economically. Complete prevention of earthquakes is absolutely impossible, therefore suitable action to reduce injury and death is of uttermost importance. Some safety measures should be taken place, such as evacuation and safety building structures to resist earthquakes. In some countries, such as the United States and Japan carrying out research about public buildings designed to resist earthquakes.

These earthquakes and natural disasters are increasing the world over due to global warming, climate change and destruction of the environment. India is a country prone to earthquakes. It is a country located on major tectonic plates. Years ago earthquake-resistant technologies were not available and advanced. Infrastructures i.g. high rise buildings are prone to collapse during earthquakes. Much work is being done today in making buildings that are earthquake-resistant but unfortunately,the technology being used is not 100% perfect. And these techniques are currently limited to developed countries. In India, some experimentation has started on constructing quake resistant buildings in the Latur area of Gujarat. Retrofitting technology has now reached India. Government is working in this regard to making retro fitting mandatory in the construction of buildings.The seismic retrofitting strategy can be joined into any structure to make it more secure. This procedure will keep the structure from falling by 80%. The seismic retrofit technique can be incorporated into any building to make it safer. With the help of investment in the scientific study and research in this regard, could be very helpful in several ways.

References:

1. Bolt, B. A., 1993, Earthquakes: New York, New York, W. H. Freeman and Company, 331 p.
2. Rai, D.C., Narayan, J.P., Pankaj, Kumar, A., 1997, Jabalpur Earthquake of May 22, 1997: Reconnaissance Report, Department of Earthquake Engineering, University of Roorkee, Roorkee 247 667
3. GSI 1992, Uttarkashi Earthquake: October 20, 1991, Special Publication No. 30, Geological Survey of India, Calcutta.
4. GSI 1993, Bihar - Nepal Earthquake: August 20, 1988, Special Publication No. 31, Geological Survey of India, Calcutta.
5. GSI 1996, Killari Earthquake: 30 September 1993, Special Publication No. 37, Geological Survey of India, Calcutta.
6. Jain S K, Murty C V R, Arlekar J, Sinha R, Goyal A, and Jain C K, "Some Observations on Engineering Aspects of the Jabalpur Earthquake of 22 May 1997," EERI Special Earthquake Report, EERI Newsletter, Vol. 31, No. 8, August 1997, 8 pages.
7. Middlemiss,C.S., 1910, The Kangra Earthquake of 4th April 1905, Memoirs of the Geological Survey of India, Vol.38, pp 1- 409.
8. https://www.sciencedirect.com/science/article/abs/pii/0020138390901 46L.
9. https://www.usgs.gov/programs/earthquake-hazards/science-earthquakes.
10. https://www.sciencegate.app/keyword/143849.
11. https://www.britannica.com/science/earthquake-geology. https://library.cqpress.com/cqresearcher/document.php?id=cqresrre1969031900.

Udit Rana
Deptt. of Geography
Research Scholar (pursuing Ph.D)
UGC (NET) Geography
Baba Mastnath University
Rohtak- 124001

32

A Critical Analysis of Water Pollution and it's Laws in India

Dr. Pardeep Kumar Sharma

Abstract:

This paper deals with the environment degradation through highlighting water pollution in India. Spanning over in various parts, this paper looks at the position of water pollution and its impact over human race. In the first part, authors have projected the importance of water for humans. This part introduces the paper through describing that what water pollution is and what are the sources & types of water pollution. The next part of this paper deals with the critical analysis of the present environmental laws for protecting water. In this part, authors have relied on the findings of various scholars and have criticized the Laws under various heads. The third part of this paper deals with the judicial response to control water pollution. This part is case based part, wherein authors have dealt with the cases pertaining to environmental degradation and what were the views of Indian Judiciary and how it helps in lowering down water pollution. Authors have than concluded this paper with their views and suggestions to tackle to this problem so that this problem eradicates and the ultimate source of living remains unpolluted, i.e. Water.

INTRODUCTION: Earth's surface comprises of 70% of water which makes water the most precious natural resource. Without water the life on our mother planet would not have been possible. Therefore, it is essential for everything on our planet to grow and prosper. Although we as humans recognize this fact, we disregard it by polluting our rivers, lakes, and oceans. Subsequently, we are slowly but surely harming our planet to the point where organisms are dying at a very alarming rate. According to a report of Center for Science and Environment, about 81% of the country's total population has access to drinking water, but per capita availability has been reduced from 5000 cubic meters a year at the time of independence to 2000 cubic meters as of now, as the drinking water is getting effected. Pollution is the biggest threat to our existing water resources (both fresh water and seawater) as well as to mankind. For example, globally, estimates suggest that nearly 1.5 billion people lack safe drinking water and that at least 5 million deaths per year can be attributed to waterborne diseases. In India a staggering 70% of the available water is polluted. It is in this context that there is an urgent need to look at the matter and propose some solutions so as to make the current legal regime more productive and effective.

WATER POLLUTION AS A CONCEPT: AN ANALYSIS:- In India the primary objective of any legislation is to ensure social justice and well being through enforcement of certain codes of conduct. Legislation for environmental protection is also based on the recognition of the fact, it is necessary to abide by the requirements to prevent damage to the environment which is a common property. On this objective water law was enacted and it's never in dispute that water pollution come within the ambit of water laws in India. According to Water (Prevention and Control of Pollution) Act, 1974, " "pollution' means such contamination of water or such alteration of the physical, chemical or biological properties of water or such discharge of any sewage or trade effluent or of any other liquid, gaseous or solid substance into water (whether directly or indirectly) as may or is likely to, create a nuisance or render such water harmful or injurious to public health or safety, or to domestic, commercial, industrial, agricultural or other legitimate uses, or to the life and health of animals or plants or of aquatic organism."

According to Mr. R.K. Sinha, a working definition of water pollution could be "anything that changes the quality of our surface and subsoil waters to such a degree that its suitability, either for human consumption or for the support of man's natural life processes, will decrease or cease."

SOURCES OF WATER POLLUTION : The sources of water pollution are many and varied. They can be divided into two distinct categories, i.e. Direct and Indirect sources. Direct sources are those sources which are determinate and identifiable and occur when harmful substances are emitted directly into a body of water. Indirect sources are those sources which are indeterminate and not easily identifiable and deliver pollutants indirectly through environmental

changes. An example of this type of water pollution is when fertilizer from a field is carried into a stream by rain, in the form of run-off which in turn affects aquatic life.

TYPES OF WATER POLLUTION : Generally, the types of water pollution can be divided into following heads:

Agricultural Pollutants Pollution: Agricultural pollutants include fertilizers, herbicides and pesticides. Pollution caused by these agents is generally spread over vast areas by irrigation water or rain water, the pollutants include nitrates, phosphates and sulphates.

Industrial Pollution: Water pollution is also caused by industrial activities through discharging of the waste, floating matter, settleable solids, colloidal matter, dissolved solids, toxic substances, sullage etc. This is a major source of water pollution in India.

Radioactive Substances Pollution: This type of pollution is more difficult to handle. These materials are produced in the making of uranium and other radioactive substances or in testing of the thermonuclear devices that produce nuclides in blast devices and fallouts.

Sewage Pollution: This pollution consists of raw or partially treated domestic waste. When these wastes are discharged in rivers, it pollutes water and it degrades the environment and health of the people.

Thermal Pollution: This occurs due to power plants and factories. The excess heat discharged by power plants into a stream, lake or river causes pollution as an increase in natural temperature of water upsets the natural balance. Fish cannot survive in high temperature, which also kills natural foods of river life.

WATER POLLUTION: ENVIRONMENTAL LEGISLATIONS IN INDIA : The primary objective of any legislation is to ensure social justice and well being through enforcement of certain codes of conduct. Legislation for environmental protection is also based on the recognition of the fact, that, it is necessary to abide by the requirements to prevent damage to the environment which is a common property.

Environmental Legislation in India: Constitutional Framework : The Constitutional provisions provide the bed-rock for framing of environmental legislation in the country. According to the VII Schedule of the Indian Constitution, the areas of responsibility between the Central and State Governments have been defined through the subject grouped in Central, concurrent and State lists. Environment does not figure in any of these lists, as yet and there is no explicit provision for environmental protection in the Constitution although the directive principles, in the amendments of the Constitution, through Articles 48(A) and 51A (g) assign specific responsibilities on the State and the citizens. Most of the environment related laws enacted by the Parliament have been based on the Articles 252 and 253 of the Constitution.

The legal approaches to control water pollution can be divided into two stages:

1. Pre-independence legal approaches,
2. Post independence legal approaches.

PRE-INDEPENDENCE LEGAL APPROACHES

Common Law Remedy:- The origin of water pollution control law in India can be traced to the common law remedies introduced in the courts by British in the three Presidency Towns of Calcutta, Madras and Bombay. These Common law remedies were of three categories:

(i) Liability for Escape of Noxious Object:- The Strict Liability on a person for the damage caused by the escape of a dangerous or noxious object can be traced back to the famous rule in Rylands v. Fletcher, wherein Justice Blackburn observed:

"We think that true rule of law is that the person, who for his own purposes, brings on to his lands, and collects and keeps there, anything likely to do mischief if it escapes, must keep it there at his own peril and if he does not do so he is prima facie answerable for all the damage which is the natural consequence of its escape."

(ii) Careless Use of Noxious article or Pollutant:- The careless use of noxious article or pollutant could give rise to an action in law of negligence, as also in the law of nuisance.

(iii) The Infringement of Property Rights in Water :- Every riparian owner enjoys a natural right to the flow of water in his stream, substantially in quality and quantity. In this head it is interesting to note that under the Easement Act, every owner of land has a natural right that within his own limits, the water, which naturally passes of percolates by, over or through his land shall not before so passing or percolating-be unreasonably polluted by other persons. Thus it has been opined that the Act gives landowners and users a reasonable right to pollute. But the term 'reasonable' read with the spirit of the other provisions of the Act, nevertheless, a clear indication that pollution was to be prohibited to the greatest

extent possible.

(iv) According to Indian Penal Code, 1860:- Long standing concern for the purity of water and environment generally is evident from sections 277 and 278 of IPC, 1960. Section 277 lays down that whoever voluntarily corrupts or fouls the water of public spring or reservoir will be punished. Section 278 lays down that voluntarily vitiating the atmosphere in any place so as to make it noxious is punishable.

POST INDEPENDENCE LEGAL APPROACHES : There were many laws enacted in post independence era. Some of them which were enacted to eradicate or lessen water pollution are briefed in this paragraph. Section 12 of Factories Act, 1948, provides for effective arrangements for disposal of water and effluents by factories. Under Section 133 Criminal Procedure Code, 1973, the magistrate has been given powers to remove any unlawful constructions. Further, the Water (Prevention and Control of Pollution) Act, 1974 was promulgated as a Central Legislation under Article 252 of the Constitution. Since water belongs to the State list, a Resolution from two or more State Legislatures empowering the Parliament to enact the legislation on the subject was required. Also, the Act became effective at the State level and when it was adopted by the State Legislatures. Although the Act was passed in 1974, it took several years for its adoption throughout the country and for setting up enforcement machinery.

For the first time, a big attempt at prevention and control of water pollution was made by the Water (Prevention and Control of Pollution) Act, 1974(hereinafter water Act). This Act was enacted to provide for the prevention and control of water pollution and maintaining or restoring of wholesomeness of water, and for the aforesaid purposes to provide for the establishment of Boards for prevention and Control of Water Pollution and by conferring on such Boards adequate powers.

CRITICAL ANALYSIS OF THE PROVISIONS IN WATER ACT: It is often argued that our enforcement mechanism is very weak although the laws are very well drawn up. But, a careful analysis of the laws may reveal their inherent deficiencies which are closely linked to lapses in enforcement. There are many shortcomings in the provisions of the Water Act, 1974, which can be mentioned under different heads:

1. Definitional shortcomings: This Act does not make it clear whether is intention to pollute water is a prerequisite for application of this Act. The definition of the term 'Stream' in the Act does not include rain water, thereby giving right to pollute the rain water. Lastly, some very relevant and important terms like pollutants, toxic pollutants, discharge of pollutants etc. are not. defined.

2. Regarding Fines and Punishments: In this Act, the possible offences are not specifically defined and also the punishments prescribed are not applicable to for all probable violations.

Punishments mentioned in the Act are not such as to give a deterrent effect. Punishment is provided only if violation is committed "knowingly". It is not provided for "negligent" acts of the polluter. The Fines prescribed are also small and also, imprisonment as a punishment is not compulsory in all cases of violations.

3. Procedural Shortcomings: As per the legal provision for penal action against the polluters, the State Pollution Control Board has to file a case before the lower court for action against a polluting unit and the "onus of proof" is vested with the Board. In a good number of cases where decisions are taken, the polluters have been given the benefit of doubt because of technical reasons as the Boards could not adequately meet the "onus of proof". Another legal lacunae faced by the Pollution Control Boards relates to prosecution against public servants. According" to the provisions of Sec. 197 of the Cr. P.C., permission from the Government is required for prosecution of such persons and more often it becomes difficult for the Boards to take legal action against them. The Central Pollution Control Board can issue directions to the State Boards, which are binding on them. However, at the same time, the Act makes it obligatory for the Boards to comply with the directions of the concerned State Governments. There are occasions when the directions of two authorities are not mutually complementary and, at times, totally contradictory (vide Section 18 of The Water (Prevention and Control of Pollution) Act, 1974).

Another legal lacuna is that the key person for enforcement of this Act is the Chairman of the State Pollution Control Board who should be professionally qualified and appointed on a full time basis. However, the Act does not stipulate such requirement (vide section 4(2)(a) of The Water (Prevention and Control of Pollution) Act, 1974). Several State Pollution Control Boards are headed by

part-time Chairmen without requisite qualifications and experience. Also, the Member Secretaries of the Pollution Control Boards are often drawn either from administrative service or even forest service, who, do not have the requisite technical background in pollution control. As a result, it becomes difficult for them to provide proper leadership and guidance to their sub- ordinates.

4. Shortcomings with respect to Institutional framework:- The Pollution Control Boards are hardly equipped with the necessary wherewithal to cope up with these daunting tasks. Professional manpower and laboratory infrastructure for pollution monitoring are the basic requirements for effective functioning of the pollution control machinery. Secondly, the inadequacy in our enforcement mechanism is evident from a comparison with other countries. In USA, the Environment Protection Agency (EPA) has more than 10,000 employees while the Central Pollution Control Board (CPCB) in India has to make it with less than 500 personnel.

Thirdly, the Pollution Control Boards are expected to function as statutory autonomous bodies. But, in reality, the Boards cannot function in such a manner for various reasons including over- dependence on the Government for their existence. For effective functioning, the Pollution Control Boards should have the autonomy and over-ridding powers to enforce the laws. The Pollution Control Boards are expected to receive funds from the Government exchequer for their Plan and Non-plan expenditure. But, several State Governments have curbed and even totally stopped the "grants-in-aid" to the Boards.

JUDICIAL ROLE FOR CONTROL OF WATER POLLUTION: A CASE BASED ANALYSIS :- Although there are various laws enacted in India, but the enforcement of such laws is really failing in all terms. There are various reasons which are responsible for this failure such as lack of sensitivity amongst the law makers towards environmental problems and other reasons which have promoted the judiciary to step in and correct the wrongs.

One basic problem which arose in front of Indian judiciary was that the real development leads to the environmental degradation through industrialization. To resolve the issue, the Judiciary had to make a balance between economic development and preservation of the eco-systems; therefore judiciary came with a doctrine called 'Sustainable Development', i.e. there must be a balance between development and ecology. In the case of Subhash Kumar v. State of Bihar AIR 1991 SC 420 the Supreme Court emphasized the importance of protecting and conserving the natural environment. The scope of Article 21 was widened when the court read into it the "right to wholesome environment (vide Municipal Council ,Ratlam v. Vardhichand AIR 1980 SC 1622, M.C.Mehta v. U.O.I 1992 (3) SCC 256, Virender Gaur v. State of Haryana 1995 (2) SCC 577)." The court went even further and said, "The Right to Life includes the Right to enjoyment of pollution-free water and air for a fuller enjoyment of life."

The greatest milestone in the development of water quality control jurisprudence has been the string of Ganga Pollution Cases. In the Kanpur Tanneries case (M.C.Mehta v. U.O.I AIR 1988 SC 1037), which opened new vista in the direction of protecting environment and pollution caused by hazardous activities of the industries, the court has summed up the main causes of pollution of the Ganga precisely as "urban liquid waste" and "industrial waste surface run-off". Venkataramaih J; observed that:

"Under the law of the land, responsibility for treatment of the industrial effluents is that of the industry. While the concept of "strict liability" should be adhered to may require that plans for sewerage and treatment systems should consider industrial effluents as some cases, circumstances well".

The court directed the tanneries to set up Treatment Plants and held that the financial capacity of the polluter was irrelevant. Another case is The Kanpur Municipalities Case (M.C.Mehta v. U.O.L. AIR 1988 SC 1115). In this case the court suo moto laid down a series of guidelines for the municipality on issues like removal of wastes, construction of sewer lines, construction of urinals etc.

In another case of Indian Council for Enviro-Legal Action v. Union of India AIR 1996 SC were releasing highly toxic effluents and untreated sludge into the environment, leading to the 1446 popularly known as Bichhiri case struck a blow to chemical industries in Rajasthan, which pollution of underground aquifers. The court took the question of liability of the respondent from the different angle and stamped the validity of "polluter pays Principle" and "absolute liability" in this case.

Another historical case is the Vellore Tanneries Case (Vellore Citizens Welfare Forum v. U.O.I (1996) 5 SCC 647). A PIL was instituted by the plaintiffs against the 000 SC

tanneries in Tamilnadu, which had been releasing vast amount of untreated sludge into river water. As a result, arable lands, wells used for agriculture and drinking water sources were affected. The court in this case recognized 'the Precautionary Principle', reiterated 'Polluter Pays Principle' and fined the tanneries. In this case, the doctrine of "public Trust" was applied for the first time. More recently in the case of M.C.Mehta v. Kamal Nath and others AIR 2000 SC 1997, this doctrine of "public Trust" has been recognized and applied.

CONCLUSION AND SUGGESTIONS:- In earlier times the water was pure, but pollution made the situation worse. One of the probable reasons for this was the growth of population, and use of water without any prior planning etc. Thus the result is that the growth of resources is not keeping pace with the growth of in population and resources per capita are diminishing, as a consequence, there is an ever-increasing pressure on water resources too. This is resulting in large scale water pollution which is growing very rapidly. To combat the growing menace of water pollution in the country, the Union government had promulgated the Water (Prevention and Control of Pollution) Act, 1974 to preserve the wholesomeness of water. In addition, Environmental (Protection) Act, 1986 was passed and prior to that pollution Control Boards was established both at the union and state level.

It is essential that the water pollution control laws be made more stringent and adequate provision for funds and trained personnel to the agencies entrusted with the task be added. A proper State-Centre coordination and the strong determination should also be ensured. The role of judiciary in controlling water pollution and conservation has been laudable which are very clear from the number of cases decided by the Apex Court in India. The judicial activism has proved to be useful in these cases in controlling pollution of water and improvement of the environment. To tackle all these problems, there are various suggestions, but the foremost is the establishment of a National Environment Protection Authority is needed. Setting up of environment court to tackle pollution cases, more media involvement and dissemination of information through documentation centres is required at both centre as well as state level

Above all, it is necessary to make the best out of the existing conditions by generating social consciousness about environment by forming social action groups and the importance of people's participation in fighting the increasing menace of water pollution in our country, because it is all up to us either to perish or to preserve the environment and protect our mother planet Earth.

References

1. All India Reporter(s).
2. Centre for Science and Environment, Citizens' Fifth Report, 1999.
3. Chaturbedi, R.G. "Law on Protection of Environment and Prevention of Pollution", Deep and Deep Publication, New Delhi, 2001.
4. Dixit, D.K., "Thermal Plants and Pollution", The Hindustan Times, February 6, 1984.
5. Federal Water Pollution Control Act, 1972, Summary of the Law available on http://usinfo.state.gov/usa/infousa/laws/majorlaw/cwa.pdf (19th August 2005).
6. Gould, Gearge, A. and Grant, Douglas L., "Cases and Materials on Water Law", American Case Book Series, 6th edn, West Group, USA, 2000.
7. Kluger, Jeffery and Dorfman, Andera. 'The Challenge We Face", TIME, September 2, 2002.
8. Krishna Iyer, Environmental Pollution and the Law, 1984 at p. 95 quoted in Chaterjee, Benimadhab, 'Implementation problems and Perspectives, 2002.
9. Kumar, U. and Kakrani, B., "Water-Environment and Pollution", Agrobios, Jodhpur, 2000.
10. Lochr, Raymondc, 'Pollution Control for Agriculture', Academic Press Inc., New York, 1984.
11. Mangla, Bhupesh, "Pollution Seizes the city", the Hindustan Times Sunday magazine, June 5, 1988.
12. Pal, Chandra, "Environmental Pollution and Development: Environmental law, Policy and Role of Judiciary", Mittal Publication, 1st edn, New Delhi, 1999.
13. Pollution from Small Scale Industrial Sector of Delhi, availableonhttp://www.ncaer.org/Upload/others/106/Pollution.pdf.
14. Rosencranz, Armin & Divan, Shyam, 'Environmental Law and Policy in India', Oxford University Press, 2nd edn, New Delhi, 2001.
15. Roy, M.Harrison (ed.), "Pollution: Causes, Effects and Causes", University of Lancaster, London, 1983.
16. Sharma,Sudhirender,' Water Resources in India' available at www.infochangeindia.org.

17. Singh, Chhatrapati, Water Rights and Principles of Water Resource Management', ILI, 1991.
18. Sinha, R.K. "Marine and Water Environment: Pollution Control Laws", Ludian Publishers Distributors, New Delhi, 1999.
19. TERI, available at http://www.teri.res.in/teriin/peers/about.htm.
20. The Environmental (Protection) Act, 1986.
21. Water (Prevention and Control of Pollution) Act, 1974.
22. West Bengal Pollution Control Board guidelines available at: http://www.wbpcb.gov.in/html/orderdirections/idol_order_310804.pdf.

Dr. Pardeep Kumar Sharma
Associate professor
Department of Geography
Baba Mastnath University,
Asthal Bohar, Rohtak,Haryana

33

Challenges Among Woman Enterpreneurship In Rajasthan

Dr. G.P. Acharya

ABSTRACT

There is an array of challenges for women enterpreneurs in developing countries that arise from the socio-cultural, economic, legal, political, and technological environments withing their surroundings. Moreover, unfavourable conditions in local regulatory, normative, and cognitive systems place additional questions on wmen who desire to become entreprenuers or to expand an entrepreneurial business. The arguments to support women entrepreneurship in the context of Rajasthan socio-cultural environment are developed in this paper with a focus to understand better how such barriers affect the entrepreneural goalas. This study discusses the life framework, empowerment, and identifies socio-cultural factors that affect the entreprenuerial process among women.

Keywords : Women entrepreneurs; Social Values; Cultural Values; Entreprenuership; Female Entrepreneurship; Barriers; Empowerment; Entrepreneurial Procees.

Introduction

A country, which is rich in entrepreneurship, can attain economic augmentation. The entrepreneurs organize the economic ventures for producing goods and services at lower cost with objects of maximization of new employment and setting up new business. It is matter of firm belief that the economic development and social progress of women is the key to emancipation of women in its real sense. Women as entrepreneurs have become an important part of national development planning and strategies. The entrepreneurship shows the path to women independence and in turn satisfies the needs and aspirations for better living standard. In recent years, women have shown an inclination toward taking self oriented jobs and professions with their family support, financial assistance and industrial guidance.

Unequal access to education restricts women from acquiring even functional levels of literacy required to learn skills in terms of skill development, women are impeded by their lack of mobility, low literacy levels and prejudiced attitudes towards women.

When women negotiate with banks and government officials, others often ostracize them in their community for being 'too forward'. 'Government and bank officials have preconceived ideas and stereotypes of what is considered women's work and what women are capable of. The government has an important catalytic role in helping rural population mobilize their own entrepreneurship. An appropriate role of government agencies is therefore to create an enabling environment allowing rural SHGs to grow and perform their functions more effectively to the extent that they become independent, some such groups are unable to function effectively because of lack of professionalism, technical competence and entrepreneurial skills. The government thus also has an important capacity building role so that the SHGs develop into self-reliant organizations over time.

A different orientation is required in rural sector and an altogether different outlook is required for developing women entrepreneur that should be based on understanding of the dynamics of rural behaviour. The present effort was made to study problems faced by rural women entrepreneurs in Rajasthan. So that a clear picture of entreproneurial activities in rural areas is drawn, which may work as road map of entrepreneurial development in rural India and can help estimate how far have we come and how much is to be done in order to make rural women self-reliant.

Empirical evidence shows that women contribute signficantly to the running of family businesses mostly in the form of unpaid effort and skills. The value of this effort is underestimated both by the families that take it for granted and in academic studies. On the other hand, many of the enterprises defined as being run by women (that is enterprises in which women hold the controlling share) are in fact run in their names by men who control operations and decision making. Programmes meant to reach women entrepreneurs can succeed only if they take note of this paradox as well as of the familial and social conditioning that reduces the confidence, independence and mobility of women.

Women owned businesses are highly increasing in the economies of almost all countries. The hidden entrepreneurial potentials of women have gradually been changing with the growing sensitivity to the role and economic status in the society. Skill, knowledge and

adaptability in business are the main reasons for women to emerge into business ventures. 'Women Entrepreneur' is a person who accepts challenging role to meet her personal needs and become economically independent. A strong desire to do something positive is an inbuilt quality of entrepreneurial women, who is capable of contributing values in both family and social life. With the advent of media, women are aware of their own traits, rights and also the work situations. The glass ceilings are shattered and women are found indulged in every line of business from pappad to power cables. The challenges and opportunities provided to the women of digital era are growing rapidly that the job seekers are turning into job creators. They are flourishing as designers, interior decorators, exporters, publishers, garment manufacturers. and still exploring new avenues of economic participation. In India, although women constitute the majority of the total population, the entrepreneurial world is still a male dominated one. Women in advanced nations are recognized and are more prominent in the business world.

Promoting entrepreneurship for women will require an even greater reversal of traditional attitudes than the mere creation of jobs for women would. This does not mean that we should wait for societal change to take place first. But it does imply that the programme should go beyond subsidies and credit allocation to attitudinal changes, group formation, training and other support services.

Highly educated, techinically sound and professionally qualified women should be encouraged for managing their own business, rather than dependent on wage employment outlets. The unexplored talents of young women can be identified, trained and used for various types of industries to increase the productivity in the industrial sector. A desirable environment is necessary for every woman to inculcate entrepreneurial values and involve greatly in business dealings. The additional business opportunities that are recently approaching for women entrepreneurs are :

- Eco-friendly technology
- Bio-technology
- IT enabled enterprises
- Event Management
- Tourism Industry
- Telecommunication
- Plastic Materials
- Vermiculture
- Mineral Water
- Sericulture
- Floriculture
- Herbal & Health Care
- Food, fruits & vegetable processing.

Constraints Faced By Women Entrepreneurs In Rajasthan

a) Lack of confidence – In general, women lack confidence in their strength and competence. The family members and the society are reluctant to stand beside their entreprenuerial growth. To a certain extent, this situation is changing among Indian women and yet to face a tremendous change to increase the rate of growth in entrepreneurship.

b) Socio-cultural barriers - Women's family and personal obligations are sometimes a great barrier for succeeding In business career. Only few women are able to manage both home and business efficiently, devoting enough time to perform all their responsibilities in priority.

c) Market-oriented risks - Stiff competition in the market and lack of mobility of women make the dependence of women entrepreneurs on middleman indispensable. Many business women find it difficult to capture the market and make their products popular. They are not fully aware of the changing market conditions and hence can effectively utilize the services of media and internet.

d) Motivational factors - Self motivation can be realized through a mind set for a successful business, attitude to take up risk and behavior towards the business society by shouldering the social responsibilities. Other factors are family support, Government policies, financial assistance from public and private institutions and also the envionment suitable for women to establish business units.

e) Knowledge in Business Administration - Women must be educated and trained constantly to acquire the skills and knowledge in all the functional area of business management. This can facilitate women to excel in decision making process and develop a good business network.

f) Awareness about the financial assistarice - Various institutions in the financial sector, extend their maximum support in the form of incentives, loans, schemes etc. Even then every woman entrepreneur may not be aware of all the assistance provided by the institutions. So the sincere efforts taken towards women entrepreneurs may not reach the entrepreneurs in rural and backward areas.

g) Exposed to the training programs - Training programs and workshops for every type of entrepreneur is available through the social and welfare associations, based on duration, skill and the purpose of the training program. Such programs are really useful to new, rural and young entrepreneurs who want to set up a small and medium scale

unit on their own.

h) Identifying the available resources - Women are hesitant to find out the access to cater their needs in the financial and marketing areas. In spite of the mushrooming growth of associations, institutions, and the schemes from the government side, women are not enterprising and dynamic to optimize the resources in the form of reserves, assets mankind or business volunteers.

Challenges Faced By Women Enterprises In Rajasthan

In rural areas the economic condition of entrepreneurs is better than the others that are not involved in any entrepreneurial activity. In Rajasthan, livestock plays various roles in providing drought power for farm, manure for crops, and energy for cooking food for household consumption as well as marketing. In term of entrepreneurship, they were used for milk, meat, hairs production and marketing. The occupation, possession of land, house and live stock possession indicate stability of the families. It is due to this that the women of these rural areas were in a position to think about raising standard of living through entrepreneurship.

The possession also creates a positive atmosphre for entrepreneurship and gives courage to bear risks. The women in Rajasthan are involved in some or the, other income generating activity and thus entrepreneurial activity are their need, but still the NEW preferred other income generating activities in comparison to entrepreneurship.

Problems of Rural Women Entrepreneurs:

An entrepreneur may face variety of problems in the environment, which can be classified into social problems, entrepreneurial problems, financial problems and problems related to environmenla1 support. An entrepreneur may be attacked by any single problem or there may be an interactive and cumulative effect of number of problems.

Financing Difficulties

Credit is available for women through a plethora of schemes but there are still bottlenecks and gaps. The multiplicity of schemes is not adequaely listed nor is there networking among agencies. As a result, clients approaching one institution are not made aware of the best option for their requirements. A closely integrated data bank into which all concerned agencies are plugged is a real need. The Karnataka Women's Corporation has plans to set up a resource centre, which apart from acting as a data bank, will also provide counseling and prepare research and evaluation studies.

Limited sources, lack of awareness for sources of fund, lack of experience, inconvenience in procuring raw material, lack of financial skills, shortage of money and less earning capability. Problem in arranging finance at various stages of entrepreneurship, Procedure of Finance collecting, Lack of knowledge, Time consuming, Complicated in understanding and handling, High rate of interest and Fear of middle man.

Mostly women were not starting their income generation activity due to inconvenience in procuring raw material. Running the entrepreneur non-profitably and not being able to achieve the breakeven point leads to closure of number of entrepreneurs as found out by Paul (1996) and Bhandari (1996). The similar entrepreieurial problems are identified in the present study, which indicates that much has not changed in last 15 years.

Group financing is being extended through banks operating with NABARD refinance, under the IRDP and the training and production centre, programme implemented mainly through Mahila Samajas of the Rajasthan Women's Development Corporation. They concentrate on group formation and extend working capital grants to groups to encourage them to break the exorbitant debt burdens already in existence within the community for the beneficiaries. At the second stage, the beneficiaries move into individual or group activity with bank loans extended on group guarantees. Group formation has proved remarkably successful in empowering women and introducing them to income generating activity, animators and introducing them to income generating activity through bank loans. Such schemes need intensive monitoring and effort at the micro-level and are difficult to replicate.

A widely, utilised scheme was the Small Industries Development Bank of India (SIDBI)'s Mahila Udyam Nidhi which covers projects up to Rs 10 lakh and provides 15 percent margin money and a service charge of 1 percent (the promoters contribution is only 10 percent). This has been supplanted by the liberalised National Equity Fund scheme which covers entrepreneurs, where the margin money component has been fixed at 25 percent. A lower promoter's contribution is not desirable as it will reducre the entrepreneur's commitment to the success of the enterprise. In any case, for loans up to Rs 50,000, no promoter's contributions is being insisted upon.

For larger loans, no margin money assistance is generally available and women entrepreneurs have to follow norms applicable to others, that is to provide between 17 and 25 percent of the cost of fixed assets out of own resources. There is a case for setting up a fund for the purpose since irrespective of the name in which family assets are held

(surprisingly, quite a bit of family property is held in the name of women)

Women do not enjoy the authority to pledge, dispose of or otherwise encumber these assets, and families are notoriously wary of usiig them to support enterprises for the women in the family. But selection of beneficiaries should be rigorously done with all the precautions listed above to prevent the scheme from being hijacked by enterprises controlled by men.

The same situation applies in the case of collateral. There is a justified widespread demand for a waiver or reduction of collateral for women entrepreneurs because of the above difficulties. This has two implications. A generalised system of exemption of collateral for women entrepreneurs will definitely result in a proliferation of "women's" enterprises to take advantage of the facility. And bankers will find the open-ended benefit risky and tend to restrict financing under this scheme. This would be counter productive for our purpose. One practice, though not very satisfactory, that has been introduced in the Karnataka State Financial Corporation is again a screening approach, through a committee of representatives from concerned agencies to ensure that the beneficiary is indeed capable of running the project and is genuinely in need of relaxation of this condition. But larger coverage is possible only with the backing of a special fund created for the purpose, as done by Womens World Banking for example.

In the area of guarantees, several humiliating habits have become ingrained in financial institutions and banks. They tend to depend on male members accompanying women entrepreneurs for finalising projects proposed by women and almost invariably insist on guarantees from males in the family.

These degrading procedures should be scrapped and guarantees sought for any entrepreneur, male or female, only where the entrepreneur on record is totally unfamiliar with the project (in which case the guarantee of the person with expertise may be taken) or has inadequate net worth.

The second condition will not necessarily affect women alone since it is my experience that assets are often held in the names of women repeated gender sensitisation programmes should be held to train financiers to treat women with dignity and respect as persons in their own right.

Confidence In Marketing

A major area of difficulty for women entrepreneurs is marketing. Several initiatives have been put in place to remedy this defect. At the initial stages women prefer to be g locked into programmes which ensure almost total marketing support, since they seldom have the time or the confidence to seek out and develop markets. Even when they are otherwise in control of an enterprise, they often depend on males of the family in this area. Marketing means mobility and confidence in dealing with the external world, both of which women have been discouraged from developing by social conditioning. Women's development corporations try to hold frequent exhibitions and set up marketing outlets to provide space for the display of products made by women. Some NGOs have marketing vans. However, such arrangements are not adequately publicised and quality control is inadequate with no arrangement for adaptation to market requirements or consumer tastes.

The long term strategy should in any case be to inculcate marketing skills in women entrepreneurs to enable them to produce for the market. This means that a market survey to select the product should be made part of all training and advice given to expose enterprises to markets and make them responsive to them. Professional marketing expertise is essential to identify marketing channels for the products made by women entrepreneurs. Industrial estates could also provide marketing outlets for the display and sale of products made by women.

Unfamiliarity with the external world and lack of ease in moving around in it greatly hamper women when it comes to dealing with a multiplicity of agencies in setting up or running a business. It is here that, despite professional competence and training, women are forced to turn to men for assistance.

An experiment that was tried out in the Karnataka State Financial Corporation has received positive feedback. A Women Entrepreneur's Guidance Cell set up to handle the various problems of women entrepreneurs working directly under top management has proved a focal point for monitoring and assisting projects run by women. Similar cells in the District Industries Centres and Single Window Agencies could be extremely useful in assisting women. But they must on no account degenerate into routine departments and should be staffed with the most committed trained personnel and given continuing and total support by the head of the office.

A final area of concern in the case of women entrepreneurs is stagnation in thair growth. This is due to various reasons like the demands of household duties, mobility problems and the need to expand space and staff. It is also often due to psychological causes like lack of self-confidence and fear of success (women who succeed often

face hostility and resentment within their family circles). The necessary managerial and technical skills are also lacking, which is a barrier to the growth of women's businesses. Training and counselling on a large scale of existing successful women entrepreneurs who seem to have plateaued is a necessity.

Surprisingly, very little attention is being paid to this requirement by any agency, governmental or voluntary. Counselling through the aid of committed NGOs, psychologists, managerial experts and technical personnel could result in the development of appropriate strategies and enable growth.

Social Challenges

1. Feeling of Discrirnination

More than three-fourth of the women entrepreneurs of both the categories are facing the problem of feeling of discrimination due to caste, gender and educaticn level. Due to these discrimination problems like, biasness in sales, availability of raw material were faced them and they were thus not initiating income generating activity.

2. Social Problems

The social problem that is partially, overcome by entrepreneurial women are family interference, lack of supportive network, Acceptance of product by other caste, No help from informal groups, lack of coordination and sharing responsibility by informal group.

The women also reported lack of supportive network and ill help from friends/relatives. The social problem, works as demotivatiorin case of women of both the category. While the social problem may trigger the idea of not initiating entrepreneurship in any non-entrepreneurial women's mind, it functions as a strong set back for entrepreneurial women.

Entrepreneurial Problems

Entrepreneurial problems may lead to inability in earning sufficient incomes. The reason is the lack of experience and inconvenience in procuring raw material. Mostly women entrepreneurs are fighting with entrepreneurial problem.

Lack of awareness about Governmental Programmes: Government gives great support for entrepreneurial development especially in rural areas. It also runs special programmes and schemes for women. The support from govemment comes by way of financial, technical support, and assistance in procuring raw material, establishment of entrepreneurial unit and in other ways like subsidies, concessions and tax rebates. Most of rural entrepreneurs do not have any idea about any of such schemes accept that the banks and financial institutes provide loans. This indicates that there still exists a communication gap between the implementers. Followings are the main problems faced in rural enterprenuers.

1. Lack of knowledge about advantage / concessions of being women entrepreneur in rural area.
2. Lack of awareness about the tax concession, investment allowances in backward areas for a period of 10 years.
3. unknown to various government schemes.

The policy of the government has been to encourage the amalgamation of sick unit with profit making larger units and various schemes. Governmental . policies and planning and schemes are announces for them i.e.

- Sampoorna Gramin Rozgar Yojana .
- Swarn Jayanti Gram Swarozgar Yojana
- CAPART, Jila Garibi Unmulan Pariyojana, Industries Development Bank of India (IDBI)
- Small Industries Development Bank of India (SIDBI)
- Regional Rural Bank (RRB)
- National banks for agriculture and rural development (NABARD)
- Swayam Sidha, Swa-Shakti, Rastriya Mahila Kosh, Saving and loans facilities.

Conclusion

Empowering women entrepreneurs is essential for achieving the goals of sustainable development and the bottlenecks hindering their growth must be eradicated to entitle full participation in the busmess. Apart from training programs, Newsletters, mentoring, trade fairs and exhibitions also can be a source for entrepreneurial development. As a result, the desired outcomes of the business are quickly achieved and more of remunerative business opportunities are found. Henceforth, promoting entrepreneurship among women is certainly a short-cut to rapid economic growth and develópment. Let us try, to eliminate all forms of gender discriimination and thus allow 'women' to be an entrepreneur at par with men.

By probing into the problems it can be concluded that probably availability of finance is not as difficult as repayment of it is. The repayments are problematic due to low paying capacity, which is affected by lack of education, poor skills, and certain problems related to marketing viz lack of mobility, prejudiced attitude towards women and caste to which they belong and poor infrastructural support. Thus, if the women are to be successful entrepreneurs, they are to be educated, skilled and trained sufficiently and to be supported rigorously by external environment to handle their entrepreneurial problems.

References

- Bhandari K 1996. *Participation of Rural Artisan Couplesin Selected Trade and Problems by Them.* M.Sc. Thesis, Unpublished. Bikaner R.A.U.
- Decentralisation 2004. Internet Link http://www.theIndian experience:government's role Decentralization Govt. role / training / strength / SHG.htm. (Retrieved on 7.10.2006).
- Ganguly M 2001. Role of women in entrepreneurial development. *Social Change*, 20: 36-39.
- Mohamed HS 2001. Problems. of rural industries: *Kisan World.* 28(2): 49.
- Nazar Mohideen 2005. *Women Entrepreneurship and Small Scale Industries.* New Delhi: Himalaya Publishing House.
- Paul E 1996. *Entrepreneurship Development.* New Delhi Himalaya Publishing House.
- Sharma R 1997. *Economic Feasibility of Establishing a Small Scale Fruit and Vegetable Processing Unit.* M.Sc. Thesis, Unpublished.-Hisar: CCS Haryana Agriculture. University.
- Stimpson DV 1995. Attitudinal characteristics of male and female entrepreneurs in United State and India. *Journal of Psychological Studies,* 38(2): 64-68.
- Tuladhar G 1996. Factors affecting women entrepreneurship in small and cottage industries in India opportunities and constraints. Internet : http://www.globalhemp.com/nèws: 80/05. 142000/ Small scale 48948.htm.

Dr. G.P. Acharya
Associate Professor
S.G.G. Govt. College, Bnaswara
(Rajasthan)

34

Role of Structuralism In Literature

Dr. Poonam Nigam Sahay, Priya

Abstract

The present paper entitled "Role Of Structuralism In Literature" underline the importance of Structuralism in literature. The main focus of our study is to cultivate how Structuralism help in literature. structuralism dramatically influences literature and the way critics used to perceive and criticize the literary texts. Literary theory employs a structuralist approach to examine the underlying principles of text composition. Structuralism is a method of interpreting and analysing such things as language, literature, and society, which focuses on contrasting ideas or elements of structure and attempts to show how they relate to the whole structure The structuralist emerges from theories of language and linguistics, and it looks for underlying elements in culture and literature that can be connected so that critics can develop general conclusions about the individual works and the systems from which they emerge.

Keywords: Structuralism, English, Role, Impact, Literature.

Introduction:

The word "structure" has been used in different contexts in various disciplines of science and Humanities. It is used in physics as the structure of an atom or in chemistry as the structure of a compound. In social science it is widely used as theoretical position that finds meaning in the relation between things, rather than in things in isolation. In other words, it gives primacy to pattern over substance. We all can speak structure a sentence paragraph, a chapter, a book, and so on. The formal structure of play consist of its acts and scenes and their independence balance the non-formal structure comprises the event and action which takes place.

In sociology, anthropology, archaeology, and linguistics, structuralism is a general theory of culture and methodology that implies that elements of human culture must be understood by way of their relationship to a broader system. It works to uncover the structures that underlie all the things that humans do, think, perceive, and feel.

Philosopher, Simon Blackburn in his book Oxford Dictionary Of Philosophy is of the view that:

" Structuralism is the belief that phenomena of human life are not intelligible except through their interrelations. These relations constitute a structure, and behind local variations in the surface phenomena there are constant laws of abstract structure."

Structuralism focuses on literature as a system of signs in which meaning is constructed within a context. Words inscribed with meaning may be compared to other words and structures to determine their meaning. Structuralism enjoyed popularity in the 1950s and 1960s in both European and American literary theory and criticism. Structuralism focuses on literature as a system of signs in which meaning is constructed within a context. Cultural communities determine the meanings and relationships of signs. Criticism that uses a structuralist approach analyzes patterns, narrative operations, and/or codes of operation to interpret the text and the culture from which it emerges, exploring underlying structures that make the creation of meaning possible.

The popular structuralist critic Terence Hawkes in his book Structuralism And Semiotics is of the view that:

"As a way of thinking about the world which is predominantly concerned with the description of structures."According to Oxford Advanced Learner's Dictionary the word Structuralism means:

"Structuralism is a theory that considers any text as a structure whose various parts only have meaning when they are considered in relation to each other compare deconstruction."

Structuralism is a method of interpreting and analysing such things as language, literature, and society, which focuses on contrasting ideas or elements of structure and attempts to show how they relate to the whole structure.

Ferdinand De Saussure, a great linguistics in his book The Structuralism express his view about Structuralism:

"A structuralism considered language as a system of signs and signification, the elements of which are understandable only in relation to each other and to system."

In literary theory, structuralism challenged the belief that a work of literature reflected a given reality; instead, a text was constituted of linguistic conventions and situated among other texts. Structuralist critics analysed

material by examining underlying structures, such as characterization or plot, and attempted to show how these patterns were universal and could thus be used to develop general conclusions about both individual works and the systems from which they emerged. Structuralism which emerged as a trend in the 1950s challenged New Criticism and rejected Sartre's existentialism and its notion of radical human freedom; it focused instead how human behaviour is determined by cultural, social and psychological structures. It tended to offer a single unified approach to human life that would embrace all disciplines.

Dorothy Baisch Seiz ones quote about Structuralism:

"Structure is a set of term in relationship constantly defined it as a system of transformation."

Structure implies a system a system is a whole, a totality. A structure had element. Element can be arranged or rearranged. Arrangements or rearrangement will modify the structure, but will not change the structure. Structuralism is a movement that gives importance to the underlying structure of a literary text. It pays great importance to the structural similarities within various texts, whereas the individual work content are neglected. It sees the world in two fundamental levels. Firstly as visible or a surface phenomenon for example activities and objects of everyday life. Secondly, Structuralist see the world as invisible where there are structures underlying all the phenomena to make understanding of the world.

Structuralist theory, a text is free from context, history, readers interpretation and isolated from the author itself. Meaning of any text then solely comes from rules and underlying system which governs it.

Raman Selden in his book A Reader's Guide to Contemporary Literary Theory state that:

"What we see on the surface are the traces of a deeper history; only by excavating beneath the surface will we discover the geological strata or the ground planes which provide true explanations of what we see above."

Structuralism began in linguistics and spread to anthropology, philosophy, literary criticism, and other fields. Its founder was Ferdinand de Saussure(1857–1913), a Swiss linguist who wanted to move beyond the historical interests that dominated his field in the early twentieth century. Although the work he published during his lifetime was entirely in the historical tradition, he left behind lectures given between 1906 and 1911 that set the scene for a new synchronic, structural analysis of language. These were published posthumously as the Course in General Linguistics (1916).

In the Course, Saussure made four distinctions which are now commonplace both in language studies and in many social sciences. The most important is the distinction between synchronic (at the same time) and diachronic (through time). His own interest in the (synchronic) structure of language was thus contrasted to others' interests in the (diachronic) history of languages. The second was between langue and parole —the French words always being used for this distinction. Langue refers to "language" in the sense of linguistic structure or grammar and, by extension (e.g., later, in anthropology or sociology), to the "grammar" of a culture or society. Parole means "speech" or actual utterances of individuals and, by extension, the actual actions of individuals in a social structure. The third distinction was between syntagmatic and associative (later called paradigmatic) relations. The former are relations between words or smaller units within a sentence and, by extension, the relations between elements with a cultural "sentence" such as the traffic light sequence mentioned above. The latter marks the relation between those elements and what they mean. Finally, Saussure considered the relation between signifier (a word or symbol that stands for something) and signified (what it means), these two elements together making up what he called the sign. He stressed that the sign is arbitrary: It depends on knowing the language.

David Richter in his book Structuralism and Deconstruction state that:

"In fact, structuralism maintains that ...practically everything we do that is specifically human is expressed in language."

Structuralism is the intellectual movement and philosophical orientation often associated initially with the Western discourses of Levi-Strauss, Marx, and Althusser It was R. Jakobson who coined the term in 1929 in reference to an emerging new method which was being used at the time in linguistics, as well as other disciplines such as literary studies, psychology, sociology and anthropology.

Although it is dif?cult to ?nd a set of common criteria in which all structuralists would agree, a number of general principles seem to unite at least Saussurean structuralism and the various schools which developed from it after World War I. These principles were interpreted in various ways by different scholars who supplemented them with own theoretical and epistemological assumptions and did not agree with everything written. For that reason, Saussure's general principles are discussed in a separate sections. Saussure suggested some principles about Structuralism.

Role of Structuralism in language:

1) Languages should be studied as systems, and the relations constituting a language system have priority over the linguistic units they generate. Structuralism constitutes a radical rejection of the atomism of the neogrammarians who dominated the latter decades of 19th century linguistics.

2) Languages should ?rst be studied from a synchronic point of view, not a diachronic one, since the latter is dependent on the former. From Structuralism synchronic viewpoint a language is a system of signs for its speakers. Again, this was a reaction to the predominantly historical perspective of 19th century linguistics.

3) Structuralists tend to stress the autonomy of the language system vis- à -vis other aspects of language, such as sociological, psychological and pragmatic or discourse factors, which are considered 'external'. Different structuralist schools, however, held different opinions on this particular issue. The view that language is an autonomous, self-contained system also entails that there are as many particular systems as there are languages (which, of course, does not exclude cross-linguistic similarities nor the existence of language universals).

4) Structuralists put particular emphasis on the view that meaning is an inherent aspect of the language system, not reducible to external factors or reference. Moreover, they postulated that meaning can be analysed with understanding. Structuralism is a method of interpreting and analyzing such things as language, literature, and society, which focuses on contrasting ideas or elements of structure and attempts to show how they relate to the whole structure.

Jean Piaget in his book Structuralism mentioned that:

" Structuralism as "a method and not a doctrine," because, "there exists no structure without a construction, abstract or genetic."

Richard Harland in his book Superstructuralism is of the view that:

"Structuralists is, general are concerned to know the human world- to uncover it through detailed observation analysis and to map it out under extended explicatory grids their goal the traditional goal of truth."

Ferdinand De Saussure in his book Course In General Linguistics state that:

"The linguistics sign writes not a thing and a name but a concept and a sound image."

Everything in the theory of structuralism is the product of system of signification or code. The relationship between the elements of the code give it signification. Coded are arbitrary and without them we cannot apprehend reality. Literature and literary criticism are concerned, Structuralism challenge's the long-standing belief that a work of literature or any literary text reflects a given reality. A literary text is, rather, constituted of other convections and texts. In literary theory, structuralist criticism relates literary texts to a larger structure, which may be a particular genre, a range of intertextual connections, a model of a universal narrative structure, or a system of recurrent patterns or motif.

Ferdinand De Saussure further state that:

"Structuralism is in explicit opposition to mimetic criticism, to expressive criticism."

Saussure's point out that literature id primarily an imitation of reality as it expresses the feeling or temperament or creative imagination of its author. Literature is a mode of communication between author and readers. More generally, in its attempt to develop a science of literature and in many of its salient concept, Structuralism departs radically from the assumption and ruling ideas of traditional humanistic criticism.

Impact of Structuralism in literature:

1) Importance of text:- in the Structuralists view, a literary works become simply a text that is, a mode of writing constituted by w play of components and coded.

2) Reader is centrally important:- Structuralism replace the author by the reader. Reader become centrally important. A reader when read a text it become the reader text what he read and observed by its reading.

3) Imaginative world:- Structuralism gives a broad perspective to there readers. The mind of the reader become an empty space where he/she could developed an imaginative world while reading a texts.

4) Development of thought:- Structuralism always refers to a new theory. Like everything is changing in the world according to the environment and situation it gives the readers to develop their own idea and thought about the text that they read. So with that they can easily relate themselves according to the work of the writer.

Jonathan Culler in his book Structuralist Poetics: Structuralism, Linguistics And The Study Of Literature is of the view that:

"One must attempt to explain how it is that works can be understood the implicit knowledge the convention that enable readers to make sense of them must be formulated."

Jonathan Culler in his book Structuralist Poetics: Structuralism, Linguistics And The Study Of Literature state further:

"Structuralism is based in the first instance, on the realisation that if human actions and production have a meaning there

must be an underlying system of distinction and convention which makes meaning possible. At the heart of Structuralism is, the idea of a system. Every literary unit from individual sentence to the whole order of words can be seen in relation to the concept of a system."

Conclusion:

In this conclusion my attempt is to show how Structuralism is an important feature in learning a language and its development. In this paper I mentioned several points which help the students in knowing about Structuralism and its role in literature. My aim is to to highlight and make the students aware about structuralism in literature, structuralism challenged the belief that a work of literature reflected a given reality; instead, a text was constituted of linguistic conventions and situated among other texts. Structuralism gives importance to language and its element as well as the terminology used to define it that how a single word form in a structure of a sentence. In the field of literature Structuralism is an important feature it gives us a theory that is different from linguistics. It shows us a new way of writing and understanding both. Structuralists intention is to define the condition that permit the very creation of a poem, a novel, or a play. The Structuralists operates upon a piece of literature to discover the principles that allowed the arrangement of words and phrases into a piece of literature. His assumption is that literature can make meaning , like the eating of a food can make meaning, kicking a ball can make meaning, because of a system of belief and notion which are called convention. The desire for a system in a Structuralists pursuit is a desire to look behind the literary production so that what enables that production can be understood.

References:

1) Blackhum, Simon. (2008). Dictionary Of Philosophy. Oxford: Oxford University Press. p. 353.
2) Hawkes, Terence. (2003). Structuralism And Semiotics. United Kingdom: Taylor and Francis Group Of Publication. p. 23.
3) Hornby, A.S. (1948). Oxford Advanced Learner's Dictionary. Oxford: Oxford University Press. p. 1345.
4) Saussure, Ferdinand. (1916). Structuralism. Oxford: Oxford University Press. p. 34.
5) Seiz, Baisch Dorothy. (1967). A Critical Approach To Structuralism. Cambridge: Cambridge University Press. p. 45.
6) Selden, Raman. (1985). A Readers Guide To Contemporary Literary Theory. Kentucky: Kentucky University Press. p. 52.
7) Richter, David. (1986). Structuralism And Deconstruction. Cambridge: Cambridge University Press. p. 809.
8) Piaget, Jean. (1971). Structuralism. Oxford: Oxford University Press. p. 82.
9) Harland, Richard. (1987). Superstructuralism. United Kingdom: Taylor And Francis Group Of Publication. p. 104.
10) Saussure, De Ferdinand. (1916). Course In General Linguistics. Columbia: Columbia University Press. p. 56.
11) Ibid. p. 78.
12) Culler, Jonathan. (1975). Structuralist Poetics: Structuralism, Linguistics And The Study Of Literature. Ithaca: Cornell University Press. p. 34.
13) Ibid. p. 45.

Dr. Poonam Nigam Sahay & Priya
C/O Shiwendra Kumar Dubey,
krishi Vigyan Kendra,
Chatra kullu.
Post- Tapej
Pin Code - 825401.
Jharkhand
Contact no - 7488460046, 9431325610.

35

An Analytical Study of hydro Politics in Indian Subcontinent

Ajit Singh

Abstract

International rivers have worldwide been a source of conflict as well as a catalyst for cooperation. The fact that water is a scarce resource characterized by its spatial and seasonal variations with no substitute and over which there is total dependency, has heightened both conflict and cooperation over a large number of international rivers. In some areas of the world, the competing demands of states over the waters of the shared rivers have escalated into tensions and disputes. Some of the disputes have led to open conflicts and defied resolution for a long time. In contrast, international rivers have also provided an incentive for riparian states to discuss and agree on modalities for cooperation. Such cooperation modalities have taken various forms covering the quantitative and qualitative aspects of the waters of international rivers as well as programs for development of the shared resource such as joint hydropower, irrigation and flood control projects. The focus of this study is on the Hydro power cooperation, sharing of water of International River and affect of building dam on Transboundary Rivers in the Indian Subcontinent region with special references to Pakistan, Nepal and Bangladesh. This paper traces the impact and development of these misperceptions on international river water through different phases before considering the future of the relationship.

Introduction

Water is the most precious resources on earth and about 71% earth's surface are covered by water in which 97% water is non-portable or unhealthy for human consumption. The demand of water is increasingly in many parts of the world, largely because of population growth and the needs of urbanization and industrialization. The resulting competition for the scarce water gives rise to complex international problems as the states that share the waters of international drainage basins seek to satisfy their pressing needs. This situation is particularly true about the Indian Sub-continent. The Indian subcontinent is a physiographical region of South Asia which generally includes the countries of India, Bangladesh, Bhutan, Nepal, Pakistan, Maldives and Sri Lanka. Although the geopolitical term of South Asia frequently includes Afghanistan also.

The Himalayan Block of Indian subcontinent encompasses some 20 major rivers which run through it and make many basins including of the Indus, the Ganges and the Brahmaputra which affect not only the countries of the Sub-continent but China also. These rivers are being of particular international legal importance. These rivers are some time became bone of contention between the Indian Subcontinent countries and China. A sharp seasonal variation in the volume of water flows due to climatic phenomena such as monsoons, climate change, global warming, El Niño effect and droughts occurring in the territory of some countries added to the difficulty of finding equitable and durable water-sharing arrangements. The situation is exacerbated by the fact that the Sub-continent is also one of the poorest areas of the world. Moreover, in the last 20 years, the population of the area has been increased sharply but resources of available water depleted rapidly due to over population growth, expanding urbanization and fast-growing needs for irrigation and power generation.

River system of Indian sub continent

Indian Subcontinent is one of the most water stressed region that has had to deal with some of the most difficult disputes over international rivers. It is one of the most densely populated parts of the world and includes a large number of poor people. Nearly 2 billion people live in the countries of the Sub-continent which represents almost 25 percent of the world population wherein India has only 4% of global freshwater resources but holds the second largest population on earth (18.5% of the total) after China. Currently, one third of India's population is living in water stressed regions which is expected to increase further. As per World Resources Institute, India is one of those 17 countries in the world which is going through high water stress conditions. In spite of these water scarcity, India is a home of many major rivers in which many have origin outside India and jointly shared by Pakistan, Nepal and Bangladesh.

The river systems of the Himalayan region can be divided into three sub-regions. The Western Himalayan sub-region includes the Indus system to which the Jhelum, Chenab, Ravi, Beas and Sutlej Rivers belong. The Indus

River system is shared by India and Pakistan as well as China and Afghanistan. The Central Himalayan sub region includes the Ganges system of which the Yamuna, Ramganga, Mahakali, Karnali, Gandak and Kosi Rivers are part of it. The Eastern Himalayan sub-region includes the Brahmaputra system to which the Teesta, Raidak, Subansiri, Diabang, Lohit and Manas Rivers belong. The Brahmaputra river system is shared by India, Bangladesh, Bhutan and China. Several other tributaries of these rivers also flow into more than one country, thus falling into the category of international rivers as well. River water has always played a critical role in the Indian Sub-continent, perhaps much more than most other parts of the world. Irrigated agriculture provides living for a large number of people and uses a very high percentage of water. Rivers are also a major producer of electric power, a main source for fisheries and an important conduit for inland transportation including carriage of goods. During the monsoon season when the water level is quite high in those rivers, they are an important source for recharging groundwater. But over population, rapid industrialisation & globalisation and impact of global warming & climate change has increased the burden of water scarcity. Due to these issues, dependencies of concerned countries have been increased on the Himalayan flowing rivers and became the issues of their conflicts among the Indian Subcontinent countries with China.

Agreement and disputes of water with Pakistan, Nepal and Bangladesh

The dispute between India and Pakistan over water distribution of the Indus River system is one of the most challenging conflicts which are settled by Indus Waters Treaty of 1960. The Treaty allocates the Western Rivers (Indus, Jhelum and Chenab) to Pakistan and the Eastern Rivers (Ravi, Beas, Sutlej) to India. The Treaty sets out a mechanism for cooperation and information exchange between the two countries regarding their use of the rivers, known as the Permanent Indus Commission which has a commissioner from each country. But the issue is not resolved here, when India constructed hydroelectric power plants/dam on the Kishenganga (330 megawatts) and Ratle (850 megawatts) river, Pakistan objected the construction of the dam.

Water is becoming an existential issue for Pakistan. The country is facing a grim situation regarding its fast-depleting fresh water resources. Pakistan has been attributing its problems of water scarcity to Indian action of constructing hydel projects on the western rivers. The prospect of two nuclear-armed rivals becoming enmeshed in increasing tensions over a critical resource like water is unsettling and poses highly troubling implications for security in Indian Subcontinent and the world on the whole, said by Michael Kugelman, a senior associate for Indian Subcontinent at the Woodrow Wilson Centre in Washington. Global agencies have made dire predictions that Pakistan will face mass water scarcity by 2025. Already availability per capita has dropped by a third since 1991 to 1,017 cubic meters, according to the International Monetary Fund. The worsening effects of climate change on the Himalayan glaciers, over population, rapid industrialization and globalization could increase the likelihood of disasters and threaten the long-term water security of communities. All these factors have implications for future interstate cooperation and regional developments.

Nepal is a small landlocked and poor upstream state in Indian Subcontinent in context of India. Nepal and India have a long history of water relationship. All the rivers of Nepal including those originating from Tibet drain to India and join the Bay of Bengal through Bangladesh. The two Indian Subcontinent neighbours have entered into a number of agreements/treaties on water resources namely Sarada agreement (1920), Kosi Agreement (1954), Gandak Agreement and Mahakali Treaty (1996) apart from Ganga river. Water cooperation between Nepal and India has been made on major rivers essentially for large hydroelectric and irrigation projects by building dams or barrages. However, there are also many other issues like flood and inundations between Nepal and India in border areas. Nepal blames India for inundating the Nepalese territory constructing barrages, roads and embankments near to the international boundary that adversely affects the natural flow of rivers.

The relation of India and Bangladesh are problematic due to the sharing of water of the Ganges and Teesta Rivers. While India is the downstream state in relation to Nepal and China, it is the upstream state in relation to Bangladesh & Pakistan and is therefore in a position to affect the flow of the Ganges and the Brahmaputra into Bangladesh. In fact, India has diverted water from the Ganges to Hooghly river by constructing the barrage at Farakka for the benefit of the port at Calcutta, thus seriously affecting Bangladesh by depriving it of desperately needed water during the dry season of January to June months. Bangladesh strongly protested this diversion and questioned its legality. After making several temporary agreements providing for allocations of the waters of the river, India and Bangladesh entered into the Ganges Treaty in 1996,

allocating the waters for the next 30 years. Another issue, however, remains to be dealt with. Bangladesh urgently needs protection from floods from the Ganges during the monsoon period. Such flood control can only be achieved by storage of the waters upstream, mainly in Nepal as tributaries of Ganga flow from Nepal and therefore depends upon the cooperation of the three concerned states.

Issues with China on river

The Tibetan plateau is often called the "Third Pole", owing to its glacial expanses and vast reserves of freshwater. India relies heavily on Tibetan water as it receives almost one-third of its water supply. China has claimed and expressed ownership over Tibet's waters, making it an upstream controller of seven of Indian Subcontinent's mightiest rivers like the Indus, Ganges, Brahmaputra, Irrawaddy, Salween, Yangtze and Mekong. These rivers flow into Pakistan, India, Bangladesh, Myanmar, Laos and Vietnam and form the largest river run-off from any single location. It is estimated that about 718 billion cubic meters of surface water flows out of the Tibetan plateau to the neighboring countries every year. The water of Satluj, Indus and Brahmaputra rivers which originates from China administrative Tibet, flow from India to Pakistan and Bangladesh. Both China and India are water-scarce countries that will face significant challenges to food and water security in the future. Due to multiple causes, both India and China are stressed for water. This water stress contributes to tensions between the two countries. Climate change, depleting aquifers, rapid population growth and urbanization are placing pressure on scarce water resources within the two countries.

Due to these reasons and in addition to meet its irrigation and power needs, China is making large-scale infrastructure projects such as the South-North Water Diversion Project and West-East Power Transfer Project on Brahmaputra River. It is feared that "directional blasting techniques could be used to divert the water of Brahmaputra to North China at the u-bend" before it enters India through the state of Arunachal Pradesh. China wants to use water as weapon and has already blocked the flow of the Xiabuqu river, one of Brahmaputra's Tibetan tributaries, for the Lalho hydel project. Even in Pakistan-Occupied Kashmir, China has promised to Pakistan for finance and build five dams that will form the North Indus River Cascade. China is also making major infrastructure project in Kashmir & part of the China Pakistan Economic Corridor which is tied into China's massive Belt & Road initiative. More recently, in the aftermath of border clashes between India and China in the Galwan Valley from May, China blocked the flow of the Galwan River, a tributary of the Indus which originates in Chinese-controlled Aksai Chin area, thus altering the natural course of the river to prevent it from entering India.

Methdology of The Study:

The research work is based on historical, descriptive and analytical methods. The research data is collected from primary and secondary sources. The research problem is analysed from historical and descriptive perspective. Data accumulated through both primary and secondary sources are systematized, analysed, and interpreted on the basic premise of water sharing and distribution among the countries and the irrespective point-of-view, impacts of water conflicts on the social, political, and economic status of these countries.

Conclusions

The present paper is help to understand the importance of water sharing between India and its neighbours (Pakistan, Nepal and Bangladesh) along with China. Water has emerged as a key issue that could determine whether Indian Subcontinent is headed towards cooperation or competition. The risk of water becoming a trigger for war or diplomatic strong arming is especially high in Indian Subcontinent which is home to one fourth of the human population yet has the lowest per capita water for industrial, food production and household needs. Further Indian Subcontinent's scarce water resources facing a threat from China's uncontrolled damming of every major international river flowing out of the Tibetan Plateau which will impact's water share of the region. This situation can trigger conflict, thus underscoring the need for institutionalized cooperation on shared resources. In this context, this study tries to look into the prospects from where the sharing of transboundary river waters is resolved by mutual understanding, peaceful negotiation and institutional building by the neighbouring countries. The present paper is focus on how to Indian Subcontinent nations to invest in institutionalised cooperation on transnational basin resources to help underpin strategic stability and ensure that the struggle for water does not become a tipping point for war. Adoption of internationally accepted principles for sharing transboundary water would strengthen mutual cooperation. Thus; working with a common interest for mutual benefits through equitable utilization will be compatible with the international principles.

The present paper sheds some light on the challenges and tries to find out a new strategic approach which can mitigate dispute/conflict over water politics. Only

collective efforts of all the Indian Subcontinent countries and China can help to unlock the situation. The new battle line is being drawn in Indian Subcontinent with China over transboundary water resources highlight the risk of greater interstate water conflict. Managing water resources through proper cropping pattern, well irrigation practices, rain water harvesting, drip irrigation practices and combining traditional knowledge with modern technology and changes of societies thinking about preserving water are fundamentally require for future saving of water in the Indian Subcontinent countries . While it is essential to formulate water policies that are holistic, participatory, ecologically sound, the political significance of water especially in region where water availability is increasingly being challenged by growing populations cannot be overlooked. The paper also analyse the failure of efforts at co-operation over river water in the past. This paper is limited to India's transboundary river water issues with Pakistan, Nepal & Bangladesh in the Indian Subcontinent region. It is not possible to observe the much-needed fieldwork in neighbouring territories since it is a matter of security. This paper is on foreign policy as well as on water resource management and it will be of interest to policymakers.

References:

1. Chellaney, Brahma. Asia's new battleground. New Delhi: Harper Collins India (2019).
2. Chellaney, Brahma. Water peace and war: Confronting the global water crisis. USA: Rawman & Littlefield publication (2013).
3. Ganesh, Pangare. Hydro Diplomacy: Sharing water across borders. New Delhi: Academic Foundation (2014).
4. Jairath, Jasveen. Drought and integrated water resource management in South Asia. New Delhi: Sage India (2008).
5. Kalyan, Rudra. Rivers of the Ganga-Brahmaputra-Meghna Delta:: A Fluvial Account of Bengal. Switzerland
: Springer International Publishing (2018).
6. Michel, David. Water conflict Pathways & Peace building strategies. Washington DC: United States Institute of Peace (2020).
7. Narain, Vishal & Prakash, Anjal. Water Scarcity in Peri-urban South Asia-adapting to climate change and urbanization. New Delhi, OUP India (2016).
8. Naseeruddin & Adil. Hydro Politics in Pakistan. Pakistan: Gandhara Research Society (2018).
9. Ranjan, Amit. Contested War-India's Transboundary river water disputes in Indian Subcontinent. New Delhi: Routledge India (2020),
10. Rudra, Kalyan. Rivers of the Ganga-Brahmaputra-Meghna Delta: A Fluvial Account of Bengal. Switzerland : Springer International (2018).
11. Salman, M.A. Salman & Uprety, Kishor. Conflict & Cooperation on Indian Subcontinent's International rivers: a legal perspective. Washington D.C.: IBRD/World Bank (2003)
12. Sinha, Uttam Kumar. Indus basin: The Indus Waters Treaty between India and Pakistan. New Delhi: Penguin Random House India (2021).
13. Sinha, Uttam Kumar. Riverine Neighbourhood: Hydro-Politics in South Asia. New Delhi: IDSA & Pentagon Press (2016).

By

Ajit Singh

Ph.D. Research Scholar

Dept of Political Science,

Maharishi Dayanand University,

Rohtak-124001

9739756463

36

Significance of Communication Skills and Spoken English for Learners of English Language

Dr. Poonam Mor, Dr. Aparna

Abstract

Most Indian students learn English as 3rd language. Science, commerce students study English one year during their graduation. However, they need proficiency in English for higher studies. This paper presents that Communication skills and Spoken English play an important role in establishing students as efficient professionals. So, it should be made mandatory for all faculties, since the students spend major time with teachers of other subjects. If the teachers have good skills in communication and spoken English, students will certainly be benefitted. For English proficiency of students in it is necessary that teachers are proficient users.

Keywords: Communication; Spoken English, Proficiency, Efficient professionals, Acquisition

Introduction

English remains a problem subject for majority of our students at all levels; yet the subject cannot be done away with as English is the Language of International Communication and our students need to compete at international level, and knowledge of English is a must for that. English may not be the most spoken language in the world, but it is the official language of more than 50 countries and spoken by around 400 million people across the globe. According to a projection by 2020 two billion people in the world will be studying English. It is the most common second language in the world and thus becomes the language of communication between two people from two different nationalities.

English is the language of all advancement -- be it in science, technology, computers, diplomacy, business etc. With international boundaries easing and the world becoming a global village in the real sense, there is greater movement of people from one country or region to another and English has also become the language of tourism industry. Having a sound knowledge of English is almost mandatory for entering a global workforce and it also increases one's chances of landing a prestigious job within one's home country. Cross-border business communication is most often conducted in English. It is the language of international communication, the media and the internet, so learning English is important for socializing and entertainment too. An estimated 52 percent of the world's most visited websites are displayed in the English language. By learning English one will have access to a great wealth of entertainment and will be able to have a greater cultural understanding.

Global companies such as Airbus, Daimler-Chrysler, Fast Retailing, Nokia, Renault, Samsung, SAP, Technicolor, and Microsoft in Beijing, have mandated English as their official corporate language. In addition, in 2010 the company Rakuten, a Japanese cross between Amazon and eBay, made it mandatory for their 7,100 Japanese employees to be able to speak English.

Although learning English can be challenging and time-consuming, we can see that it is also very valuable to learn and can create many opportunities.

Most Indian students learn English as 2nd or 3rd language. At school level the students of government schools in many states, start learning English only when they start primary school. In the college, Science and commerce students study English only one year during their graduation. Students of engineering, agriculture and other professional degrees study English only for one semester. However, these students too will join the job/ professions and they too, therefore, need proficiency in English. I come from an agricultural university in Haryana and my study is based on the issues and challenges faced by our students as also on how to address them. Our students belonging to both undergraduate and postgraduate programmes of study face problems in the acquisition and usage of English language. Since students with rural background form the major chunk of students in almost all the schools, colleges and universities the problems faced by learners and teachers are more pronounced and special efforts are needed both on the part of teachers and students to overcome this problem.

Some such issues as the learners feel really constrained in are comprehension, vocabulary, felicity in speech and flaws in pronunciation. In addition the English language learners often face the following challenges:

Unqualified Teachers

Limited Learning Environments

Non-seriousness towards the courses of English

Over-Use of Native Language in the Classroom/mother tongue interference

Students too dependent on the Teacher

Domination of intelligent Students in the Class

Indian learners of English language have to make a conscious effort to acquire it and the level of acquisition varies from person to person based on many factors. There are several factors that affect Individual Learning:

Motivation.

Intellectual Ability.

Attention Spans. Attention spans vary among both children and adults

Prior Knowledge.

It has been rightly established that, "The general factors that influence second language learning are: age, aptitude and intelligence, cognitive style, attitudes, motivation and personality (Ellis 1986).

At present the challenges before the English language teachers in India are diverse, to my mind the greatest being that it is considered solely their responsibility that the English Language Learners acquire and use English with proficiency of native speakers.

Good knowledge of pronunciation, intonation, rhythm, accent, vocabulary, grammar etc. on part of teachers ensures the knowledge being transmitted to students. Thus clearly there is a need for training and development of teachers in communication skills in English. The current curricula of English language at all levels – be it school, college or university-- do not meet the demands and requirements of the learners as whole teaching learning process is examination centred and degree driven. Teaching spoken English to the Indian students has remained a major challenge to the language teachers for ages. The barrier of hesitation or the phobia in the minds of learners about English language should be overcome so that real learning takes place.

It is considered to be the responsibility of English teachers to hone and improve the communication skills of students. The challenge is that teachers of English do not get to meet the students even on a daily basis. If all the teachers have good communication and spoken English skills, students will not only learn these skills but will be able to practise them. For English proficiency of students it is necessary that teachers are proficient users. Teachers impact their use of language too. So, Communication skills and Spoken English be made mandatory for all faculties, since the students spend major time with teachers of subjects other than English. The students will show greater consistency in learning English and language competence if they receive instructions in English language.

Thus, it is established that for our young students to acquire good English, proper and repeated trainings of teachers are required so that they keep on increasing their skills in Communication and Spoken English. Moreover, students should be provided with a suitable environment and motivation to break their hesitation. They should be given enough chances to come to stage so that they can get rid of its phobia and become comfortable in speaking English with their friends and family. In order to be efficient professionals in their respective fields it is important to understand that English is now the need of the hour. So, teachers should make students to practice and practice so as to make them work to achieve competence in listening, speaking, reading and writing. It requires a lot of time, energy and enthusiasm on the part of both teachers and students to teach and learn respectively good competence in Communication Skills and Spoken English. Furthermore, the efforts of students will draw inspiration from Mahatma Gandhi who is an eternal source of hard work and dedication to achieve excellence in whatever profession a person pursues. Gandhi inspires all the successors by saying:

Carefully watch your thoughts, for they become your words. Manage and watch your words, for they will become your actions. Consider and judge your actions, for they have become your habits. Acknowledge and watch your habits, for they shall become your values. Understand and embrace your values, for they become your destiny. (3 Mahatma Gandhi In His Own Words, Raymond Wells)

References

- Allon B. Harold: Teaching English as a second language, a book of readings, Tata Mc grow Hill Publishing company Ltd. Bombay, New Delhi.
- Ellis, R. (1986). Understanding Second Language Acquisition. Oxford: Oxford University Press
- Ehrman, M. (1996). Understanding Second Language Learning difficulties London: Sage Publications.
- Flink-Levy, Rachael (1989). The silent voice: The Problem learner in the English classroom, English Teachers Journal No.38, January.
- Mackey Francis William: Language Teaching Analysis, Longmans.
- Rodgers S. Theodore & Richards C. Jack: Approaches and Methods in Language Teaching, Second edition, Cambridge University Press.

- Wells, Raymond(2021). Mahatma Gandhi In His Own Words. Amazon Digital Services LLC - KDP Print US.
- Electronic sources:
- www. myenglishpages.com
- www.googleweblight.com
- www.quotegarden.com

Dr. Poonam Mor
Asst. Professor,
Dept. of Languages & Haryanvi Culture, COBS&H, CCSHAU, Hisar
Dr. Aparna
Asst. Professor
Dept. of Languages & Haryanvi Culture, COBS&H, CCSHAU, Hisar

37

Queer Community Right to Sexual Orientation: An Analytical Study

Dr. Seema Devi

Abstract

Sexual Orientation treaties as an abnormality among the society. Is it really an abnormal act or social dilemma? How can be a person loses his right from being normal just because of his choice related to sexual orientation/gender discrimination which is covered under his right to privacy. In this paper, I have answered to all these questions which are frequently arises in our mind. Sexual orientation is not an abnormality but it is gender determination which is identified due to biologically effects. Laws are here to protect it or they are also discriminating among people on the basis of gender determination. Is it right to privacy or publicly decided matter? Article 14, 19,21 of Indian constitution protects the right of LGBT community from discrimination.

Keywords: LGBT; Constitution and Queer Community Rights; Sexual orientation and Gender Determination

1) Introduction

Queer community, is a community which is not accepted by society till the 21st century, because of sexual orientation of this community. Queer community includes all those persons who are not men and women biologically (Transgender), or who are not have same sexual orientation as they have biologically either they are physically attracted toward same sex or toward both sex these are includes lesbian, gay, bisexual. The discrimination with this society is based upon sexual orientation. We know there is need of natural cohabitation for procreation of children, and smooth life, but under this reason we cannot justify that we have right to sneeze their right to sexual orientation. Right to Life also covers right to Sexual Orientation. Even,every person has a right to change their gender biologically. The conflict of sexual orientation also gives birth to many of the crimes in society.

Recently, we have seen main reasons behind the youth criminals is sexual orientation. Recently in Rohtak, Haryana a boy killed his whole family for gender change. Here, I'm not justifying the act of boy, I'm just trying to identify the issue of sexual orientation. Society does not recognize the Rights of Queer Community but It does not mean that rights of queer community are not recognized by law. Every Declaration, Treaty related to Human Rights includes Rights of Queer Community. The Word "Every Person" includes all living persons irrespective of their Genders and Sexual Orientation.Many legislations also passed by different countries for protection of their rights. In India, also there is an Act for transgender {Transgender Persons (Protection of Rights)Act 2019, precedents for non-criminality of same sex relations (Navtez Singh Johr v Union of India). Here in this paper, I'm trying to identify the reasons behind, society not accepting this community, the change in position of queer community in this century, also identify the difference between Gender Identification, and Sexual Orientation. Let's start with the object of Paper.

• Object of Research

Laws are made for protection of rights of persons in society for smooth functioning of society. In this paper I'm trying to identify the difference between gender identification and sexual orientation. Why we need special laws related to this community even when we have Human Rights which cover the rights of all human being irrespective of gender, caste, color, class. How these laws are evolved and what is the current status of these communities' rights.

• Hypothesis

Are people not able to identify the relation between sexual orientation and gender identification?

Is Legislation has lack of enforcement mechanism that's why laws are failed ?

Is the advancement of technologies and world not fully able to change the traditionally mindset mindset ?

Let's start the research with identifying its methodology.

•Research Methodology

The area of my Research topic is connected with the society and its mindset. Here I can use experimental or exploratory. For Experimental research in social science, we need much time whether we are conducting longitudinal or cross sectional. As I'm doing research one step below than advance so, I will adopt exploratory research. Among the existing facts with the help of secondary data I will conclude my research.

•How Sexual Orientation Different from Gender Identification?

The simplest way to make a difference between the both is illustration, let's try to understand it. When we fill a form, we have a column of Gender where we have only three options; Male, Female and Transgender, not having like gay, lesbian, bisexual. We have our gender identity by birth not by our sexual desires. Every person has his sexual desire some are attracted toward same gender, some toward different, some toward both and some are not toward anyone. It is their choice by inner feeling we cannot change it even by science or medical. Gender can also transform from one to other the feelings of a person cannot. Our society understand the differences but does not accept. It makes a difference between majority and minority. Majority tries to correct minority while there is no one incorrect. Here we have a question to answer the difference between sexual orientation and gender identification. Let's conclude it in a single line, the gender by birth person have is gender identificationthat is the reason to classify and identification of reproductive organs only, what afterword he/she feels toward his/her sexual desire or with him/her they want to intimate is sexual orientation. Gender transform is the result of identification of sexual orientation.

•Society and Queer Community

Queer community is as old as society, these are also neglected from ancient period from normal life. From the initial these people are forced to live abnormal life. In Mahabharta, we found two transgender characters; Varhanlla and Sikandi. If we discussed about homosexuals, there is complete chapter for homosexual behavior in Kamasutra. In Mughal period they have male slave to intimate. In Urdu poetry the term “Chapti” used for same gender people sexual intercourse. Alaudin Khilji had Malik Gafur with him he had homo sexual relations. In Mughal Periods they had Hijras (transgender) in Haram (Queen Living Places) for service and protection of queens whom they denote as Khawajasara. In British period they had criminalized the act of Homosexuality, Section 377 of IPC is the best example.

From the historical overview we, can conclude that from ancient to modern society Queer community has no their identity and not even having a respectable place among society. They live life as a criminal, slave. They have not enjoyed their sexual orientation; their life has no privacy and dignity. This is an overview of their social life let's discuss about legal aspect of queer community rights.

•Law and Queer Community

Laws are made for smooth functioning of society and protection of rights of people. Each and every society govern by laws either legislative or customary. Here we are discussing about laws related to queer community. A community which is discriminating by society on the basis of sexual orientation. Sexual orientation is not a crime but we took centuries to understand it and match the standard of third generation rights which includes gender determination or sexual orientation. Let's discuss the international laws first, these are as follows;

I. INTERNATIONAL ASPECT OF QUEER COMMUNITY RIGHTS

When we are discussing about human rights we have first click in mind about universal declaration, let's start with this;

• Article 12 of the UDHR (Universal Declaration of Human Rights, 1948) states:- "No one shall be subjected to arbitrary interference with his privacy, family, home or correspondence nor to attacks upon his honour and reputation. Everyone has the right to the protection of the law against such interference or attacks."

Here everyone has a right to family and privacy which protect their right to gender determination and right to marry with choice irrespective of gender.

• Article 17 of the International Covenant on Civil and Political Rights, also states that: - "No one shall be subjected to arbitrary or unlawful interference with his privacy, family, home and correspondence, nor to unlawful attacks on his honour and reputation."

Here also the treaty recognizes the right to privacy for all living being.

• The European Convention on Human Rights also protect the right to privacy from infringement of public authority.

• In 1981, Norways passes anti-discrimination legislation which includes homosexual people. France in 1985, Ireland, Sweden in 1993, introduced Human Right Laws which sexual orientation as a new ground for discrimination.

• In 1994, UNHRC in “Toones v Australia had been asserted the right to privacy for same sex consenting adults.”

In 1998, South Africa repealed Immorality Act, in 2003 US declared the sodomy laws unconstitutional.

• In 1989 UK Govt passes an Act Local Govt Act, Section 28 of the Act states that it is, "Illegal for local government to promote homosexuality', or teach 'acceptability of homosexuality as a pretended family relationship' in schools" In practice, this has meant discrimination against lesbians and gays in employment in educational or health services by the State.

• International Covenant on Economic, Social and Cultural

Rights article 10, recognize the right of individuals to marry and form families, it includes marriage, motherhood, personal intimacies.

Recently, the UN General Assembly, in resolution called on stated to

"To ensure the protection of the right to life of all persons, and to investigate promptly and thoroughly all killings including those motivated by the victim's sexual orientation and gender determination.

II.CONSTITUIONAL ASPECT OF QUEER COMMUNITY RIGHTS

As we have discussed the role of different countries in queer community's right recognition, now we shall discuss about the position of queer community's right in India. If we are discussing the right of a person or community, we must consult our grundnorm means Indian Constitution. Constitution of India guarantees fundamental rights to every person, which are enforceable against the state. Let's discuss the rights of queer community.

In Indian Constitution, there is no discrimination on the basis of gender, all the fundamental rights are given to all citizens even right to life and equality is provided to every person. Let's discuss the rights which are infringed when we are discriminating among Homosexual and Heterosexual people.

• Right to Equality, Expression and Life

Article 14 to 18 guarantees equality to every citizen, and especially Article 14 guarantees equality before law irrespective of citizenship, gender, class, and caste.

"The discrimination on the ground of sex under Articles 15 and 16, therefore, includes discrimination on the ground of gender identity. The expression - sex used in Articles 15 and 16 is not just limited to biological sex of male or female, but intended to include people who consider themselves to be neither male nor female."

Article 19 guarantees right to expression, it includes express their gender identity by clothing, expression, behavior or sexual orientation which may be different from their gender ideantification.

• Article 21 secures right to life with dignity for every person. Right to life also includes right to privacy also. Privacy inherits naturally right to sexual orientation.

Let's discuss with the help of case laws which upheld the fundamental rights of queer community.

The cases of homosexual marriage and their right to sex were not new for Supreme Court but here we will discuss some of the cases. The first case held victory was;

• **Naz Foundation v Govt of NCT of Delhi HC**

In This Judgement Delhi HC, protects the right to privacy for homosexual people. As per the judgement, homosexual people also have the same right to enjoy sexual orientation and right to privacy as other citizens have.

· In 2014, NALSA Judgement, brings about changes in society related to educational and employment rights of transgenders. Transgenders also got reservations in jobs and educational institution. They have recognized as third gender of society. This was also big achievement for queer community.

• Shakti Vahini v. Union of India and others

"An Individual 's exercise of choice in choosing a partner is a feature of dignity and, therefore, it is protected under Articles 19 and 21 of the Constitution."

Right to chose partner is not only for male and female but this line has wide interpretation this right extends to all living persons irrespective of their sexual orientation.

• Navtez Singh Johr v Union of India

• It was the historic judgement related to recognition of rights of homosexual community. It was a five judges' bench which struck down 377 of IPC. It allowed consensual intercourse among same sex persons. Let's discuss the important aspects of judgement. These are as follows;

• Justice Misra emphasised on individual's right of self-determination. According to him, "section 377 failed to recognize individual's consent and choice. He struck down 377 on grounds of both manifest arbitrariness and the failure to meet the reasonable classification test of Article 14."

• Justice Chandrachud recognized Section 377 "an Anachronistic colonial law" and he stated that non recognition of right to sexual orientation leads to denial of right to privacy.

• Justice Nariman emphasized that as per the provisions of Mental Healthcare Act 2017,Homosexuality is not a disease, it is normal so the discrimination between natural and unnatural in section 377 is violative of Article 14. They also have the Right to Live with dignity.

This judgement recognized the rights of queer community which are already inherit in our constitution but not recognized.

Let's discuss what is the opinion of legislative provisions related to queer community.

• Legislative Provisions related to Queer Community

When we discuss mainly about LGBT, the thing click in mind of people is homosexual relations. In India, Section 377 of IPC criminalize the same sex relations from 1860, or

we can say from the British rule. Same sex relations either consensual or forcefully there is no difference.But as we have discussed above by the judgement of Navtez Singh Johr SC struck down the section's constitutional validity now we have only forcefully unnatural acts are criminalized not consensual.

Here, I'm discussing some of the legislations which are passed for their protection.

1) The Mental Health Care Act, 2017 protects the homosexual people from classifying in to ill people. It secures them as normal person. It does not classify it as abnormality, but it is a biological development.

2) Transgender Persons (Protection of Rights) Act 2019, passes with an objective to provide for protection of rights of transgender people, their welfare, and other related matters. It secures their educational and employment rights. It prohibits discrimination against transgenders in relations to health, enjoyment in public place, right to reside, education, employment either public or private. The government also takes step to rescue and rehabilitation of transgenders.

These are some of the provisions which favors LGBT community and also protects these from discrimination on the basis of sexual orientation, gender determination. From the above analysis it is clear that only law can rehabilitate these people in society as a normal person and it can give a normal life to them which is also their right.

2) Conclusion and Suggestions

4.1) Suggestions

Now, I'm summarizing my research. During this research I had go through various aspects of LGBT and from each and every observation I have some suggestions, these are as follows;

1) There is no need of new laws for improvement of LGBT community, we need only awareness among the people.

2) Everyone should aware about their rights and also respect other's right and freedom.

3) We can aware people by various entertaining programs although there are many web series and movies related to it like; “Badhai Do”, Subh Mangal Jyada Sawdhan”, “Aligarh”. But people watch only for entertainment purpose.

4) Government should start awareness program that infringing someone privacy even in their sexual orientation is violation of their fundamental right and it shall be punishable.

5) People should not hide their sexual orientation because when they are open up society will also accept them. Even some of the persons in society who have interest in same sex person also pretends like that he/she don't like gay and lesbian. The hiding of sexual orientation by the queer community also gives support to society, who convert a biological and natural phenomenon in to a stigma.

4.2) Conclusion

From the overall discussion it can be concluded that Queer Community is never accepted as layman by our society, we always look forward for majority sexual orientation which is called normal by us. But the rights of queer community always recognized by law, either national level or international level. Every treaty has a clause of equality among human beings that all the persons are equal irrespective of caste, color, class, sex, here sex also include sexual orientation. Sex has wide interpretation means not even a gender pre decided by birth but a gender by sexual desire.

In India also we also criminalize same sex in IPC under Section 377 till Navtez Singh Johr v Union of India decision by SC. Till the 21st century our laws are not updating as per need of society. As I have discussed earlier, we don't need laws we need implantation. Because the decriminalization of 377 is not a result of new law but it is the result of older laws correct interpretation. I conclude my topic with the last line,

“When you reduce life into Black and White, You never see Rainbows”.

it is not so much simple for the persons who are living in the world.

References:

1. Supreme Court Observer, Constitutionality of section 377 IPC, https://www.scobserver.in/reports/navtej-singh-johar-section-377-judgment-of-the-court-in-plain-english/ visited on 27 May 2022
   visited on 25 May 2022
2. https://www.hrw.org/news/2014/09/06/international-law-and-uncertainty-rights-lgbt-people visited on 25 May 2022
3. ibid
4. https://www.unfe.org/wp-content/uploads/2017/05/International-Human-Rights-Law.pdf visited on 25 May 2022
5. 2009
6. 2018
7. 2018
8. Supreme Court Observer, Constitutionality of section 377 IPC, visited on 27 May 2022
9. ibid
10. ibid

Dr. Seema Devi
Assistant Professor
Baba Mastnath University,
Rohtak.
Mobile No- 8930616160,
Email id;seemadbairagi@gmail.com

38

A Study of Achievement In Academics Of Senior Secondary School Students In Relation To Concept Attainment

Dr Umender Malik

Abstract

The present study was undertaken to study achievement in academics with concept attainment of senior secondary school students. 300 students were selected by multi stage random sampling technique from senior secondary schools situated in Jhajjar and Sonepat district. Descriptive survey method of research was used. It was found that there is significant difference in concept attainment of male and female senior secondary school students. The study reveals that there is significant difference between achievement in academics and concept attainment of senior secondary school students. Achievement in academics and concept attainment of senior secondary school students is positively correlated. It shows that concept attainment model is more effective than traditional method on the achievement of students.

Keywords: Achievement in Academics, Concept Attainment, Senior secondary school students.

Introduction

Education is a process of inviting truth and possibility of encouraging and giving time to discovery. Academic development of the pupil is the primary concern and the most important goal of education. Academic achievement of an individual is so far considered to be influential partly by his ability to adjust to his environment, partly by his special abilities, intelligence and aptitude which are integral parts of his personality and partly by the intensity of drives and motives which serve as the impelling force for his activities. The justification of measuring academic achievement is based on the fundamental assumptions of psychology that there are differences within individual from time to time, place to place, situation to situation, one class to other class. Concept attainment is designed to clarify ideas and to introduce aspects of content. It engages students into formulating a concept through the use of illustrations, word cards or specimens called examples. Students who catch into the idea before others can resolve the idea, and these are invited to suggest their models, while other students are still trying to form the concept.

Kumar and Mathur (2013) revealed that concept attainment model is more effective than traditional method on the achievement of students in understanding of physics concepts. Myat (2020) reveals that there is positive contribution between academic achievement and concept attainment of senior secondary school students. Sreelekha and Nayar (2004) compared the achievement level between traditional method and concept attainment model in the teaching of Biology with respect to knowledge, understanding and application objectives. The major finding suggested that Concept Attainment Model was effective in improving the level of achievement.

Objectives Of The Study:

1. "To compare the achievement in academics of senior secondary school students with respect to concept attainment."
2. "To compare the concept attainment of male and female senior secondary school students.
3. "To find out the relationship between achievement in academics and concept attainment of senior secondary school students."

Research Design And Methodology

Descriptive survey method of research was used in the present study. A sample of 300 senior secondary school students in 11th class were taken as a sample by using Multistage random sampling technique from the population of 11th class students studying in senior secondary schools situated in Jhajjar and Sonepat districts of Haryana state. Achievement in academics was measured as the score obtained by senior secondary school students on their previous annual examination i.e 10 th standard and concept attainment was measured with the help of concept attainment scale developed by the Joshi & Arya (2011). The collected data was analyzed both quantitatively as well as qualitatively. After the scoring procedure Mean, Standard Deviation, t-values were calculated to find out the significance of difference between variables of the study.

Results And Discussion

In order to verify the objectives and to test the null hypotheses, the present study has been analyzed as given below : For the purpose of studying the significance difference in achievement in academics of senior secondary school students with respect to concept attainment the

following null hypothesis was formulated.

Objective 1: To compare the Achievement in academics of senior secondary school students with respect to Concept attainment.

For the purpose of studying the significance difference in achievement in academics of senior secondary school students with respect to concept attainment, the following null hypothesis was formulated.

Ho1 .There exists no significant difference in Achievement in academics of senior secondary school students with respect to Concept attainment.

To test the null hypothesis, Mean, Standard Deviation, t-value and level of significance of the scores of achievement in academics was calculated with respect to concept attainment. The results are presented in Table 1.1

Table 1.1

Mean, S.D., 't' value and level of significance of Achievement in Academics with respect to Concept Attainment

Variable	Groups	N	Mean	SD	't'	Level of Significance
Achievement in Academics	High Concept Attainment	83	50.29	9.84	2.63	Significant at 0.01 level
	Low Concept Attainment	79	46.71	7.51		

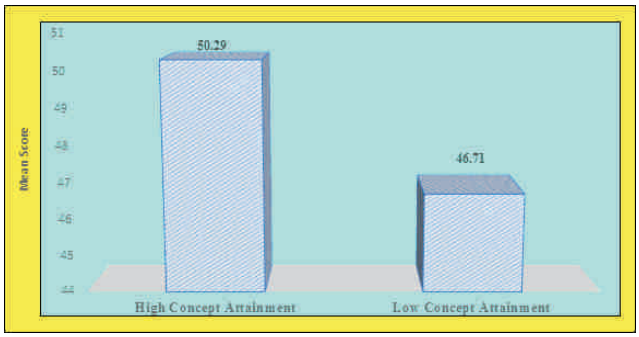

Fig. 1 : Mean Scores of Achievement in Academics of Senior Secondary School Students with respect to Concept Attainment

Objective 2: To compare the concept attainment of male and female senior secondary school students.

For the purpose of studying the significance difference in concept attainment of male and female senior secondary school students, the following null hypothesis was formulated

H02 There is no significant difference in concept attainment of male and female senior secondary school students.

To test the null hypothesis, Mean, Standard Deviation, t-value and level of significance of the scores of concept attainment was calculated with respect to gender. The results are presented in Table 1.2.

Table 1.2

Mean, S.D., 't' value and level of significance of concept attainment of male and female senior secondary school students

Variable	Groups	N	Mean	SD	't'	Level of Significance
Concept Attainment	Male	147	14.90	9.58	3.13	Significant at 0.01 level
	Female	153	11.64	8.09		

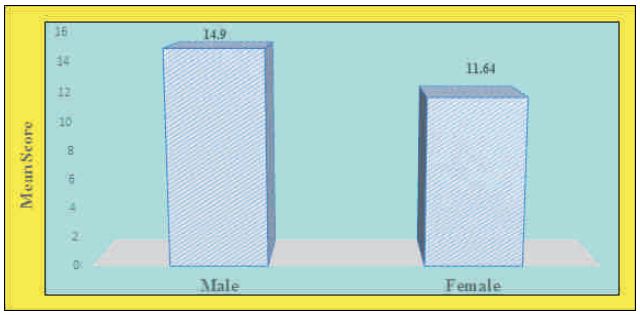

Fig.2 : Mean Scores of Concept Attainment of Male and Female Senior Secondary School Students

Objective 3: To find out the relationship between Achievement in Academics and Concept attainment of senior secondary school students.

For the purpose of studying the relationship between achievement in academics and concept attainment of senior secondary school students, the following null hypothesis was formulated

H03 There is no significant relationship between achievement in academics and concept attainment of senior secondary school students.

Table-1.3

Coefficients of Correlation between Achievement in Academics and Concept attainment of Senior Secondary School Students

Variables	N	Coefficients of Correlation (r)	Level of Significance
Achievement in Academics	300	0.061	Significant at 0.01 level
Concept Attainment	300		

By analysing the tables 1.1,1.2 and 1.3 it is clear all the three null hypotheses Ho1,Ho2 and Ho3 are rejected. It is found that there is significant difference between achievement in

academics and concept attainment of senior secondary school students., there is significant difference between concept attainment of male and female senior secondary school students and there is significant relationship between achievement in academics and concept attainment of senior secondary school students.

References

- Joshi A. & Arya R. (2011). Manual for Concept attainment test. National Psychological Corporation, Agra.
- Kumar, A., Mathur, M. (2013). Effect of concept attainment model on acquisition of physics concepts. Universal Journal of Educational Research, 1(3), 165-169.
- Myat (2020). An assessment of the concept attainment model in middle school mathematics teaching. J. Myanmar Acad. Arts Sci., 18 (9), 1-18.
- Sreelekha and Nayar (2004). The effectiveness of concept attainment model in learning chemistry at secondary level. NCERT publication New Delhi.

Dr Umender Malik
Associate Professor,
Department of Education
MDU Rohtak , India

39

Drug Use and Anti-Social Behaviour of Young Drug Addicts

Nisha Rani

Abstract

Abusing drugs is a long-standing issue that has been labeled as a victimless crime, with drug abusers being referred to by various terms in our society. This is a form of discrimination and a violation of the addicted person's human rights that is still ignored. There is a substantial link between anti-social behaviour and substance abuse. What remains unclear is if the link between the two illnesses is sporadic, implying that one disorder causes the other, or whether it is characterized by shared symptoms or consequences, or if it implies that the two disorders are not well defined but are essentially variations of the same cardinal disorder. In India, the epidemic of teen substance misuse has reached a dangerous level. Drug misuse is being initiated as a result of changing ideologies, increased economic pressure, and reducing supportive relationships. Cannabis, heroin and pharmaceutical medications made in India are the most commonly abused narcotics in India. The nature of the abused drugs is the reason for its use, misuse and abuse as well as changes in the dependent's personality and immediate environment. As a result of industrialization, urbanization and migration, traditional social control structures have relaxed leaving individuals vulnerable to the pressures and strains of modern life. Therefore, it is necessary to know about the drug abuse, its dependency by youth and their anti-social behaviour with the help of secondary resources.

Keywords: Drug Abuse, Anti-Social behaviour, Young Drug Addicts, Association, Certainty.

1. Introduction:

The ability of substance usage patterns to shift over time is well-known. Both legal and illegal drug usage are important public health issues and proof for this is now available in our country. In India, the epidemic of substance misuse among the youth has reached worrisome proportions. Changing cultural attitudes, rising economic hardships and deteriorating supporting ties are all contributing to the onset of substance abuse. Cannabis, heroin and pharmaceutical medications made in India are the most commonly abused narcotics in India. Drug abuse is the habit of taking illegal drugs on a regular basis in a way that is harmful to one's health. The distinction between drug abuse and addiction is razor-thin. If a person abuses drugs, he or she may or may not become addicted to the hazardous substances. In the instance of drug addiction, on the other hand, the person is highly addicted to the narcotics. Thus, drug abuse may often lead to drug addiction. These are evils in the society. It has resulted in increased crime, tension, disease, horror and lack of peace and security. The cities have attracted large number of youth who come in search of employment. Such people live a lonely and isolated life and become anti-social. They fall into evil company and get addicted. The children who are deprived of the love, care and affection and do not get right type of education are prone to be addicted to drugs. In the beginning, it comes as an escape from the monotony or drudgery of routine life, as an object of thrill, stimulation or excitement. Gradually the addicts depends more and more upon drugs. They develop a kind of madness. June 26 is celebrated as an International Day against drug abuse and illicit trafficking every year. It is exercise undertaken by the world community to sensitize the people in general and the youth in particular, to the menace of drugs. Millions of drug addicts, all over the world are leading a miserable life between life and death. India too is caught in this vicious circle of drug abuse and the number of drug addicts are increasing day by day. According to a UN report, one million heroin addicts are registered in India and unofficially there are as many as five million. The substances which are first used for medicinal purposes such as treatment of physical and mental deformities when consumed by choice for social and relaxation purposes like for mood alteration or to gain euphoria are termed as drugs. A conventional usage, dependence denotes psychological credence on a particular drug while dependency is reserved for physiological dependence as indicated by withdrawal symptoms if the drug is to be continued. In practice, however the word is mainly reserved for alcohol and other narcotics that are taken to the point of emotional and physiological dependence. The word "drug abuse" refers to the excessive use of a drug, regardless of whether or not a person is actually addicted to it. The rising problem of drug addiction is linked to alcohol and drug usage has sparked public outrage.

1.1 Drug Dependence

Drug addiction is defined as a psychological and physical state in which a person feels compelled to consume a drug on a continuous or periodic basis in order to experience its psychological effects and at times to avoid the discomfort of its absence. Chronic disease relapses and remissions are common causes of drug dependence which is considered a multi-factorial health problem. People who are addicted to drugs are stigmatized in many countries and do not have access to the necessary therapy and rehabilitation. Unfortunately, this is still the case in many countries. As the bio-psychosocial model has evolved in recent years, it has come to view that drug dependence as a complex issue requiring the input of specialists from a variety of fields. For research, prevention and treatment, a multidisciplinary approach might be used. Depending on one's beliefs or ideologies, drug addiction has been viewed in recent decades as either a societal problem, an educational or spiritual issue, a guilty act that needs to be punished, or a pharmaceutical problem. All of these views are now being challenged. The stigma and discrimination associated with drug dependency have been exacerbated by the idea that drug dependence can be deemed a "self-acquired disease" because of the individual freedom of choice that led to the first use of illicit drugs. As a result of this complicated multi-factor interplay between recurrent medication exposure and biological and environmental factors, the disease is likely to develop because they do not take into consideration the neurological alterations that drug dependency has on the brain's motivational circuits, severe penalties for drug users fail to treat and prevent drug use.

1.2 Addict

Section 2(i) defines addict means a person who has dependence on any narcotic drug or psychotropic substances. A person shall be regarded as being addicted to a drug if, and only if, he has, as a result of repeated administration, become so dependent upon the drug that he has an overpowering desire for the administration of it to be continued. According to American Law, an addict is an individual who habitually uses any narcotic drug so as to endanger the public morals, health, safety or welfare or who is or has been so far addicted to the use of such narcotic drugs as to have lost the power of self-control with reference to its addiction.

1.3 Narcotic Drug

Section 2(xiv) defines narcotic drug means coca leaf, cannabis (hemp), opium, poppy straw and includes all manufactured drugs.

1.4 Psychotropic Substance

Section 2(xxiii) defines the term psychotropic substance. It means any substance, natural or synthetic, or any natural material or any salt or preparation of such substance or material included in the list of psychotropic substances specified in the schedule. If Chemically, the substance falls in the Schedule, then it is immaterial that commercially, it goes by a different name.

1.5 Controlled Substance

Section 2[(viid)] defines controlled substance means any substance which the Central Government may, having regard to the available information as to its possible use in the production or manufacture of narcotic drugs or psychotropic substances or to the provisions of any International Convention, by notification in the Official Gazette, declared to be a controlled substance. Controlled substance means,"A drug or other substance that is tightly controlled by the Government because it may be abused or caused addiction. The control applies to the way the substance is made, used, handled, stored and distributed. Controlled substances include opioids, stimulants, depressants, hallucinogens and anabolic steroids. Controlled substances with known medical use, such as morphine, Valium and Ritalin are available only prescription from a licensed medical professional.

2. Youth Substance Use Disorder:

Disorder means an illness that disrupts normal physical or mental functions. A disorder could be defined as a set of problems, which results in causing significant difficulty, distress, impairment and/or suffering in a person's daily life. There is a strong correlation between substance abuse and the onset of adulthood in adolescents and young adults. Substance use disorders are more likely to affect young people's overall health and well-being, making them more vulnerable to physical and mental illness.

2.1 Conscious

The word "conscious" means awareness about a particular fact. It is a state of mind which is deliberate or intended. Once possession is established, the person who claims that it was not a conscious possession has to establish it, because how he came to be in possession is within his special knowledge.

2.2 High-risk Substance Use

Adolescents who take substances with a high risk of negative consequences are considered to be high-risk users for the purposes of HIV and STD prevention (i.e., injury, criminal justice involvement, school dropout, loss of life). Toxicology covers the use of illicit drugs (such as cocaine, heroin or methamphetamines), the misuse of prescription

medicines (such as Ambien or Vicodin), and the use of injectable pharmaceuticals that pose a high risk of infection with blood-borne viruses like HIV and Hepatitis C.

2.3 Risk-Factors for High-Risk Substance Use

It includes:

- Family history of substance use
- Favourable parental attitudes towards the behavior
- Poor parental monitoring
- Parental substance use
- Family rejection of sexual orientation or gender identity
- Association with delinquent or substance using peers
- Lack of school connectedness
- Low academic achievement
- Childhood sexual abuse
- Mental health issues

3. Drug Addiction: A Big Challenge in front of Today's Youth

Age at initial Drug Abuse

In the last few years, a recent study published in JAMA Pediatrics found that the average age at which teenagers and young adults begin abusing drugs has increased. Over the course of eight years, researchers studied the average duration of first-time drug use for 18 different substances including alcohol and cigarettes and found that the standard duration had increased for most of those substances. For example, According to the results of the poll, the average age at which adolescents first consume alcohol or smoke cigarettes has risen from 16 in 2004 to 17 in 2017. There was a standard age of 17.4 years for persons who reported using heroin or cocaine for the first time in 2004 which had extended to roughly 18 years for people who used heroin and 19 years for those who used cocaine. For their research, the researchers scrutinize publicly approachable data obtained as part of the National Survey on Drug Use and Health and yearly survey that covers drug use in a symbolic sample of U.S. citizens aged 12 and older. They also assimilated data on 84,317 respondents who were between the ages of 12 and 21 when they took part in a survey between 2004 and 2017 with the results showing that first-time drug usage occurred within the previous year. In order to evaluate the standard age for first-time use for 18 worldwide regulated substances, researchers scrutinize the data and found that for each year the research covers the standard age was 23. Looking at the trends, it was disclosed that the standard age of first use had grown for 12 out of 18 substances including alcohol, cocaine, ecstasy, hallucinogens, heroin, inhalants, LSD, marijuana, stimulants and tobacco products such as cigars, cigarettes and smokeless tobacco. To support the results of the research, it is important to account that while there were statistically significant changes in the age of first use for the other six drugs crack cocaine, methamphetamines, opioids, PCP, sedatives and tranquillizers, the other six drugs all exhibited stable age at first use.

Mental and physical dependence on mind-altering chemicals are symptoms of drug addiction which is truly a chronic disease of the brain. Addiction to these substances necessitates treatment that addresses the whole person: mind, body and spirit. Because drugs influence the brain's structure and function, it is classified as a disease of the brain. Without therapy, these changes in the brain may endure for a lengthy period of time. Addiction is a long-term problem that can lead to death if left untreated. In spite of its harmful effects, drug addiction is a chronic condition characterized by compulsive or difficult-to-control drug seeking and use. Even though the decision to start using drugs was made voluntarily by many, the repeated use of these substances can alter the brain in such a way that it puts an addict's self-control to the test and interferes with his or her ability to resist strong urges to use drugs. A person's drug dependence isn't confined to heroin, cocaine or any other illegal substance. Alcohol, narcotic medicines, nicotine and other legal substances all have supporters. Individuals who are in recovery from drug use issues face an increased chance of relapsing even after many years of abstaining from drug use due to the possibility that these brain abnormalities could continue. Drug addicts often believe that they are unable to function without their preferred drug of choice. Addiction is a mental and behavioral disorder. For those who enjoy using medications, it is impossible to resist the urge to do so, no matter how much harm the prescriptions could bring.

3. Anti-Social Behavior of Drug Addicts

The method in which a close friend or family member behaves has an impact on how the group interacts and gives a perspective on drug usage. Not all loved ones express concern or look to others' opinions in the case of unacceptable personality disorders or unsocial actions. According to Mayo Clinic, "Individuals who display symptoms of unacceptable personality disorders do so in ways that expose them to the scrutiny of others. Unfortunately, a loved one's bad behavior can sometimes be unrelenting or even fatal. Substance usage exacerbates the condition and complicates efforts to prevent addiction." The Gale Encyclopedia of Children Health says,"Inappropriate behavior is any unpleasant or aggressive behavior that affects relationships with others. A loved one's troublesome or violent tendencies are often evident at an early age in most circumstances." Symptoms of undesirable personality

disorder or comparable illnesses include a wide range of common behaviors include:

- Lying
- Stealing
- Bullying others
- Vandalism
- Impulsive behaviors
- Aggressiveness
- Getting into fights
- Lack of remorse after harming others
- Lack of empathy in regard to others
- Recklessness and a disregard for personal safety or the safety of others.

According to the National Institute on Alcohol Abuse and Alcoholism, anti-social behavior in childhood and adolescence increases a person's likelihood of later alcohol and other drug abuse. The actual explanation for drug usage varies from circumstance to situation because of this intricate situation and twisted behavior. Addiction and drug misuse often begin as a result of impulsive conduct; nevertheless, environmental or inherited variables might increase the risk of addiction and drug abuse. The University of Carolina, says, "substance abuse affects anti-social behaviours by averting individuals from pleasing in cultural norm and ceasing the aggressive activities." When a dear one abuses substances after showing indication of unacceptable behaviors or a character disorders, he continues engaging in illegal activities or declines to stop unsuitable social behaviors.

4. Drug abuser as a victim

Despite the fact that substance abuse is a complex condition, there are numerous negative repercussions. It usually extends beyond the victim-immediate abuser's circle to include members of their family and friends. Treatment and prevention can be carried out if drug abusers are treated as victims of addiction rather than criminals. Chemical drugs that are ingested orally, intravenously, snorted or inhaled cause the victim-abuser to lose his health. It causes a variety of physical and psychological changes. Because of this addiction, a person loses his or her family members, friends, peers in school and college and even his or her job. Substance misuse has a negative impact on every aspect of one's life including one's ability to perform well at job. When the abuser's life is in danger, he or she turns to crimes of theft, robbery and burglary in order to obtain substances for consumption.

5. Laws Governing Drugs in India: Various international conventions were adopted by the nations, namely the Single Convention on Narcotics Drugs, 1961 as amended by the 1972 Protocol and the Convention on Psychotropic Substances 1971 and United Nation Convention against Illicit Traffic in Narcotic Drugs and Psychotropic Substances, 1988, directing the member countries to frame laws curbing the spread of substance abuse. The Central Government of India in order to fulfill its obligations under the international treaties framework brought a comprehensive and stringent legislation i.e. the Narcotic Drugs and Psychotropic Substances Act, 1985 which was passed on 16th September, 1985 and came into effect from 14th November, 1985. Before passing of this Act, there were three central enactments dealing with this subject: the Opium Act, 1857, The Opium Act, 1878 and The Dangerous Drugs Act, 1930. These laws were not in tune with the International legal framework for drugs.

Power of court to release certain offenders on probation

If any addict is found guilty of an offence punishable under section 27 or for offences relating to small quantity of any narcotic drug or pschotropic substance, the court is who found him guilty is of the opinion regarding his age, character, antecedents or physical or mental condition of the offender, then the Court may, instead of sentencing him at once to any imprisonment, with his consent give directions for his release from undergoing medical treatment for de-toxification or de-addiction from a hospital or an institution maintained or recognized by Government after entering into a bond with or without sureties and direct him to appear and furnish a report of his medical treatment after one year.

Immunity from prosecution to addicts volunteering for treatment

Any addict, who is charged with an offence punishable under section 27 or offences involving small quantity of narcotic drugs or psychotropic substances, who voluntarily seeks to undergo medical treatment for de-addiction from a hospital or an institution maintained or recognized by the Government or a local authority and undergoes such treatment shall not be liable to prosecution under section 27 or under any other section for offences involving small quantity of narcotic drugs or psychotropic substances:

Provided that the said immunity from prosecution may be withdrawn if the addict does not undergo the complete treatment for de-addiction.

Highlighting, the adverse effects of trafficking and abuse of narcotics, the Supreme Court in State of Punjab vs. Baldev Singh has observed:

"4. Drug abuse is a social malady. While drug addiction eats

into the vitals of the society, drug trafficking not only eats into the vitals of the economy of the country, but illicit money generated by drug trafficking is often used for illicit activities including encouragement of terrorism. There is no doubt that drug trafficking, trading and its use, which is a global phenomenon and has acquired the dimensions of an epidemic, affects the economic policies of the State, corrupts the system and is detrimental to the future of a country. It has the effect of producing a sick society and harmful culture. Anti-drug justice is a criminal dimension of social justice. The United Nations Conventions Against Illicit Trafficking in Narcotic Drugs and Psychotropic Substances which was held in Vienna, Austria in 1988 was perhaps one of the first efforts, at an international level, to tackle the menace of drug trafficking throughout the comity of nations. The Government of India has ratified this Convention."

Provisions under Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015:

Dr. APJ Kalam quotes that, "Children are future bone to the country." Gandhi ji said anything should start from children, "If we are to teach real peace in this world, and if we try to care on a Real War against War, we shall have to begin with the children." But now a days, the backbone of our country is becoming a weak bone because of bad habit such as addiction etc., addiction of narcotic drugs changes the children's life to delinquent and become juvenile in conflict with law.

Penalty for giving intoxicating liquor or narcotic drug or psychotropic substance to a child. - Whoever gives, or causes to be given, to any child any intoxicating liquor or any narcotic drug or tobacco products or psychotropic substance, except on the order of a duly qualified medical practitioner, shall be punishable with rigorous imprisonment for a term which may extend to seven years and shall also be liable to a fine which may extend up to one lakh rupees.

Using a child for vending, peddling, carrying, supplying or smuggling any intoxicating liquor, narcotic drug or psychotropic substance: Whoever uses a child, for vending, peddling, carrying, supplying or smuggling any intoxicating liquor, narcotic drug or psychotropic substance, shall be liable for rigorous imprisonment for a term which may extend to seven years and shall also be liable to a fine up to one lakh rupees.

5. Discussion

Addiction to illegal drugs is defined as the practice of consuming them on a regular basis. Substance abuse and addiction are not synonymous. When someone is abusing drugs, they may or may not be addicted to them. Addiction to drugs, on the other hand, is a life-threatening disease. As a result, drug dependence is a common side effect of substance abuse. In India, it has become a major issue. Chemical substances are a problem for everyone, young and old. As a result, crime, stress, disease and fear have increased and there is a general lack of order in the community. Cities have attracted a large number of young people looking for work. Such people lead a solitary and isolated existence and they become apathetic. Bad influences lead them to become addicted. Addiction to drugs can occur in children who are deprived of the love, care and affection they need, and who are not given the proper education. At the outset, it's a way to add excitement, impassion or enthusiasm to the monotony of daily life. Addicts gradually become dependent on chemical substances. They evolve a kind of mental illness. They are part of a larger group of people who reject peaceful social interactions. Drugs are frequently smuggled from one country to another and sold by private agents and sub-agents. In India drug abuse has set-off wide-spread and a cause of discussion for the people and the authority. The following are some of the most common triggers for drug abuse and addiction:

a) It is important to note that many people who give up on their dreams end up becoming addicted to drugs. Students who live away from home, in dorms or messes, are more likely to develop addictions.

b) Their continued association with unsavoury individuals has made them dependent on substances. As a result, there is no clear path for young people to follow, no goals or aims they can aim for.

c) A third reason is that our pedagogy does not prepare students for the realities of the real world. Their education has left them with no prospects for the future.

All countries are seeing an increase in the number of young people, adolescents, adults and elderly people abusing addictive drugs. In underdeveloped nations, particularly India, the main cause of drug problem is sale over counters. Addiction to antihistamines (a drug used to treat an allergy) and narcotic analgesics (medicine that relieves pain) is the most common form of drug abuse in India. These drugs can be taken alone or in combination with alcohol. Drug abuse can be prevented by raising public awareness and enforcing strict regulations on over-the-counter sales of these drugs. In India, the prevalence of substance abuse has reached alarming proportions among the country's youth. People are becoming more likely to experiment with drugs and alcohol due to shifting cultural norms, rising economic tensions and weakening social ties. Constant or irregular drug use that is

incompatible or unrelated to medical practice is defined as substance abuse by the World Health Organization (WHO). It is impossible to get a clear picture of the situation if the global statistics on drug use are taken into account. It is the world's third-largest trade after petroleum and the arms trade with an annual revenue of approximately $500 billion. More than one hundred and eighty million people around the world are dependent on some kind of drug or another. The illegal production and distribution of illegal drugs has resulted in widespread crime and brutality around the world.

Every year on June 26, the United Nations designates a day to raise awareness about the dangers of drug abuse and trafficking. People around the world and especially young people, are being educated about the dangers of drugs as part of a global effort. Drug trafficking and substance abuse have spread to every corner of the globe. Millions of people around the world are living in a constant state of anxiety, between life and death, because of their addiction to drugs. The number of people abusing drugs is steadily rising across the world, and this is no different in India. More than five million heroin addicts are unofficially registered in India, according to a UN report. What started out as a small but growing group of young people in the city's most affluent neighbourhoods is now a widespread phenomenon. The use of heroin as a sedative and pain reliever has been replaced by the use of other sedatives and pain relievers. As a result, the effect is stronger, the dependency process is faster and the recovery process is more difficult.

6. Teenage People in the Drug Trafficking Chain

Both national and international drug promotion can trap teenagers in drug trafficking. In addition, there are only a few countries where evidence of young people's involvement in drug trafficking can be found. A person's criminal career course/path can be influenced by factors such as where they were born and where they grew up economically. There are other motives for a teen to engage in drug trafficking than exploitation. For financial reasons or as part of their family's established profitable activities, they may engage in this activity. In other cases, it's thought that adolescent drug dealers face an increased risk due to a lack of other options in a socio-economic environment. The vast majority of studies conducted in the United States identify drug dealers as participants who are looking to supplement their low wages by trading in drugs. As a result of their parents' drug use or dealing, adolescents are also drawn into the illicit drug trades. Other studies have found that having or being in possession of a gun increases the likelihood of adolescent drug dealing. Organized crime syndicates can exploit minors and juveniles to perform a wide range of supply chain tasks because minors and juveniles are subject to lenient laws, trials and penalties compared to adults for delinquent offences including substance offences.

7. Role of Children and Street Gang Members in Trafficking Drugs?

There is a lot of talk about drug-related violence, street gangs and the mistreatment of children by organized crime groups in the substance business. About 3% of those arrested or cautioned for drug control in 2015 were under the age of 18 (based on data from over 40 countries). Only 1% of those arrested or prosecuted for more serious drug offences, such as drug deals were minors. As a third of the world's population is made up of children, they are less suitable than adults to be arrested or prosecuted for drug crimes because of this. The total number of minors arrested for drug-related offences in 2015 was nearly 70,000 with more than 17,000 of those arrested for serious drug offences. There is a wide variation in the percentage of minors arrested for drug offences in different countries. In general, young people are more likely to be arrested for simple drug possession than for more serious offences. While some countries claim that more than 10% of those arrested for drug possession are minors, the majority of countries find that less than 5% of drug dealers are under the age of 18.

Assembled groups like street gangs may allow teenagers to participate in the drug trade. For statistical purposes, gangs are defined as "a category of persons that is defined by attributes including resilience over time, street-oriented style, youthfulness and participation in illegal business and group identity," according to the International Classification for Crime for Statistical Purposes. As many studies have shown, most street gang members appear to be in their late teens and early twenties.

8. Preventing Violence against Children-Global Status

Every year, it is estimated that one in every two children between the ages of 2 and 17 will be the victim of violence somewhere in the world. There are an estimated 120 million girls who will have been subjected to forced sex between the ages of 11 and 15 in the United States alone. Intimate partner abuse affects one out of every four moms who have children. Violence can result in death, injury or permanent disability. Mental illness and anxiety disorders, high-risk behaviors like alcohol and drug abuse, tobacco use and unsafe sex, chronic diseases, such as cancer; infectious diseases like HIV; as well as chronic and acute illnesses are all more likely to occur in children who have been exposed to violence.

Underachievement in schools and a rise in violent crime are two examples of social problems. Repercussions for the economy could be enormous. Child maltreatment in the United States is estimated to cost $428 billion over the course of a lifetime, whereas the economic costs of child maltreatment in East Asia and the Pacific are estimated to be between $1 and $2 billion.

In the wake of the COVID-19 epidemic and society's response to it, the general level of violence against children is likely to remain elevated for some time. About 1.5 billion children worldwide are impacted by school closures. Parents, caregivers and children's levels of stress and vigilance have been heightened by restrictions on movement, loss of income, segregation and overcrowding and the cutting off of families and individuals from their usual sources of assistance. Since domestic violence is so widespread, it has had a significant impact on the outcomes.

Conclusion & Suggestion

There are many social, cultural, biological, geographical, historical and economic factors at play when it comes to substance abuse. Because of the breakdown of the traditional joint family unit, the absence of parental love and care in modern families where both parents work, and the erosion of traditional social values, the number of people turning to drugs to escape the hardships of life is on the rise. So, the bonding of parents with their grown up children should be taken care. Addiction can also be a result of the drug's creation, the individual's temperament and their immediate surroundings. Industrialization, urbanization and relocation have resulted in a loosening of the traditional methods of social control, making individuals more vulnerable to the stresses and pressures of modern life. More and more people are abusing both traditional and new psychoactive drugs because of a rapidly changing social environment. The Central and State Governments should have to take some immediate steps for the rehabilitation of the youngsters who abuses the drugs. Synthetic substances and endogenous drug use, especially in the Northeastern states have added a new dimension to the HIV/AIDS epidemic. With the help of de-addiction centres, non-governmental organizations can organize programmes related to the prevention strategies of drugs.

There is a strong link between drug use and increased risk of death and psychological harm. Women's and children's substance abuse is increasingly coming to the fore and it merits further investigation. It is a big problem when people abuse pharmaceutical substances and inhalants. Quick assessment surveys have helped people become more aware of their own patterns of drug use and the feedback they require. In India, there hasn't been enough research on the effects of the drug crisis. The Government should make it mandatory that no drug/medicine can be sell without a medical practitioner's prescription and if any person violates this provisions, punishment will be given to the culprits. So, Governments with the help of different organizations, health experts, de-addiction and rehabilitation centres can take immediate steps for the prevention of our country's younger generation from the abuse of drugs.

Nisha Rani.
H.NO. 184, W.NO. 12
Street MC Ramesh Bagri, Colony Road,
Mandi Dabwali, Sirsa, (Haryana)
Pin Code: 125104
Mobile no. 9671900053.

40

Perspective of Feminism in Nagamandala

Pradip Kr. Singh

Abstract

1)Introduction

This drama has been written by Girish Karnad. He was born on 19th May, 1938 at Matheran, a town near Bombay. His childhood was spent in a small village Sirsi in Karnataka where he had his schooling. He was graduated from Karnataka University in 1958. He loved to work for theatre. He cultivated his interest in drama that became his culture and profession. He was Post graduated from Bombay. He got opportunity to watch modern theatre there. It was proved a turning point in his life. He also studied in Magdalen College, Oxford in 1963. He returned India in 1963. In 1984, he went to USA for academic work. He wrote some important composition like 'Tughlaq', 'Hayavadana', Nagamandala in 1988, Tale dande in 1990 etc. Nagamandala illustrated about the drawback of society that treats the woman as a weak sex. Rani the protagonist woman character becomes the victim of her husband Appana. Nagamandala proves that due to adultrated behavior of a man a woman becomes a sordid person in the society.

2) Key Words

Spectacular, Primeval right, Ungrudging, Consummation, Faithlessness.

3) Abstract

"A woman is not born but made" quoted by a famous writer 'Simon De Behavior in her book, 'The Second Sex' published in 1949. After that many feminist writer arrived and departed but no one showed any spectacular change in the plight of women. Especially in India, the plight remains more pitiable than western countries. It is because of orthodoxing notion. Moreover, it the social taboos and dagmatism prevailing among the different communities in India also created problem for the woman.

Nagamandala by Girish Karnad was a stage- The play depicts the plight of women in general and 'Rani' the main woman character shows the predicament concerning with the women. The play raises a vital question about the identity of a woman as an individual. In fact she had also rights to exist as an individual first then as woman when she is deprived of right of sex, the primeval right instinctively acquired by every species born on this planet. Rani is married to Appana who had a woman to be used as concubine. So generally he locked Rani from outside and used to go for his personal affairs. Rani tried to improve the behavior of Appana but in vain. Rani had no any idea to get rid from that problem.

She adopted a technique to mould her husband by flowing her tears, ungrudging service. One day her husband returned like a prodigal son. Time had changed but mind set of male has not been changed. She got a root from a woman named kurudavva (a blind woman). She mixed it with the food of Appana but he did not eat and threw the food on an ant hill. A dreadful Naga consumed that food and coaxed towards Rani. The Naga disguised himself as Appana and shared the bed with her.

In this position of Rani had been pushed by a man. So male is responsible for the critical position of a woman.

4) Main Body

Nagamandala of Girish Karnad is a feminist plays. It raises feminist issues, child marriage,exploitation of wife by the hands of husbands and laws, double standard of the society as well as of the law. it also exposes effectively the hollowness and in justice of patriarchal family system. The plays Nagamandala's context is female oriented. The narrator is female. The flames that had assembled at the temple which had seen during the night is also a female. The sub plot kurudavva and Kappanna's story is dominated by a woman. But the approach of society to her problem is a serious indictment against the existing system that completely ignores her (Kurudavva) when she is looking for her lost son and is seeking help from everyone. She is called mad woman. This unwritten judgment of the society provides it a safe excuse to turn a deaf year to her problem. Even the main plot centers round a feminist oriented issue- the emancipation of a bride. Rani from subjugation of her husband Appanna.

In fact Appanna and Rani were married at a very early age. When Rani became young Appanna took her to his home. He had an illicit relationship with a concubine. He continued with it and ignored his wife. He neither talked to her nor spent his night with her. She thus forced to live all alone in her house day dreaming or weeping. He only used to come to

have his house for bath and lunch and then went out after locking the door from outside. So we say that Rani is victimized for no fault. She is innocent of her biological needs but certainly she wants love, care and time of her husband.

Although Rani never protested her husband for her rejection. It is human nature that during the trouble period the means of relief is densely searched. Rani did so. She found an effective root from Kurudavva that she tried to mix into the curry and to give Appanna, but unfortunately the curry turned discolour. Appanna threw the food with curry outside near an ant-hill. It had been consumed by a cobra. It hypnotized to-words Rani and interred inside to her room through drain and window. The cobra also disguised as Appanna and shared the bed. Even after many efforts of Appanna to kill the snake got failure. Even if Rani got justice despite the mass torturing through the society. Even today such type of brutal activity can be traced in the society.

Thus Nagamandala directly highlights the plight of the woman while they have developed much. It is perspective of Girish Karnad on feminist circumstances.

5) Significant

The play questions the patriarchal moral code, which demands the faithfulness of a woman to her husband but not the faithfulness of a man to his wife. Rani sleeps with Naga without knowing it, as Naga in the guise of Appana. They had consummation, Rani becomes pregnant and it is noticed by her husband. This is where a male ago is hurt. On other hand, Appana enjoys extramarital sex openly and unashamedly. Everybody even the elders in the village knew this but did not prove the chastity.

6) Conclusion

Within the ambit of this play Karnad highlights the oppressive as well as claustro phobic notions of the Indian society, where an Indian woman has no justify always her chastity in the public in spite of her husband's open infidelity. Their lives are guided by the decision of the others. Thus, they become objects to the will of the patriarchal of the society.

7) References

• Budholia, P.O. “Dramatic art of Girish Karnad" and "Myth as symbol : An Interpretation of Girish karnad's". “The Fire and the Rain". Critical Essays an Indian English literature, Jaipur, Book Enclave, 2003.

• Karnad Girish Nagamandala, Delhi: Oxford University Press 1990.

An Interview on receiving the Gyanpith Award in Indian Express; Sunday,March 28, 1999.

Pradip Kr. Singh
PhD Scholar
R.K.D.F University,
Ranchi, Jharkhand.
8271288366
Quarte No. H/T03
P.O. Chandrapura
Distt. Bokaro
Jharkhand
Pin - 828403

41

An Appraisal Of The Growth Performance Of The Indian Economy During The First Half Of The Twentieth Century

Shailendra Tripathi

Abstract

A purposeful appraisal of the long term growth performance of Indian economy needs to be made in the historical context against the backdrop of the level and stage from where independent India embarked upon the process of planned economic development on the 1st of April 1951 and launched its novel and unique efforts to bring about the socio-economic transformation within the democratic framework of the country.

The economy that India inherited at the time of independence was already ravaged by nearly two hundred years of colonial exploitation and the drain of Indian resources to Great Britain. This had "deprived it of the opportunity of participating in the process of modern Industrial transformation occurring in other parts of the world."1 British colonial policies rendered the Indian economy acting as subservient to the needs of British empire and transforming it into a supplier of cheap raw materials to Britain and consumer of factory - made finished goods produced in Britain. This ruined traditional agriculture and industries, promoted commercialised British owned plantation agriculture and export- bases mining, prevented the growth of modern industry resulting in extreme poverty, unemployment and illiteracy. All this made the future transition to self- sustained growth much more difficult in the era of post- independence planned economic development. Therefore India's economic development after independence, especially during the second half of the twentieth century, has been in part conditioned by the constraints of colonial legacy and inherited structures and patterns of development.

I. Growth of National Income:

(A.)The Reserve Bank of India Bulletin, December, 2000 carries a 1998 study by S. Sivasubramanian on the performance of the Indian economy duringthe pre-independence era of the 20th century. This study brings out the following stark realities:

*Associate Professor, Department of Economics, Feroze Gandhi College, Rae Bareli- 229001. (U.P.)

(a) The Gross Domestic Product (GDP) which is broadly the national cake, or the sum total of all the final goods and services produced within the geographical boundary of our country, grew only by an average of 0.9 per cent per annum. But, the individual share of this national cake, i.e., the real per capita GDP grew even lower at an average rate of 0.1 per cent."2

(b) Frequent droughts, famines and epidemics caused considerable fluctuations even in this very low growth rate of GDP. The GDP actually declined in 17 out of 47 years and per capita GDP in 26 years.

(c) Due to poor State of health - care services, the infant mortality rate which was 205 in the year 1911, could only decline to 136 in 1946. While the life expectancy at birth was 23.8 years at the beginning of 20th century, it barely increased to 32.1 years in 1951.

(d) The per capita per day availability of foodgrains to Indians during the second decade of the 20th century was 535 grams. It actually declined to 408 grams by 1950.

(B.)R.W. Goldsmith in his book 'The Financial development of India: 1860-1977' published in 1983 has compared the pre - independence 20th century growth rates by S. Subramanian, Heston and A. Maddison, and arrives at the following conclusion:

TABLE: 13

Rate of Growth of the Indian Economy

(1914-1946)

Period	Total National Product			Per - capita National Product		
	Estimates			Estimates		
	Sivasubramanian	Heston	Maddison	Sivasubramanian	Heston	Maddison
1914 to 1946	1.22	1.08	0.73	0.26	0.13	-0.22

Figure: 13

Rate of Growth of the Indian Economy

(19100504-1946)

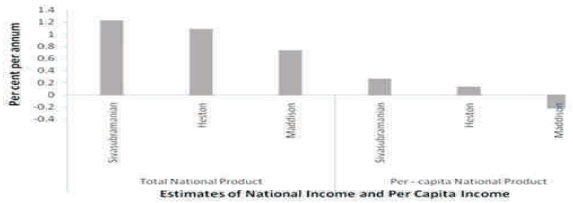

II. Capital Formation and Savings:

Another feature of the pre-independence twentieth century colonial economy of India was that it was characterised by very low rates of savings and capital formation. Economic development depends upon the availability and utilisation of the actual social surplus of the economy as reflected in the rate of internal savings, for further production. R.W. Goldsmith hasestimated the rates of capital formation and savings, as is brought out by the following table:

Table: 24

Capital Formation and Savings in the Indian Economy (During 1901-13 and 1914-46) (Per cent)

Capital Formation	1901-13	1914-46
Gross Capital Formation as percentage of Gross National Product (GNP)	6.92	6.75
Net Capital Formation as percentage of Gross National Product (GNP)	4.00	2.27
Net Savings as percentage of Gross National Product (GNP)	3.79	2.75

Figure : 2

Capital Formation and Savings in the Indian Economy (During 1901-13 and 1914-46)

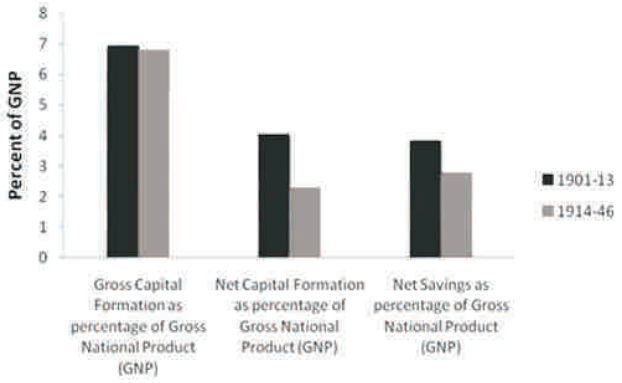

Source : Table 2.

Moreover industry accounted for a very low share in this small rate of capital formation and non-agricultural machinery formed only 1.92 per cent of GNP during 1901-13 and 1.78 per cent during 1914-46.

III. Progress of the Industry:

With the sudden collapse of tradition Indian urban handicrafts industry during the first half of the 19th century the process of modern industrial development began in the second half of the 19th century but its progress was extremely low and stunted. During the 19th century industrial progress was confined to the cotton and jute textile industries. The iron and steel industry made a beginning in 1907 and sugar, cement and paper industries came up in 1930s. "Still as late as 1946, cotton and jute textiles accounted for nearly 30 per cent of all workers employed in factories."5

Modern industry showed an impressive growth performance after 1918, growing at a rate of 3.8 per cent per annum, it could not significantly alter the overall economic situation for its share in the national income at the end of the British rule stood only at 7.5 per cent. Moreover "in 1939, out of a population of nearly 389 million (1941 census) only about 2 million were employed in modern industries."6

IV. Agriculture:

Agricultural sector suffered worst during the first half of the twentieth century when full import of colonial policies became apparent. G.Blyn in his book 'Agricultural Trends in India, 1891-1947' published in 1966 has estimated that 'per capita agricultural production declined at 0.72 per cent per year during 1911-41. The situation was worse in so far as per capita foodgrain output was concerned, during the same period, it declined by 29 per cent which means that at a rate of 1.14 per cent per year. Even though the per capita non-foodgrain output grew by 14 per cent, it failed to make up for the decline in foodgrain output."7

Agricultural output could show a very low absolute increase mainly because of an increase in crop – acreage. During 1911-1941, the yield per acre of all crops taken together declined by 0.02 per cent per year and that of foodgrains by 0.44 per cent per year.

V. Structural Distribution of the National Product and the Occupational Composition of the Employed Workforce:

During the first half of the twentieth century the structural distribution of India's national product and the occupational composition of the employed workforce remained nearly unchanged thus further underlining the fact of stark underdevelopment of the Indian economy. The following table amply makes the above point clear:

Table: 38

The Structure of National Income (1911-51) and the Occupational Composition of Workforce (1904-46) in India

Sectors	Percentage of Workforce		Percentage of National Income	
	1911	1951	1904	1942-1946
A (=Agriculture)	74.8	75.7	66.6	57.6
I (=Industry including manufacturing miming transport storage and communication)	12.2	11.9	20.9	25.3
S (= trade, commerce and services)	13.0	12.4	12.4	17.1

Figure : 3

The Structure of National Income (1911-51) and the Occupational Composition of Workforce (1904-46) in India

Shailendra Tripathi
Department of Economics
Feroze Gandhi College
Rai Barali (U.P.)
Postal Address -
D-1/702, Akash Enclave
Oppsite - Lic Office
Sector - 6A
Vrindavan Davan Yojana
Near Telibagh
Chauraha and Shani
Temple Chauraha
Lucknow (U.P.)
Pin - 945270113
9161760381

Source : Table 3.

The primary reason behind this abysmally low rate of capital formation and savings and slow, growth of GNP and per capitaGNP was the 'drain' of Indian wealth to Britain which meant that every year a substantial part of India's gross national product was unilaterally transferred to Britain in various forms as potential investible capital for which no equivalent economic, material or commercial returns accrued back to India. A very large expenditure on army, civil administration and police by the colonial administration, negligible public investment on the development of agriculture, industry and social infrastructure a large part of investible social surplus being appropriated by the landlords and indigenous moneylenders in the form of high rents and high interests, near absence of technological advancement are some other significant reasons responsible for the dismal growth performance of India during the first half of the 20th century.

References:

1. Bipan Chandra, Mridula Mukharjee and Aditya Mukharjee, India After Independence (1947-2000), Penguin Books, New Delhi, 2000, p. 339
2. Y.V. Reddy, 'Indian Economy 1950-2000-2020' in Uma Kapila and Raj Kapila, ed., India's Economy in the 21st Century, Academic Foundation, New Delhi, 2001, p. 31.
3. Bipan Chandra, 'The Colonial Legacy' in Bimal Jalan ed., The Indian Economy: Problems and Prospects, Penguin Books, New Delhi, 1992, p. 12.
4. Ibid, p. 3.
5. Ibid, p. 8.
6. Ibid, p.8.
7. Quoted, in Ibid, p. 6.
8. Ibid, p. 9.

42

"Effects of Materials Management on the Productivity of an Organization"

Dr. Santosh Kumar Sharma

Abstract:

II. Statement Of The Problem As a current cessation from inappropriate materialmanagement and utilization were organizational productivity are founded on the life wire and the total margin output of any organization is on how effective and efficient are the materials managed and used. But the opposite has been the case, as the materials purchased by many organizations are not properly managed in order to ascertain the strategized objectives of an organization.

Thus, it is doubtful whether an organizations make use of effective planning, organizing, controlling and coordinating of their material at their disposal before properly implementing them in order to achieve the desired goals and the different banners practiced in the process of importing and transporting material purchased by the purchasing managers and the side effects of ineffective management omaterials in an organization.

This research therefore was determined by these hydra-headed problems with respect to assessing the effects of materials management on organizational productivity.

III. Objectives of The Study

The purpose of the study is to examine effects of materials management on the productivity of an organisation. however, the objectives aimed are as follows:

i. To ascertain the relationship between the effective management of materials and the level of productivity in an organization.

ii. To examine if the positive effect of these materials management has helped improving the company productivity.

IV. Research Hypotheses

The following alternate hypotheses will be used for the study:

H1: There is a relationship between the effective management of materials and the level of productivity in an organization.

H2: Material management help in improving the company's productivity

V. Research Method

This research therefore covers two selected construction firms in Abuja, namely Arab Contractors and Dantata and Sawoe Construction Company, Abuja. Secondary data were obtained through books, journals, and internet. Empirical works of other scholars were consulted. A simple size of 255 was obtained from the population of 705 at 5% error tolerance and 95% degree of freedom using Yamane's statistical formula 255(100%) of the questionnaires distributed 250 (98%) were returned and 5(2%) were not returned. The questionnaire was designed in Likert scale format. The researchers conducted a pre-test on the questionnaire to ensure the validity of the instrument. Pearson moment product co-efficient and regression analysis were used to test the hypotheses

VI. Literature Review

A. Concept Of Materials Management Material management is defined as the process to provide accurate material at the exact place at right time in right quantity so as to minimize the cost of project. Material management is associated with the planning, identification, procuring, storage, receiving and distribution of material. The responsibility of Material management department for the flow of material from the time the material is ordered, received, and stored until they are used is the basic responsibility of material management.

Materials Management is a means to optimize performance in meeting up with customer service requirements at the same time increasing profitability by minimizing costs and making the best utilization of available resources. The basic goalof Materials Management as explained by [8] and [9], is to make sure that the right item is purchased and made available to the manufacturing operations at the right time, at the right place and at the minimum cost. According to [2], materials management is a view which brings about the responsibility for deciding the manufacturing requirement that is setting up the manufacturing processes and purchasing, storing and dispensing materials [2], [3].

Reference [10] states that materials management provides an integral system approach to the proper arrangement of materials activities and the total material price. They see it as something that stand as assigning to a single operating department all main activities, which

contribute to the price
of materials. The goal is to enhance performance of materials systems, as opposed to sub-optimizing the performance of sub-individual operating units that are fragment of the material system. Reference [11]argued that the objectives of materials management is to make sure that the right item is at the right place, at the right time and at a manageable cost.
The main objective of material management is to make sure that the materials are always available at their point of utilization when needed hence, efficient purchasing of material represents a key role in the accomplishment of the work. In order to make materials management on site efficient for fast-track projects there requirements to be an integrated material handling process from the design stage to the usage of materials. Three important phases that holds the key to a successful materials management are materials purchasing, materials usage, and storage. It is used to reduce the cost, which increases profitability and streamlines the production. Apart from management of material cost and its supply it helps in its proper utilization, transportation, storage, handling and distribution.

B. Objectives and Roles of Materials Management

Reference [12], stated that the objective of material management are to solve material problems from a total organisational view point (optimizing) by controlling the performance of the various material functions, providing a communication network and controlling material flow. The introduction of computer into organization, provided further reasons to adopt materials management, because material function have many common data needs and can share a common data base. The share of corporate resources required for material in organization form the larger part of the organization's revenue that the use of materials must be a primary concern of management to achieve the objective.

The Classical definition of the objectives of material management is the acquisition of materials and services of the right quality, in the right quantity, at the right price, from the actual source and at the right time. Apart from these general objectives, the following under listed points also constitute some of the objectives of materials management.

i. To support the company operations with an undisturbed flow of materials and services. This can be ascertaining through detailed procedure of the supply of materials, parts and components so that they are transported together at the right time and in the right work location.

ii. To maintain inventory investment losses (due to deterioration, obsolescence and theft) under control. Also making the maximum economical use of plant and equipment by smoothing out production procedures and scheduling to the best of usage.

iii. To purchase wisely and competitively which include two different considerations, keeping in touch the forces of supply and demand of elements that control prices and availability of materials and a concurrent search for better values that bring the best combination of competitive buying and wise purchasing that attributes mostly to maximizing a company's profit.

iv. To decrease the cost of transportation of moving materials by making right decisions on route to follow, the means of transportation and the vehicle to use.

v. To provide information service for regulating the distribution of products, production management, manufacturing, instruction, routes and other background production information.

vi. To have an advanced control of quality of company's product and to provide needed level of customer services. This can be done by maintaining favorable relationship with supplier's evenness of quality.

C. Importance of Material Management In An Organization

Material management represents an important asset and it is the largest single item of costs in almost every business organization. It is an important aspect of factory and industrial process which covers the entire spectrum of function such as material handling, material acquisition, assembly line management, storage, as well as material transport. Material management and control include several smaller components that work side by side to ensure the organization is more efficient and cost effective.

Reference [13] outlined the importance of introducing material management and control in organizations as follows;

1. Better coordination of the people and activities dealing with materials.
2. Elimination of bulk-purchasing.
3. Low price of material and equipment.
4. It hastens inventory turnover.
5. Better communication and cooperation between the various departments.
6. It reduces duplication of efforts and also facilitates the introduction of computer based operations.
7. It increases the morale of staff.
8. It reduces material obsolescence.
9. It facilitates better records and information.

10. It improves control of quality and improves profitability level.

Reference [14] explained that the question of managing materials arises only when the company holds inventories. Maintaining the inventories involved trying to hold up to organization's funds and incurrence of storage and handling cost. He further explained three (3) motives for holding inventories which are:

Transaction/Production Motive: This motive emphasis the need to maintain inventories to facilitate smooth production and sales operations.

Precautionary Motive: This motive necessitate the holding of inventories to guide against the risk of unpredictable changes in demand and supply forces as well as the growing level of globalization/computerization. Speculative Motive: This motive influences the decision to increase or reduce inventory level to take advantage of price fluctuation.

D. Attaining Profitability through Materials Management

The major contributions of materials management to profitability are discussed below:

i. Make or Buy Decision A construction company should be able to make prudent decision between buying raw materials and producing them. In taking this decision, the comparative advantage of making in or buying out should be analyzed. According to [15], many factors have to be considered when arriving at make or buy decision. Factors in favor of buying raw materials include:

a. When it is cheaper to do so.
b. Quantities required are too small for economic production.
c. Spread of financial risk between customers and suppliers. When source of supply can no longer be guaranteed.
d. On the other hand, the decision to produce raw materials can increase profitability when carried out under these circumstances:
e. Chance to use up idle capacity and resources.
f. Possibility of scrap utilization.
g. Greater purchasing power with large orders of a particular material.
h. Ability to manage resources

ii. Materials acquisition

Economic buying is the aim of any firm but the inexpensive materials may not necessary be qualitative. Therefore, a material manager will struggle for the inexpensive and qualitative raw material. Materials acquisition function starts with the receiving of the purchase requisition from the store. The purchase order is therefore arranged based on the contents of the requisition form. The most significant thing to bear in mind while planning for Effects of Materials Management on the Productivity of an Organization www.wjir.org profit is to purchase the right quality at the right price.

Procurement in high technical areas requires skill and experience on the part of the buying manager. Cost improvement is simply the result of learning effect amongst workers, reflecting the development of skill and handiness that occurs when a task is performed concurrently. According to [16], acquisition circle involves the recognizing and describing the need; transporting the need, investigating and selecting the supplier, order, receipt and inspection of good supplied, auditing the invoicing and closing the order.

The result of acquiring substandard materials can be reduced by buying from the right suppliers at the right price without negotiating quality.

iii. Receipt of materials

One significant aspect of receipt of materials is to check the source of good supplied and to make sure they conform to the specification as contained in the purchasing order. Spoilt and sub-standard materials are rejected thereby preventing the firm from sustaining unnecessary cost and thus promoting profitability. The effect of mediocre materials to both the machine and the profitability of the organization must be put up with as they cause production hold up which may direct to substantial losses to the firm.

iv. Material storage

This includes a careful handling of the stock and maintaining a perfect control over them. Handling of material is one of the events performed by materials managers and can be an efficient tool for saving cost and holding up profit. Storage of materials hinged on the nature and how they are used in the manufacturing procedures. Coal and iron ore are usually stored on the ground Liquids. Chemicals, paints and oils are kept in tanks. Profits can be achieve if managers successfully manage issues relating to stores location, layout and equipment inspection, protection of stores, issues to production, stock records and disposal of obsolete materials.

v. Inventory control

Reference [17] suggests that inventory control improves profitability by reducing costs involving storage and handling of materials. Inventory control is a means by which materials of the right quality and quantity are made available as when needed with due regards to the economy of

shortages, ordering cost, purchase price and working capital. Inventory control determines the extent of stock holding of materials. It equally makes it possible for materials manager to carryout accurate and efficient operation of the manufacturing organization through decoupling of individual segment of the total operation and it entails the process of assessing of stock into the store house and the issue of stock. Comparatively, shortage of materials can lead to disruption of products for sales; customer relations are hurt, while machines and equipment becomes underutilized. Therefore, a company can only realize substantial savings by using a rational procedure for inventory control.

Conclusion

This research paper found out that there is a significant relationship between materials management problems and the frequent breakdown of the plant. This can be expected since the existence of materials management problems result in the breakdown of the plant. Out-of stock and lack of spare parts interrupts production and hinder profitability.

This research has shown how profitability can be achieved via effective management of materials with particular attention to sourcing, receiving, storing and issuing materials. Prudent management of materials reduces depreciation, pilferage and wastages and ensures availability of materials.

We would like to re-emphasize that for a firm to achieve profitability the goal of materials management should be properly planned. It is clearly significant to manage all materials from the creation stage to the construction stage. The waste of materials should also be minimized throughout the construction stage in order to avoid loss of profit. Failure in managing site material and inventory will result in cost overrun, postponements in project completion and reduce overall project performance. Better management among purchase and finance department will help in attaining greaterefficiency in Inventory management. Firm, employing proper and efficient material management system can have increased their overall efficiency by 35%.

IX. Recommendations

Based on the findings from the study is on the effect of materials management on the productivity of an organization and in light of data collected by personal observation and though the questionnaire conducted in the organization; it isi. Material supply should be optimum to avoid "stockout" while work in process.

ii. Organizations should always take into knowledge thecost of production or price of raw materials before arriving at selling price

iii. There should be good and effective record system of materials for the operations of the organization especially as it affects production.

iv. Rate of spoilage and wastages should be minimized as much as possible and ensure that products pass quality control.

v. There is the need to train staff in the area of material management to further enhance the knowledge of the job.

vi. Organizations should computerize their material management system in line with the global changes in order to be able to track the movement of materials in the store.

vii. It is also recommended that further studies be carried out in the area of material management considering the importance to profitability of an organization.

References

[1]Wanjogu, H., Iravo, M. &Arani, w.(2015). Factors affecting materials management: a survey of small and medium-sized manufacturing firms in industrial area Nairobi, Kenya, Jomo Kenyatta University of Agriculture and technology.

[2] Wild, T., (2002). Best Practice in Inventory Management 2nd edition. Oworldxford: Butterworth Heinemann (imprint of Elsevier).

[3]Ondiek, G. O. (2009). Assessment of Materials Managementin the Kenyan Manufacturing Firms.Exploratory Survey of Manufacturing Firms Based in Nairobi. Journal of Social Sciences, 22(8), 88-110.

[4] Inyang, E.E., Inyang, F.B and Basil, G. (2013). Corporate Profitability through Effective Management of Materials.European Journal of Business and Management.

[5] Monday, J.U. (2008). Effects of efficient materials management on performance of firms in food % beverage manufacturing industry

Dr. Santosh Kumar Sharma
M.COM, PGDIM MAT.MGMT.MBA,
LLB, LLM WITH PhD.
H.NO. 5113 Sector-3 FBD-PIN CODE 121004
Mo.-9899882948- santosh.sharma2013@gmail.com

43

Socio-economic Contribution Of Livestock And Prospects

Dr. (Mrs) Mukesh Yadav

Abstract:

Livestock rearing, not only helps agriculture and production of manure, but also the production of milk and meat. After the first and second Green revolution, the importance of livestock in India goes beyond the function of food production. It is an important source of draught power, manure for crop production and fuel for domestic use. Thus, by minimizing use of non-renewable energy, livestock make a positive contribution to the environment. Although crops and livestock are interdependent to a large extent, the latter constitute an important mechanism for coping with the risks of crop failure. In land-scarce economies, livestock provide livelihood support in terms of income and employment generation to the millions of landless and small landholder. The present study also tries to investigate the role of livestock husbandry in the socio-economic development of an agricultural district of north India. The role of livestock, in providing food, livelihood and ensuring sustainable cropping system is evident. Thus, the study reveals the importance of the livestock rearing in Rajasthan.

Keywords: livestock rearing, marginal farmers, livelihood, socio-economic development Since independence, tremendous increase in livestock husbandry has taken place due to Key Village Scheme (KVS), Intensive Cattle Development Programme (ICDP), Integrated Dairy Development Programme (IDDP), Operation Flood and other schemes launched by the Government of India from time to time. After the first and second Green revolution, Livestock husbandry is emerging as a diversified form of agriculture in India. Its growth and development witnessed an upward trend due to the increasing demand of livestock derived products on account of increasing urbanization, improvement in disposable income and living standard as well as changing food habits from vegetarian to animal derived high nutritive food recently. The demand of livestock products is increasing day by day not only in India, but all over world, especially in the developing and less developed countries. Cattle and buffalo in some cases in some selected areas have been reared and used for mainly to work in agriculture as drought animals. Their dung is also very valuable and they were and still are used for manures as well as domestic fuels in many villages of the study area.

Livestock rearing, however, has been appearing as one of the most important value added farming system adopted in the country. It is an important source of food security as it provides meat and milk and other). Growing human population, rising per capita income and increasing urbanization are fuelling rapid growth in the demand for food of animal origin in the developing countries (Delgado et al., 1999). The importance of livestock in India goes beyond the function of food production. By minimizing use of non-renewable energy, livestock make a positive contribution to the environment. Although crops and livestock are interdependent to a large extent, the latter constitute an important mechanism for coping with the risks of crop failure. In land-scarce economies livestock provide livelihood support in terms of income and employment generation to the millions of landless and small landholder. The role of livestock in providing food, livelihood and ensuring sustainable cropping system is evident Livestock rearing is practiced by some social groups and it gives employment to the rearers.

Aims and Objectives

The present study attempts to analyze the socio-economic contribution of livestock and prospects.

Database and methodology

The present study is based upon the primary and secondary data. Primary data was obtained through field survey of the sampled villages. The secondary data was obtained from statistical bulletin and statistical office of the district. One village was selected from each development block; for the detailed survey. Among the total livestock rearers fifty percent of household were surveyed for collecting the relevant data.

Results And Discussions

The economic importance of livestock is evident that more than 15 per cent of Net Domestic Product of the state comes from animal husbandry. With the increasing role of science and technology the economic share of animal husbandry in Net Domestic Product decreases. Before agriculture was started the animal domestication was major source of economic production. During that period the animals were reared for meat and hide production. With the advancement of civilization the uses of domestic animals diversifies such

as riding, draft purposes, milk, wool, meat, etc, but in recent times the diversification of animal resource increased more i.e. use for food products, use for animal labour, diversified use of animal remnants, use of dung, animal hairs etc. (table 7.1)

Table 7.1

Uses Of Animal Resource

Sr. No.	Food Products	Animal Labour	Animal Remanents	Dung	Animal Hair
1	Milk	For agricultural operations	Hides	Manure	Wool
2	Meat	For Transportation	Bones	Energy	Hair
3	Milk by Products	For Riding	Horns	Biogas	-
4	-	-	Hooves	-	-
5	-	-	Glue	-	-
6	-	-	Gelatin	-	-
7	-	-	Animal Fat	-	-
8	-	-	Cashing	-	-
9	-	-	Pharmaceuticals	-	-

The animal husbandry is one of the basis of economic activities in the state of Rajasthan. After crop raising the animal husbandry is the main economic activity to which maximum population of the state is connected particularly in the rural areas.

Dairy Animals: -

The economic contribution of dairy animals to the society as a whole is clear that these provide milk, milk by products such as khowa (mawa), curd, ghee, milk powder, butter, ice cream, cheese, tond milk, lassi, sour-lassi, milk cake and other sweet-meets.. The milk production per lactation in Rajasthan is about 1500 liters per milch stock unit. The dietary and economic contribution of this livestock can be easily assessed. One unit of draught force is equivalent to one Horse Power. There is no doubt that all the draught animals are not being used with their full capacity due to mechanical power use. But before mechanization this power had been fully utilized. Agricultural operations, some rural small industries and transportation in rural areas are mainly animal labour based in Rajasthan.

Through Rajasthan Co-Operative Dairy Federation it is the policy of the state government that the milk producers should get good price of their milk. For this purpose there are 10 dairy plants and twenty-five chilling centers in the state. The milk collection capacity of these milk plants and chilling centers was 9 lac liters and 4.8 lac liters respectively per day. The intensive dairy development programme is running in all the thirty two districts of the state. Sixteen milk federations are working in the state. The milk producers away from cities and towns in remote areas where milk production societies are not working the surplus milk is used to prepare desi ghee and the remaining material is known as lassi by the family members and surplus is given to the needy particularly to the weaker sections of the society and to the landless labourers who work on their fields in the village itself. The desi ghee is sold without any hesitation. In Rajasthan milk is utalised as under (a) domestic consumption of fresh milk, (b) its conversion into indigenous products such as ghee, mawa etc, (c) use of fluid milk used by Halwais and (d) procurement, processing and marketing of milk and milk by products by organized dairy plants (private, government and co-operative).

Marketing Channels For Surplus Milk: -

The milch animals rearers in Rajasthan sell their surplus milk and ghee through following marketing channels where these channels are not existing in remote areas there the producers are compelled forced consumption of their produce in absence of marketing facilities. The milk producer sells his milk or the milk by product to the consumer directly or through vendor then to Halwai and then to consumer (for milk only); through Hawai and then to the consumer (for milk only); through co-operative society and then to consumer (for milk, ghee, paneer etc); through trader and then to the customer (particularly for ghee).

Income Analysis of A Farmer's Dairy: -

It is very essential for the interpretation of economic contribution of livestock particularly of dairy stock in the interest of all i.e. consumer, government and the rearers to analyze the input and output of milk production by single milch animal unit, sub-mini dairy, mini dairy and middy dairy. In this study for the analysis of input and output of a sample of mini dairy has been taken from the Nihalpura village in tehsil Behror district Alwar in the state. This sample has been taken purposively from the milk buffalo-rearing district. Similar situations are prevailaing in the districts of Bharatpur, Dholpur, Karauli, Dausa, Jaipur, Jhunjhunu, Sri Ganganagar, Hanumangarh and Sawai Madhopur. The sample village is adjacent to Haryana where the Murrah buffaloes are base for milk production. This farmer has a small agricultural holding (four acres of land. The dairyman has replaced his animals before it becomes dry. The farmer has managed rupees one lac from all his sources. The reasons of low profit were higher prices of fodder and feed and low yield per buffalo per day in summer as compared to the winter. The average yield seven liters per buffalo per day was on account of replacement of milch buffalo before it becomes dry with a fresh lactation buffalo. During flush season (August 2001 to March 2002) the mini

dairy owner received a net profit of rupees 19990 due to high milk yield (eight liters per day) per buffalo in comparison to summer yield and at the same time due to cheaper and rich green and dry fodder. Therefore, the total dairy profit earned by the owner during April 2001.

(h) One year net profit was rupees 28040. At the same time one employed male and two under employed female members of the farmer family got employment and part time employment respectively and so earned rupees 29200 for their manual labour during the whole year. Therefore, the total income was rupees 57240 for the whole family. At the same time the farmer got good price of his fodder and feeds.

The dairy owner was returning his loan installments of rupees 2500 per month. He may return his all loan within four years. If the dairy owner does not sell the minor buffaloes (male and female both) before they mature, doing this he can give employment to two more underemployed and can earn more money from the animal rearing practice.

Milk Production and Its Disposal: -

The general idea of the state as a whole cannot be drawn from the following study. However, a small clue about the marketable surplus of milk can be for the sample study area. The author is trying to know where the produced milk consumed. The primary data about the production and disposal of milk have been taken from a sample village.

From the selected village Tatarpur in district Alwar, on the basis of farm size four families were taken as sample families, (i), landless agricultural labourer's family, (ii) marginal holding farmer's family (below one hectare of land), (iii) small holding farmer's family (one to four hectares of land) and (iv) medium holding farmer's family (four to ten hectares of land). The information of production, consumption, marketing surplus of milk and ghee and marketing channels were collected from the milch stockowners through interviews on schedules and questionares. The information relate to the period of one year i.e. March 2001 to February 2002.

The most of the people in Rajasthan prefer vegetarian food. Therefore, the consumption of meat and meat by products is insignificant, but Rajasthan is the major rearer of animals for meat, which are exported out of the state.

Hides, bones, horns, hooks, glue and gelatin, animal fat and pharmaceutical of animal origin are the main by products from slaughtered and fallen animals. Dung is also used as source of energy both direct and through bio-gas and manure in rural Rajasthan.

Economic contribution of animal husbandry is also in the sense that many industries depend upon livestock products for raw material such as dairy industry, wool industry, meat industry, leather industry etc. Uses of animal resources and progeny of their products are good sources of employment not only to landless, marginal and small category of farmers, but even to educated unemployment youth, particularly in rural areas.

Life Style: - The economic contribution of dairying in rural Rasthan can be assessed by having a look on their life style. With the increased income from dairy/livestock rearing and keeping the life style of the rural people has improved a lot.

Conclusion

Rajasthan as a whole is primarily an agricultural state. Livestock rearing is an important part of the region's socioeconomic growth. The number of individuals involved in livestock rearing closely reflects its importance. People who work in the cattle industry are usually illiterate or have a very poor level of literacy. As a result, it is an activity that the educated class dislikes. Women play a significant role in livestock production. The landholding status of the rearers demonstrates that the majority of them are landless, marginal, or tiny land owners. The impact of livestock husbandry can be seen in the monthly earnings of the farmers. As a result, the study demonstrates the significance of livestock husbandry and its impact on development.

References

1. Delgado, C., Rosegrant, M., Steinfeld, H., & Courbois, C. (1999). Livestock to 2020: The next food Revolution, Discussion Paper 28, IFPRI, Washington, D.C., F.A.O. Rome and ILRI Nairobi
2. Hegde, N.G. (2000). Livestock Development for Sustainable Livelihood of Small Farmers. Souvenir of the 39th Annual General Meeting and 48th National Symposium on Emerging Rural India – A Challenge to Livestock Industry (CLFMA), Manesar, Haryana, 50-63
3. Khan, N., Iqubal, M.A. (2001). Livestock Husbandry and Its Impact on Employment Generation in Aligarh District, African Journal of Livestock Extension, Vol. 6, No.2, 20-24
4. Khan, N., et al. (2002). Livestock Husbandry in India : A Blessing for Poor, Proceeding of International Seminar on Tropical Livestock Production, 5th ISTAP, Yogyakarta, Indonesia, Oct. 19-22, 2010
5. Rollefson, K.I. (2001). Livestock Development for Food Security, Annual Report of the League for Pastoral Peoples, 2000/2001
6. Bujorbaruah, J M, Dairy Development in Assam, Dairying in India, 1981, I D A House, R K Puram, New Delhi, P.53.
7. Bohra HC (2012). Feed production technologies for

sustainable livestock production in arid area. Central arid zone research institute, Jodhpur. Pp 38.
8. Mahla V (2015). Study about socio-economic status and calf rearing management practices adopted by cattle keepers of western Rajasthan, India. Indian J. Agric. Res. 49(2). https://doi.org/10.5958/0976-058X.2015.00029.3
9. Sheikh AS (2015). Kankrej cattle management practices followed in rearing at northern part of Gujrat. LSL. 78-86.

Dr (Mrs) Mukesh Yadav
Associate Professor in Geography
Govt. College Hisar (Haryana)
Pin-125001
Mail ID: ymukesh6572@gmail.com

44

Commentary on United States — Continued Suspension of Obligations in the EC — Hormones Dispute decided by DSB

Ruchi Aggarwal

Abstract:

On 8 November 2004, the European Communities filed a request for consultations with the United States asserting that the United States should have removed its retaliatory measures since the EC has removed the measures found to be WTO-inconsistent in the EC — Hormones case.

The issues which the EC intends to raise in the consultations include, but are not limited to:the failure by the United States to remove the retaliatory measures despite the EC's removal of the WTO-inconsistent measures: the unilateral determinations by the United States that the new EC legislation is a continued WTO violation; and the failure of the United States to follow DSU Article 21.5 dispute settlement procedures to adjudicate the matter.

The EC considers that the continued use by the United States and of retaliatory measures in this case, in the current circumstances, are violations of Articles I and II of GATT 1994, and Articles 21.5, 22.8, 23.1 and 23.2 (a) and (c) of the DSU.

On 17 November 2004, Canada requested to join the consultations. On 19 November 2004, Australia and Mexico requested to join the consultations. On 16 December 2004, the United States informed the DSB that it had accepted the request of Canada to join the consultations.

On 13 January 2005, the European Communities requested the establishment of a panel. At its meeting on 25 January 2005, the DSB deferred the establishment of a panel.

Panel and Appellate Body proceedings

At its meeting on 17 February 2005, the DSB established a panel. Australia, Canada, China, Mexico and Chinese Taipei reserved their third-party rights. On 23 February 2005, Norway reserved its third party rights. On 25 February 2005, Brazil reserved its third party rights. On 28 February 2005, India and New Zealand reserved their third party rights. On 27 May 2005, the European Communities requested the Director General to compose the panel. On 6 June 2005, the Director-General composed the panel. The first substantive meeting of the Panel with the parties took place on 12-15 September 2005, which was open for observation by the public.

On 20 January 2006, the Chairman of the Panel informed the DSB that due to the complexity of the dispute, and the administrative and procedural matters involved, the panel would not be able to complete its work in six months. Based on the current assessment of the process, the panel expects to issue its final report to the parties in the course of October 2006.

On 23 January 2007, the Chairman of the Panel informed the DSB that it had expected to issue its final report to the parties in the course of October 2006. However, due to the complexity of the scientific issues involved and due to the difficulties in scheduling the second open hearing of the Panel with the parties and experts consulted by the Panel, it was not possible to meet that time line. The Panel estimated that it would issue its final report to the parties in the course of June 2007. On 22 June 2007, the Chairman of the Panel informed the DSB that the preparation of the Panel Report was taking longer than expected and that it expected to issue its final report to the parties in the course of October 2007.

On 31 March 2008, the Panel report was circulated to Members. The Panel concluded that, with respect to the claims of the European Communities concerning the violation of Article 23.2(a) read together with Articles 21.5 and 23.1 of the DSU, the United States made the following procedural violations:

1. by seeking, through the measure at issue — that is the suspension of concessions or other obligations subsequent to the notification of the EC implementing measurethe redress of a violation of obligations under a covered agreement without having recourse to, and abiding by, the rules and procedures of the DSU, the United States has breached Article 23.1 of the DSU;

2. by making a determination within the meaning of Article 23.2(a) of the DSU to the effect that a violation had occurred without having recourse to dispute settlement in accordance with rules and procedures of the DSU, the United States has breached Article 23.2(a) of the DSU.

In addition, having addressed the claims raised by the European Communities concerning Article 23.1 read together with Articles 22.8 and 3.7 of the DSU, the Panel concluded that:

1. to the extent that the measure found to be inconsistent with the SPS Agreement in the EC - Hormones dispute has not been removed by the European Communities, the United

States has not breached Article 22.8 of the DSU; 2. to the extent that Article 22.8 has not been breached, the European Communities has not established a violation of Articles 23.1 and 3.7 of the DSU as a result of a breach of Article 22.8.

In the light of these conclusions, the Panel recommended that the DSB request the United States to bring its measure into conformity with its obligations under the DSU. The Panel further suggested that, in order to implement its findings under Article 23 and in order to ensure the prompt settlement of this dispute, the United States should have recourse to the rules and procedures of the DSU without delay.

On 29 May 2008, the European Communities notified its decision to request the Appellate Body to review certain issues of law covered in the Panel report and certain legal interpretations developed by the Panel. On 10 June 2008, the United States notified its decision to appeal to the Appellate Body certain issues of law covered in the Panel report and certain legal interpretations developed by the Panel. The Appellate Body examined this appeal. On 22 July 2008, the Chairman of the Appellate Body informed the DSB that in the light of the numerous and complex issues raised in these appeals, and the increased burden on translation services, the Appellate Body would not be able to circulate its report within 60 days. The Appellate Body estimated that the report in these appeals would be circulated no later than 16 October 2008.

On 16 October 2008, the Appellate Body report was circulated to Members.

As regards the DSU, the Appellate Body:

— found that the Panel did not err in stating that proceedings under Article 21.5 of the DSU are open to not only the original complainant, because they may be initiated by original complainants and original respondents;

— upheld the Panel's finding that "it has jurisdiction to consider the compatibility of the [European Communities'] implementing measure with the SPS Agreement as part of its review of the claim raised by the European Communities with respect to Article 22.8 of the DSU";

— because it had not been established that the measure found to be inconsistent with the SPS Agreement in the EC — Hormones dispute has been removed, upheld the Panel's finding that "the European Communities has not established a violation of Articles 23.1 and 3.7 of the DSU as a result of a breach of Article 22.8";

— reversed the Panel's finding that, "by maintaining its suspension of concessions even after the notification", the United States is "seeking redress of a violation with respect to this Directive, within the meaning of Article 23.1 of the DSU"; and

— reversed the Panel's findings that the United States "made a 'determination' within the meaning of Article 23.2(a) in relation to Directive" on the basis of statements made at DSB meetings and the fact that the suspension of concessions continued subsequent to the notification of this directive, and that the United States "failed to make any such determination consistent with the findings contained in the panel or Appellate Body report adopted by the DSB or an arbitration award rendered under the DSU", in breach of Article 23.2(a).

As regards the Panel's consultations with the scientific experts, the Appellate Body found that the Panel infringed the European Communities' due process rights, because the institutional affiliation of two of the experts compromised their appointment and thereby the adjudicative independence and impartiality of the Panel. Accordingly, the Panel failed to comply with its duties.

The Appellate Body reversed the Panel's finding that the European Communities' import ban is not based on a risk assessment as required by Article 5.1 of the SPS Agreement; however, the Appellate Body is unable to complete the analysis and therefore made no findings as to the consistency or inconsistency of the import ban with Article 5.1 of the SPS Agreement.

The Appellate Body also reversed the Panel's finding that the provisional import ban relating to testosterone, progesterone, trenbolone acetate, zeranol, and MGA did not meet the requirements of Article 5.7 of the SPS Agreement; however, the Appellate Body was unable to complete the analysis and therefore made no findings as to the consistency or inconsistency of the European Communities' provisional import ban with Article 5.7 of the SPS Agreement.

Because it had been unable to complete the analysis as to whether Directive has brought the European Communities into substantive compliance within the meaning of Article 22.8 of the DSU, the Appellate Body found that the recommendations and rulings adopted by the DSB in EC — Hormones remain operative. In the light of the obligations arising under Article 22.8 of the DSU, it recommended that the Dispute Settlement Body request the United States and the European Communities to initiate Article 21.5 proceedings without delay in order to resolve their disagreement as to whether the European Communities has removed the measure found to be inconsistent in EC — Hormones and whether the application of the suspension of

concessions by the United States remains legally valid.

Action by the Dispute Settlement Body

At its meeting on 14 November 2008, the Dispute Settlement Body adopted the Appellate Body report on United States – Continued Suspension of Obligations in the EC – Hormones Dispute and the Panel report, as modified by the Appellate Body report. The Panel report should be read in conjunction with the Appellate Body report.

References :-

1. www.wto.org
2. WTO Dispute Settlement:One-Page Case Summaries 1995–2020

Ruchi Aggarwal
Research Scholar
Faculty of Law
FOL, SGT University
Gurugram

45

A Research on Problem of Suicide among Small and Marginal Farmers in India

Mrs. Vishakha Sharma

Abstract:

In a underdeveloped Economics or in developing economics the problem of suicides among small and marginal farmers is a common phenomenon. 'Marginal farmer' means farmers cultivating agricultural land up to 1 hectare and small farmer means a farmer cultivating agricultural land more than 1 hectare and less than 2 hector so the basic problem start from their small holding of cultivating land. But there are another reason also which are responsible for their debtness and miserable conditions, which forces them every year to take this kind of unsocial step.

So I want to pay attention of readers to take a deep concern on this issue.

Keywords : Small and Marginal Farmers, Reasons for their debtness, Expenditure and Government Policies.

Introduction :

In a developing country like India the most of the population of rural areas are depend on agriculture for their livelihood. So the creations of small and marginal farmer take place. In other words we can say that the overpopulation of these economics is a main reason for dependency on agriculture. Every year in India we hear about lot of cases about suicides of poor farmers due to over debtness. What are the basic reasons who force them to take this kind of steps. So first of all we try to discuss basic problem with small and marginal farmers face.

1. First major factor smallness of holdings : ::

a) Many studies prove that small size of cultivating land is major problem faced by small and marginal farmers. Because of small size of cultivation they are not able to use the modern technology on their farms. Their resources are not so enough to use modern technology so that result is low productivity.

b) Small farmers do not have their own machinery due to high price. And if they hire purchased these machinery is there rent are also very high. So they cannot be able to use modern technology to their farm and the result or low level of productivity.

2. Secondary, due to low productivity these farmers are not able to produce

marketable surplus. Not been able to produce marketable surplus has a direct

negative effect on their earnings.

3.Thirdly the cropping patterns of these farmers are also traditional. Generally they row low valued and self consumed crops and never produced cash crops..

4. Fourthly, the small and marginal farmers should not be able to gain from rising trends in the prices of agricultural crops, after the harvesting reason because they do not have storage and warehousing facilities.

5.Last but not least problem of small and marginal farmers are receive reasonable price for their crops because of existence of intermediaries. Existences of intermediaries are also their ignorance about appropriate Government Pricing Policies they do not attain actual or reasonable price for their hard efforts.

These are the basic problem related to their cropping and marketing system those they have to face during their life.

Now we are moving second constraint mainly called Financial Constraint which are major reason for their debtness.

Marginal and small farmers generally faced a large family budget effects during their life. The reason for regular defiats in their budget was explained by variety of factors such as low per capita income, small size of farm holdings, and non-availability of adequate marketable surplus, shortage of past farming because of unreasonable or wasteful expenditure on social ceremonious and litigation and mainly reasonable nature of agriculture.

The small and marginal farmers generally depend on private agencies like landlord, money lenders for their basic needs. Because most of their expenditure or on consumptions. These private agencies charge is very high rate of interest from them and the burden of debt goes on increasing and increasing on years to years. And become a strong reason for committing them to suicide.

If we talk about public sector bank then these bank take most of their concern to large farmers. Because a small and marginal farmer does not have enough securities so bank have always risk for NPS's.

Yes,, it is true that now times has changed and commercial banks also provide loan and advances to small

and marginal farmers, but most of the time paperwork are so lengthy that these uneducated farmers do not want to go to the bank for this purpose.

In such cases where bank provide loans and advances to these farmers and if their crops does not grow fruitfully because of failure of monsoons or any other reasons then these farmers are not found themselves to repay the loan and sometimes excess burden of debt goes on increasing and the results are same committing suicide.

Averages daily during 1995 to 2014 approximately 3 thousands cases are recorded of suicides. This is only approximation, reality or more than these data.

Research Methodology:

Research methodology : Figure and data are taking through secondary resources

A major solution of the problem of Indian farmers:

Development of human resources is a better and best step towards this problem. Because it we develop Indian farmers a human resources than their dependency an agriculture sough-out. So, in this direction the Govt. and Private sector should come forward jointly in the purpose-

Forms of human development can be defined in this way.

- Education and training
- Health
- Houses
- Supply of water and sanitation
- Poverty
- Inequality
- Unemployment
- Development of weaker section

If we develop all the Indian farmers basically who are small and marginal area human resources than for their livelihood they start to think in another way. It is the problem of lack of education between them that hindered in their growth. So that of all we have to come forward in this direction. Govt. as well as big private firms should come forwarded to educate them.

Yes, it is true that in recent years Govt. spend a lot of resources for this purpose.

- Sarv Shiksha Abhiyan (SSA) Right to education.
- National Rural Health Mission - Kiran Credit Card Schemes
- Rural Housing Schemes - Meri Fasal Mera Bima Yojana
- National Rural Livelihood Mission
- Welfare and Development of Weaker Section

All these programs are in this direction to improve the rural poverty.

Yes all these Programmes and Schemes have their effect on the social and Economic conditions of the farmers. Yet there are lots of shortcomings behind the programmes approved by Government. Shortcomings of Welfare Schemes launch by Government: Major shortcomings of Welfare Schemes are their outreach towards weaker section of the Society Major Welfare Schemes has their benefits to only high and above middle class of the farmers.

The real fruits of their schemes could not reach to lower and marginal farmers of the Indian Society. So, Government should come forward and takes major improvements and recommendations that welfare schemes must be reach to the small and marginal farmers. In other words inclusive growth is compulsory and needed to apply.

Lack of knowledge about Modern Technology : :

Lack of knowledge about implementation of modern technology is also a reason behind low productivity and low level of income. Modern technology is although costly for small and marginal farmers but its implementation gave after some time a high level of productivity.

So,, by credit mechanism Government and Private agencies should help the farmers to apply modern technology on their farms.

If we make the study of strategy of agriculture of developed countries we find that their holdings are short but due to their technology their productivity are high. So they can earn their livelihood properly. So, we have to make some step in this direction also.

Modern technology can be applied by with help of Government or Public-Private partnership. Organic agriculture also a good and modern concept for those who have small holding, But all these can possible only with huge awareness and knowledge.

So, in other words we can say that major challenges and improvements are necessity

Including Observation and Suggestion :

Different Studies and research on this topic are carried out recent years. About the causes and circumstances and measures to prevent there kind of mishappening in the farmer's life. But where is result?

It is true that every year Government launches a variety of schemes to prevent this and also take steps to control the cares of suicides among farmers but results are not so fruitful. So what are the drawbacks of the system.

• Firstly Government polices are not so effective that to reach all section of the farmers, like recently launched 'Kisan Fasal Bima Yojana' etc. There kinds of schemes are beneficiaries to only large and big farmers. So Government should take a step to ground level the reality of every scheme. At

administrative level same reforms are also necessary.

• Secondly the education is basic need of small and marginal farmers. Their ignorance and uneducation is also a most common reason behind this. So Government should interfere and took steps to educate each and every farmer at basic level so that they can attain all the benefits provided by the Government with different schemes.

• Thirdly it is a duty of all high profile society of our country to come forwarded to improve the conditions of poor farmers. Because agriculture in India today also all depend on nature. And on nature nobody have any control. So, it is a gamble to farmers that their crops have be or not be good. So, big industrialist should come forward to provide side jobs to there farmers at their own region so that they can at least earn their basic need and not to depend on money lenders and land-lords etc. for their consumption expenditure.

References :

1. Acharya, S.S. and Agarwal, N.L., Agricultural Marketing in India. Oxford and IBM Publishing, Company, New Delhi, 1987.
2. Bhalla G.S. and Gurmal Singh, Indian Agriculture, Sage Publications, New Delhi, 2001.
3. Directorate of Economics and Statistics, Ministry of Agriculture, Government of India, Agricultural Statistics at a Glance, New Delhi, 2000. .
4. Haridoss, Rand R, Sannari, Energy Requirement for Paddy Cultivation, Study Modhurai District, Santha Publications, Madurai, 1997.
5. Jha. S.M. and Singh, L. Marketing Management in Indian Himalaya Publishing House, Delhi, 1988

Mrs. Vishakha Sharma
Assistant Professor
Vaish Mahila Mahavidyalya, Rohtak
Email Id : gaurav537.net@gmail.com

46

Changes In Ground Water Resources: A Study of Haryana State (2011-2020)

Dr Sucheta Rani

Abstract:

The study of ground water holds an important place in the analysis of various agricultural and industrial attributes of an area including location and rainfall pattern. The amount and availability of the ground water in a particular area indicates pattern of development of agriculture, urban growth as well as industrialisation. This type of study explains the amount, availability, balance, depth, quality and development in the ground water zone. This is very important issue for upcoming time because population pressure demands more & more water for their basic needs, cattle's, agriculture, settlements and for various other works.Also, usage of water per capita increases with more urbanisation which results in stress on ground water as ground water is one perennial source of water. Due to the growth of urban areas increases consumption of water that results in depletion of ground water resulting in loss of water table, that ultimately impact agriculture as well as environment and ecosystem.

This paper aims to study the growth and trend of available ground water in districts of Haryana over a decade spanning 2011 to 2020.Data from central board of ground water has been analysed to carry out study of 2011 and 2020 respectively.

Keywords: Ground water, water resources, water draft, balance, net ground water availability, development etc.

Introduction:

Groundwater has emerged as a key resource input in India's agriculture and food security in recent years. Over the past three decades it has become the main factor of growth in irrigatedareas. At present tube wells accounts for over 60 percent irrigated area in the country.Currently, in Haryana about 85 percent of total cultivated area is irrigated. The rapidexpansion of groundwater use has been a major factor contributing to the increase in netirrigated area. (Aneja 2017)

* Dr. Sucheta Rani, Assistant Professor in Geography, Govt., College for Women, Rewari Haryana.

Groundwater refers to all the water occupying the voids,pores and fissures within geological formations, whichoriginated from atmospheric precipitation either directlyby rainfall infiltration or indirectly from rivers, lakes orcanals. Sands, gravel, sandstones, and limestoneformations are the usual sources of groundwater supplythough some may be drawn from impervious rocks suchas granite when they have an over burden of sand orgravel.(Olumuyiwa et al 2012) Utilization of groundwater as a source for domestic, municipal, agricultural and industrial activities continue to increase principally because of the heavy capital outlay and maintenance of surface water development through Dams especially in developing countries (Sangodoyin and Agbawhe, 1992).

The present study analysed different factors for available ground water including factors like natural and industrial drafts as well as water recharge to come at conclusion. The study examines the usage of ground water for industrial and agricultural sectors in different district of Haryana in terms of ground water availability. Further the study examines the changes in ground water level for the decade from 2011 to 2020.

Lastly the study evaluates impact of industrialisation draft on ground water availability and water table development.

Study Area: The State of Haryana is in North India with its capital at Chandigarh. The HaryanaState is located between North Haryana is a landlocked state in northern India. It is between27°39' to 30°35' N latitude and between 74°28' and 77°36' E longitude covering an area of44,212 sq. km. The state is sub-divided into nine physiographic units and is drained by twomajor rivers Ghaggar and Yamuna. It was carved out of the former state of Punjab on1 November 1966 on the basis of language distribution. The name Haryana is found in theworks of the 12th century AD Apabhramsha writer Vibudh Shridhar (VS 1189–1230). It isbordered by Punjab and Himachal Pradesh to the north and by Rajasthan to the west and south. Theriver Yamuna defines its eastern border with Uttar Pradesh. Haryana surrounds the country'scapital Delhi on three sides, forming the northern, western and southern borders of Delhi.Consequently, a large area of south Haryana is included in the National Capital Region forpurposes of planning for development.Haryana State is mainly occupied by the alluvial deposits, which cover around 98% of the state while hard rock covers around 2%.Alluvial deposits are of Older and Newer types and

consist chiefly of clay, silt and fine to medium sand. Other deposits are piedmont deposits, which are confined to a narrow zone, about 2 to 4 km wide, between Siwalik Hills and alluvial plains. Sand-dunes are found in the districts of Bhiwani, Mahendragarh, Hisar and Sirsa. Coarse sand, gravels and boulders are found to occur in piedmont areas and in the adjacent alluvial tracts. The hard rock formations belong to the formation of Delhi systems of Pre- Cambrian age and occupy the southern part of the state, while Shivalik system of Tertiary age are occupying the northern most part of the state.

Objectives & Scope: Objective of this paper is to determine the changes in ground water during the specific time period in Haryana state as a case study.

Expected scope has to achieve are:

1. Identify the data source and availability of ground water
2. Comparing various heads of ground water draft with ground water availability.
3. Analysed trend of ground water for the decade from 2011 to 2020.
4. Quantify the changes within the individual classes.
5. Find out the basic causes behind the changes.

Data Source:

1. Ground Water Year Book of Haryana State 2010-11, 2020-2021
2. Report on Dynamic Ground Water Resources of Haryana State as on 31st March 2020.

Availability of Groundwater Resources In Haryana:

The groundwater availability in a region is largely determined by geophysical, urban, industrial and agricultural and over and above rainfall regime. Table 1.1 reveals availability of ground water in 2011 in Haryana was 978 thousand ha-m which reduced to 863 thousand ha-m in 2020, representing a marginal decrease of about 12 percent. This is due to steep growth in domestic & industry draft by 62 percent in a decade. It is evident that a very high growth is evident in Bhiwani, Kurukshetra, Panipat, Faridabad, Karnal & Mahendragarh districts, more than a 100 percent due to development as urban and industrial hubs.It is evident from table 1.1 that during decade irrigation draft growth reduced in Haryana as overall state by 15 percent, due to improvement in rainfall regime and increasing intensity of canal irrigation. Irrigation draft reduced in Jhajjar, Rohtak, Sirsa and Sonipat districts by 40 percent.There is a less significant variation in groundwater availability across the state of Haryana amounting to a reduction of 12 percent in decade of 2011~2020 evident from Table 1.2. It is evident that very high negative growth in groundwater availability is recorded in Faridabad, Rohtak, Sirsa and Sonipat districts (more than 20 percent). On the other hand it increased in Mahendragarh (14%) followed by marginal increase in Panipat (3.1%) andYamunanagar (6.9%) districts. In 2020 least groundwater availability was least in Faridabad (14.8 thousand ha-m), Gurgaon (20 thousand ha-m) and in Panchkula (14 thousand ha-m) depicting same pattern as was in 2011.The availability of ground water was roughly same in eastern and north eastern regions of state comprising Panchkula, Panipat, Kaithal and Yamunanagar.

Table 1.1 Haryana: District wise Ground water availability, Draft

District	Annual Domestic and Industry Draft (In 1,000 ham)		Growth in Annual Domestic and Industry Draft (%)	Annual Irrigation Draft (In 1,000 ham)		Growth in Annual Irrigation Draft (%)	Annual Groundwater Draft (Total, in 1,000 ham)		Net Groundwater Availability (Total, in 1,000 ham)	
	2011	2020		2011	2020		2011	2020	2011	2020
Bhiwani	0.8	2.8	432%	70.6	39.2	-12%	71.4	41.9	61.9	38.1
Charki Dadri	0.0	1.3		0.0	22.9		0.0	24.2	0.0	17.4
Fatehabad	1.4	1.8	26%	90.7	89.1	-2%	92.1	90.9	53.0	53.5
Gurugram	18.2	19.3	7%	36.3	22.1	-39%	54.4	41.4	24.0	20.4
Kurukshetra	6.7	18.9	181%	71.1	67.8	-5%	77.8	86.7	35.3	35.2
Panchkula	2.8	1.3	-52%	8.5	7.4	-13%	11.3	8.7	13.9	14.0
Panipat	0.5	3.1	520%	50.1	53.4	6%	50.6	56.5	31.1	32.0
Jind	3.7	3.8	3%	91.1	83.2	-9%	94.8	87.0	84.8	77.1
Ambala	7.7	14.2	84%	38.3	39.4	3%	46.0	53.7	53.3	43.2
Faridabad	2.2	6.1	171%	12.7	12.7	0%	14.9	18.7	19.6	14.8
Hisar	0.5	0.6	32%	57.8	48.0	-17%	58.3	48.6	62.3	53.6
Jhajjar	0.3	0.4	37%	40.8	15.4	-62%	41.1	15.8	41.2	34.0
Kaithal	6.2	4.7	-24%	108.3	108.9	1%	114.6	113.7	53.5	54.8
Karnal	1.2	8.4	576%	120.6	114.4	-5%	121.9	122.8	82.2	73.1
Mahendragarh	0.4	2.5	496%	22.5	24.8	10%	22.9	27.3	22.5	25.6
Mewat	1.2	1.7	44%	17.6	12.5	-29%	18.8	14.2	22.4	17.6
Palwal	1.0	4.0	300%	40.6	30.5	-25%	41.6	34.5	42.9	34.9
Rewari	0.1	3.5	2908%	32.0	31.8	-1%	32.1	35.3	28.4	27.8
Rohtak	0.1	0.6	502%	30.5	14.2	-54%	30.6	14.8	43.8	29.7
Sirsa	0.8	2.0	160%	135.4	79.9	-41%	136.2	81.9	77.4	54.7
Sonipat	4.6	3.5	-25%	102.6	62.0	-40%	107.2	65.5	77.0	59.4
Yamuna Nagar	10.2	10.1	-1%	56.4	67.1	19%	66.6	77.3	48.4	51.8
Haryana	70.7	114.6	62%	1234.6	1046.5	-15%	1305.2	1161.2	978.8	863.0

Table 1.2 Haryana: District wise Ground water availability, Draft and Balance

District	Net Groundwater Availability (1,000 ham)		Growth in Groundwater Availability (Percent)	Annual Groundwater Draft (1,000 ham)		Growth in Annual Draft (Percent)	Groundwater Balance (1,000 ham)	
	2011	2020	2011-2020	2011	2020	2011-2020	2011	2020
Bhiwani	62	38	-10%	71	42	-7%	-9	-4
Charki Dadri		17		0	24		0	-7
Fatehabad	53	54	1.0%	92	91	-1.3%	-39	-37
Gurugram	24	20	-15.1%	54	41	-23.9%	-30	-21
Kurukshetra	35	35	-0.3%	78	87	11.4%	-43	-51
Panchkula	14	14	0.6%	11	9	-22.6%	3	5
Panipat	31	32	3.1%	51	56	11.5%	-20	-24
Jind	85	77	-9.1%	95	87	-8.2%	-10	-10
Ambala	53	43	-18.8%	46	54	16.6%	7	-10
Faridabad	20	15	-24.1%	15	19	25.5%	5	-4
Hisar	62	54	-14.0%	58	49	-16.6%	4	5
Jhajjar	41	34	-17.5%	41	16	-61.5%	0	18
Kaithal	54	55	2.3%	115	114	-0.8%	-61	-59
Karnal	82	73	-11.1%	122	123	0.7%	-40	-50
Mahendragarh	22	26	14.0%	23	27	18.9%	0	-2
Mewat	22	18	-21.2%	19	14	-24.1%	4	3
Palwal	43	35	-18.7%	42	34	-17.2%	1	0
Rewari	28	28	-2.0%	32	35	10.0%	-4	-7
Rohtak	44	30	-32.0%	31	15	-51.7%	13	15
Sirsa	77	55	-29.2%	136	82	-39.9%	-59	-27
Sonipat	77	59	-22.9%	107	65	-39.0%	-30	-6
Yamuna Nagar	48	52	6.9%	67	77	15.9%	-18	-25
Haryana	979	863	-11.8%	1305	1161	-11.0%	-326	-298

Table 1.2 shows thousand ham groundwater availability in the state which reduced to 863 from 979 (1,000 ham) from 2011 to 2020. In terms of spatial pattern, in 2011 net annual water availability ranged from 20 (1,000 ham) in Faridabad to 77 (1,000 ham) in Sonipat and Sirsa. Most parts of northern and north eastern region has more water availability.

There is decrease in ground water availability of ground water all over the state but reduction is largely concentrated in agricultural and industrial belt.

If now look deep into water table level of different district of Haryana state during the decade of 2011~2020, we found that ground water availability & water table level is going down with high growth in urbanization and industrialization.

As evident from graphs Table 1.3 water table of Faridabad& Gurgaon is going down in comparison to average of Haryana state, because of high industrialization

Table 1.3 Haryana: District wise ground water level (2011-2020) in m.

DISTRICT	2011	2012	2013	2014	2015	2016	2017	2018	2019	2020
Kaithal	17.47	20.55	20.37	25.11	24.71	26.19	26.08	25.28	28.03	28.46
Rohtak	4.56	3.8	3.74	3.56	4.41	4.58	3.11	4.87	3.95	3.75
Gurugram	26.64	23.42	23	23.93	24.13	22.79	26.08	30.16	5.9	22.08
Mahendragarh	32.03	28.55	25.11	35.79	23.5	28.96	34.12	26.38	24.17	46.6
Palwal	13.23	7.68	7.13	7.65	7.52	7.9	8.37	9.01	11.98	7.89
Sirsa	17.45	16.2	15.18	16.09	16.89	13.18	15.42	17.67	17.62	13.55
Faridabad	25.16	22.77	23.04	16.5	15.09	14.54	21.8	21.22	15.76	25.44
Ambala	18.55	22.64	21.91	13.9	16.96	22.56	13.75	21.35	17.16	12.75
Rewari	21.86	22.24	19.14	17.48	16.35	24.23	22.31	26.48	8.55	28.6
Panipat	15.55	12.43	13.78	20.98	15.7	17.33	18.99	15.82	16.99	19.35
Panchkula	23.94	21.48	22.33	11.95	11.52	8.33	12.75	10.87	10.83	8.38
Karnal	19.7	18.81	18.35	20.84	21.24	22.12	22.43	21.66	22.44	23.41
Fatehabad	15.33	22.15	23.26	19.38	11.44	19.76	21.13	20.88	22.16	21.86
Kurukshetra	29.25	31.65	30.69	33.86	33.66	35.64	36.76	35.23	35.48	33.87
Jhajjar	5.51	7.06	6.02	6.12	6.24	5.28	6.28	6.72	4.63	5.04
Hisar	8.72	8.45	8.16	7.88	8.44	8.85	8.64	8.3	7.92	8.09
Bhiwani	18.2	10.62	17.16	18.49	18.18	18.42	19.12	15.69	17.03	16.26
Yamunanagar	14.37	12.43	10.96	13.04	12.79	13.18	13.86	14.21	12.13	12.15
Jind	12.08	12.8	11.75	13.5	13.85	13.42	14.88	15.17	13.87	15.8
Mewat	15.3	10.69	11.48	9.95	6.96	7.08	10.48	7.33	5.05	5.37
Sonipat	6.79	9.95	9.91	10.61	11.21	12.53	12.17	11.15	12.04	11.2
Haryana	16.24	15.44	15.59	16.31	15.31	16.33	17.16	16.86	15.4	17.08

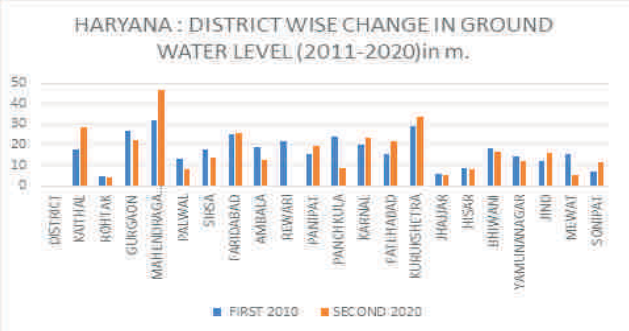

CONCLUSION:

Ground water plays an important role in development of agricultural as well as industrial growth in Haryana. But due to over/unplanned usage resulted in over exploitation of ground water resources. Because of this over a period 2011~2020 the ground water availability in the state decreased by 11.8 percent.

.

In the state particularly in eastern part isrich in terms of groundwater endowment. However, Aravalli region in south andsouthwestern region has poor availability of groundwater. Over the last decade, gross draft of water has decreased in south western region in Haryana. Although irrigation draft reduced in decade by 15 percent whereas industrial draft resulted in high increase of 62 percent.

Consistent overdrawing of groundwater has resulted in depletion of this precious resource in a large part of the state. About 72 percentarea of the state has experienced decline in ground water availability.

On the other hand, particularly in the belt running from Kurukshetra- Karnal-Panipat area to

Water table has come up because of Yamuna water irrigation.one of the factors responsible for rapid decline in groundwater table in different parts of state is increase in cultivation are of water intensive crops rice and wheat.Continuous reduction in forest cover and widespread miningfor extraction of construction material are other factors aiding ingroundwater crisis in the region.

References:

1.https://www.researchgate.net/publication/356216642_Water_Crisis_in_Haryana_Current_Status_and_Management_Strategies2.

2. http://ijrar.com/upload_issue/ijrar_issue_397.pdf

3.https://www.researchgate.net/publication/317579236_Management_of_Groundwater_Resources_for_Sustainable_Agriculture_in_Haryana

4.https://www.researchgate.net/publication/267784669_Groundwater_Characteristics_qualities_pollutions_and_treatments_An_overview5.

5.https://www.ijirt.org/master/publishedpaper/IJIRT145601_PAPER.pdf 6.

6.https://archives.palarch.nl/index.php/jae/article/view/7692

7.https://www.researchgate.net/publication/256378455_Characterization_of_Groundwater_Quality_for_Irrigation_in_%27Gohana%27_Block_of_Sonepat_District_Haryana 8.

8.https://www.researchgate.net/publication/346773894_Integrated_Groundwater_Quality_Mapping_in_Kalanaur_Block_of_Rohtak_DistrictHaryana/link/5fd0601e299bf188d4040f32/download

9. Aneja R ,Ground Water Level in Haryana: A Challenge for

Sustainability [VOLUME 4 I ISSUE 3 I JULY – SEPT. 2017] e ISSN 2348 –1269, Print ISSN 2349-5138
10.Olumuyiwa et al. (2012) Groundwater: Characteristics, qualities, pollutions and treatment : An Overview,International Journal of Water Resources and Environmental Engineering Vol. 4(6), pp.62-170. Available online at http://www.academicjournals.org/IJWREE
11.Sangodoyin AY, Agbawhe OM (1991). Environmental Study on Surfaceand Groundwater Pollutants from Abattoir Effluents. BioresourceTech., 41 (1992): 193-200.
12.SHARMA P K (2020). Status of Ground Water Resources in Haryana & its Dynamics and Spatial Pattern, PalArch's Journal of Archaeology of Egypt/Egyptology 17 (5).
13.Punia and Chaudhary (2017) Ground Water Problems of District Jhajjar, Scholarworld,Volume V, Issuse III,Online ISSN 2320-3145,ISSN 2319-5789P p 60-64..

Dr Sucheta Rani
Asst. Proff.
Department of Geography
Govt. College for women
Rewari (Haryana) Pin - 123401
H.No. 115 - SF
BMG Elegant City
Sector - 26, Garhi Bolni Road
Rewari - 123401 (Haryana)
Mob. 9416864504
8816999405

47

Research Paper On The Topic "inflation And Its Impact On Indian Economy"

Mrs. Vishakha Sharma

Abstract:-

What is inflation? If we want to discuss the impact of inflation first of all we have to clear the meaning of this word. Inflation means continuous rise in prices in the economy. Inflation and uncertainty these both the terms are inter-correlated. Actually, inflation creates uncertainty in the economy. In this paper, I want to show the relationship between inflation and each and every field of the economy.

Key Words:-Inflation, Uncertainty, India

Introduction:-

- One of the remarkable macroeconomic events of the past two decades has been the significant decline in the inflation in both the developed and emerging market economies. The behavior of the inflation in India broadly exhibits such a pattern. For most of the 1970s,1980s India experienced repeated episodes of high and variable inflation, while there has been a sharp decline in average inflation since 1990s. Can this progress in inflation be sustained or is the current improvement only a temporary relief.

Effects/ Results Of Inflation On Indian Economy:-

Persistent inflation in the economy can have some very negative effects lot of problems currently plaguing our economy are result of inflation in our economy. Rapid inflation can disrupt our entire economy can cause a financial crisis in the country. Let us take a look at some adverse effects that are results of inflation in the Indian economy.

Condition Of Current Bop Condition In India:-

India's current account deficit is around 17 billion dollars. For the last quarter of 2018, this is roughly 2.5 % of our GDP. This is because of years now, India's imports are mismatched with their exports. With the increasing prices of goods in India, exports have seen a further decline and the imports have actually become cheaper. So, the current account deficitwill continue to be a problem for our economy.

Industrial Sector:-

India has seen a stagnation in the Industrial growth in the last few years. The industrial growth for the month of Feb 19 year on year was nearly 0.1%. This is because inflation ahs adversely affected the Industrial sector as well.

The rising prices mean that the factors of production like labour and aw material have also become expensive. The profit margins of the companies are decreasing. After an extent, the companies _____ on the burden of the additional expenses to the final consumer and the entire economy suffers.

Final Consumers:-

The person most effected by rising inflations is the final consumer of the goods. The prices of the goods and services are constantly rising. But, the salaries and income of the consumer do not rise proportionately, there is a lag. So the goods and services become less affordable to the final consumers and the population in the lowest income group are most affected. They cannot even afford the basic necessities.

Investment:-

On the major result os inflation in the economy is general slowdown of the economy. When this happens , un employment rates rise, the purchasing power of the consumer decrease ,credit becomes expensive. All these cause a strain on the entire financial system of the country.

It discourages heavy investment in the economy by both domestic and international players.

The Impacts of Core Inflation And Supply Shocks:-

By "Core inflation" economists and Central bankers mean an underlying trend in the inflation rate determined by inflation expectation and the level of economic activity, a trend that follows a relatively smooth path. The headline inflation rate is the sum of core inflation and "Supply shocks", which reflect large changes in the prices of particular industries. Headline inflation is more volatile than core inflation.

The most common measure of supply shocks in _____ work is the change in the relative prices of foods and energy.

This practice is motivated by the fact that food and energy prices are volatile and excluding them produces a much smoother inflation series.

Measures To Check Inflations:-

If inflation rises more than its moderate inflation that vcan be disastrous for the economy. So the government takes certain measures to check inflation. Let us take a more detailed look.

Measures To Check Inflations:-

Inflation is an economic phenomenon used to describe the

rising prices of goods and services year on year. This causes the purchasing power of the consumer decrease beacuse the rate of increase of wages and income can not keep up with the rate of inflations.

However, controlling inflation is not a simple task. The rise in prices is a result of many factors like aggregate demand , increasing the supply of money etc.So , to control inflation we need many measures working in tandem. There are three measures to check inflation.

1.The government will employ many policies and formulas to keep the inflation rate in check. One of the most common and often used measures to do so are monetary measures. Here, the government with the help of RBI attamept to control the supply of money and credit in the economy. Controlling the liquidity levels in the market is an effective way to check inflation in the economy.

2.**by Reducing Expenditure**:- Second measure is government can reduce its expenditures means wasteful expenditure and then create the effect on the income of the consumers. By cutting its expenditure government make a control on the demand of the economy. So. It is the fiscal measure to control the inflation of the economy.

3.**Proper Channel Of Food Items**:- Government also check on inflation by proper channel of food items means preventing malpractices in the food supply. It can be done by public distribution system also.

Conclusion:-

At last, we can say moderate level of inflation is not a burden on the economy but, if inflation cross the level then iteffect all the sectors of the economy like household, industry,agriculture also services sector. At this time, when CPI means consumer price index are approximate 7.5 then, economy are facing a huge shock of inflation due to the impact of Covid and Russian Ukraine war. So, government have to make necessary steps to check the inflation.

References:-

1. Macroeconomics by H.L. Ahuja
2. Macroeconomic By M.L. Jhingan
3. Pratiyogita Darpan special Edition of Indian Economy
4. Agriculture Economy of Soni
5. Newspapers like Hindustan Times, Times of India and Indian express

Mrs. Vishakha Sharma
Assistant Professor
In Vaish Mahila Mahavidyalaya,
Rohtak
Email ID –gaurav537.net@gmail.com

48

Symbolism in the Middle Phase of Frost's Poetry

Dr. Sunil Srivastava

Abstract:-

Upon the middle phase of which poetic career Frost achieves maturity as a poet . His undertone in this page is that of a moralist . His sole purpose has become to predict and comment on the commercial-technology society and its socio-economic values there influence upon the life of the common man . His dramatic and narrative quality become more lucid and intensified . The period lies between the two wars , which was the period of peace and progress for the Yankee . New England as well as for the whole America to flourishes itself on all sphere . In this period America emerges as an important politoeconomical nation on the world scene . Whereas it dominates in many fields the life of the native citizen has become more complex socially . The city life was crowded with everyday new industrial or technology inventions . But it was rural life which has peace , mental as well as physical . That is why in this phase Frost grows more philosophical and now he sees the complexity of the life in relation to new values . On the one hand , there is simple and peaceful rural life in the lap of nature , i.e. man's survival in natural setting . On the other hand, is the competitive , fast and mechanical urban life. But due to new conditions Frost's art tends to be satiric in tone .

His next volume of verse published was New Hampshire (1923) after long wait of seven years . With it many new qualities emerged in Frost's art . As Leonard under says , " New Hampshire : A poem with notes and grace notes (1923) constitutes another kind of new departures for Frost , this time a venture into the humorous , witty , relaxed realm of gentle social satire , particularly aimed at the American glorification of big business , commercialism and materialism .

New Hampshire was great achievement as it won him first Pulitzer Prize in May, 1924 . The followed the public recognitions . He joined many celebrated Institutions and held prestigious positions and was awarded many degrees . As Manorama B. Trikha observes : " Soon, he becomes a major figure in American poetry.... Frost's popularity as a poet-teacher in land was most recent and illuminating chapter in the history of country . He becomes an integral part not only of the academic but also of the cultural life of the day . Many celebrations and dinner where organized in his honour....".

His next volume "West Running Brook" (1928) was published after five years interval . It's title has a special significance . Like the 'Brook' which runs to the west while all the other brooks flow to the east to reach the ocean , the speaker of the title poem trusts himself to go by contraries . The major them of the volume is resistance and self realizations : the tension between the man and nature . The bond between man and nature seems to have become lose . Nature has grown more hostile , man more heroic . This increasing undertone of humanism is beautifully eloquent in the sonnet "A Soldier" one of the great poems :

"But this we know, the obstacle that checked
And tripped that body, shot the spirit on
Further than target ever showed or shone".

Now Frost has shown interests in astronomy , religion and philosophy . Some of the best lyrics are "Tree at my Window", "Acquainted with the Night", and "Spring Pools" etc.

In "Further Range" (1936) published after along silence , the habit of moralizing has grown on the poet , and he is constantly sermonizing , "At Woodward's Gardens", for example shows Frost in his most didactic , school master rash and unattractive mood . These are two groups of poems which hear the significant captions "Taken Doubly" and "Taken Singly". The desire to sermonize has grown on him , and in the poem "Taken Doubly" he requires the reader to keep his eyes on the theme and the moral . "Two Tramps in Mud Time" preachers the necessity of uniting avocation and vocations :

"Only where love and need is one ,
And the work is play for mortal stakes ,
Is the dead ever really done ?
For heaven and future's sakes".

Thus , the group includes delightful , poems full of an unobjectionable didacticism . Besides them the poems "Taken Singly" seems somewhat want . The natural world , that was bringer of joys suggests to Frost now the coming winter that is the end of the age the ultimate darkness . The psychological problems and loneliness feeling of isolation and feelings of meaninglessness the individual faces in the unacknowledged- universal phenomenon are depicted on

varied levels in this phase of Frost's poetry . The best examples of Frost's philosophy are included in it e.g. “Design", “Desert Place", “Neither Out for not in Deep”, and because of the theme of these poems . Frost dealt with has been called “Terrifying Poet”, by L. Trilling . At the same time , Trilling equates Frost to Sophocles .

However , this middle phase of the poetic career of Robert Frost shows the new developments in his basic conception of art and the deep multi-coloured reflection of the life and the forces working within it . His basic purpose here is not only to depict the New England scenery or the life of the people , but also to convey his moralistic , philosophical and existential ideas in a symbolic way . He has tried to suggest all this through complex use of symbols .

At the same time, Frost conveys his ideas , moralistic and didactic , through the use of symbols . He satirises the manners , eccentricities of men and women by using the weapons of satire, humour and irony . In this phase , Frost gets more mature as a poet, and his use of symbols becomes more varied and deep .

Frost has a deep love and affection for the countryside and everything associated with it . “The Axe- Helve" is a poem of description , in which Frost conveys his feeling for the country tools . The poem is a depiction of the culture cultural diversity of New England States . About Axe , as Frost himself said , “ My Favourite (after the pen) are axe and the scythe , both of which besides being tools of peace and progress have also been weapon of war . More than that axe is the symbol of action : physical labour , man's creativity and a tool for earning daily wages etc.

On the other hand , “The Grindstone” is a poem of rural depiction developed into a symbol of serious issues related to the everyday life . The Grindstone is an analogue for the world . The analogy extends to the two grinders . They represent two aspects of human creativity , the speaker whose job it is to make the wheel go round , symbolizes the effort and suffering of man's work , the other man who works with him represents the other essential aspect of creativity . It is his job to hold the blade to the stone . In doing so , he resists through this counter- pressure can the blade be sharpened. Two aspects of this man are important as the final judge . Between the two workers there is a natural antagonism . They are working together , but they must do so by working against each other .

This poem , “ The Star Splitter”, on the surface level , is a story of an unusual farmer who burns his house or sells his form to buy a telescope for looking at the stars . But the poem has a symbolic meaning in the sense that , it denotes the interest of a lay man in the space science and astronomy . It points out Frost's love for the activity of looking at the stars or the outer space . That corresponds to the symbol of man's quest for exploration and knowledge about the unknown universal phenomenon , even by paying a high price for it .

The sonnet “ Design” is one of the best examples of Frost's view of nature and its cruelty to man as being a part of it . In this poem , Frost's world view or philosophy is intermingled with his view of nature . The 'design' is a symbol of nature's hostile indifferent , unknown system which human beings have no pass through . Lawrence Thomson calls it , “A dark study in white”, and Lionel Trilling uses it for assessing Frost's view of the universe . He calls Frost a terrifying poet . A spider holding in its fatal grip a moth of on a white heel all . The spider symbolizes the natural force , white the moth symbolizes the human force . But the conflict between the two symbolizes the human force . But the conflict between the two symbolizes the conflict between nature and man .

Up to this stage Frost's art grows into a philosophy . But his social and ethical perception become more moralistic and didactic . He becomes fond of science and sees the socio-economic problems in that content . Depicting New England society, he won't forget the natural and socio- economic , political influences that affects man's physical identity and spiritual being . Frost looks through the eyes of New England persons “Fire and Ice” is a symbolic poem that suggests the socio- political situation after the first world war and in the early decades of the 20th century .

Two antithetical concepts are brought together. The opposite are not only juxtaposed but also , they have been reconciled . The poet has been able to harmonize these opposite by pointing out that both are equally forceful for the destruction . Fire, symbolises the intensity of passion or desire and ice , symbolizes the cold of hatred, and casualness .

On the other hand , “ Stopping by Woods on a Snowy Evening” is a symbolic poem in which Frost tries to suggest that each person is a traveller . In this mortal world and ultimately he has to die. “The Woods” are symbolic of the world and promises . “Miles to go” symbolize man's responsibilities to the other fellow beings and sleep is symbolic of death i.e. the end of all flux, worries and responsibilities .

Thus, the traveller's reluctance to leave the woods is due to the desire to hold and make permanent a moment of pleasurable discovery in a brief existence. But he is impelled by certain commitments. And their are the miles he must

travel through other kinds of experience before he is to the final and inevitable commitment i.e. death :

The woods are lovely, dark and deep,
But I have promises to keep,
And miles to go before I sleep,
And miles to go before I sleep.

The socio- political situation of the early decades of the 20th century was marked by change and disillusionment and the individual felt himself alone to face the dangers and challenge of life . The old beliefs were shattered by the death and destruction caused by the First World War . Life had become uncertain in the age of technological development that broke down traditional norms of life. Frost was fully aware of these circumstances , so he depicted individual's dilemma isolation , loneliness in the vast and unknown universe . Frost conveys his experience in symbolic manner .

Thus, the middle phase of Frost's poetry proves that Frost is not a simple poet . He uses deep and varied symbolic patterns to convey his ideas and experience . In this phase his mind does not remain on the limits of knowledge about earth but he observes man's existence in relation to the vast universal phenomenon .

References

1. "Robert Frost", Lawrnce Thomason , Seven Modern American Poets ed. Leonard Unger , (Allahabad : A.H. Wheeler & Co. Pvt. Ltd., 1967) .
2. Manorama B. Trikha Robert Frost : The Poetry of Classification, (Delhi : Arnold Heinemann , 1983) .
3. "A Soldier" Robert Frost Selected Poems ed. by Ian Hamilton ,(Penguin Books , 1984) .
4. "Two Trumps in Mud Time".
5. "This is my Best", Robert Frost Poetry and Prose ed. by E.C. Latham and L. Thompson , (New York : Holt Rinehart and Winston, Inc. 1972) .
6. "Tree at my window".
7. "Stopping by Woods on a Snowy Evening".

Dr.Sunil Srivastava
381, Adarsh Nagar Colony, Dekali
Faizabad, Ayodhya- 224001 (U.P.)
Mob- 9792729347

49

India's Relations with GCC

Deepak Kumar

Abstract:-

During a few years, India's policy for the Middle East has often been seen from the perspective of India-Iran relations. The international community, especially with Western Tehran, has been in the situation of the fad about the relations of New Delhi and has tried to ignore better and solid relations with Baia countries of India. After the end of the last stomach Cold War, the extent to the extent of Indian foreign policy has been changed to the bay area, the evidence of Indian foreign policy in relation to this area, which includes time from 1947 to 1986, has been very much experiment and for the Indian national interests, the Indian faith has been factor in India with essentially the failure of India. Today, in fact, these three countries are around, whose individual regional initiatives of India are emerging. However, India's interest in the bay of Arabia is very solid, which has made India efforts for several years. Despite the promotion of India's relations with Iran, it has not been fully developed in spite of promotion. Although India's standards are in the bay of Arabia and Israel often attracts attention without this development. However, in the Arabian's Gulf countries, it has been remarkably successful in increasing the interests of India. In this chapter, Indian interests have been examined in the Bay's Bay's countries and those settles have also been underlined, which India has put in this area compared to Iran. Ultimately highlighting the reasons, which are providing shape of India's contemporary relations in the Middle East.

Key words:- India, Gulf, oil, energy, Middle East, Strategy, Economic

Introduction

India's political, economic and strategic interests and goals are at bay. About 7.5 million Indians send money to India from this region. Transportation costs are estimated at 71 billion Won, half of which comes from the Persian Gulf. The geography of the Gulf, the presence of energy and the presence of the diaspora have always been important to India. India has several million dollar economic and trade ties with the region. Price - 160 million. The region supplies more than 60% of the world's oil. In a strategic environment of peace and stability, India is in a strong position among the Gulf countries, which supply more than two-thirds of its crude oil and account for 23.7% of the country's major trading bloc. In 2005, India announced its Western Strategy and strengthened ties with its "larger" West Asian neighbours . In the ninth cabinet meeting in 2015 on behalf of the Gulf Cooperation Council and the India Free Trade Agreement (FTA) , former Indian External Affairs Minister Sushma Swaraj described the Gulf states as GCC . India's foreign policy in the Gulf has been updated with the arrival of Prime Minister Narendra Modi .1

Rebuilding India - Gulf Foreign Policy

No country in the world is the same today. They should work with other countries in a coordinated and planned manner. The goals of the state are embodied in the foreign policy. After being elected Prime Minister of India in 2014, Modi initiated Indian policy in the Middle East . At the same time, the new government is consolidating a "popular" policy based on the three pillars of the Persian Gulf - Israel and Iran. In 2016, Modi became the first Indian Prime Minister to visit Israel. Britain has visited the United

Arab Emirates twice, Saudi Arabia, Iran, Qatar, Jordan once and Palestine once. These visits gave a new impetus to the reconstruction of India and immigration to West Asia. According to a joint statement issued during the visit, India is a "strategic ally of the enemy". Modi said India and West Asia share close historical ties. Moody's uses it effectively and effectively. The purpose of the visit to the Gulf of Aden is to strengthen trade ties. Saudi Arabia, the United Arab Emirates and the GCC countries see India as a new market for energy exports and water investments, and are expected to collaborate with other countries. Abu Dhabi's ruler, Ahmed bin Zayed , was one of the first world leaders to meet Modi over the phone. Modem was awarded the Zayed Medal , the highest official title in the UAE, for taking relations between the two regions to new heights . King Abdul Aziz Al-Saji paying tribute to his citizens during a visit to Riyadh, Saudi Arabia in 2016 . The key to success lies in the interest of the Gulf countries, not the Maoist government. The prosperous nation of the future will focus on the Indian economy to safeguard its economic interests. The independence of the United States is increasing, and India and China are the largest consumers of crude oil in the Asian economy. Due to its market potential, it is one of the richest countries in the Gulf. New Delhi has no diplomatic relations

with Israel or the Arab world. The launch of Saudi Arabian Airlines' first non-stop flight in Tel Aviv, India in 2018 reflects the changing dynamics of India-Israeli and Arab-Israeli relations. India has emerged as a major player in global power relations, including the consolidation of Asia in the Middle East, the challenges of political modernization and globalization.2

When the first conflict broke out in Qatar in mid-2017, India had a choice. Instead, it seeks to remain neutral in its economic relationship with both sides. The negative impact on Qatar reflects India's current attitude towards the West and the Indian government's experience in the Middle East. In Current Indian Politics (Burton, 2019). In the Middle East, electricity is increasingly divided into polarized regions. The Indian stock market is balanced on many fronts.

India's Economic Relations with GCC

The GCC is of great importance to India in terms of energy security, trade and the number of tourists visiting India. 2013-2016 Low oil prices and the global recession (CN, 2018) reduced trade by more than 30% . The trade imbalance between India and GCC has increased by Rs 66,460 crore in the last three years. 4 $1.414 billion (Hinduism, 2016). Oil inflows fell 2.2% due to lower oil prices. The GCC has funded over one million factories. 36.7 billion and 35.9 billion. 2015-2016. According to the World Bank, if oil prices continue to fall , India's exchange rate in the GCC may fall further in future.3 In 2015–2016, the CIS was the main source of supply, accounting for 60% of India's GDP and 3% of GDP. The region plays an important role in India's development and is an important link between the GCC countries (World Bank, 2016). India's exports to the GCC in the 2015-2016 fiscal year stood at $41.417 billion. (Indian Embassy, Riyadh, 2016). In 2015–2016, India's economic relations with the Gulf Cooperation Council (GCC) were affected by two major challenges: the global economic slowdown and falling oil prices. India's total trade fell between 2011 and 2012: $800 billion. 2011-2012 2014 $758 billion 2014-2015 2015 $642 billion 2015-2015 and 2010-2011 $620 billion. He's been lowering prices for years and moving to the Middle East. Indian exports to Gulf countries grew by 2.6% in FY 2017-18.4

From 2012 to 2013, the United Arab Emirates oversaw India's main trading partners - Saudi Arabia, China and the United States. In 2015, the trade deficit between India, the United Arab Emirates and China exceeded $20 billion. India's international trade with the United Arab Emirates accounts for 7.5% of the country's exports. Net turnover was 49.7 billion euros. The Gulf states are India's major trading partners and major in energy trade in 2015-2016. 3 of the top 25 countries. Saudi Arabia ranks fourth and nineteenth annually.5 The Gulf region has the largest oil and gas resources in the world. This risk is high in India due to low production cost and logistical issues. The development of India is related to the geography of the Persian Gulf. GCC was India's largest trading partner in 2018 (Kumaraswamy and Singh Rai). In March 2018, as of April 2019, the bilateral trade volume reached Rs 121.2212125 billion. The total purchase from India is Rs 79.7 billion and is exported to the Gulf countries. The RUB GCC is home to approximately 15% of the world's 41.41 billion people. In value terms, it accounts for 12% of India's total imports and 12% of the country's exports. In the 19th fiscal year, India's imports and exports to the United Arab Emirates totaled $30.308 billion. $29.7 billion. In 2019, GCC countries accounted for more than 54% of the total trade. Most foreign members of the GCC have unique relationships with Gulf oil reserves. The most popular destination for Indian workers is Saudi Arabia, followed by two Middle Eastern countries: the United Arab Emirates, Kuwait and Qatar. GCC countries are struggling to estimate the number of workers in India. The Gulf Cooperation Council is estimated to have over 8.5 million Indians and 3 million members, making Saudi Arabia the most populous country in the Gulf. In second place is the United Arab Emirates with 2.8 million employees. Indian activist. There are 923,000 in Kuwait, 316,000 in Bahrain, 600,000 in Qatar and 796,000 in Oman (Ministry of Foreign Affairs, Government of India, 2016).

Gulf Cooperation Council (2019). As a result, the Indian economy has made significant progress in trade and financial markets. These inter-agency alliances will continue to benefit policy makers and investors who want fair elections. He examines business relations with the GCC in light of today's changing social and political environment. The investment is huge as India aims to become a 5 trillion economy in the near future. Oil, gas and offshore operations are the three main components of the Gulf Cooperation Council (GCC) that benefit from India's relationship with the GCC. India will continue to prioritize strengthening ties with the GCC (Kilkenny and Pondicherry, 2019) . GCC will invest heavily in India, China and Africa. Cultural and external contacts facilitate transmission (Abdel et al., 2008). China is also dependent on the Gulf Cooperation Council with India. According to Qian and Fulton (2017), the 2011 (rare) free trade agreement could improve economic relations between China and the GCC. The introduction of STA lanes and roads will help expand China's territory and

strengthen cooperation between China and the Gulf Cooperation Council. Economies of scale, trade and immigration have a positive impact on bilateral exports from India and the Gulf, while inequality and import restrictions have a negative impact (Alam and Ahmed, 2018). According to Calcarenes & Bundekars (2019), the current account deficit is related to global crude oil prices, especially crude oil prices. International crude oil supply is affected by demand and geopolitical conditions. India is at risk of instability as 64% of its volatile oils come from the volatile Middle East. Oil price fluctuations affect the GCC countries and India. The decline in imports from India accelerated due to higher oil prices. The fall in oil prices affects the economic and investment prospects of the GCC countries, which will reduce GCC exports from India. As a result, India is facing volatility in oil prices. For this, India needs a safeguard system to effectively limit the impact of oil price fluctuations. In bilateral trade with India, the GCC provides the country with special credit in Indian currency for oil imports and international trade and resource management (Kalkani and Pondicherry). The GCC should have clear cooperation and communication policies with India on trade, technology transfer, promotion and innovation. India plans to spend $8.8 million to strengthen the NRA's ties with the Gulf Cooperation Council. Oil and weapons proliferation could be an important factor in strengthening India's ties with the Gulf Cooperation Council and India's semi-skilled and unskilled workforce as well as counter-terrorism, cyber security and counter-terrorism measures . There are many reasons for this . , 2019).

Virtual political delegation of India led by SK Shankar on December 3, 2020 . The Foreign Minister is the representative of the GCC Trilateral Council . Farah Mohd Hajiraf . General Secretary. Abdul Latif bin Rashid Al-Zani , Minister of Foreign Affairs of the State of Bahrain and Minister of Foreign Affairs of the United Arab Emirates . Anwar bin Mohammed Al-Zarqahi, the Supreme Representative of Saudi Arabia, Kuwait and Qatar, attended the meeting . The Heads of State or Head of Government discussed India's relations with the GCC and welcomed recent developments in the region. They welcomed the close cooperation between India and the GCC on the outbreak of COVID-19. He briefed the GCC leaders about India's health and economic situation and expressed hope that India's trade relations with the GCC will return to normal at the earliest. Despite the pandemic, the outbreak has not disrupted supply chains in the Gulf of India. The External Affairs Minister appreciated the Gulf Cooperation Council (GCC) for its treatment of Indians living abroad during the outbreak of COVID-19. Following the

incident, India took further steps to repatriate Indian medical personnel to GCC countries and provide them with medicines and other necessities. Following the incident, India took further steps to repatriate Indian medical personnel to GCC countries and provide them with medicines and other necessities. According to the Deputy Prime Minister, many employees and experts of the Indian Central Council are ready to return to work. EAM briefed GCC officials about India and development of vaccines and other diagnostic tools for COVID-19. Both sides reaffirmed their commitment to work together to combat COVID-19. The GCC appreciated India's continued membership in the UN Security Council, which will begin in 2021. COVID-19, Climate Change and Sustainability will begin in January. Updation of multilateral institutions. Development and Terrorism (Government of India, 2020). Renew your commitment to professional support.

Benefits of Strategic Relations between GCC and India During Modi's visit in August 2015 , he reiterated India's commitment to "accelerate the development of next generation infrastructure, especially railways, ports, highways, parks, airports and pedestrian bridges and industrial parks". UAE 75 billion. Bharat Petroleum and Abu Dhabi National Oil Trading Company (ADNOC), a subsidiary of Indian Oil Corporation, own 10 percent of India's largest foreign oil company. So many qualities. Indian symbol. The company moved to the oil-rich United Arab Emirates. Modi personally called on Qatar to stop importing billions of dollars (31.37 billion yuan) in secured assets. In April 2015, following King Salman's personal intervention, Indian citizens were deported from Yemen. India and Saudi Arabia review the future of India, the world's largest oil company.

In March 2018, Saudi Arabia operated an Air India flight from Delhi to Tel Aviv. The country had the privilege of visiting Israel for the first time in a decade. Portal Dokama and Debra _ Quadr. Quadr is not far away. India have an agreement with Saudi Arabia to support 44 billion petrochemical projects involving 20 million barrels of crude oil per day. As of 2018, it has spent $6.75 billion on FDI in India. USD ($9.3 billion) . Of this, $3.6 billion (53%) in 2014 . Although India is not an Arab country, its observer is the League of Arab States. UAE Foreign Minister Sheikh Abdullah bin Zayed Al-Dinan called the Organization of Islamic Cooperation (OIC) a " special guest" . Leaders' visits and engagements are the political dynamics of bilateral

relations. The Gulf conflict in India was largely driven by the political instability in 2014. This development reflects the positive image of India while protecting the economic and political interests of the GCC.

Suggestions

Being the largest trading partner has not resulted in the Persian Gulf being a political partner and high-level exchanges with the Persian Gulf countries have been few and far between. No Indian Prime Minister has visited Bahrain or Yemen since the departure of the British from the subcontinent. During the year, the Bahraini Emir was the only head of state from the Middle East to visit India and no Indian President, Vice-President or Prime Minister visited any of the Middle Eastern countries, including the Persian Gulf. Such political indifference to a region of considerable importance does not bode well for India as a responsible international actor.

Bibliography

1. Annual Reports of Govt. of India
2. Kulkarni, N.S., The importance of GCC Countries in India 's Quest for Economic power House, FINS Journal of Diplomacy and Strategy, Oct. 2019
3. Bundhan, R, India Suffers steep Decline in Remittence from GCC Nations, ORF, online.
4. Ministry of Trade and Industry, Government of India, 2018
5. Kumarswamy,PR, Modi Turns West: India and the Persian Gulf, ISAS, 2018
6. Ministry of External Affairs, Govt. of India

Deepak Kumar
Asstt. Professor
Dept. of Political Science
Govt. College for Women,
Revari

50

Importance Of Healthy Psychological Work Environment For Employees' Well Being

Ms Gargi Sharma

Abstract:-

The setup, social characteristics, physical facilities and surroundings provided by working place to its employees creates working environment for them. The working environment plays a significant role in the growth of employees as well as organization. It is very essential to create a positive working environment so that employees and organization both can grow with support of each other. Employees are precious asset for any organization. Without employees an organization is life less. An appropriate working environment act as motivator for employees to perform efficiently. Stress is directly associated with the environment in which we perform our duty. If working environment is suitable for employees, they will work without stress but if working conditions and behavior of employers are not good then it will create a stressful environment for employees. So to minimize the stress level of employees it becomes must for companies to recognize the factors responsible for stress of employees at their work place and make efforts to manage that stress level by improving those responsible factors. To create brand loyalty in the market, it is mandatory today to create a good working environment for employees. The purpose of this research paper is to present the importance of a healthy psychological working environment for employees at workplace. This study reveals that how a positive and supportive psychological working environment contribute to the growth of its employees. Growth of overall workforce implies growth of the organization. This study is based on qualitative data derived from secondary sources. Here the researcher presents the association between working environment and stress management of employees.

Keywords-(Employees, Environment, Organization, Psychological, Stress, Working)

Introduction

Working Environment - Working environment of an organization includes both physical and psychological working environment at workplace.

Here in this paper we will discuss about psychological working environment. Psychological working environment is most of the times neglected by organization but it is very essential to consider it and talk about it. This is the time to make decisions related to psychological working environment at work place.

Psychological Work Environment - The psychological working environment includes the interaction between employees and employers, the interaction between colleagues at workplace, the kind of work allotted to the individual and its perception by that individual, organizational conditions and organizational culture.

Psychosocial work environment pertains to interpersonal and social interactions that influence behavior and development in the workplace. One study in particular found that low levels of support and control at work leads to increased rates of sickness absence (North, Syme, Feeney, Shipley, & Marmot, 1996). In other words, a positive and supportive psychosocial work environment is beneficial to employees in an occupational organization.

The term 'Psychological Work Environment' covers both aspects, our work and working conditions. The psychological factors of work environment are comprehensions and interpretations of matters pertaining to job while social factors are the impact of both social environment as well as the interpersonal relations at workplace. We can divide the term 'psychological work environment' in to three components (B.E. Moen, G. Tjalvin)-

1. Organization-

The association of the working terrain can be defined as the existent's relation to their duties and to others in the plant, and the practical association of work. This element emphasizes the external influences or stimulants at work. Then, one is concerned with specific characteristics of working conditions, similar as if the plant has an organizational map, if the demesne are acceptable in terms of outfit available, the prospects and shift work schedule are easily explained, etc. For illustration, it isn't good to work in a place where no one knows who's responsible, where the needed tools aren't in place and the prospects and working schedule are unclear. In addition, one can include operation issues in this element. Good operation is essential for a good working terrain. A leader who lacks good leadership chops can make a plant completely unsupportable. Another factor that fits under this element of psychosocial work terrain is

the miracle of "reorganization. " This can affect a work place significantly. Reorganization frequently means job cuts and changes, which again creates fermentation and query among workers. similar changes may also impact the health of workers.

2.Social Interaction-

Psychosocial working conditions are also determined by the commerce between environmental factors, other workers and the existent. Included then are " cerebral goods " of the work. Collaboration and cooperation – or the lack thereof – are the consequences of how these relations work. However, this may reduce the overall productivity, and people will try to avoid working in such a place, If there are numerous conflicts at work. Conflicts may also beget health problems among the workers. wakefulness and muscle pain ((pressures) are common consequences of problems in the social life at the plant.

3.Individual Perception-

All people are unique. We don't perceive effects in the same way. People are different, they perceive their surroundings else. We can not change our different personalities and ways of carrying, at least not veritably important! This is important to flash back in working life. We've individual comprehensions and evaluations, and these have consequences for health, well- being and performance for both ourselves and others. This is the reason why it's nearly insolvable to produce the perfect work place. What's perfect for you isn't perfect for me! I like the walls in my kitchen to be painted unheroic, while my coworker wants them to be argentine. This can not be changed, but it helps if everyone is apprehensive that differences in opinions live. These differences stem from cognitive and emotional processes, as well as characteristics of the individual hand. This element of the psychosocial work terrain emphasizes the worker's individual interpretation; how external influences are perceived, reused and circulated. When, for case, health labor force are presented with a case passing a conflict at work, it's important to flash back this any issue has always at least two sides.

Objectives

1. To understand the concept of psychological work environment.
2. To study the factors responsible for psychologically negative work environment.
3. To suggest the criteria for making the workplace psychologically healthy for well-being of employees.

Research Methodology

This research paper is based on qualitative data and knowledge of researcher. The data used in this paper has been derived from journals, research papers, books and online information available. A very few research papers have been written on this particular topic.

Limitations Of Present Study

1. Due to lack of time and facilities no primary data has been collected for writing this paper.
2. No statistical tools and techniques are used.
3. Only qualitative information has been used.

Scope For Future Research

This topic is preferable for further research in future. A very few studies have been done on this topic. Researchers can collect primary data relating to this particular topic from different organizations and by applying statistical tools and techniques more accurate picture of this particular topic can be find out. It will help in promotion and introduction of psychological health and safety progammes for employees in various organizations.

FACTORS RESPONSIBLE FOR DISTURBING **Psychological Work Environment-**

To improve the psychological work environment, it is very essential to recognize the factors causing negative work environment for employees. Here the researcher tries to reveal all those factors which can be responsible for making the psychological work environment negative. These factors are-

1.Chronic Stress- Mostly employees daily wake up early in the morning and force themselves to go for their job. Most of the employees feel fatigue in the morning. They don't have enough time for their family and friends. They are living a life of chronic stress.

2.Work Overload- According to a report from Families and Work Institute, 43% of workers have an experience of high level of work load. They are not happy with their employers oftently. This kind of work culture always create a psychological discomfort in the minds of employees and it will lead to burnout and stress at workplace.

3.Bullying At Workplace- Behavior of your colleagues and your bosses is very important for you to survive stress free at your workplace. Mostly it is found that approx. 61% of bullies are bosses and 33% of bullies are peers. It means if you feel threatened, scared and burdened while going for your job, it is a sign of negative work environment.

4.Rumors at Workplace- This is a cause of a negative psychological work environment. Rumors are the gossips spread by either our employers or peers. It is a part of every workplace. An employee either become a victim or contributor to these kind of gossips. But in any case it spoils

the psychological safety of workplace and cause stress in the life of workers.

5.Communication Gap- Lack of proper communication channel in an organization is also a factor which can spoil psychological work environment. In this kind of organization employees are often unable to open their hearts in front of their bosses and due to which mostly employees often work with heavy heart which is not good for their mental as well as physical health.

6.Unorganized workplace- If a workplace is not properly organized then it will also create discomfort for working of employees. Due to which for completing their tasks they have to work very hard than required. Because resources required are not available at proper time and task becomes more time-consuming.

7.Wrong Perception About Work- Mostly employees feel that their assigned duties are more than their colleagues. But they perception may not be correct always. And this kind of wrong perception about work often makes job harder for the employees.

8.Toxic Workplace Behavior- It is a kind of behavior which is expressed by an employee or management which affects the work culture in a negative way. It covers all the wrong activities which poisons the psychological environment of any workplace. It includes bad behavior or act by employees or by management.

9.Work-life Imbalance- Employees have to face work-life imbalance due to inflexible and strict policies of their organization. This kind of imbalance is not good for mental and physical health of employees. Employees are not able to fulfil their professional as well as personal responsibilities perfectly. They live in a dilemma that what to do and how to come out of these boundaries. Due to which sometimes organizations have to lose their good employees.

CRITERIA TO MAKE PSYCHOLOGICALLY HEALTHY WORK ENVIRONMENT

In this research paper the researcher tries to reveal the importance of healthy psychological work environment in the lives of employees. And an organization can become successful only if its employees are mentally healthy because only physical health is not enough as we all know that body works with the directions given by brain. Like this psychological health is essential to make good decisions for the growth and expansion of the organization. Here few steps are presented that how to make a work place psychologically healthy-

1.Employee Engagement- It is moral duty of an organization to make an employee feel that he is an important part of organization. Employees should be approached to take part in decision making process. For approaching them various various tools and techniques are employed by different organizations. Like brain storming, suggestion box, employees' committee etc.

2. Work-life balance- In a psychologically healthy work environment employees are enable to manage their professional as well as personal matters appropriately. While making policies management should take in to consideration the time factor and personal life of their employees. By adopting suitable working hours, flexible leave options, childcare facilities, flexible work arrangements etc, an organization makes the life of its employees easier. They can easily maintain their work-life balance.

3.Opportunities for Growth and Development- To grow and motivate its employees, a psychologically healthy workplace is always ready to offer opportunities for their growth and development. Their performance is observed and promotion opportunities are provided to the employees on the basis of performance appraisal. They are given professional training for learning new skills and technologies. In addition to this various seminars, programs, conferences etc are organized at regular intervals for the knowledge improvement of employees.

4.Mental and Physical Health of Employees- Organizations should take care of mental and physical health of its employees. Their health and safety are very important for the continuous working of an organization. Only few organizations have understood this important factor. They organize various health and safety awareness programmes for their employees. Regular health check- up centres for employees, counselling and assistance programmes, fitness facilities and entertainment activities are also arranged.

5.Recognition and Reward for Employees- Employees are important assets of an organization. Their hard work should be recognized by employers. So that they get motivated to work with more commitment for the organization. Some organizations reward their employees on the basis of their performance and experience. They are rewarded in various ways depending on policy of the organization. Example of rewards are- increase in salary package, promotion to a higher post, family holiday package etc.

Conclusion-

For psychological safety of working environment it is very essential for the companies to understand its value in the life of employees as well as for the success of their business. A psychologically healthy work environment is a situation in which people feel open in asking questions, answering

questions, giving ideas and sharing problem with each other. 'Psychological Safety' is very important for the success of a team work. This concept has emerged in last few years. In fact in pandemic time only those organizations overcame the situation whose psychological working environment was healthy and safe. And this concept is suitable for any kind of crisis. Because to fight with any crisis it is very essential for the people to be mentally stable and healthy. Some studies on psychological safety presents many benefits like increase in confidence level of employees, buildup of mutual trust among people at workplace, increase in level of productivity and increase in creativity level of employees. According to an article, Cory Stieg (2020), a Gallup report (2017) pointed out that there is positive relationship between psychological safety and employees' engagement in work. 'A Psychologically Healthy Work Environment' must be a policy of every organization.

Bibliography

- Abror, A. (2017). The Relationship Between Psychological Safety, Self-Efficacy and Organisational Performance: A Case in Indonesian Companies. Doctoral dissertation, University of Hull, Kingston upon Hull.
- Carmeli, A. (2007). Social capital, psychological safety and learning behaviours from failure in organisations. Long Range Plann. 40, 30–44. doi: 10.1016/j.lrp.2006.12.002
- De clercq, D., and Rius, I. B. (2007). Organizational commitment in Mexican small and medium-sized firms: the role of work status, organizational climate, and entrepreneurial orientation. J. Small Bus. Manage. 45, 467–490. doi: 10.1111/j.1540-627X.2007.00223.x
- Donaldson, S. I., Csikszentmihalyi, M., and Nakamura, J. (2011). Applied Positive Psychology: Improving Everyday Life, Health, Schools, Work, and Society.New York, NY: Routledge.
- Huang, C.-C., and Jiang, P.-C. (2012). Exploring the psychological safety of R&D teams: an empirical analysis in Taiwan. J. Manage. Organ. 18, 175–192. doi:10.1017/S1833367200000948
- Kovach, K.A. (1987). "What motivates employees? Workers and supervisors give different answers", Business Horizons, 30(5), 58-65.
- Marlow, S., and D. Patton (1993). Managing the employment relationship in the small firm: Possibilities for human resource management, International Small Business Journal, 11(4), 57-64.
- Sue Shellenbarger, (1999), "Employees who value time as much as money Now get their Reward," Wall street journal, p. B-1
- W. N. Cooke, (1994) "Employee Participation Programs, Group based Incentives & company Performance," Industrial and Labour Relations Review 47, 603-36.

•https://www.forbes.com/sites/jacquelynsmith/2013/11/18/how-to-create-a-stress-free-workplace environment/? sh= 95 8b4 6d f8cc6

•"https://hbr.org/2019/11/making-work-less-stressful-and-more-engaging-for-your-employees

•"/create-psychological-safety-in-the-workplace

•"https://www.inc.com/amy-morin/8-simple-ways-to-create-a-mentally-healthier-workplace.html

Ms Gargi Sharma
Research Scholar
Singhania University, Rajasthan
Email- gargi.sharma84@gmail.com

51

Demonetization – A Step towards Digital India

Dr. Sarika Choudhary

Abstract:-

Digital India campaign was launched by Prime Minister Narendra Modi on 1st July, 2015 with the motto of Power to Empower. It includes the plan to connect the rural areas with high internet network connectivity and easily accessibility of these services to all in the country. This project covers the main aspects of digital literacy among people, creation of digitally advanced technology based infrastructure and delivery of digital services. Basically digital India economy would include E commerce(Flipkart, IRCTC, bigbasket etc..), Ride sharing services (Uber, Ola etc.),utility services (Bill payments), E-wallets (Paytm, UPI apps etc..) and banking services (net banking, cheque, NEFT, IMPS etc.). Demonetisation of Indian high value currency has embarked a new revolution in the digital India. By demonetizing the five hundred and thousand rupee notes India hopes to curb out black money and switch over to cashless economy. Therefore, this new move will definitely have a huge impact on the digital horizon in India. It encourages the people to use the electronic or plastic money for their transactions. Demonetization provides benefit to banks, NBFCs, Micro financing companies etc. As most of the people in the economy are involved in cash transactions so they objected this transition. In this context, the present study tries to analyse how demonetization has led a path towards digital India. It also explains pros and cons of demonetization for digital India.

Keywords: Demonetisation, digitalization, digital literacy, E-currency etc.

Introduction

A Cashless Economy is an economy in which all types of transactions are carried out through digital means. It includes e-banking (Mobile banking or banking through computers), debit and credit cards, card-swipe or point of sales (POS) machines and digital wallets. The paper under study tries to throw light on the rising trend of digital transactions in India being carried out in various cashless modes over the last few years but simultaneously being ourselves making alert of the negative impact of going cashless thereby showing downside of digital India. As the people of India are showing amazing response towards move of digitalization, it is the big indicator of prosperous future for India to be cashless India. So the need of an hour is to spot the weaknesses involved in cashless transactions and work out on them to achieve the vision of Prime Minister Modi's Digital India.

Cashless India is a move that has assumed significance in the backdrop of demonetization of high value currency by NDA government. prime minister Mr.NarendraModi announced demonetization of rupees 1000 and 500 took people by surprise. people standing in spiraling cues and at atm and bank counters to exchange their old currency notes or withdraw cash became a familiar scene across the country however the new cashless revolution ignited by this move had gradually start changing the mindset of people who were earlier mostly dependents of currency notes only for doing transactions. cashless economy involves having all type of transactions without involvement of paper money and physical money instead we use e-banking, debit and credit cards, machines and digital wallets. government of ;ndia took many initiative and a strong decision toward going digital and cashless like demonetization GST indirect tax reform, counterfeit currency. India is showing good response towards move of digitization. as said by Mr.Modi" we want to have one mission and target; take the nation forward digitally and economically.

Situation before implementation of GST and demonetization till 2016, only 5% transaction was taking place electronically. Auer demonetization of highest dominated currency Rs 1000 and Rs 500, which consists 86% of total paper money. People were compelled to become cashless. and internet banking become the need of the hour at that time. at present India is far behind other economies in case of cashless transaction. according to Google India and UN broadband commission, around 75% transaction was based on cash while, it is only 20 to 25% in other developed nation. Secondly report also said that India has 76.47 billion currency notes in circulation in 2012-13 as compared to 34.5 billion in US. that much dependence on cash transaction left

India in shock due to demonetization. India deliberately pushed towards mobile banking and digitalization.

DAWN OF NEW ERA:

As the as independence was granted for India, and the British left, but all we had was just hunger, poverty and misery all over the place. then the PM and finance minister planned the five year plans for the development of the country, but motive was not as such to make laws which are obstruction for the growth and the flexibility created the fair chances of development by all means but simultaneously after 68 years of independence, India grew up to the second fastest growing economy and India has witnessed leaps of the technological advancements and growth. Within no time compared to other big countries India developed at much faster pace. but now as the resources are exhausting and the opportunities are rare with cut throat competition because of population explosion there are crooks developed in country and many illegal businesses have been mushroomed like counterfeit currency within and across the borders of country, hawala transactions, and many more which was aimed towards tax avoidance and underreporting of the money these businesses make, and harm government by not paying the due tax. the move of digitalization is move towards the fool proof method to track whether the money is taxed and white or not.

The move of GST implementation is a planned move after demonetization, as the all the currency present in the system will be reported and the counterfeit currency will skim out. after that the move of GST will ask the people who have deposited the money in the banks to change the notes "from where it came?' then they have to give tax on that the money will come in the knowledge of the government; the further transaction will be done cashlessly and it is trackable whether it is taxed or not. Hence it enables government to identify the defaulters and penalize them and simultaneously it will encourage people to file their dutiful returns to the income tax department of the India.

All the companies will get registered and government will know how many companies will pay how much revenue in the form of tax if the revenue collected is less than expected government can easily inspect how and why this has happened and no escape is possible for the payers.

Positive Impacts of Demonetisation:

1. As we all know India is known for the pendency of the government departments and the delay in the procedure. Which also creates the chances of bribery to the official in order to get the work done slightly faster than as usual it will go will be not a scene anymore. as the transactions will be done digitally so the work will be done faster without much employment of manual manly hours.

Going cashless has helped in creating a positive impact on society as the paper based methodology in financial transactions has been reduced thereby economy in operations, time and cost.

Various benefits of going cashless can be listed out as under:

It will help in curbing the generation of black money. The cashless economy has attacked the parallel economy. People who hoard money under their bed, people who launder money bypassing banking channels, terrorist who need money to finance their terror will find difficulty in cashless economy.

It will help in reducing instances of tax avoidance. All the transactions can be monitored and hence traced back to an individual. Income tax officials can easily trace out the transactions and it will become difficult for individuals to evade taxes. Ultimately, it will help in increasing revenue of the government from taxes and more productive activities can be carried out in the economy.

It will lead to reduction in real estate prices because of curbs on black money as most of it is invested in real estate which ultimately inflates the prices of real estate markets.

RBI spent Rs.27 billion in financial year 2015 on currency issuance and management. This could be avoided if India becomes a cashless economy.

Cashless economy will boost consumption as people would not be attracted towards keeping money in banks. More consumption will lead to more production, more employment opportunities & hence, income of people will increase..

Practical Implementation

For making India cashless, these are the various modes available in form of digital transactions which are being considerably implemented and which clearly indicate that cashless transactions are being actively used by people in India. These can be highlighted as under:

Payment Banks: Payment bank is a new model of banks introduced by RBI. Payment can issue services like ATM Cards, mobile banking, net banking, and debit cards

etc. These payment banks offer amazing competition to traditional banks in terms of services. Two such prominent licensees are Airtel (founded in 1995, in 2016 reaching at revenue of $14.5 billion) and PayTM (founded in 2010 and valued at $1 billion presently)

Electronic Fund Transfer Systems: Two popular methods RTGS and NEFT are increasingly used by people at a large scale for making funds transfer from one bank to another leading to less time and economy in operations.

Mobile Wallets: Option to open a zero KYC or a full KYC wallet along with your mobile number and the application to be downloaded to your smart phone.

Internet Banking: For this type of digital service to take benefit of, the individual must hold a bank account and opt for the online service same. Banking Cards: Banking cards are available by the bank by providing the KYC (know you customer) information to the bank. Applying for a card and getting a pin for the same. Credit and Debit cards are plastic cards that are used as method of payment

STEPS TAKEN BY RBI AND GOVERNMENT TO DISCOURAGE USE OF CASH

Government is also promoting mobile wallets. Mobile wallet allows users to instantly send money, pay bill, and recharge mobiles, book movie tickets, and send physical and e-gifts both online and offline. Recently, the RBI had issued certain guidelines that allow the users to increase their limit to Rs 1, 00,000 based on certain KYC verification. Various incentives offered by government to promote digitalization in India to make India "Digital India" by focusing on cashless modes are:

On digital transactions up to rupees 2000, Service Tax of 15% waived off Digital purchase of fuel through credit cards, mobile wallets or e-wallets, discount of 0.75% Free accident insurance worth rupees 10 lakh on account of online ticket buyers On purchase of new LIC policies online via its site, 8% discount is offered.

Government has also launched UPI (PDF) (Unified Payment Interface), payment system that can be used for immediate mobile transfers between account holders of two different banks.

Government has introduced various technologies like BHIM (Bharat Interface for Money) app to transact between each other as well as with other merchants. BHIM App currently has 17 million downloads in less than 3 months since its launch. And government is considerably promoting their digital cashless technologies other than BHIM such as UPI &Aadhar Enabled Payment Systems. As per National Payments Corporation of India, payment transactions through Aadhar enabled Payment Systems have raised 12 times over 6 months from April 2016 to October 2016 which is highlighting that traditional bank themselves are moving towards e-wallet services on mobiles at a faster pace.

In addition to govt or RBI, Companies are also participating in combating of cyber crimes because of increasing trend of cashless or digital transactions.

Microsoft opened full scale cyber security Center called Cyber security Engagement center (CSEC) in India.

This centre, located '1 Delhi, functions as a satellite to company's Redmond Digital Crime Unit (DCU).This centre monitors how viruses are spreading , from where cyber attacks are originating and helping customers to tap pool of security specialists.

Measures To Be Taken :-

Basic cyber hygiene must be taken care of such as non-sharing of passwords with others, non-saving of passwords on public networks and Better access to control techniques with strong authentication measures should be implemented by mobile e-wallet companies. Open Bank accounts and ensure they are operationalized.

Abolishment of government fees on credit card transactions; reduction of interchange fee on card transactions; increase in taxes on ATM withdrawals.

Tax rebates for consumers and for merchants who adopt electronic payments.

Need is to scale up the capabilities of POS machines for faster rollouts in country.

Making Electronic payment infrastructure completely safe and secure so that incidents of Cyber crimes could be minimized and people develop faith in electronic payment system.

The Reserve Bank of India too will have to come to terms with a few issues, from figuring out what digital payments across borders means for its capital controls to how the new modes of payment affect key monetary variables such as the velocity of money. RBI will also have to shed some of its conservatism, part of which is because it has often seen itself as the protector of banking interests rather than overall financial development.

Conclusion

The future of the Cashless India looks pretty promising as the response of the country people towards this move of the

government and the support towards it is a clear indication that the government's move is likely to succeed. The transparency in the economy will increase through the e-commerce transactions and the digital payment gateways which will increase the GDP of the economy. This will increase the creditability of the country and make a rise in investments. This step of cashless and demonetisation are truly going to create ripples of big success and it will help to attain vision of Prime Minister Modi's vision of "Digital India.

References

- https://papers.ssrn.com/sol3/papers.cfm?abstract_id=3314670
- https://www.researchgate.net/publication/341100344_India's_Demonetization_-_Pros_and_Cons
- https://www.researchgate.net/publication/347516135_Demonetization_and_its_impact_on_indian_economy
- http://phdcci.in/live_backup/image/data/Research%20Bureau2014/Economic%20Developments/paper/Study%20on%20Impact.pdf
- https://www.babson.edu/academics/executive-education/babson-insight/finance-and-accounting/indias-demonetization-what-were-they-thinking/

Dr. Sarika Choudhary
Head, Deparment of Economics
Dyal Singh College, Karnal
Email: drsarikachoudhary@outlook.com

52

'डरी हुई लडकी उपन्यास में नारी मनोदशा'

ललिता

सारांश

नारी मनोदशा शब्द मनोदशा के मूल अर्थ को वहन करते हुए उसे थोड़ा संक्षिप्त कर देता है। नारी के अंर्तमन की अनुभूतियाँ, मन की व्याकुलता, पीड़ा से ही संबंधित है। लेखक ने अपने उपन्यास में बलात्कार पीड़िता के मन की स्थिति, उसके दर्द को अपने उपन्यास के माध्यम से पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है।

मूल शब्द –मनोदशा, दुष्कर्म, पीड़िता, असुरक्षा

उपन्यास में नारी मनोदशा

डरी हुई लडकी चर्चित रचनाकार ज्ञान प्रकाश विवेक का मुख्य उपन्यास है। इसमें उन्होने एक बलात्कार पीड़िता की मनोदशा, उसके दुख, उसके दर्द और असुरक्षा को बड़े ही मार्मिक भाव के साथ पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। जीवन के सबसे दुखदायी क्षण से वह गुजर रही है। इसी दौरान राजन नाम का एक युवक उसे झाड़ियो से उठाकर डाक्टर तक पहुंचाता है और उसकी देख–रेख करता है। कहानीकार ने एक ऐसे पुरूष पात्र का सृजन किया है जो आज के दौर में दुर्लभ है। यौन हिंसा की शिकार एक लड़की की शारीरिक और मानसिक दशा के साथ स्त्री के प्रति असभ्य, बर्बर और दोगले समाज का चित्रण ज्ञान प्रकाश विवेक जी ने किया हे। उपन्यास में अत्याचार के इस चरम रूप को बेहद बारिकी से लेखक ने ब्यान किया है। इतनी दरिन्दगी से लड़की को अपना शिकार बना कर उसे झाड़ियों में फेक दिया जाता है। ऐसा लगता है कि मानव रूप में भेड़ियों ने इन्हें नोंचा हो। हमें ऐसे समाज का हिस्सा होने में शर्म महसूस होती है कि हम किस परिवेश में रहते है जहां एक बेटी भी सुरक्षित नहीं। मन में अनेक तरह के सवाल उठते है कि क्या जो इतना नीच काम करते है क्या उनके घर बहन–बेटी या मॉ नहीं?बिना माँ के तो बच्चे की कल्पना नहीं की जा सकती। क्या कोई माँ अपने बच्चे में ऐसे संस्कार डाल सकती हैं जो उन दुष्कर्म करने वालों में थे। अन्तरात्मा काँप उठती है।सिक्के के दो पहलू होते है। ऐसे ही हमारे समाज में अच्छे लोग भी रहते हैं और बुरे भी। राजन उन्हीं सज्जन पुरूषों में से एक था जिसने समाज की चिंता किए बिना उस पीड़िता की सहायता की और अपने घर में शरण दी। लड़की के मन में पुलिस के पास जाने में भी एक भय था। बदनामी का उनके आपत्ति जनक सवालों का। राजन के कहने पर उसने मना कर दिया। 'दरोगा। सिपाही। रजिस्टर। मेज और प्रश्न और जड़ता और अमानवीयता।' [1] सबसे बड़ी समस्या यही है कि पीड़ित या पीडिता पुलिस के पास नहीं जाना चाहती क्योंकि वहाँ जाकर उनसे ऐसे अतार्किक प्रश्न किये जाते है जिनसे एक बार नहीं बार–बार उसी पीड़ा को सहना पड़ता है। इस उपन्यास में एक ऐसे पुरूष पात्र को भी चित्रित किया है जो उस लडकी को उस दुख से उभारना चाहता है। मन ही मन वह भगवान से प्रार्थना करता है कि इस लडकी की सांसे टूटने मत देना।

निःस्वार्थता से किसी के हित की सोचना आज के युग में भगवान से कम नहीं। राजन ने कार का दरवाजा खोलकर बड़ी आत्मीयता से कहा 'एक बार चैकअप करा लेते है। कोई मामूली–सा एंटीबायटीक्स या कोई पेनकिलर।' [2] यहां एक अनजान के प्रति मानवीय संवेदना, आत्मीय भाव को दर्शाया है। आज के दौर में किसी अनजान की सहायता कोई बिरला ही करता है। पूरी कहानी एक फलैट में राजन और उस लड़की के बीच संवादों और मनस्थितियों में ही चित्रित है। लेडी डॉक्टर भी लडकी की मनस्थिति को समझती है। उसके अन्दर जो डर, भ्रम, अवसाद भरा है और साथ में दुष्कर्म की शिकार। वह राजन की प्रशंसा करती है और कहा 'मैं आप पर विश्वास करती हूं।'[3] इस उपन्यास में एक डॉक्टर के भगवान रूप को भी यथार्थ किया है। जैसे भगवान बिना किसी भेद–भाव के अपने बच्चों को देखते है वैसे ही एक डॉक्टर भी मरीज को देखता है और जीवन–दान देता है। लड़की के कपड़े ही नहीं मैले हुए बल्कि उसकी अंतरात्मा भी मैली हो गई। बार–बार वह इस दुख से उभरना चाहती है लेकिन फिर मन में वही दुख , पीड़ा। लेखक ने इस विषय को इसलिए भी चुना है क्योकि वह समाज को एक दर्पण दिखाना चाहता है कि एक लड़की की कोई भी गलती नहीं होती फिर भी उसे इस हवानियत का शिकार होना पड़ता है। समाज में उसे पहले जैसी दृष्टि से नहीं देखा जाता जो पहले देखा जाता था। इस बात पर कोई ध्यान नहीं देता कि पीड़ित के साथ कैसे दिया जाना चाहिए, उसके प्रति कैसा व्यवहार होना चाहिए।

इस उपन्यास में यह भी चित्रित किया है कि किस प्रकार विपरीत परिस्थितियों में हमें दूसरे का सहारा बनना चाहिए और उसका होंसला बढ़ाना चाहिए। 'पनिहारे ने दरके हुए घड़े को तसल्ली देते हुए कहा 'अपनी तरफ से रास्ते पर जरा नजर डालकर देखो। कितने सारे फूल खिले है। लेकिन दूसरी तरफ एक भी फूल नहीं। जीवन में अगर आप पीछे मुड़कर देखते रहोगे तो कभी आगे नहीं बढ़ पाओगे। हम अपनी बुरी यादों को छोड़कर आने वाले कल के बारे में सोचना चाहिए। इस उपन्यास का उद्देश्य रेप की शिकार लड़की की मनोदशा, अकेलेपन और असुरक्षा की भावना पर ध्यान

केंद्रित करना है। उपन्यास का सशक्त पक्ष उसके संवाद है। 'मैं स्त्रियों के बारे में कुछ नहीं जानता। लेकिन इतना जरूर जानता हूं कि पुरूषों की सामन्ती मानसिकता, हेकड़ी और युद्ध लड़ने का उन्माद जब थमता है तो बहुत कुछ नष्ट हो चुका होता है।'[5] इस संवाद के द्वारा लेखक यह बताना चाहते है कि हमारा समाज पुरूष प्रधान है और इसी प्रधानता को माध्यम बनाकर स्त्रियों पर अत्याचार किए जाते है। प्राचीन समय में भी और वर्तमान समय में भीं यह अहंकार भावना जब क्षीण होती है तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। पीड़िता स्त्री या लड़की के मन में अनेक सवाल उठते है कि यह सब कुछ मेरे साथ ही क्यो हुआ। मैंने किसी का क्या बिगाड़ा था। इसी मन की उद्हेलना को शांत करने के लिए राजन कहता है कि 'इतिहास ग्वाह है,' मैं अपनी बात जारी रखते हुए कह रहा हूं' युद्ध हो या शान्ति , सबसे ज्यादा अत्याचार स्त्रियों पर हुए है। लेकिन यह भी सच हे कि मुश्किल समय में सबसे ज्यादा धैर्य भी स्त्रियों ने दिखाया है' [6]

विलक्षण संवादो के द्वारा लेखक ने एक स्त्री की स्थिति, उस पर हुए अत्याचार और उसके होंसले को उजागर किया है। यह उपन्यास उन हजारों पीड़ितों को दोबारा अपने जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है और नारी शक्ति को जागृत करने के लिए उस अन्तरात्मा की ज्योत को जलाने का होंसला। पुरूष प्रधान में नारी का सदैव शोषण किया गया है। उन तीन दरिन्दों ने नन्दिनी के जीवन को तहस नहस कर दिया। जीवन के अर्थ को खत्म कर दिया। लेखक ने आज के अमानवीय व्यवहार को इस उपन्यास में चित्रित किया है। ऐसे लोगों पर कटाक्ष किया है जो एक लड़की को सिर्फ भोग की वस्तु समझते हैं। ऐसे व्यक्ति मनुष्य रूपी राक्षस है। और राजन जैसे पात्र को इसलिए चित्रित किया है कि कुछ व्यक्ति मानव रूप में भगवान होते है। निष्छल, निष्कपट, लालचहीन परहित करते है और मानवीय रूप को सुशोभित करते है। राजन के अच्छे व्यवहार से नन्दिनी बिल्कुल ठीक हो गई या ये कहना गलत नहीं होगा कि कुछ हद तक सामान्य हो गई। अनजान व्यक्ति ने एक जरूरतमंद की इतनी मदद की कि वो इतने बड़े हादसे से उभर गयी। यह उपन्यास नन्दिनी जैसी लड़की की आन्तरिक पीड़ा और अवसाद की एक झलक है जिसका हम अनुमान लगा सकते है लेकिन अनुभव नहीं कर सकते। ज्ञान प्रकाश विवेक जी ने इस उपन्यास को इतने मार्मिक भाव से लिखा है कि पढ़ते–पढ़ते रोंगटे खड़े है। पाठक को ऐसा लगता है कि यह घटना उनकी आंखों के सामने है। अमानवीयता और दुराचार की हद पार करने वाले मानव रूपी राक्षसों पर व्यंग्य है। ठीक है नन्दिनी जेंडर के दृष्टिकोण से एक स्त्री है। और सिर्फ स्त्री होने के कारण वह कमजोर न होती, तो उसका बलात्कार क्यों किया जाता। यह उपन्यास इस विमर्श के लिए भी दरवाजा खोलता हे कि सरकारी संगठन विकास संगठन क्या इस विषय पर चर्चा करते हैं? नन्दिनी की समस्या केवल एक स्त्री की समस्या नहीं है यह पूरी दुनिया के सामाजिक मूल्यों की विंडबनाओं का चित्रण है।

अन्ततः यह उपन्यास विश्व के बौने मानव को, मनुष्य के भीतर छिपे राक्षस को पाठकों के सामने उजागर करता है। भाषा के रूप से देखा जाए तो पात्र अपने चरित्र को स्वतः ही रचते है। यह एक नारी की संघर्ष कथा पर आधारित उपन्यास हो आए दिन समाचारों में पढ़ते है कि कितनी अमानवीय घटनाएं हुई। आधी से ज्यादा जनसंख्या को बुनियादी चीज ही नहीं प्राप्त है। बहुत कम बलात्कार पीड़िताये अवसाद के उस कुएं से बाहर निकल पाती है जो अपराधियों ने एक बेगुनाह के लिए खोदा होता है। नन्दिनी का डिप्रेशन सामान्य नहीं है यह हर उस स्त्री के लिए है जो घर से बाहर अकेले जाती है। महानगरीय संस्कृति में स्त्री के साथ अमानवीय जघन्य बलात्कार और पारिवारिक हिंसा इस करद आम हो गयी है कि हम कोई ऐसी घटना सुनकर या देखकर ज्यादा चिंतित नहीं होते। और आम घटनाओं की तरह उसे भी देखते है।

संदर्भ ग्रंथ –

1. ज्ञान प्रकाश विवेक, डरी हुई लड़की उपन्यास, पृ0 – 26
2. डरी हुई लड़की उपन्यास, पृ0 –30
3. डरी हुई लड़की उपन्यास, पृ0 – 38
4. डरी हुई लड़की उपन्यास, पृ0 – 105
5. डरी हुई लड़की उपन्यास, पृ0 – 108
6. डरी हुई लड़की उपन्यास, पृ0 – 108

ललिता

शोधार्थी (हिंदी विभाग)

बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय

अस्थल बोहर, रोहतक – 124001

निर्देशक – डॉ0 राजेन्द्र सिंह

Igbo Tradition and Western Culture: Chinua Achebe's Marriage Is A Private Affair

Scholastica

Introduction

African literature is a comprehensive expression of African culture, oral literary tradition, Psyche and contradictions in African society caused by colonial rule.It reflects the aspirations ,dreams ,psyche, conflicts and changes of the African people living in the African continent consisting of West Africa,South and East Africa. The colonization of Africa and the consequent British Influences shaped African Society which was primitive and tradiotional.Although on one hand the colonial power tried to wipe out the traditional culture of the African people, on the other the introduction of the European educational system benefited them.It opened new dimensions for development and provided prospectus of contact with the outside world.African literature expresses the Cultural heritage,traditional values, social conflicts and crisis, and powerful western influences on the people of Africa particularly Tribes like The Igbo Tribe in Nigeria.Writers like Wole Soyinka, Chinua Achebe, James Ngugi, Christopher O Kigbo and many others have presented a universal view of humanity in their writings.During the twentieth century African literature attained maturity and the writers revealed, in the words of Dr. K.R.S. Iyengar, "a mastery of form and sheer linguistic originality and competence."

Chinua Achebe And His Writings

Chinua Achebe is a Nigerian novelist. He was born at Ogidi, Eastern Nigeria. He graduated from University College in Ibandan, in 1953. He worked in Nigerian Broadcasting from 1954 , and was as Director of External Broadcasting during 1951-57. During the Nigerian Civil war (1967-70) he was in Biafran government Service. After the war he taught in United States and Nigerian Universities.Achebe's indignation at European representations of Africans in fiction prompted him to write his first novel, an African Classic. "Things Fall Apart" (1958) , is an evocation of the civilized value of pre-colonial African Society and of a proud clansman's tragic downfall when British government fractured their society. His other work , "Marriage is a private affair" , a short story carries a vehicle projecting the tradition and culture of the Igbo Tribes in Nigeria.There is of course a clash of personality of the characters in the story. Nnamaeka being a rigid western culture and Okeke his father a devoted Christian ,who adheres to the traditional culture and values of the Igbo tribes particularly in issues like Marriage.Achebe as a writer has projected every phase of Nigeria in the form of drama, Short story and other forms of literature too.Chinua Achebe vehemently asserted that it was his mission " To help my society regain belief in itself and put away the complexes of the years of denigration and self-abasement."

Nigerian Literature

Nigerian literature is the literature of Nigeria which is written by Nigerians, for Nigerians and addresses Nigerian issues. It is written in English, Igbo, Urhobo, Yoruba, Hausa, and the other languages of the country. African literature as a whole and Nigerian literature in particular was not birthed by the presence of the colonial masters, but rather existed in Myths, Folktales, Legends, songs and other various forms centuries before European invaded the continent. That period is known as the classical period of Nigerian Literature.

Literature is a vehicle of ideologies; a composition of language that serves as a cultural representation of a people . Literature therefore is more than a imaginative epistle.Nigerian literature before 19th century was in form of orature. And as is the case in any society, literature first comes in orality and only much later does it metamorphosis into written form and Nigeria is not different.

Igbo Tribe And Tradition

The Igbo people are found in Southeastern Nigeria and have many interesting customs and traditions. They are enriched with their tradition cuisines and traditionally were mostly

farmers, craftsmen and traders.They have a traditional religious belief that there is one creator, called 'Chineke' or 'Chukwu'. The creator can be approached through many other deities and spirits in the form of natural objects,mostly through the god of thunder called 'Amadioha'.After Nigeria was colonized , most Igbos became Christian, which is still the predominant religion today.Marriage in this community is done within the caste and tribes Inter-caste and inter- tribe marriage is prohibited among the Igbo people.

Igbo Tradition And Western Culture Clash In "marriage Is A Private Affair"

"MARRIAGE IS A PRIVATE AFFAIR" is a beautiful short story written by Chinua Achebe. It gives us a glimpse of the strict rules of marriage in his Igbo tribe in Africa, as Inter-tribe marriage is forbidden in Igbo culture. Here Chinua Achebe presents the conflict between a young man and his father over the choice of a bride outside the Igbo Tribe.Okeke, is a symbol of Igbo tradition and culture in the story here he has chosen a Daughter-in-law ,his neighbor ; who is from their Tribe and also a Christian.Okeke says "I have found a girl who will suit you admirably-Ugoye Nweke, the eldest daughter of a neighbor, Jacob Nweke. She has a proper Christian upbringing…..her Bible teacher has told me that she reads her Bible fluently….we shall make negotiations when you come home in December."But since Nnameaka , the protagonist of the story is living in Lagos a city which is filled with western cultures and people of broad mind.He is in love with agirl at Lagos,named Nene Atang so Nnameaka said, "Iam engaged to marry another girl who has all Ugoye's good qualities, and who….She is a good Christian, and a teacher in a girls school in Lagos.Okeke disagreed to this and exclaimed , "I shall never see her.."

When the Igbo people heard about Nnamaeka's decision about marrying a girl outside Igbo they all got furious against Okeke's family .Madubogwu, a highly practical man said to okeke to consult a Doctor about Nnameaka.Okeke said , "I will not be another Mrs Ochuba.If my son wants to kill himself let him do it with his own hands.it is not for me to help him."

Besides all the obstacles and no moral support behind Nnameaka went aginst the so long Igbo tradition of marriage within the Tribe and married Nene,Initially his father Okeke did not regard it being so rigid in his Igbo culture and tradition,Even after receiving the letter from his son at Lagon and Daughter-in –law ,which had a marriage picture of them.He tore apart the picture separating Nene from Nnameaka in the picture was a showcase of his anger, frustration and helplessness over the decision of his son Nnameaka.

Nnamaeka did not lose his heart and trust on his father Okeke at tthis reaction but rather he stood firm and brave in holding Nene's hand and said , "Don't cry my darling …He is essentially good-natured and will one day look kindly on our marriage."

When Nene wrote a letter to Okeke, telling him about his two grand sons which reads as follows

"…our two sons ,from the day they learntthat they have a gradfather,have insisted on being taken to him,I find it impossible to tell them that you will not see them,I implore you to allow Nnameaka to bring them homefor a short time during his leave next month,I shall remain here in Lagos…."

After reading this letter of Nene , Okeke coluld not sleep and rest and was fighting a battle within, as if he was losing this battle between his thoughts and the Grandsons about whom he has just heard.So A heavy rain occurred that moment as if it stands as a symbol of new beginning with some thunder and lightening.At the end of the story we learnt that eventually he accepts Nnameaka and Nene's Marriage and also was happy to see his grandsons and they viceversa were happy too.

Conclusion

It is noticeable and acceptable that every people from different religion, caste, creed and Culture in the world have their own traditions and norms on various issues.Specially Tribal communities in the world have rigid rules and regulations to follow ,failing which to follow Tribes are In danger.As Chinua achebe pointed out the theme of Marriage in "Marrage is a private affair" although the Igbo tribe of Nigeria have a rigid rule on Marriage forbidding Inter-Tribe marriage ,but the sternness and Broad minded personality like Nnameaka could not be shaken by that law as he got influenced by the Broad mindedness of the western culture and world,having lived in a city Lagos.This is now proved that solely Marriage is a private affair of a person ,he/she is

responsible and have the right to chose his/her partner in life,as they as a couple will have to lead the life throughout and their sole decision can even break a rigid law of prejudice against inter-tribe marraiage.It is evident that not only the Igbo tribe in Nigeria but also In the entire world there are places and people filled with the disease of prejudice either fearing their old culture and tradition, to be preserved therefore prohibiying marriage outside it,or the fear of extinct of their tribe.But there are Rebel like Nnameaka who fight against such issues and live their life on their own terms and values,thus spreading happiness around.

Work Cited

1. theculturetrip.co
2. American and commonwealth literature by K. Susilarani,Alagappa Government Arts College, Karaikudi.
3. English literature by Hira Lal Choudhary

Scholastica
Guest Lecturer
Dept. Of English , ANCOL
Chakkargaon, Port Blair

54

प्रकृति के स्वरुप का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ0 एम0पी0 त्रिपाठी, दयानन्द

सारांश

'प्रकरोतीतिप्रकृति' अर्थात जो (जगत प्रयत्न) कार्यों को उत्पन्न करती है या प्रक्रियते अनयेति प्रकृति अर्थात जिससे कोई पदार्थ बनाया जाए, उसे प्रकृति कहते हैं।इस संपूर्ण चराचर की प्रत्येक घटना कारण कार्य–श्रृंखला में बद्ध है। इसी तार्किक प्रक्रिया का आश्रय लेकर जगत के उपादान कारण के विषय में अनेक मत उपस्थित होते हैं। स्वभावतरू कोई परमाणुओं से कोई अचेतन प्रधान से सृष्टि की उत्पत्ति स्वीकार करते हैं।

मानव बुद्धि की सीमाएं सत्य को पूर्णरूपेण जानने में असमर्थ हैं। अतः तर्क के आधार पर सदैव उचित निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है। श्रुतियों में उक्त तथ्य के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं–श्रुतियां एवं स्मृतियां असत से सत की उत्पत्ति का निषेध करती हैं–कथमत' सज्जायेत[1] एव नासतो विद्यते भावः[2] इत्यादि। श्रुति नानात्व का निषेध करती है–नेह नानास्ति किंचन[3] सदैव सौम्यमिद अग्रासीत एवमेव अद्वितीय।[4] निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि जगत का कारण जगत का कारण कोई एक सत तत्व है।नानात्व या अनेकत्व सत्य नहीं है।

प्रत्येक वस्तु जो उत्पन्न होती है उसका कोई न कोई कारण अवश्य होता है ,क्योंकि बिना कारण के कार्य की उत्पत्ति असंभव है। इसीलिए इस त्रिगुणात्मक जगत का भी कोई न कोई मूल कारण अवश्य होगा। सांख्यशास्त्र में उस मूल कारण को प्रकृति कहा गया है। इसे ही 'अव्यक्त' भी कहा गया है क्योंकि सांख्य का मत है कि सृष्टि का कोई मूल तत्व है जो स्वरुपत' 'अव्यक्त' है उसी से सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है। 'अव्यक्त' का अर्थ अदृश्य नहीं है , प्रकृति के अव्यक्त होने का अर्थ है सृष्टि के घटक तत्व की वह अवस्था जिसमें व्यक्त सृष्टि अपने बीज रूप में सिमटी रहती है। भारतीय दर्शन में उत्पत्ति के अनेक सिद्धांत स्वीकार किए गए हैं। महर्षि कपिल मुनि के अनुसार विश्व के असंख्य परिवर्तनशील पदार्थ किसी न किसी उपादान कारण से उत्पन्न है। ये उपादान कारण भी किसी न किसी अन्य कारण के कार्य हैं और इस प्रकार कारण –कार्य की इस श्रृंखला की अन्वेषणा करते हुए हम हम एक ऐसे मूल कारण का अनुमान करते हैं, जो सभी कारणों का कारण है और जिससे समस्त विश्व की रचना हुई है। इस कारण को ही कपिल मुनि ने सांख्यशास्त्र में 'प्रधान प्रकृति श्आदि नामों से उल्लिखित किया गया है। यहां एक शंका यह होती है कि यदि विश्व के सभी पदार्थ किसी न किसी कारण से उत्पन्न है तब इस प्रकृति का कोई भी अन्य कारण मानना चाहिए अन्यथा कार्य कारण नियम में व्याघात उत्पन्न होगा। इस शंका का समाधान सांख्य में अनवस्था दोष का प्रसंग देकर किया गया है बीजांकुर न्याय अनवस्था दोष का बड़ा सुन्दर उदाहरण है –

बीज का कारण क्या है–वह अंकुर या पौधा जिसके फल में वह आया था उस अंकुर या पौधे का क्या कारण है– वह बीज जिससे यह पौधा उत्पन्न हुआ उस बीज का भी कारण उसके पूर्व का पौधा या उस पौधे का भी कारण उसके पूर्व का बीज इस प्रकार बीज और अंकुर दोनों ही एक दूसरे के कारण और कार्य हैं बीज और अंकुर के विषय में कारण और कार्य के संबंध की यह अनंतर परंपरा अनावस्था है ।[5]

इसी प्रकार प्रकृति का कारण पुन उसका भी कारण पुन उस कारण का भी कारण और इस प्रकार आगे भी कारण मानते जाने पर अनवस्था होगी। ऐसी अवस्था में विश्व के ऐसे मूल कारण मानना आवश्यक है, जो किसी अन्य का कारण नहीं। सांख्य दर्शन में वह मूल कारण प्रकृति को माना गया है –अर्थात वह मूल प्रकृति कार्य से भिन्न कारण है जो केवल कार्यों को उत्पन्न करती है वही प्रकृति है।

वाचस्पति मिश्र ने भी इसी तथ्य का समर्थन करते हुए सांख्यकारिका की अपनी टीका तत्व कौमुदी में स्पष्ट कहा है की परमाव्यक्त प्रकृति से भी परतर किसी अव्यक्त तत्व की मूल रूप में कल्पना करने में अनवस्था होगी। जो इस स्थल पर प्रमाणिक न होने से दोष युक्त होगी।[6] इसी प्रकार 'अजामेकाम' इत्यादि श्रुति तथा प्रकृति पुरुष 'चौव विद्वयनादी उभावपि' इत्यादि स्मृति वाक्य प्रकृति को अज अनादि बताकर कारण परंपरा का उसी में अंत मानते हैं। अतः स्पष्ट है कि प्रकृति से परतर अन्य किसी अव्यक्त की कल्पना प्रमाणित नहीं है।

सत्कार्यवाद– सत्कार्यवाद सांख्य दर्शन का कारणता का सिद्धांत है जो न्याय दर्शन के कारण सिद्धांत के ठीक विपरीत है सत्कार्यवाद का प्रतिपादन प्रकृति रूप कारण की सत्ता की सिद्धि के उद्देश्य से किया गया है सांख्य में प्रकृति के अस्तित्व को दृढ़ता के साथ स्वीकार किया गया है जैसे अवस्तु से वस्तु की उत्पत्ति नहीं हो सकती जगत रूप प्रपंच का कारण प्रकृति वस्तुतरूसत है अस्तित्ववान है। इस प्रसंग में सत्कार्यवाद का विवेचन अति आवश्यक है।

सत्कार्यवाद के दो रूप प्राप्त होते हैं–परिणामवाद और विवर्तवाद वेदांत परिभाषाकार परिणामवाद या विवर्तवाद को इस प्रकार परिभाषित किया है–जहां कारण के समान कार्य भी वास्तविक सत्ता रखता है वहां परिणामवाद होता है, जहां कारण के सदृश्य कार्य की यथार्थ सत्ता नहीं होती वहां विवर्तवाद होता है।

परिणामवाद के अनुसार कार्य कारण का परिणाम है, वास्तविक रूपांतरण है तात्विक परिवर्तन। कारण सचमुच कार्य के रूप में परिवर्तित हो जाता है कार्य में कारण का आकार परिवर्तित होता है और यह आकार परिवर्तन वास्तविक होता है जैसे मिट्टी से उत्पन्न घड़ा मिट्टी का यथार्थ रूपांतरण है, दूध से

निर्मित दही में दूध का तात्विक परिवर्तन होता है। सांख्य योग दर्शन और रामानुज का विशिष्टाद्वैत दर्शन परिणामवाद को स्वीकार करता है।

सांख्य योग दर्शन का सिद्धांत प्रकृति परिणामवाद कहलाता है। इसमें विश्व को प्रकृति का वास्तविक परिणाम माना जाता है। जिस प्रकार दूध में दही अव्यक्त रूप में वर्तमान होता हैऔर दही में दूध का वास्तविक रूपांतरण होता है उसी प्रकार यह संपूर्ण जगत प्रकृति में निहित होता है, और प्रकृति ही वस्तुतः जगत के रूप में परिवर्तित होती है रामानुज के विशिष्टाद्वैत दर्शन में 'ब्रह्मपरिणामवाद' को स्वीकार किया जाता है।

जिसके अनुसार संपूर्ण विश्व ब्रह्म का ही यथार्थ परिणाम है। जिस प्रकार मिट्टी का तात्विक परिवर्तन घड़ा है उसी प्रकार ब्रह्म का वास्तविक परिणाम यह नानाविध जगत है। विवर्तवाद में कार्य को कारण का तात्विक रूपांतरण न मानकर प्रातीतिक या आभास मात्र स्वीकार किया जाता है। इसके अनुसार कार्य कारण का आभास मात्र है। विवर्त का धात्वर्थ है [6] उलट जाना या विपर्यास। ब्रह्म वह है जिसका विवर्त या विपर्यास देशकालादि बद्वया जगत है। सत्कार्यवाद के विरुद्ध अनेक आक्षेप उपस्थित किए जा सकते हैं सत्कार्यवाद को मानने से कार्य की उत्पत्ति की व्याख्या करना असंभव हो जाता है यदि कार्य उत्पत्ति के पूर्व कारण से व्याप्त है तो फिर इस वाक्य का, कि कार्य की उत्पत्ति हुई का क्या अर्थ है?

यदि कार्य की सत्ता उत्पत्ति के पूर्व कारण में विद्यमान है, तो निमित्त कारण को मानना व्यर्थ है। प्रायः कहा जाता है कि कार्य की उत्पत्ति निमित्त कारण के द्वारा संभव हुई। परंतु सांख्य का कार्य कारण संबंधी विचार निमित्त कारण का प्रयोजन नष्ट कर देता है।

सत्कार्यवाद का सिद्धांत आत्म विरोधी है। यदि कार्य उत्पत्ति के पूर्व कारण में ही विद्यमान है तो फिर कारण और कार्य के आकार में भिन्नता का रहना इस सिद्धांत का खंडन करता है।

सत्कार्यवाद के अनुसार कारण और कार्य अभिन्न है तब कारण और कार्य से एक ही प्रयोजन पूरा होना चाहिए। परंतु हम पाते हैं कि कार्य और कारण के अलग–अलग प्रयोजन हैं। मिट्टी से बने हुए घड़े में जल रखा जाता है परंतु मिट्टी से यह प्रयोजन पूरा नहीं हो सकता। यदि उत्पत्ति के पूर्व कार्य कारण में ही उपस्थित है तो हमें यह कहने की अपेक्षा कि कार्य की उत्पत्ति कारण से हुई, हमें कहना चाहिए कि कार्य की उत्पत्ति कार्य से हुई।

इन कुछ आपत्तियों से यह निष्कर्ष निकालना की सत्कार्यवाद का सिद्धांत महत्वहीन है सर्वथा अनुचित होगा। सांख्य का सारा दर्शन सत्कार्यवाद पर आधारित है अतः इसका विशिष्ट महत्व है। सांख्य अपने प्रसिद्ध सिद्धांत प्रकृति की स्थापना सत्कार्यवाद के बल पर ही करता है। सिद्ध करने के लिए सांख्य दर्शन जिन तर्कों का सहारा लेता है उन सभी तर्कों में सत्कार्यवाद का प्रयोग है।

डॉ. राधाकृष्णन का यह कथन है की कार्य कारण सिद्धांत के आधार पर विश्व का अंतिम कारण अव्यक्त प्रकृति को ठहराया जाता है। इस बात की पुष्टि करता है कि सत्कार्यवाद का महत्व विकासवाद का सिद्धांत सत्कार्य वाद की ही देन है। विकासवाद का आधार प्रकृति है। प्रकृति से मन बुद्धि पांचों ज्ञानेंद्रियां पांच कर्मेंद्रियां पंचमहाभूत इत्यादि तत्वों का विकास होता है यह तत्व प्रकृति में अभिव्यक्त रूप से उपस्थित रहते हैं। विकासवाद का अर्थ इन अभिव्यक्त तत्वों को व्यक्त रूप प्रदान करना है। सत्कार्यवाद के अभाव में विकासवाद के सिद्धांत को समझना दुरूह कार्य है।[7]

प्रकृति के विभिन्न नामों का उल्लेख

महर्षि कपिल मुनि ने अपने सांख्य दर्शन में प्रकृति के अनेक नामों का उल्लेख किया है इनमें भी प्रकृति के स्वरूप का परिचय प्राप्त होता है। इसे श्प्रधानश नाम दिया गया है क्योंकि यह सब कार्यों का आधार है।8 ब्रह्म अथवा वह जो बढ़ता है।[9] प्रकृति अव्यक्त भी है, क्योंकि इसमें यह संपूर्ण जगत अस्तित्व में आने के पूर्व श्अव्यक्तश्रूप से नहीं तो था। प्रकृति को 'अजा' कहते हैं क्योंकि यह अनुत्पन्न है और इसका कोई कारण नहीं है। इसे अनुमान भी कहते हैं क्योंकि इसकी सत्ता का ज्ञान प्रत्यक्षादि प्रमाणों से न होकर केवल अनुमान से होता है। यह श्जड़श है क्योंकि यह मूलभूत भौतिक पदार्थ है। प्रकृति को श्माया श्कहा जाता है जो वस्तुओं को सीमित करती है।[10]

प्रकृति विश्व को सीमित करती है, क्योंकि वह कारण और विश्व की समस्त वस्तुएं कार्य है। यह अचेतन होने के कारण श्अविवेकीश भी है। यह विषय का श्ज्ञेयश है, क्योंकि यह पुरुष के द्वारा भोग्य एवं जानी जाती है।[11] प्रकृति को शक्ति कहा जाता है, क्योंकि उसमें निरंतर गति विद्वान रहती है। इसे अविद्या कहते हैं क्योंकि प्रकृति ज्ञान का विरोधात्मक है। यह सामान्य है क्योंकि यह संपूर्ण भौतिक जगत में व्याप्त है और यह भौतिक जगत अपने आविर्भाव के पूर्व प्रकृति में ही निहित था प्रकृति प्रसवधर्मिणी है, क्योंकि संपूर्ण जगत प्रकृति से प्रसूत है। दृश्य, तम, अप्रतिमबुद्ध, क्षर, क्षेत्र, अलिंग, गुणक्षोभिणी, बहुधानक, त्रिगुणात्मिका, तत्व,बीजशक्ति,मूलोपादान इत्यादि को प्रकृति का पर्यायवाची कहा गया है।

अद्वैत मत में प्रकृति को प्रकृति को ब्रह्मश्रित अथवा ब्रह्म की शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। अद्वैतवादी, अविद्या, अज्ञान, अध्यास, अध्यात्म अनिर्वचनीय, विवृर्त, भ्रान्ति, भ्रम, नामरूप मूल प्रकृति, तम और माया इत्यादि नामों से प्रकृति को व्यवहत करते हैं।

निष्कर्ष –

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि प्रधान तत्व प्रकृति समस्त जागतिक पदार्थों की जननी है तथा कपिल मुनि के सांख्यानुसार उसका एकतत्व प्रायः सिद्ध है। प्रकृति के अनेक स्वरूप हैं जो एकतत्व को प्रदर्शित करती हैं। प्रकृति सदैव एक से एक लगी हुई बीच में थोड़ा सा भी अंतर न छोड़ती हुई एक समान ही है अथवा यह कहा जा सकता है की वह अव्यक्त (इंद्रियगोचर) और निरवयव है। प्रकृति की सत्ता अनुपम है प्रकृति सत एवं भाव रूप है। प्रकृति अनादि है।

संदर्भ ग्रंथ–

1–छान्दोग्योपनिषद,6/2/2

2–श्रीमदभगवदगीता/2/16

3–वृहदारण्यकोपनिषद4/419

4–छान्दोग्य उपनिषद 6/2/5

5–आद्या प्रसाद मिश्र सांख्य तत्व कौमुदी प्रभा।

6– डॉ ० राधाकृष्णन भारतीय दर्शन –2,पृष्ठ–496

7–वही,

8–वही,

9–भगवदगीता,14 / 3

10–डॉ०, हरेंद्र प्रताप सिन्हा ,भारतीय दर्शन की रूपरेखा ,पृष्ठ– 237

11–डा०,राममूर्ति पाठक, भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा, पृष्ठ –15

शोध–निर्देशक

डॉ0 एम0पी0 त्रिपाठी

एसो0 प्रोफेसर

आर0आर0 पी0जी0 कॉलेज, अमेठी,

उ0प्र0।

शोध–छात्र
दयानन्द

55

हिन्दी कथा साहित्य में मानवता और मानव मूल्य

डॉ0 आशा रानी

सारांश

सार – कथा–साहित्य के माध्यम से मानवता मूल्यों को दर्शाना इस शोध–पत्र का उद्देश्य है। कथा–साहित्य के माध्यम से सम्पूर्ण समाज प्रतिबिम्बत हो उठता है, क्योंकि कहानी और उपन्यास सामाजिक जीवन के ही दर्पण है। जिसमें समस्त मानव मूल्यों नैतिकता, परोपकार, करूणा, दया , सहिश्णुता, अहिंसा, ''वसुधैव कुटुम्ब'' के भाव को शाश्वत वाणी मिलती है। भौतिक, आर्थिक, सामाजिक मूल्य परिवर्तन के साथ बदल जाते है लेकिन शाश्वत मूल्य चिरस्थायी हैं। साहित्यकार अपने युग का प्रवर्तक होता है, उसकी रचना में उसके समय का युग प्रतिबिम्बित हो उठता है। जिसके माध्यम से वह मानवता तथा मानव मूल्यों को वाणी दे सके। कथा–साहित्य में भी कथाकार ने अपनी लेखनी के माध्यम से मानव–मूल्यों को वाणी दी है।

मुख्य संकेत– मानवता, मानव–मूल्य, कहानी विधा, उपन्यास–विधा, शाश्वत तथा बदलतें मानव–मूल्य

जीवन के साथ जुड़ा शब्द है–'मूल्य' चितंन और व्यवहार दोनो क्षेत्र में ही 'मूल्य' शब्द का प्रयोग किया जाता है। यहाँ 'मूल्य' से अभिप्राय संपूर्ण मानव व्यवहार से है। इसे अंग्रेजी में टंसनम कहते हैं। संस्कृत में इसे ''मूलेन समोमूल्य'' कह सकते है। अर्थ– परिवर्तन के कारण 'मूल्य' शब्द अत्यंत व्यापक है। संक्षेप में गुणों को ही मूल्य कह सकते हैं। मूल्यों का प्रारम्भ परिवार होता है। परिवार के दायरे से बाहर निकलकर मनुश्य व्यापक समाज में आता है। ग्राम, प्रांत, देश सब व्यापक समाज के ही घटक है। अतः साहित्य समाज का दर्पण है। उपनिषदों के 'सत्यम् वेद धर्मचार' से लेकर कबीर, तुलसीदास तथा रहीम के काव्य तक व्यापक नीति–साहित्य मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रत्यक्ष प्रयास है। आधुनिक साहित्य में 'मूल्य' शब्द का प्रयोग वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक स्तर पर संपूर्ण मानव के व्यवहार के मानदण्ड के रूप में किया जाता है। 'मूल्य' शब्द का प्रयोग आवश्यकता, प्रेरणा, आदर्श, अनुशासन, प्रतिमान आदि अनेक अर्थों में होता है। आज मनुष्य पुराने विचारों को काल बाह्य समझने लगा है, प्राचीन मूल्य अस्वीकृति हो रहे हैं और नए–नए मूल्य स्वीकार किए जा रहे हैं।

भारतीय संस्कृति में मूल्यों के अन्तर्गत धर्म को उत्कृष्ट मानते हुए कहा गया है कि धर्म के अभाव में मनुष्य पशुओं से श्रेष्ठ नहीं है। यहाँ 'धर्म' शब्द संकुचित नहीं है। इसका अभिप्राय मानव आचरण की शुद्धता से ही है। पाश्चात्य विद्वानों ने भी अच्छे–बुरे के संदर्भ में ही मूल्यों को व्याख्या की है।

पाश्चात्य विद्वान 'अबर्न' ने मूलयो की तीन संक्षिप्त परिभाषाएं दी हैः–

प्रथम व्याख्या के अनुसार ''मानवीय इच्छा की तृष्टि करे वहीं मूल्य है''!

द्वित्तीय व्याख्या – ''मूल्य वह वस्तु है जो जीवन को सदैव विकास की ओर ले जाती है और उसे सुरक्षित रखती है''

तीसरी परिभाषा के अनुसार – ''जीवन मूल्यों को शब्दों की सीमा में नहीं बॉधा जा सकता है।'' सक्षेप में, ऐसी कोई भी वस्तु मूल्य हो सकती है जो जीवन को आगे बढ़ाती है और सुरक्षित करती है। पाश्चात्य विद्वान वुडस के अनुसार– ''मूल्य दैनिक जीवन में व्यवहार को नियंत्रित करने के सामान्य सिद्धान्त है। मूल्य केवल मानव व्यवहार की दिशा निर्धारण ही नहीं करते बल्कि अपने आप में आदर्श और उद्देश्य भी होते हैं। प्रत्येक समय का समाज अपनी आवश्यकता अनुसार मूल्यो का निर्माण करता है। हिन्दी साहित्यकार धर्मवीर भारती परम्परागत मूल्यों के विषय में कहते हैंः–

'पुराने मूल्य अब मिथ्या लगने लगे हैं। इस प्रकार की श्रद्धा, आस्था और करूणा अमानवीय वृतियों को जन्म देती हैं, वे मानवीय गौरव को प्रतिष्ठित करने की अपेक्षा उसको विकलांग बनाते हैं। उत्कर्ष ही जीवन–मूल्यों की कसौटी है, उन व्यवहारों को ही जीवनमूल्य माना जाता है।'

हर धर्म के कुछ नैतिक आदर्श होते हैं, उनके आधार पर ही समाज में अनेक मूल्यों का प्रचलन होता रहता है। मूल्य मानव जीवन को स्थायित्व प्रदान करते हैं। मूल्यों द्वारा सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होता है। मूल्यों का प्रश्न केवल सिद्धांतों तक ही सीमित नहीं है, अपितु प्रत्येक साहित्य के अध्येता के लिए मूल्य गुरूतर प्रश्न है। लेखक के लिए तो उसकी मौलिकता अति आवश्यक है, क्योंकि एक साहित्यकार अपनी रचना का सबसे पहला और सबसे अधिक परीक्षक होता है। प्राचीन युग में मूल्यों का निर्धारण तथा आज के समय में मूल्यों का निर्धारण भिन्नता पर आधारित है। पहले मूल्यों का निर्धारण राज्य, धर्म और समाज के द्वारा किया जाता था। लेकिन आज मनुष्य अपना कर्ता–धर्ता स्वयं हो गया है. अर्थों व मूल्यों का

स्वयं ही निर्णायक है। डा० देवराज उपाध्याय के अनुसार 'मनुष्य अपना कर्ता–धर्ता स्वयं हैं'। दूसरे शब्दों में व्यक्ति स्वयं ही मूल्यों का निर्णायक है।

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है। साहित्य पाठकों को जीवन के यथार्थ से जोड़ता है। नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था उत्पन्न करता है। काव्यशास्त्र के अनुसार साहित्य में हित की भावना होना आवश्यक है। आज भी साहित्य का वास्तविक आधार मानव मूल्य है। साहित्य और जीवन में मूल्यों का शाश्वत संबंध है। साहित्यकार मानवीय संस्कृति, सभ्यता एवं व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करता है। साहित्यकार का उद्देश्य आनन्द की सृष्टि के साथ–साथ समाज का मार्गदर्शन करना भी है। डा० जगदीशचन्द्र गुप्त के अनुसार 'कला और साहित्य दोनों एक प्रकार से जीवन का ही विस्तार करते हैं, मानव मूल्यों की स्थापना साहित्यकार से इस बात की अपेक्षा रखती है कि वह साहित्यिक मूल्यों को भी उतना ही समादर प्रदान करें, जितना मानव–मूल्यों को क्योंकि तत्वतः दोनों एक ही है।' साहित्य में मानव मूल्य काल्पनिक नहीं होते, अपितु साहित्यकार के अनुभूत सत्य होते है। साहित्य हमारे अव्यक्त भावों को व्यक्त करता है। उसमें जीवन के विविध रूप हमारे सामने आते हैं। साहित्य का आधार मनुष्य और उसके अपने यथार्थ के बीच जावित संबंधों में है। साहित्य और मूल्य एक ही सिक्के के दो पहलू है। साहित्य का संबंध व्यक्तिगत मूल्यों से होकर सामाजिक, आर्थिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था से होता है। वही जीवन का साहित्य कहलाता है।

पाश्चात्य विचारक मैथ्यू अर्नाड ने साहित्य और मूल्य के संबंधों की व्यवस्था करते हुए – साहित्य को जीवन की व्यवस्था कहा है। इस व्यवस्था का तात्पर्य केवल जीवन के गुण–दोषों पर बल देना नहीं, अपितु संपूर्ण जीवन के विकास से सम्बन्धित है। वास्तव में जीवन के शाश्वत मूल्यों का अभिप्राय सत्यं, शिवं और सुन्दरम तीनों की सामन्जस्य पूर्ण स्थापना करना है। 'हितने सह सहितं'' कहकर साहित्य शब्द के व्याख्याकारों ने उसने स्वयं कल्याण भावना की प्रतिष्ठा की है। समष्टि ही साहित्य में अभिव्यंजित होता है। यदि समाज न होता तो साहित्य भी नहीं होता। यदि साहित्य होगा तो समाज भी होगा। इस प्रकार मानव, समाज और साहित्य से बाहर नहीं हो सकता। साहित्य द्वारा मानव–मूल्यों की अभिव्यक्ति वास्तव मे साहित्यिक मूल्यों की ही अभिव्यक्ति है। मानव मूल्य एवं साहित्यिक मूल्य वस्तुतः एक ही है। मूल्य समाज की धारणाओं के अनुसार बदलते रहते हैं, लेकिन शाश्वत मूल्य न कभी बदलते हैं और न ही मिटते है। मूल्य में परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन होता है। इस आधार पर हम मूल्यों के दो भेद करते हैं।

1. शाश्वत मूल्य – इन मूल्यों में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का समन्वय इन मूल्यों में निहित रहता है। नैतिक मूल्य– त्याग, अहिंसा, सेवा, न्याय आदि शाश्वत मूल्यों में ही समाहित है।

2. बदलते मूल्य – भौतिक सुख–सुविधाओं के साथ–साथ इन मूल्यों में परिवर्तन आता रहा है। इसके अन्तर्गत आर्थिक, सामाजिक, आध्यात्मिक मूल्य आते है।

साहित्य और मूल्यों का अटूट सम्बन्ध है। साहित्य चाहे किसी भी भाषा का क्यों न हो, उसमें मूल्यों के दर्शन होते हैं। प्राचीन समय से ही साहित्य हम मूल्यों की अभिव्यक्ति देख सकते हैं प्राचीन साहित्य में राम और कृष्ण को आदर्श रूप में रखा गया है। इन रूपों द्वारा आदर्श व्यक्तिव में धैर्य, नीति, बुद्धि, वाकपटुता आदि शाश्वत मूल्यों को देखा जा सकता है। मूल्यों की रक्षा करना मनुष्यता का मुख्य धर्म है जीवन में सौन्दर्य की स्थापना करनी हो तो उसमें मूल्यों का होना अति आवश्यकता है। साहित्य की प्रत्येक विधा में मूल्यों की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। यहाँ संक्षेप में उपन्यास और कहानी विधा में मूल्यों की अभिव्यक्ति की जा रही है।

कहानी विधा में मानव मूल्यों की अभिव्यक्तिः–

कहानी साहित्य की सशक्त विधा है जिसमें जीवनपथ पर चलने के लिए आदर्श एवं मूल्य निहित रहते है। डा0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना के अनुसार ''कहानी, मानवीय संवेदना की घटनात्मक अभिव्यक्ति का नाम है। इसमें कहानीकार जीनव के किसी एक तथ्य या मर्म की अभिव्यंजना करता है, जीवन के किसी लक्ष्यों का उद्घाटन करता है''[1]

कहानी और मानव मूल्यों के विषय में डा० इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है ''पहले कहानी अधिकांश कल्पना पर आधारित होती थी. अब यथार्थ को लेकर चलती है। अतः पहले की कहानी नयीं है। नयी कहानी में तालाश पात्रों की नहीं, यथार्थ की है, पात्रों के माध्यम से यथार्थ की अभिव्यक्ति की है। पहले कहानी कला मूल्यों को लेकर लिखी जाती थी, अब जीवन मूल्यों को लेकर''।[2]

कहानी साहित्य विधा पर विचार करते हुए हम देखते है कि आरम्भिक कहानियाँ आदर्शपरक या कल्पनापरक होती थी। धीरे–धीरे मनुष्य में सामाजिकता का भाव अभिवृद्धि पाता रहा है। अब व्यक्ति उद्देश्यपरक, यथार्थादी, जीवन मूल्यों से परिपूर्ण कहानी की रचना करने लगा। डा० देवेश ठाकुर के अनुसार– ''व्यक्ति व्यक्ति के परस्पर संबंध बनने के परिणामस्वरूप कहानी में स्नेह, सौहार्द प्रेम संवेदना, करुणा तथा सहकार भावना के साथ–साथ परस्पर ईर्श्या, द्वेश, शत्रुता और हिंसक भावनाओं की भी अभिव्यक्ति हुई। व्यक्ति–जीवन में इन सभी प्रवृतियों की एक ही स्थान (समाज) पर

अभिव्यक्ति से कहानी की अनेकानेक दिशाएं उपलब्ध हो गयी।'' [3]
स्वतंत्रता पूर्व कहानी में त्याग, बलिदान, निस्वार्थता जैसी भावनाएँ विकसित हो गई प्रेमचन्दयुगीन कहानियों में यथार्थ को दर्शाने का प्रयास किया गया है। पंच परमेश्वर, कफन जैसी कहानियाँ इसी श्रेणी में आती है। डा० राम मूर्ति त्रिपाठी के अनुसार :
''प्रेमचन्द का साहित्य हर दृष्टि से जन सामान्य का साहित्य है।'' [4]

जयशंकर प्रसाद ने अपनी कहानियों में रिश्तों की उलझन को दर्शाया है जैसे आकाशदीप, ममता, पुकार आदि। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' में विशुद्ध प्रेम और श्रद्धा का भाव दर्शाया गया है। विश्म्भरनाथ शर्मा की 'ताई' कहानी में पारिवारिक मूल्यों को दिखाया गया है। यशपालजी की 'महादान' कहानी में मूल्यों के विघटन को दिखाया गया है। मोहन राकेश और अजय की कहानियों में दाम्पत्य संबंधों में विच्छेद दिखाया गया है। मन्नू भंडारी की कहानियों में पारिवारिक टूटते मूल्य, पुराने और नये मूल्यों में हो रहे संघर्ष को दिखाया गया है।

स्वतन्त्रता के पश्चात कहानी के केन्द्र बिन्दु में नैतिक मूल्यों में विघटन होता गया। इस काल की कहानियों में यौन कुंठा, स्वार्थ प्रवृति, हीनता आदि प्रवृतियों का भी वर्णन मिलता है। मन्नू भंडारी की 'ऊंचाई', यादवेन्द्र शर्मा की 'नारी और पत्नी' केशव दुबेजी की 'काँच का घर, शैलेष मटियानी की 'भय' आदि कहानियों में यौन संबंधों का उन्मुक्त विवरण किया गया है। समय के साथ नैतिक मूल्यों के साथ आर्थिक मूल्यों में भी विघटन होता गया। अर्थ को ज्यादा महत्व दिया गया। इसी से भ्रष्टाचार, गरीबी, महंगाई बढ़ी है। मंजूल भगत की 'पांव रोटी और कटलेट्स' दीप्ती खंडेवाल की 'बेहया' जितेन्द्र भाटिया की 'शहाजदनामा' कहानियों में आर्थिक विषमता को देख सकते हैं। शिवानी की 'स्वयंसिद्धा', मेहरूनिसा परवेज की 'गिरवी रखी धूप' चित्रा मुदगल की 'अग्निरेखा' आदि कहानियों में सामाजिक मूल्यों का विघटन देखा जा सकता है। डा० राममूर्ति त्रिपाठी के अनुसारः– ''आज की कथा जिस युग चेतना को उसकी समग्रता में प्रतिफलित करती है– उसे किसी भी 'आधुनिकता' समसामायिकता, सामायिकता– किसी भी शब्द से समझाया जाए– मूल वस्तु नहीं बदल जाएगी'' [5] तात्पर्य यह है कि मानव मूल्य निरन्तर कहानी साहित्य विधा के माध्यम से अभिव्यक्त होते रहे हैं।

उपन्यास विधा मानव मूल्यों की अभिव्यक्ति– कथा–साहित्य के अन्तर्गत कहानी की तरह ही उपन्यासों में भी मूल्यों का वर्णन हैं। श्रद्धाराम फिलौरी का उपन्यास 'भाग्यवती', लाला श्रीनिवास दास का उपन्यास 'परीक्षागुरू' उपन्यास विधा की शुरूआत माने जा सकते हैं। जिसमें सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति की शुरूआत रही है। कहानी की तरह उपन्यास विधा भी प्रेमचन्द पूर्व प्रेमचन्द, तथा प्रेमचन्द के परवर्ती भागों में विभाजित है। अयोध्या सिंह उपाध्याय का उपन्यास 'अधखिला फूल' में धार्मिक अंधविश्वास का दुष्परिणाम देख सकते हैं। प्रेमचन्द युग प्रवर्तक उपन्यासकार माने गए हैं। प्रेमचन्द ने सामाजिक समस्याओं को अपने उपन्यासों के माध्यम से मुखरित किया। गोदान, कर्मभूमि, रंगभूमि, निर्मला आदि प्रेमचन्द के श्रेष्ठ उपन्यास है।

प्रेमचन्द के बाद जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी ने यौन संबंधो, मानसिक कुंठाओं का चित्रण किया है। यशपाल, रांगेयराघव आदि पर मार्क्सवाद का प्रभाव होने के कारण सामाजवादी विचारधारा का प्रचार एवं प्रसार भी उपन्यासों के माध्यम से हुआ। साठोत्तरी उपन्यासों में, महिला लेखन ने उपन्यासों के द्वारा विभिन्न मूल्यों को दर्शाया। इस काल में परिवार टुटते नजर आए। देश में अनुशासनहीनता, बेरोजगारी, महंगाई आदि बुराईयां बढ़ गई। कृष्णा सोबती के ''डार से बिछुड़ी' 'मित्रों मरजानी', 'सूरजमुखी अंधेरे के' उपन्यासों में सैक्स का चित्रण अधिक है। पुरातन मूल्यों को नकारती महिलाएं नजर आती है। उषा प्रियवंदा ने 'रुकेगी नहीं राधिका' में प्यार और प्यार न मिलने के कारण राधिका को मिलने वाला तनाव दर्शाया है। मन्नू भंडारी के 'आपका बंटी', 'महाभोज', 'स्वामी' आदि उपन्यासों में प्रेम्, राजनैतिक परिवेश, अलगाव आदि मूल्यों को व्यक्त किया है। मालती जोशी ने पाषाणयुग, निष्कासन आदि उपन्यासों में एकांकीपन, आधुनिकता का परिवेश और उसके दुष्परिणाम दिखाए है। दीप्ती खंडेलवाल के प्रिया, वह तीसरा, कोहरे तथा मृदुला गर्ग के चितकोबरा, उसके हिस्से की धूप आदि में प्रेम की नई भावनाओं का विकास रहा है। इस प्रकार उपन्यासों में भी मानव मूल्यों की अभिव्यक्ति मिली है। वास्तव में उपन्यास संपूर्ण मानव जीवन की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है, जिसके माध्यम से शाश्वत मूल्यों को निरन्तर अग्रसर किया जा सकता है।

निष्कर्ष :– कथा–साहित्य के माध्यम से समस्त सामाजिक जीवन का प्रतिफलन किया गया है। मानवता अर्थात् व्यक्ति विशेष में संवेदना, अनुभूति का भाव विद्यमान रहता है। साहित्य व्यक्ति विशेष के मानवीय भावों तथा मूल्यों को किस प्रकार जीवित रख सकता है तथा कथा साहित्य में मानव मूल्य कैसे मुखरित होते हैं और मूल्यों द्वारा समाज में एकता का भाव उत्पन्न किया जाता है। कथा–साहित्य में अपने समय के संपूर्ण समाज का चित्रण समाहित होता है। जिसमें मानव मूल्यों को सशक्त वाणी दी गई है। जिसके अन्तर्गत शाश्वत मूल्यों दया, करुणा, परोपकार, अहिंसा को बढ़ावा मिलता है तथा परिवर्तनशील मूल्यों के अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक, भौतिक आदि मूल्यों को भी एक दायरे में सुरक्षित रखा जा सकता है।

संदर्भ सूची –

1– हिन्दी के प्रतिनिधि कहानीकार – द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, प्राक्कथन

2–हिन्दी कहानी अपनी जुबानी – डा0 इन्द्रनाथ मदान पृष्ठ 31

3–हिन्दी कहानी का विकास –डा० देवेश ठाकुर, मीनाक्षी प्रकाशन पृ० 4

4– कथालिका – डा० राममूर्ति त्रिपाठी, प्रकाशक कैलाश पुस्तक सदन, ग्वालियर पृ.–10,

5–उपन्यास की संरचना गोपालराय, राजकमल प्रकाशन।

डॉ० आशा रानी
हिंदी विभाग
टीका राम कन्या महाविधालय
सोनीपत
546, गली न० 6,
न्यू कोर्ट रोड, अशोक विहार
सोनीपत – 131001

56

भारत में क्षेत्रीयतावाद एवं राष्ट्रीय एकीकरण

नरेन्द्र सिंह मेहता, डॉ0 गिरिराज सिंह

सारांश

भारत में क्षेत्रीयतावाद की समस्या कोई नवीन समस्या नही है, बल्कि इसकी जडें अतीत में काफी गहरी हैं, फिर भी आधुनिक समय में यह समस्या काफी तीव्रता से उभरेर सामने आई है, इसके पीछे अनेक आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक कारण हैं जो क्षेत्रीयतावाद की समस्या को दिन–प्रतिदिन गम्भीर बनाते जा रहे हैं, प्रायः क्षेत्रीयता दो प्रकार की होती है– आत्मपरक व वस्तुपरक।

ब्रिटश शासन के समय से ही भारत में क्षेत्रीयता उत्पन्न हो गई थी, क्योंकि अंग्रेजो ने अपना साम्रज्य बनाए रखने हेतु भरतीयों में राष्ट्रीय एकता की अपेक्षा उनमें अपने क्षेत्र की पृथकता की भावना सुदृढ़ की। देश की स्वतन्त्रा के पश्चात् ही नेताओं ने उनमें राष्ट्रीय एकता की चेतना उत्पन्न की। संविधान निर्माताओं ने इसी दृष्टि से संविधान में लोगो को एकल नागरिकता प्रदान की और न्यायपालिका का प्रावधान रखा। उन लोगों को जो राश्ट्रीय राजनीति की मुख्य धारा से अब तक नही जुड़ सके थे, को संगठित करने के उद्देश्य से भारतीय शाशन–तन्त्र में समाजवादी व्यवस्था अपनाकर राश्ट्र निर्माण के लिए एक और प्रयास किया गया। आर्थिक पुनरूत्थान हेतु पंचवर्शीय योजनाओं के निर्माण एवं जमींदारी तथा सामंती अधिकारों के उन्मूलन में भी संघर्श का बड़ा कारण दूर हूआ, किन्तू देश की विशालता व सांस्कृतिक भिन्नता के कारण शीघ्र ही क्षेत्रीयता पनपने लगी।

क्षेत्रीयता का प्रथम प्रकटीकरण भाशई राज्य बनाने की माँग के रूप में उभरा जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण तमिलनाडु में कांग्रेस के ऊपर डी.एम.के. के पार्टी की चुनावों में विजय थी। पंजाब में अकाली आन्दोलन तथा जम्मू–कश्मीर में नेशनल कॉन्फ्रेन्स पार्टी का गठन भी क्षेत्रीयता के रूप थे।

आज़ाद भारत में राजनीतिक इकाइयों के पुनर्गठन का मसला भारतीय नेताओं को बीसवीं सदी के प्रारम्भ से ही परेशान करता रहा है। स्वतन्त्रता संघर्ष के दिनों मे ही कांग्रेस इस समस्या से जूझ रही थी। नौरोजी, तिलक, अरविन्द और गांधी ने उसी दौरान समय–समय पर क्षेत्रीय संस्कृतियों के महत्व को स्वीकार करने पर बल दिया था। गांधी जी ने देश को राजनीतिक गतिशीलता प्रदान करने के लिए जो प्रयास किए, उनमें उप–क्षेत्रीय पहचानों को भी महत्व दिया गया थाए किन्तु राज्यों के निर्माण को लेकर आजादी के बाद के वर्षों में छिड़े विवादों के कारण देश में राज्यों के पुनर्गठन के मुख्य उद्देश्य अर्थात् शासन योग्य प्रशासकीय इकाइयों के गठन को ही भूला दिया गया।

भारत में नौवें दशक से ही स्वायत्तत्ता के बारे में चल रही राजनीतिक बहस में विकास और पहचान पर विशेष जोर दिया गया। इसकी अभिव्यक्ति झारखण्ड, बोडोलैण्ड, विदर्भ, तेलंगाना, बुन्देलखण्ड और उत्तराखण्ड जैसे आन्दोलनों के माध्यम से होती रही है। स्वायत्तता सम्बन्धी आन्दोलनों के नेताओं ने लोगों को लामबन्द करने के लिए गहरा असर डालने वाले दो मुद्दों का सहारा लिया। एक मुद्दा तो जातीय समूहों की पहचान के लोप से सम्बन्धिन था और दूसरा मुद्दा था किसी क्षेत्र विशेश का अविकसित रह जाना अथवा किसी जातीय समूह को कंगाल बना दिया जाना। अल्प विकास को ही पंजाब और जम्मू–कश्मीर में आतंकवाद और विद्रोह का मुख्य कारण बताया गया। इन दोनों मुद्दों को जितना समर्थन मिला, उससे यह स्पश्ट है कि आर्थिक शिकायतें केवल अनुमान आधारित नहीं, बल्कि वास्तविक थीं।

लोकतन्त्र और विकास के बारे में चल रही बहस का कोई निष्कर्ष नहीं निकल सका है। इसलिए इससे भारत में चल रहे उग्र और मुखर स्वायत्तता सम्बन्धी आन्दोलनों का कोई समाधान नहीं मिल सका है। पूरे देश में मात्रात्मक अध्ययन से जहाँ लोकतन्त्र और विकास के बीच सकारात्मक सम्बन्ध स्थापित होते हैं, वहीं इतिहास का गुणात्मक अध्ययन करने पर इन दोनों के बीच एक कमजोर रिश्ता दिखता है। इस प्रश्न का हल ढूँढ़ने में भारतीय अनुभवों से कोई विशेष मदद नहीं मिलती। विकास के बारे में भारतीय राज्यों के अनुभवों में भिन्नता रही है। उदाहरण के तौर पर महाराष्ट्र, गुजरात तथा बिहार के विकास के स्तरों में प्रत्यक्ष अन्तर से विरोधाभाषी संकेत प्राप्त होते हैं, भारत में राज्य तथा उपराज्यीय स्तर पर स्वायत्तता के लिए कोई त्रुटिहीन मानदण्ड प्रस्तुत कर पाना हमेशा ही कठिन रहा है। आजादी के बाद स्थानीय स्वशासन पर भी अयोग्यता और वित्तीय कुप्रबन्ध के आरोप लगते रहे हैं।

महाराष्ट्र में विदर्भ की माँग बहुत पुरानी है। बुन्देलखण्ड व पूर्वांचल की माँग भी पहले से ही उठती रही है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश को हरित प्रदेश के रूप में गठित करने की माँग को लेकर राष्ट्रीय

लोकदल के प्रमुख अजीत सिंह अपना आन्दोलन तेज कर चुके हैं। पूर्व लोक सभाध्यक्ष पी.ए. संगमा का कहना है कि ''सांस्कृतिक और विकास की जरूरतों के हिसाब से और नए राज्यों को बनाने में हिचकना नहीं चाहिये। नए राज्यों से लोकतन्त्र और मजबूत होगा। यदि नए राज्यों की माँग को दबाएंगे तो इसका नकारात्मक असर ही होगा। जब अमरीका में 50 राज्य हो सकते हैं तो भारत जैसे एक अरब आबादी वाले देश में राज्यों की संख्या बढ़ क्यों नहीं सकती है।''

जब देश आजाद हुआ तो उस समय देश में 562 रियासतें थीं। तत्कालीन गृहमंत्री सरदार पटेल ने इन रियासतों को एक सूत्र में पिरोने का काम किया था। एकीकरण की यह प्रक्रिया तब उल्टी मुड़ी जब पंजाब को तीन हिस्सों – हरियाणा, हिमाचल प्रदेश व पंजाब में, बम्बइ को दो हिस्सों – गुजरात व महाराष्ट्र में और असम को सात हिस्सों – असम, मेघालय, नागालैण्ड, मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश, त्रिपुरा व मणिपुर में बाँटा गया। उस समय भी तर्क यही था कि छोटे राज्य होने से वहाँ के लोगों की आकांक्षाओं को पूरा करने में मदद मिलेगी और सक्षम प्रशासन दिया जा सकेगा। उत्तराखण्ड, झारखण्ड व छत्तीसगढ़ गठन के पीछे भी यही तर्क दिया गया और यही तर्क अब दूसरे नए राज्यों के लिए आन्दोलन का आधार भी बनने जा रहा है। वैसे भी यदि किसी क्षेत्र में अपने विकास, उन्नति और प्रगति की अपार उत्कंठा हो तो उसे इसका अवसर मिलना ही चाहिये। देखें तो क्षेत्रीय आन्दोलन की पृष्ठभूमि में एक कारण तो सदैव दिखाई देगा – वह है पहचान की लड़ाई। यह ऐसा प्राथमिक सवाल है जो कभी–कभी और सम्भवतः सदैव भावनाओं को उद्वेलित करता रहा है और तब यह सवाल और भी अहम् हो जाता है जब जनता की पहचान की लड़ाई के साथ आर्थिक स्वावलम्बन का सवाल भी हो।

क्षेत्रीय विफलता तथा सांस्कृतिक अस्मिता की संयुक्त चेतना से भारतीय राष्ट्र की अब तक की केन्द्रोन्मुख परिभाषा को सीमान्त प्रदेशों, तटीय प्रदेशों तथा मध्य देश के क्षेत्रों में अस्वीकारा जा चुका है। भारत संघ के अन्दर एक अलग राज्य की माँग अथवा किसी मौजूदा राज्य के अन्दर स्वायत्त क्षेत्र की माँग अथवा नीचे राज्य स्तर तक की सत्ता और शक्ति का विकेन्द्रीकरण आदि का विरोध कई व्यावहारिक परेशानियों के आधार पर किया जा सकता है, परन्तु इसे तब तक पृथकतावादी नहीं माना जा सकता जब तक कि इसे राज्य की शेष जनता के विरुद्ध शत्रुताभाव से सामने नहीं रखा जाता। पृथकतावाद का मामला तब हमारे सामने आता है जब एक राज्य अथवा क्षेत्र के हितों को पूरे देश अथवा दूसरे क्षेत्रों या राज्यों के विरुद्ध प्रस्तुत करने की कोशिश की जाती है। अतः केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को त्यागते हुए एक विकेन्द्रीकृत राज्य संरचना की तरफ कदम बढ़ाने की आवश्यकता है। भारतीय राष्ट्रीयता की नई जरूरतों के अनुकूल हमारी प्रशासनिक व्यवस्था के पुनर्गठन के प्रति उन्नत नई राष्ट्रीय सहमति को क्रियान्वित किए बिना हम राष्ट्र निर्माण की दिशा में उत्पन्न अवरोधों का निराकरण नहीं कर सकते।

भारत देश भारतीय सांस्कृतिक विभिन्नता को न केवल अपने अन्दर समाहित करने, बल्कि गौरव की वस्तु बनाने में काफी सफल रहा है। भारत के विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों की अपनी पूर्ण सांस्कृतिक स्वायत्तता रही है और अपनी सांस्कृतिक महात्वाकांक्षाओं की संस्तुष्टि पूरी तरह उनके अधिकारों के अन्तर्गत ही है। भारत का भाषाई पुनर्गठन और राजभाषा के समुचित समाधान ने इस मामले में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, इसने इनके सांस्कृतिक ह्रास या सांस्कृतिक वर्चस्व की भावना को समाप्त कर अंतर्क्षेत्रीय संघर्षों के एक बहुत बड़े कारण का उन्मूलन कर दिया।

निश्चित ही कई क्षेत्रीय विवाद अभी बने हुए हैं और ये राज्यों के बीच शत्रुतापूर्ण भावना को हवा देने की क्षमता भी रखते हैं। नदी जल बँटवारे को लेकर कई राज्यों के बीच तीखे विवाद पनप चुके हैं। तमिलनाडु और कर्नाटक, कर्नाटक और आन्ध्र प्रदेश, पंजाब और हरियाणा आदि राज्यों के बीच झगड़े इसके उदाहरण हैं। भाषाई राज्यों के निर्माण के फलस्वरूप कई राज्यों के बीच सीमा विवाद पैदा हुए हैं, जैसे–बेलगाम और चण्डीगढ़ सम्बन्धी विवाद। बिजली एवं सिंचाई के लिए बड़े बाँधों का निर्माण भी राज्यों के बीच विवाद और संघर्ष की परिस्थितियाँ पैदा करता है, परन्तु जहाँ एक तरफ ये संघर्ष लम्बे समय तक बने रहते हैं और समय–समय पर उत्तेजना पैदा करते हैं, वहीं दूसरी तरफ सम्पूर्ण रूप से देखा जाए तो संकीर्ण और यहाँ तक कि स्वीकार्य सीमाओं में निहित रहे हैं और अधिकांशतः केन्द्र सरकार ऐसे विवादों में मध्यस्थ की भूमिका निभाने में सफल रही है और इसे तीखे अन्तर्क्षेत्रीय संघर्षों को रोकने में सफलता मिली है।

राष्ट्रीय एकता और समन्वय की दृष्टि से कहीं ज्यादा गम्भीर समस्या राज्यों और क्षेत्रों के बीच आर्थिक असमानता की समस्या रही है। पर असंतोष उत्पन्न करने और राजनीतिक व्यवस्था पर भारी दबाव पैदा करने के बावजूद इस समस्या ने सामान्यतया अब तक किसी क्षेत्र में पृथकतावाद की भावना उत्पन्न नहीं की है।

विकास की असमान गति के कारण उत्पन्न क्षेत्रीय विषमता प्रत्येक राज्य के अन्दर विभिन्न जिलों के बीच दिखाई देती है। कई सन्दर्भों में यह असमानता तनाव का स्रोत भी बन गई है और उप–क्षेत्रों में भारतीय संघ के अन्दर अलग राज्य की माँग को लेकर

या उसी राज्य के अन्दर स्वायत्त क्षेत्र की स्थापना के लिए उसने भारी आन्दोलनों को भी जन्म दिया है। कई बार सिर्फ विशेष सहायता, रोजगार और शिक्षा के मामले में विशेष सुरक्षा तथा अधिक वित्तीय संसाधनों के लिए भी आन्दोलन हुए हैं। इन उप–क्षेत्रीय भावनाओं का उदाहरण आन्ध्र प्रदेश में तेलंगाना, महाराष्ट्र में विदर्भ, उत्तर प्रदेश में बुन्देलखण्ड, पश्चिम बंगाल में दार्जिलिंग क्षेत्र या गोरखालैण्ड, असम में बोडोलैण्ड तथा उड़ीसा में पुराने रजवाड़ों के इलाके में देखे जा सकते हैं।

अन्य देशों के साथ हमारे अपने ऐतिहासिक अनुभव ने यह साबित कर दिया है कि तीव्र सामाजिक परिवर्तन लगातार बढ़ते आपसी संघर्षों को जन्म देता है, क्योंकि अक्सर ऐसे परिवर्तन असमान होते हैं और विभिन्न सामाजिक समूहों, क्षेत्रों और राज्यों को असमान रूप से प्रभावित करते हैं। यहाँ तक कि भाषा समस्या भी आने वाले सभी समयों के लिए नहीं सुलझाई जा सकी है और भविष्य में भाषाई अहंकारवाद एक गम्भीर खतरे के रूप में सिर उठाने की क्षमता रखता है।

भारतीय नेतृत्व ने यह बात साफ कर दी थी कि वे किसी भी प्रकार के अलगाववादी आन्दोलन को बर्दाश्त नहीं करेंगे और देश के किसी हिस्से को अलग नहीं होने देंगे। आवश्यक होने पर यथोचित शक्ति के साथ ऐसे आन्दोलनों को कुचल डालेंगे। उसी समय यह भी कहा गया कि कोई भी उचित माँग, जो संविधान के मूल ढाँचे के अन्दर और विशाल आबादी द्वारा समर्थित हो, जिसके समर्थन की पुष्टि चुनावों और अहिंसक आन्दोलनों द्वारा की जा चुकी हों, उस पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जाएगा और जहाँ तक सम्भव हो उसे मान लिया जाएगा। भारतीय नेतृत्व द्वारा यह महसूस किया जाना भी महत्वपूर्ण है कि भारतीय एकता को प्रोत्साहित ओर सुरक्षित रखने के लिए मजबूत और शक्तिशाली राज्य एवं केन्द्रीय सरकार आवश्यक है। एक शक्तिशाली राज्य ही राज्यों का भाषाई आधार पर पुनर्गठन कर सकता था, जबकि राज्यों में शामिल किये जाने वाले इलाकों के ऊपर भारी विवाद चल रहा था। सिर्फ मजबूत राष्ट्रीय सरकार ही भारत की सांस्कृतिक बहुलता को बनाए रख सकती है और सांस्कृतिक, जनजातीय, भाषायी एवं अन्य अल्पसंख्यक तथा आन्तरिक प्रवासियों को राज्य के वर्चस्वकारी सामाजिक समूह तथा राज्य सरकारों के भेदभावपूर्ण व्यवहार से बचा सकती है, साथ ही भारतीय नागरिकों में देश के विभिन्न भागों में आने–जाने की गारण्टी दे सकती है।

एक मजबूत राष्ट्रीय सरकार ही क्षेत्रीय विषमताओं को दूर करने के लिए आर्थिक एवं अन्य कदम उठा सकती है, खासकर जबकि इनमें केन्द्रीय संसाधनों और निवेशों के आवंटन, उद्योगों के स्थान निर्धारण तथा निजी क्षेत्रों द्वारा निवेश के लिए निर्देशों और प्रलोभनों का प्रश्न जुड़ा हुआ हो। पिछड़े राज्यों में आर्थिक विकास की दर तीव्र करने, समृद्ध राज्यों से गरीब राज्यों को संसाधनों के हस्तान्तरण और श्रमिकों की बहुलता तथा गरीब इलाकों से श्रमिकों के अभाव वाले क्षेत्र की तरफ प्रवाह को प्रोत्साहित करना शक्तिशाली केन्द्रीय हस्तक्षेप के बिना सम्भव नहीं है। जनजातियों को समाप्त होने से बचाने, समाज के अन्य तबकों द्वारा उनको शोषण से बचाने तथा अपने तरीकों और रफ्तार से विकसित होने देने के लिए भी मजबूत राष्ट्रीय सरकार अनिवार्य है। सिर्फ शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार ही युद्ध तत्पर राज्यों के बीच मध्यस्थता के योग्य हो सकती है।

स्वाधीनोत्तर संविधान ने प्रत्येक वयस्क भारतीय की राजनीतिक समानता तथा मौलिक अधिकारों की गारण्टी की बुनियाद पर गतिशील संघात्मक संसदीय जनतन्त्र की स्थापना की शुरूआत की, लेकिन विगत दिनों में हुए आर्थिक–राजनीतिक परिवर्तन से इस स्वरूप की कई कमियाँ सामने आ चुकी हैं। अतः भारतीय गणतन्त्र की शासन व्यवस्था को स्वाधीनता आन्दोलन के संकल्पों तथा एक प्रगतिशील जनतन्त्र के सिद्धान्तों के अनुकूल बनाने के लिए पुनर्गठित करना आवश्यक हो गया है, क्योंकि क्षेत्रीय विफलता तथा सांस्कृतिक अस्मिता की संयुक्त चेतना से भारतीय राष्ट्र की अब तक की केन्द्रोन्मुख परिभाषा को सीमांत प्रदेशों, तटीय प्रदेशों तथा मध्य देश के क्षेत्रों में आत्मसात् नहीं किया जा सकता है। अतः केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को त्यागते हुए एक विकेन्द्रीकृत राज्य संरचना की तरफ कदम उठाने की जरूरत है।

वर्तमान में उन अनेक क्षेत्रों में जो पुनर्गठन के वक्त अपने मूल राज्यों से जुड़े थे, वहाँ अलग राज्य की माँग हो रही है। दरअसल देखा जाए तो इसके कारण, राज्यों के निर्माण और उसकी विकास नीति के गर्भ में मौजूद रहे हैं। 1956 में भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन कर इसे समस्या का इतिश्री मान लिया गया। बाद में यह भाषाई पुनर्गठन पर्याप्त साबित नहीं हुआ और इसकी सीमाएं उजागर होने लगीं। क्षेत्रीय विषमता से प्रभावित समूहों का असन्तोष और उप–भाषा (बोली) का प्रभाव उजागर होने लगा। इसका मुख्य कारण अंग्रेजी राज के बाद भी उसी शैली पर देश में शासन एवं विकास की प्रक्रिया को स्थापित करना रहा है।

असन्तोष का दूसरा कारण अदूरदर्शितापूर्वक गठित राज्यों में आन्तरिक समरसता का अभाव है, क्योंकि इनमें स्थानीय अस्मिता और परम्परा अलग–अलग प्रकार की रही है। यही कारण है कि भाषायी आधार पर राज्यों का गठन हो जाने के बावजूद विदर्भ, तेलंगाना और बुन्देलखण्ड की जनता मुम्बई, हैदराबाद और

लखनऊ/भोपाल से मानसिक तौर पर जुड़ नहीं सकी। यही उप–सांस्कृतिक भिन्नता अति लघु राज्य बन जाने के बाद भी पूर्वोत्तर के राज्यों में है। यहाँ भिन्नता छोटे कबीलों के स्तर पर है, यहाँ सात राज्य बन जाने के बावजूद इन लघु इकाइयों के अन्दर और भी मौजूद उप–धाराएँ, जो वर्तमान केन्द्रीकृत शासन की नीति में अपने आपको समायोजित नहीं कर सकी है, में और छोटे स्तर के क्षेत्रीय हित समूह समय पाकर अपने को अलग करने का आन्दोलन चलाते रहे हैं।

इसके साथ ही आकार एवं जनसंख्या की दृष्टि से भी देखा जाए, तो छोटे और बड़े राज्यों में गहरी असमानता है। क्षेत्रफल की दृष्टि से देश के तीन सबसे छोटे राज्य गोआ, सिक्किम और त्रिपुरा हैं। जनसंख्या की दृष्टि से सबसे कम आबादी वाले राज्य सिक्किम, मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश हैं, दूसरी ओर क्षेत्रफल की दृष्टि से बड़े आकार वाले तीन राज्य राजस्थान, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र हैं तथा जनसंख्या की दृष्टि से तीन सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र और पश्चिम बंगाल हैं।

स्पष्ट हे कि इस बहुकोणीय समस्या से निबटने के लिए ऐसी नीति अपनाए जाने की आवश्यकता है, जो लोकतन्त्र और संघीय सरकार को मजबूत करने के साथ समस्या का स्थायी निराकरण प्रदान करे तथा हर क्षेत्र के असन्तोष को दूर कर सके। इसके लिए एक बहुआयामी प्रक्रिया अपनाने की जरूरत है–तृणमूल स्तर पर सत्ता के हस्तान्तरण से विकास की दिशा बदलना, केन्द्र–राज्य सम्बन्धों की व्यापक दृष्टिकोण से समीक्षा करना तथा आवश्यकता पड़ने पर राज्यों का विभाजन कर नए राज्यों के गठन पर पुनर्विचार करना शामिल है।

बदलती हुई परिस्थितियों में यह महसूस किया जा रहा है कि विकास के लिए स्थानीय संस्थाओं को सशक्तीकरण कर प्रत्यक्ष लोकतन्त्र स्थापित किया जाए और यदि आवश्यक हो, तो बड़े राज्यों का आकार छोटा किया जाए। अलग राज्य माँगना और देश से अलग होने की माँग में जमीन आसमान का अन्तर है तेलंगाना, विदर्भ, बुन्देलखण्ड, पूर्वांचल, उदयांचल, हरित प्रदेश, लद्दाख और इन्हीं जैसे कुछ और नामों से चल रहे आन्दोलनों की पृष्ठभूमि में विद्यमान तथ्यों को गहराई से समझने की आवश्यकता है। देश के संविधान के तहत मौजूद राज्यों की संख्या बढ़ाई भी जा सकती है। देश के संविधान के प्रति सम्मान के साथ अलग राज्यों की उचित माँग की जाती है तो राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक दलों द्वारा प्रथम दृष्टया इन्हें विघटन, विखण्डन और अलगाव के रूप में परिभाषित नहीं करना चाहिये। इन पार्टियों को समझना चाहिये कि प्रवाह में बने रहने मात्र का नाम अलगाव अथवा विखण्डन नहीं होता। इन आन्दोलनों को अफसरशाही एवं भ्रष्टाचार के खिलाफ स्थानीय जनता की अभिव्यक्ति के अलावा और किसी रूप में नहीं देखा जाना चाहिये।

हमारी राष्ट्र निर्माण प्रक्रिया का केन्द्रोभिमुख विकास पर्याप्त मात्रा में हो चुका है, जिसे अब विकेन्द्रीकरण की दिशा में परिवर्तन करना चाहिए। इसके लिए राजनीतिक सत्ता तथा आर्थिक शक्ति को राज्यों के जरिये गाँवों एवं जिले तक पहुँचाना होगा। लोगों की सक्रियता, हिस्सेदारी और परस्पर सहयोग का माहौल बनाने के लिए कोई और रास्ता नहीं हो सकता। इससे विमुख होना भारतीय राष्ट्रीयता को विखण्डित करने के लिए जरूरी उदासीनता, अलगाव और परस्पर तनाव को बढ़ावा देना ही सिद्ध हो रहा है। देश में अनेक वर्तमान राज्य बहुत बड़े हैं और इनका समुचित प्रबन्ध नहीं हो पाया है। वे अपनी जातीय–सांस्कृतिक समुदायों की आकांक्षाएं पूरी नहीं कर पाए हैं। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक जैसे राज्यों में तो यह बात खासतौर से लागू होती है। इनका बेहतर प्रबन्ध विकेन्द्रीकरण से ही हो सकता है। ऐतिहासिक कारणों से इन क्षेत्रों का असमान विकास हुआ है। आजादी के बाद ये असन्तुलन बरकरार रहे हैं और कहीं–कहीं तो बढ़े भी हैं। इनकी वजह है गलत आर्थिक नीतियाँ और विघटनकारी मुद्दों का नाजायज फायदा उठाने की राजनीतिक दलों की प्रवृत्ति। इन सभी कारणों से देशभर में अनेक आन्दोलन पनपे हैं।

मुख्य बात है कि राज्यों के पुनर्गठन मात्र से नए राज्यों की स्वायत्तता बढ़ नहीं सकेगी और निश्चित रूप से, यह तो नहीं कहा जा सकता कि बिना ज्यादा स्वायत्तता के छोटे राज्य बनाने की खास सार्थकता होगी। पूर्वोत्तर राज्य इस बात के स्पष्ट उदाहरण हैं फिर भी तृणमूल स्तर से प्रत्यक्ष जनतान्त्रिक व्यवस्था के सुदृढ़ीकरण तथा संविधान की व्यवस्था में रहते हुए विकास की आवश्यकतानुसार छोटे राज्यों के निर्माण से कई लाभ की आशा की जा सकती है, यथा–विकास की क्षेत्रीय जरूरतों पर आवश्यकतानुरूप तुरन्त निर्णय लेकर लागू उन्हें किया जा सकता है। लोगों को अपना विकास स्वयं करने का अधिकार प्राप्त होने से स्थानीय सम्भ्रान्त जन, अपने विकास की राजनीति में ज्यादा महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगे; ऐसा करने से प्रशासन बेहतर हो सकेगा; प्रथमतः हमें राज्यों की ज्यादा स्वायत्तता पर बल देना चाहिये। वास्तव में स्वायत्तता तो मात्र राज्य तक भी सीमित नहीं रहनी चाहिये। इसे आगे बढ़ाकर जिला परिषदों, प्रखण्ड पंचायतों और ग्राम सभाओं के रूप में देखा जाना चाहिये।

स्पष्ट है कि ऐसी प्रत्येक संरचना के आगे व्यापक और

सुनियोजित स्वायत्त अधिकार होंगे। स्पष्ट रूप से निर्धारित ऐसे अधिकार न होने पर यह खतरा बना रहेगा कि बड़ी राजनीतिक संरचनायें, कुछ समय बाद, छोटी संरचना के अधिकार हड़प लें। आजादी के बाद केन्द्र–राज्य तथा राज्य–स्थानीय निकाय सम्बन्धों के विकास में यह प्रवृत्ति चिन्ताजनक रूप से उभरी है। अतः भविष्य में पुनर्गठन के किसी भी प्रयास में ऐसी कारगर संवैधानिक व्यवस्था होनी चाहिये, जिससे छोटी राजनीतिक संस्था शिखर संस्था से जारी विकास राशि की वाहक मात्र बनकर न रह जाए। हर छोटी संस्था के पास पर्याप्त वित्तीय संसाधन होना चाहिये, ताकि वह नई व्यवस्था में मिली स्वायत्त शक्तियों का पूरी तरह उपभोग कर सके।

क्षेत्रीय आधार पर स्वदेशी समाज की एकता कायम करना ही शायद सबसे अधिक सच्चा और व्यावहारिक लक्ष्य है। स्वायत्तता के ताने–बाने में गूँथकर इस तरह की एकता निःसंदेह ही कायम की जा सकती है। इस व्यवहारिकता के मायने अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग हो सकते हैं। उदाहरण स्वरूप राजनीतिक स्वायत्तता के मायने पंचायतों को विधायी अधिकार सौंपे जाने से लेकर नए राज्य की स्थापना तक भी हो सकते हैं। इसी तरह आर्थिक स्वायत्तता का अर्थ पंचायतों को राजस्व वसूली अधिकार देने या मौजूदा राज्यों को अधिक वित्तीय स्वायत्तता प्रदान करना भी हो सकता है। यह भी सम्भव है कि स्वायत्तता के मायने इनमें से कुछ भी न हों या कुछ ऐसा हो जो इन सबसे अलग हों, जिनकी अब तक कल्पना भी न की गई हो। स्वायत्तता का अर्थ व्यक्तियों या क्षेत्रों द्वारा अपने–अपने जीवन को सँवारने के वास्ते अधिकार तथा आजादी को भोगने से है। इसमें सभी कुछ अर्थात् विज्ञान, धर्म, राजनीति, प्रौद्योगिकी, अर्थव्यवस्था इत्यादि शामिल हैं। स्वायत्तता तथा अन्य समकालीन आदर्शों एवं विचारधाराओं में सबसे प्रमुख अन्तर यह है कि स्वायत्तता की अवधारणा वस्तुतः ताकत के इस्तेमाल को कम करने और अन्त में इसे खत्म करने का प्रयास करती है।

राजनीति का क्षेत्रीयकरण निश्चित रूप से इस बात का संकेतक है कि एकता की अवधारणा को आवश्यक रूप से पुनः परिभाषित किया जाना चाहिये। राजनीतिक एकता को नया आधार प्रदान करने के लिए क्षेत्रीय अधिकारों को भी दोबारा परिभाषित किया जाना चाहिये। सच तो यह है कि राष्ट्र के सम्पूर्ण जीवन के नए सिरे से निर्माण की आवश्यकता है। इस कार्य के लिए निश्चित रूप से दूरदर्शी विचारवान और विवेकशील व्यक्तियों के समूह की आवश्यकता है, जो देश के राज्यों का कारगर पुनर्गठन तय कर सके। अध्ययन करके यह तय किया जा सकता है कि किन राज्यों के विभाजन की वास्तविक आवश्यकता है। ऐसा करते समय इस तथ्य पर ईमानदारी से विचार किया जाना चाहिये कि छोटे राज्यों का संचालन ठीक–ठाक ढंग से चलाने की हम क्या नई व्यवस्था करेंगे ?

पूर्वोत्तर के लघु राज्यों में जहाँ कबीलाई स्तर पर अत्यन्त छोटी अस्मिताएं विद्यमान हैं, पूर्ण स्वायत्तशाषी निकायों का गठन करके वहाँ के लोगों को अपने क्षेत्र के विकास के बारे में फैसला लेने का अधिकार दिया जाना चाहिये। यदि इस प्रकार की अस्मिताएं अन्य राज्यों में मौजूद हों, तो स्वायत्तशाषी निकायों की स्थापना वहाँ भी होनी चाहिए एवं संविधान में वर्णित प्रावधानों (इन कबीलाई स्तर पर उनकी संस्कृति से सम्बन्धित अनुसूची पाँच एवं छः) को पूर्ण ईमानदारी के साथ लागू किया जाना चाहिए। इसके साथ ही इस सन्दर्भ में सरकारी नीतियों के लिए कुछ व्यापक मार्गदर्शक सिद्धान्तों की स्थापना की जानी चाहिये।

जो लोग छोटे राज्य के विचार का विरोध करते हैं वे आमतौर पर चार तर्क देते हैं राज्यों की संख्या बढ़ने से देश के विखण्डन की आशंका बढ़ेगी, यदि छोटे राज्य होंगे तो केन्द्र सर्वशक्तिमान और तानाशाह हो सकता है। अधिक राज्यों के होने का मतलब होगा अधिक अन्तर्राज्यीय विवादों की उत्पत्ति और प्रशासनिक खर्चों में वृद्धि होने से आम जनता पर ज्यादा बोझ।

भावना से ऊपर उठकर इन तर्कों का विश्लेषण करें तो पता लगेगा कि ये तर्क तथ्यों पर आधारित नहीं जान पड़ते। पुराना असम–नेफा आज सात राज्यों में विभाजित है पर उस पर कोई बोझ नहीं बढ़ा है। और देश के विखण्डन की आशा भी निर्मूल ही साबित हुई है। यह तर्क भी समझ से परे लगता है कि अगर वर्तमान 28 राज्यों के बदले देश में 40 या 50 राज्य हों तो केन्द्र खतरनाक रूप से शक्तिशाली हो जाएगा। सच तो यह है कि छोटे राज्यों में सत्ता का अधिक विकेन्द्रीकरण हो सकेगा, अधिक लोकतन्त्र होगा और जनता की भागीदारी से प्रशासन पर अंकुश भी लगा रहेगा।

जहाँ तक अन्तर्राज्यीय विवादों का सवाल है, यह अतिरंजित भय है। अर्थात् कम राज्यों के होने से अन्तर्राज्यीय विवाद नहीं होंगे। यदि इस दृष्टि से देखा जाए तो कावेरी जल–विवाद को सुलझाने का एकमात्र रास्ता कर्नाटक और तमिलनाडु का विलय करने से होगा। ऐसा समाधान सम्भवतया किसी को भी आज की परिस्थितियों में स्वीकार नहीं होगा। वस्तुतः अन्तर्राज्यीय विवादों को निपटाने के लिए जरूरत है संविधान प्रदत्त अन्तर्राज्यीय परिषद् को अधिक सक्रिय और शक्तिशाली बनाने की, ताकि यह परिषद् ऐसे विवादों को हल करने में सक्षम हों।

जहाँ तक प्रशासनिक खर्चों की बात है, उनमें वृद्धि स्वाभाविक है। यदि पुनर्गठन के साथ–साथ दीर्घगामी सुधार कार्यक्रम लागू किये जायें तो इसकी प्रतिपूर्ति की जा सकती है। खर्च

को कम करने के लिए दीर्घगामी सुधार योजना के तहत् मन्त्रिमण्डल के आकार को छोटा रखने के प्रावधान को पुनः संशोधन करके अधिक प्रभावी बनाया जाना चाहिये। विधान परिषद जैसी सफेद हाथी संस्थाओं तथा राज्यपाल के पद को वर्तमान स्वरूप में भी समाप्त कर देना चाहिये, क्योंकि राज्यपाल का पद एक अलंकृत पद मात्र है और इसका दुरुपयोग भी तो हो रहा है। प्रत्येक राज्य में एक राज्यपाल की अपेक्षा उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी, पश्चिमी क्षेत्रीय परिषदें गठित की जा सकती हैं। प्रत्येक परिषद् का प्रमुख राज्यपाल को बनाया जा सकता है। इससे राजभवनों पर होने वाले खर्चों में कमी की जा सकती है। यदि मात्र ये तीन सुधार लागू किये जाते हैं तो इनसे होने वाली बचत 20 नए राज्यों के बनने वाले खर्चे निकाल सकती है।

फिर छोटे राज्य बनने से बढ़ने वाले खर्चों की अपेक्षा उससे होने वाले लाभ कहीं अधिक हैं। छोटे राज्य होने से लोगों तक प्रशासन की पहुँच सुविधाजनक ढ़ंग से होती है तथा सरकार द्वारा समय–समय पर जारी किये जाने वाले नियमों व कानूनों को आसानी से लागू किया जा सकता है। वैसे भी यदि किसी क्षेत्र में अपने विकास, उन्नति व प्रगति की अपार उत्कंठा है, तो उसे इसका अवसर मिलना भी चाहिये। किसी भी स्थान विशेष को स्वायत्त परिषद् बनाने के बजाय उतने क्षेत्र विशेष को स्वायत्त राज्य का दर्जा देने में कोई हानि नहीं है। देश की आजादी के बाद विभिन्न रियासतों के भारतीय संघ में विलीन होने के फलस्वरूप जिस प्रशासनिक सुविधा को ध्यान में रखकर राज्यों के पुनर्गठन का विचार किया गया था, उसी नीयत से राज्यों को व्यवस्थित करने और तार्किक परिणति तक पहुँचाने के लिए भाषा, क्षेत्रीय अस्मिता, स्वायत्तता, क्षेत्रीय असन्तुलन, जन इच्छा, विकास की स्थिति, जनसंख्या, क्षेत्रफल, प्रशासकीय सुविधा आदि को ध्यान में रखकर तथा इन बिन्दुओं पर व्यापक परिप्रेक्ष्य में उदारता से विचार कर अपनी अनुसंसा देने के लिए दूसरे राज्य पुनर्गठन आयोग को नियुक्त किया जाना चाहिये। तथापि, किसी भी प्रशासनिक इकाई के गठन के तीन मुख्य आधार होने चाहिये प्रशासनिक सुविधा, आर्थिक सक्षमता और भौगोलिक परिस्थितियाँ। इसके अतिरिक्त यदि किसी भी अन्य मुद्दे को इसका मुख्य आधार बनाया जाता है, तो वह पुनर्गठन नहीं विभाजन होगा, जो अब तक होता रहा है और जिसकी भूख बढ़ती जा रही है। अतः इस विभाजन को रोकने के लिए पुनर्गठन जरूरी है।

भौगोलिक, प्रशासनिक तथा विकास की दृष्टि से किसी क्षेत्र का स्वतन्त्र गठन आवश्यक हो, तो इसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। जहाँ पृथक् राज्य की माँग उचित हो वहाँ उनकी स्थापना प्रशासनिक कार्यकुशलता, क्षेत्रीय, सांस्कृतिक और आर्थिक समरूपता के आधार पर करके लगभग सम–क्षेत्रीय आकार के राज्यों का गठन हो सकता है। इससे जहाँ उच्च सदन (राज्य सभा) में लगभग सम प्रतिनिधित्व होने के कारण संघीय भावना को बल मिलेगा, वहीं लोगों की उचित आकांक्षाओं की पूर्ति कर उग्र क्षेत्रीयतावाद के दुष्परिणामों से भी बचा जा सकेगा। इससे देश के सभी क्षेत्रों को विकास का समुचित अवसर उपलब्ध हो सकेगा। इसके साथ ही भविष्य में क्षेत्रीयतावाद की भावना का प्रसार न हो पाए इसके लिए विचारधारा के स्तर पर संघर्ष की जरूरत है। अतः विचारधारा के स्तर पर क्षेत्रीयतावाद की भावना को कम करने के लिए निम्नलिखित उपायों का सहारा लिया जाना चाहिए –

स्थानीय संस्थाओं को सशक्तीकृत किया जाए। इसके लिए पंचायती–तन्त्र की तुलना में ग्राम सभाओं को अधिक व्यापक अधिकारों से शक्ति–सम्पन्न कर प्रत्येक स्थानीय व्यक्ति को अपने विकास का अधिकार दिया जाना चाहिये। स्थानीय स्वशासी सरकारों को सत्ता का वास्तविक हस्तान्तरण किया जाना चाहिये। इसके लिए प्रान्तों तथा त्रि–स्तरीय उप–प्रान्तीय सरकारों के मध्य समस्त राजनीतिक एवं आर्थिक सत्ता का वैसा ही विधिसम्मत विभाजन किया जाना चाहिए जैसा सुस्पष्ट विभाजन केन्द्र एवं राज्यों के मध्य है। सरकार को अपनी आर्थिक नीतियों में इस प्रकार परिवर्तन करना चाहिए कि सभी क्षेत्रों का विकास समरूप ढंग से हो सके। सरकार का यह कर्तव्य हे कि देश के सभी क्षेत्रों को चाहे वह छोटे हों अथवा बड़े, उनके सामाजिक, आर्थिक विकास के लिए समान योजना एवं समान सहायता के सिद्धान्त को अपनाएं, ताकि किसी भी क्षेत्र के व्यक्तियों में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टिकोण से हीनता की भावना पैदा न हो।

राज्य सरकारों व योजना आयोग को आर्थिक क्षेत्र में कुछ क्षेत्रों या राज्यों द्वारा किये गए खराब प्रदर्शन की जाँच करनी चाहिए और उचित निराकरण के लिए सुझाव देना चाहिए। इसके लिए योजना आयोग द्वारा स्पष्ट मानदण्ड निर्धारित किये जाने चाहिये, जिन्हें सारे देश में समानता से अनुपयुक्त किया जा सके। आर्थिक असन्तुलनों को दूर करने के लिए उन राज्यों के प्रशासनिक–तन्त्र को सुदृढ़ किया जाए जिनमें ऐसे पिछड़े क्षेत्र हों। कार्मिक व प्रशासनिक सुधारों के विभाग को ऐसे राज्यों के संगठनात्मक संरचनाओं की दुर्बलताओं को विशेष ध्यान रखना चाहिये और उसके सुधार हेतु मूर्त सुझाव देना चाहिये।

पिछड़े क्षेत्रों के आर्थिक सुधार हेतु क्षेत्र विशेष के पर्यावरण एवं संसाधनों और उनकी आवश्यकताओं के आधार पर विशेष परियोजनाएं और कार्यक्रम बनाए जाने चाहिए, न कि पूरे देश के लिए एक योजना। अल्पसंख्यकों के ऊपर जहाँ विशेष ध्यान देना

चाहिए वहीं उन्हें विशेष सुविधाएं नहीं प्रदान की जानी चाहिए, बल्कि समान सुविधाएं प्राप्त होनी चाहिये। क्योंकि सरकार जब अल्पसंख्यकों को आवश्यकता से अधिक सुविधाएं प्रदान करना प्रारम्भ कर देती है, तो अन्य जातियों के अन्दर स्वतः तनाव की भावना उत्पन्न होने लगती है।

जातिवाद के आधार पर चल रही संस्थाओं में प्रतिबन्ध लगा दिया जाना चाहिये। इस तरह के संगठनों पर प्रतिबन्ध लगाने से सक्रिय संगठन समाप्त हो जाएंगे जो जातिवाद का विष समाज में फैलाते ही नहीं हैं, वरन् विभिन्न जातीय संगठनों में लड़ाई–झगड़े भी कराते हैं। व्यक्तियों में बौद्धिक दृष्टिकोण का विकास करें जिससे कि विभिन्न समूहों के मध्य एकता स्थापित हो सके, क्योंकि संवेग अधिक टिकाऊ नहीं होते। इसलिए बौद्धिक विकास का महत्व संवेगात्मक एकता से कहीं अधिक है।

विभिन्न क्षेत्रों/राज्यों के मध्य एकता स्थापित करने के लिए सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आदान–प्रदान किया जाना चाहिये। इससे परस्पर प्रेम की भावना बढ़ेगी और क्षेत्रीय कटुता कम होगी। सरकार को चाहिए कि वह सम्पूर्ण देश के नागरिकों के लिए एक सामान्य रहन–सहन का स्तर निश्चित करे और उसी को ध्यान में रखकर प्रत्येक क्षेत्र को विकसित करने का प्रयत्न करें, जिससे वहाँ का व्यक्ति उस निश्चित रहन–सहन के स्तर तक पहुँच सके। इससे देश के सभी नागरिकों में समानता की भावना का प्रसार होगा। उत्तर–पूर्वी राज्यों में जो विदेशी लोग अवैध ढंग से घुस रहे हैं, उन्हें रोकने हेतु प्रभावी कार्यवाही की जानी चाहिए और जो लोग पहले ही अन्दर आ चुके हैं, उनकी पहचान करनी चाहिए तथा उन्हें जब तक वैध रूप से भारत की नागरिकता प्रदान नहीं कर दी जाती तब तक मतदाता सूची में से उनके नाम हटा दिये जाने चाहिये। साथ ही जिन विदेशियों को वैध नागरिकता नहीं दी जानी है, उन्हें देश से निकाल देना चाहिये।

हिंसक गतिविधियों के केन्द्र बने आर्थिक व सामाजिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों के विकास को गतिशील बनाने हेतु विशेष कदम उठाए जाने चाहिये। उग्रवादी प्रवृत्तियों पर व्यवस्थित रूप से रोक लगाई जानी चाहिए तथा सभी उपलब्ध संचार–साधनों द्वारा एकता पर विशेष बल दिया जाना चाहिये। बेरोजगारी की समस्या, विशेषकर पढ़े–लिखे लोगों की बेरोजगारी की समस्या का समाधान तुरन्त किया जाना चाहिए तथा निचले स्तर की नौकरियों के लिए जहाँ तक सम्भव हो स्थानीय लोगों को ही लिया जाना चाहिए, क्योंकि 'भूमिपुत्र सिद्धान्त' का आन्दोलन चलाने के लिए स्वार्थी राजनीतिज्ञ तथा साम्प्रदायिक तत्व साधारणतया विद्यार्थियों का ही प्रयोग करते हैं। उग्र क्षेत्रीयवाद की भावना के पोषक, राजनीतिक दलों पर अंकुश लगाया जाना चाहिए।

क्षेत्रीयतावाद के जन्म के कारण निश्चित ही महत्वपूर्ण है, किन्तु क्षेत्रीयतावाद का महत्व केवल विघटनकारी शक्ति के रूप में ही नहीं है। क्षेत्रीयतावाद यदि संतुलित विकास के संदर्भ में है तो यह न्यायोचित है। क्षेत्रीयतावाद का सकारात्मक रूप राष्ट्रीय एकीकरण का विरोधी नहीं है। क्षेत्रीय स्वायत्तता क्षेत्र के संतुलित एवं सम्पूर्ण विकास के लिए सहयोगी तथा आवश्यक है। ऐसी क्षेत्रीय स्वायत्तता को सकारात्मक क्षेत्रीयतावाद कह सकते हैं। इसका विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। सकारात्मक क्षेत्रीयतावाद या क्षेत्रीय स्वायत्तता की भावना क्षेत्र के विकास पर जोर देती है और राष्ट्रीय एकीकरण पूरे राष्ट्र के विकास पर जोर देता है। यदि हम क्षेत्रीयतावाद और राष्ट्रीय एकीकरण के प्रतिद्वन्द्वी दावों का समाधान चाहते हैं, तो देश की राजनीतिक प्रणाली को संघीय और प्रजातांत्रिक ही बना रहना चाहिये। यह कहना असत्य है कि क्षेत्रीयतावाद के सभी रूप देश की एकता को भंग करते हैं। वस्तुतः राष्ट्रीय एकीकरण और सकारात्मक क्षेत्रीयतावाद दोनों परस्पर पूरक हैं और उनका एक साथ अस्तित्व बना रह सकता है। इसलिए राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय हितों की संतुलित वृद्धि का प्रयास किया जाना चाहिये।

इसे देश विरोधी मानकर राज्य शक्ति द्वारा दमित किये जाने के स्थान पर इसके द्वारा एकता की खोज का समर्थन किया जाना चाहिए तथा इसमें अन्तर्निहित लोगों की महत्वाकांक्षाओं का आदर किया जाना चाहिए और इसे 'विभिन्नता में एकता' के रूप में देखा जाना चाहिये। देश के राजनीतिक विकास में क्षेत्रीय स्वायत्तता की भावना को रोग न समझ कर उसे रोग का निदान समझना चाहिये। स्वायत्तता की भावना इस दृष्टि से भी उपयोगी है कि इससे क्षेत्र के अधिकाधिक लोगों को निर्णय–निर्माण प्रक्रिया में सहभागिता करने का अवसर मिलता है। इसके लिए ग्राम सभाओं को अधिक व्यापक अधिकारों से शक्ति सम्पन्न कर आम व्यक्ति के सूचना के अधिकार को सुनिश्चित करना होगा। इस प्रकार क्षेत्रीय स्वायत्तता अति केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति पर भी रोक लगाता है और इससे प्रशासन में कुशलता आती है।

क्षेत्रीय स्वायत्तता की भावना राष्ट्रीय एकात्मकता का विघटन नहीं करती, बल्कि राष्ट्रीय एकात्मकता के लिए यह महत्वपूर्ण शर्त है कि राष्ट्रवाद विभिन्न प्रकार की क्षेत्रीय उप–राष्ट्रीयताओं पर अपना नियंत्रण रख सके। आज का युग सहकारी संघवाद का युग है जो अधिकतम क्षेत्रीय स्वायत्तता पर आधारित होता है। यह स्वाभाविक हे कि क्षेत्रीय समुदाय जो अपनी विशिष्ट संस्कृति के प्रति सचेत है, उन्हें संघीय सरकार के साथ

अधिक समान साझेदारी के आधार पर व्यवहार करना चाहिये। इससे राष्ट्र की केन्द्रित प्रवृत्तियाँ कम होंगी और सत्ता केन्द्र से प्रदेशों की तरफ हस्तान्तरित हो जायेगी। क्षेत्रीयता की भावना विभिन्न वर्ग के लोगों की सामूहिक इच्छा की अभिव्यक्ति है और उनकी आवश्यकताओं व महत्वाकांक्षाओं को व्यक्त करती है। इस दृष्टि से क्षेत्रीय स्वायत्तता की भावना सत्ता के अति केन्द्रीयकरण के दोषों को दूर करती है। किसी भी रूप में देखा जाए तो स्थानीय स्तर पर स्वायत्तता को सुनिश्चित किये बिना विकास की क्षेत्रीय विषमताओं के कारण उपज रहे असन्तोष को दूर नहीं किया जा सकता। इसलिए भारत जैसे विशाल संघ में जिसकी संस्कृति के मूल में सदैव ही स्वशासन रहा हो, वहाँ स्थानीय स्वायत्तता प्रदान करना हमारी राष्ट्रीय प्राथमिकता होनी चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, योगेन्द्र, भारत में सामाजिक परिवर्तन, जवाहर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2004, P–114।
2. इरानी, सी0आर0, द क्म्यूनिब्ट चेलेंज, लेमेण्ट, बम्बई, 2005, P–7।
3. तिवारी, श्याम कुमार, झारखण्ड, शिवाँगन पब्लिकेशन, राँची, 2003, P–570.571।
4. लोहिया, राम मनोहर, सप्तक्रान्ति, लोहिया विचार मैंच, इलाहाबाद, 1998, P–75।
5. अग्रवाल पुरूषोत्तम, संस्कृति इर्चस्व और प्रतिरोध, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995।
6. चाँद, एस0एम0, भारतीय संस्कृति का विकास, प्रिटबैल, जयपुर, 1992।
7. नेगी, एस0एस0 हिमाचल प्रदेश द लैन्ड एण्ड दि पीपुल, नई दिल्ली, 1990।
8. मंजूयदार अर्नास कुमार, सिंह भँवर, रजिनेलिज्म इन इन्डियन पालीटेक्स, राधा पाब्लिकेशन, 1997।
9. दत्ता, प्रभाव कुमार, रजिनेलिज्य ऑफ इन्डियन पोलीटिक्स, स्टार्लिग पाब्लिशर, 1993।
10. भटनागर सल्यवान, प्रदीप कुमार, रजिनल पोलिटिकल पार्टीस इन इन्डिया, एस0एस0 पब्लिकेशन, 1998।
11. इल्हन, ओ0पी0, एनसाइक्लोपीडिया ऑफ पालीटिकल पार्टीय, अनमोल पाब्लिकेशन, 1997 डेबलपमेन्ट, एसीएच पब्लिशर्स 2010।
12. ढाल, प्रवणि कुमार इन्टिग्रल एजूकेशन दया पब्लिासिंकग हाउस, 2010।
13. राजा राम , नेशनल इन्टिग्रेशन–; इटस मीनिंग एण्ड टीलिवेन्स, नवचेतना प्रकाशन, 1970।
14. उमेश, जी0, आई एजूकेशन एण्ड नेशनल ढूँटीग्रेसन, साउथ एशिमन पब्लिशर्स, 1993।

नरेन्द्र सिंह मेहता
एम. बी. पी. जी महाविद्यालय हल्द्वानी,
नैनीताल, उत्तराखंड
डॉ0 गिरिराज सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान
राजकीय महाविद्यालय मरगुबपुर
हरिद्वार उत्तराखंड

57

कबीरः सामाजिक दार्शनिक परिप्रेक्ष्य

डॉ0 आशा रानी

सारांश

संत शिरोमणि कबीरदास मध्यकालीन साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्र रहे हैं। उनकी सामाजिक दार्शनिक विचारधारा के अंतर्गत उनके समय के सामाजिक ताने–बाने का साक्षात दर्शन समाया है। दूसरे शब्दों में, यह मानव समाज का दार्शनिक दृष्टिकोण से अध्ययन है। कबीरदास अपने युग के अग्रदूत रहे है। उन्होंने अपने युगीन हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य के दंश को स्वयं झेला है, इसलिए उनकी दार्शनिक विचारधारा में भी उनका समाज कल्याण दृष्टिकोण प्रखर हो उठा है। मध्यकालीन समाज में साम्प्रदायिकता का भाव अपनी पराकाश्ठा पर था। ऐसे में नवजागरण के दूत के रूप में कबीरदास ने अपनी दार्शनिक विचाराधारा के माध्यम से ब्रहम, जीवात्मा, जगत, माया आदि को समाज सुधारवादी दृष्टिकोण के रूप में भारतीय जनता के सामने उपस्थिति किया। कबीर का स्वर अहिंसक क्रांतिकारी रहा। इसी विषय पर इस शोधपत्र में चर्चा की गई है।

मुख्य शब्द (संकेत शब्द) – समाज–दर्शन, सामाजिक चेतना, अहिंसक क्रांति, कर्मकाण्डों पर प्रहार।

मध्यकालीन संत शिरोमणि कबीरदास का स्थान साहित्य में अमर रहेंगे। मध्ययुग में कबीर की आवश्यकता जितनी थी, उससे कहीं ज्यादा आवश्यकता इस अंतरिक्ष तथा तकनीकी युग में है। जो व्यक्ति अपने परिवेश के प्रति सजग रहता है, वही आधुनिक है। कबीर दास अपने युग के प्रति सचेत थे, साथ ही उनकी दृष्टि दूरअंदेशी भी रहीं। वास्तव में जो मृत परम्पराओं, रूढ़ियों को अपने युग जीवन के साथ विचारणा करके, प्राचीन रूढ़ियों को छोड़कर नवीन भाव प्रतिपादित करता है, वही आधुनिक है। इस दृष्टि से यह युग कबीर का युग हैं। कबीर इस धरती के प्राणश्य हैं। वस्तुतः उन्होने वैज्ञानिकता, मानवता, प्रत्यक्ष जीवन और प्रत्यक्ष अनुभूतियों को अपनी सर्जना का आयाम या उपादान बनाया। कबीर सामाजिक चेतना से समाज में फैली रूढ़ियों, आडम्बरों को समाप्त कर एक नई जागृति लाना चाहते थे। कबीर की सामाजिक जागृति का भाव और दार्शनिकता भाव एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। ये जगत, जीव, ब्रहम, माया आदि सभी तत्वों के माध्यम से मानव–मात्र में जागृति लाना चाहते थे। उनका मानना था कि व्यक्ति मात्र के जागृत होने से ही, उन्नत समाज होगा। इसलिए उन्होंने दैवीकरण से उत्पन्न रूढ़ियों को समाप्त करने का संकल्प कर, मानव धर्म की स्थापना पर बल दिया। उनके अनुसार कोई भी धर्म ग्रंथ ईश्वरीय नहीं है। कोई भी महापुरूश ईश्वरीय नहीं हैं। सब कुछ मानव द्वारा निर्मित है। वे शास्त्र वाक्य को नहीं, मानुष वाक्य को मानते है–

''जो मोहि जाने, ताहि मैं जानौं,
लोकवेद का कहा न मानौं।[1]

कबीरदास अपने युग के अग्रदूत रहे हैं। उनकी दार्शनिकता वैश्णवों, सूफियों, नाथों, शैवों, अद्वैतवाद आदि सम्प्रदायों से उसी सार तत्व को ग्रहण करती है, जो मानव मात्र का मार्गदर्शन करता हैं। कबीर विभिन्न सम्प्रदायों से रूढ़ियों भेदभाव को तिरस्कृत कर, विशेष कल्याणकारी सार तत्व को ग्रहण कर सामाजिक चेतना की ओर अग्रसर होते हैं।

संत शिरोमणि कबीरदास का युग वैमनस्य से भरा हुआ था। समाज में मुस्लिम सम्प्रदाय का प्रभाव था। कबीर स्वयं भी हिन्दू–मुसलमान के भेदभाव को झेल रहे थे। 1455 ई0 के लगभग काशी में तालाब किनारे जन्में, संत कवि कबीरदास जाति से जुलाहे थे। लेकिन उनसे दो पीढ़ी पूर्व ही उनके पूर्वज इस्लाम–धर्म कबूल कर चुके थे। लेकिन मुसलमानों का एक वर्ग, कबीर को अवैध सन्तान मानते हुए, उन्हें मुसलमान स्वीकार नहीं करता। बाल्यकाल से ही कबीर के बालमन में हिन्दू–मुसलमान के भेदभाव के प्रति विद्रोह का भाव विद्यमान था, जो कि उनकी वाणियों के माध्यम से मुखरित हुआ।

सामाजिक–दार्शनिक परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत कबीरदास ने सामाजिक जीवन का दार्शनिक अध्ययन किया है। कबीर का समाज–दर्शन अद्वितीय रहा है। सामाजिक सम्बन्धों की व्यवस्था को ही समाज कहते हैं। मानव समाज में सामाजिक संबंधों के बनने बिगड़ने से अनेक सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक समस्याएँ उपजती है। इन सभी समस्याओं का दार्शनिक दृष्टिकोण से हल ढूढ़ना ही समाज दर्शन का कर्तव्य है। समाज का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन समाज–शास्त्र कहलाता है तथा जब दार्शनिक दृष्टि से समाज का अध्ययन किया जाता है, तो वह समाज दर्शन कहलाता है।

कबीरदास का दृष्टिकोण समाज–दर्शन का रहा अर्थात् समाज का सामान्य अर्थ सामाजिक सम्बन्धों का ताना बाना तथा

दर्शन का अर्थ देखना अर्थात तत्व का ज्ञान। दूसरे शब्दों में समाज दर्शन मानव समाज का दार्शनिक दृष्टिकोण से अध्ययन है।
श्री एम. गिंसबर्स के अनुसार – समाज दर्शन का लक्ष्य समाज में मानव व्यवहार के सामान्य सिद्धान्तों को उपस्थित करना है।''[2]
कबीर का दर्शन तत्व दर्शन के साथ–साथ सामाजिक दर्शन भी है। इसी के आधार पर कबीर की सामाजिक–दार्शनिक विचारधारा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के विचार को चरितार्थ करती है। विश्व बन्धुत्व एवं वसुधैव कुटुम्बकब का मुकुट तथा राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय शांति की शुरुआत करने का श्रेय केवल संत शिरोमण कबीरदास को है।
कबीर का शाब्दिक अर्थ ही श्रेष्ठ या बड़ा है। इसलिए कबीर दर्शन भी श्रेष्ठ है। हिन्दी नवरत्न के लेखक मिश्रबन्धुओं के अनुसार – 'ईश्वरीय विचार से आप सबसे ऊँचे मनुष्य है, इसमें संदेह नहीं।[3]

कबीरदास ऐसे निर्गुण निराकार ईश्वर को पूजनीय मानते रहे हैं, जो सर्वव्यापी हैं, जो मूर्ति पूजा तथा कर्मकाण्डो से परे है। कबीर के ईश्वर जनजागृति लाने वाले हैं। समन्वयभाव प्रतिपादित करने वाले हैं।

वस्तुतः कबीर की समाज–सुधार भावना और दार्शनिकता एक–दूसरे के पूरक है। उन्होंने गूढ विषयों को सरल व सहज बनाकर जनता के समक्ष उपस्थित किया। कबीर के दार्शनिक विचारों के संदर्भ में देखा जाए तो कबीर ने एक ऐसे ब्रहम की कल्पना की, जो निर्गुण और सगुण दोनों से परे है।

'निर्गुण सगुण से परे, तहाँ हमारी ध्यान।'[4]
यह अरूप एवं अगोचर है। जिसके प्रकाशरूप का वर्णन अवर्णनीय है–

पारब्रहम के तेज का, कैसा हो उनमान,
कहिबे कूं सोभा नहीं, देख्या ही परवान।।[5]

यह परमतत्व परमात्मा सबके भीतर विद्यमान है, उसे ढूढ़ने के लिए मंदिर मस्जिद की आवश्यकता नहीं, वह घर–घर व्यापी हैं।

'कस्तूरी नाभि बसै, मृग ढूंढे बन माहिं।
ऐसे ही निरगुन राम है, दुनिया देखे नाहिं।।[6]

वस्तुतः कबीर निर्गुण–निराकार राम के स्वरूप के माध्यम से जनता में चेतना जागृत करना चाहते थे। वे हिन्दू–मुसलमान, नाथ, शाक्त, वैष्णव आदि सभी धर्मा से श्रेष्ठ निर्गुण–उपासना को मानते हैं। जिसके लिए व्यक्ति को बाहर नहीं जाना पड़ेगा क्योंकि यह निर्गुण राम मनुष्य के मन में समाया है। उसे व्यक्ति कर्मों की खेती के द्वारा अर्थात अच्छे कर्मों के द्वारा प्राप्त कर सकता है। इसके लिए कबीर व्यक्ति को मन को काबू करने की बात कहते हैं। साथ ही इसके लिए उन्होंने मनुष्य मात्र में नैतिक मूल्यों का होना भी आवश्यक माना है। जब दया, करूणा, परोपकार, सहिष्णुता, अहिंसा, सत्य आदि नैतिक मूल्यों को जीवन में अपनाकर व्यक्ति कर्म क्षेत्र के रूप में, संसार में कार्यरत रहेगा, तो अवश्य ही उसे निर्गुण निराकार ईश्वर के दर्शन मन में ही होगें। इसी संदर्भ में कवि कबीरदास जीव का (आत्मा का) स्वतंत्र अस्तित्व नहीं स्वीकार करते, अपितु उसे परमतत्व परमात्मा का ही एक लघु रूप मानते हैं। इसी कारण कबीरदास ने जीवात्मा को न तो मनुष्य बताया है और न ही देव, न इसे योगी और यतीं कहा न ही इसे अवधूत बताया, न इसे माता कहा और न पुत्र इसे राम नाम का अंश घोषित किया है–

'ना इहु मानसु ना इहु देउ।
ना इहु जती कहावै केउ।
ना इहु जोगी ना अवधूता ।
ना इहु माई ना अवधूता।
कहै कबीर इहु राम को अंसु।
जस कागद पर मिटे न मंसु।।[7]

कबीर का मत है कि केवल माया के वशीभूत होकर ही जीवात्मा संसार में जन्म–मरण के चक्कर लगाती है। वैंसे जीवात्मा परमात्मा का ही एक रूप है। कबीरदास ने जीवात्मा और परमात्मा के अद्वैतभाव को अपनी वाणी के माध्यम से प्रस्तुत किया है। कबीर इस के द्वारा भक्त और भगवान के बीच द्वैत भाव को समाप्त कर दोनों को एकैमेक रूप में देखना चाहते हैं। इसके माध्यम से कबीर सामाजिक जागृति भी करना चाहते हैं। जिस प्रकार आत्मा–परमात्मा दोनों एक है। उसी प्रकार जीवात्मा को भी द्वैत का भाव समाप्त कर मानव मात्र के प्रति दया, करुणा का भाव रखना चाहिए। ईर्ष्या–द्वेश को समाप्त कर एक उन्नत समाज की रचना की जा सकती है। समाज–सुधारक कबीरदास ने द्वेश के भाव को मानव मात्र से तिरोहित करने के लिए ही ब्रहम और जीवात्मा को एक माना। उदाहरण –

''हेरत हेरत हे सखी, रहय कबीर हैरान
बूंद समानी समुद्र में, सो कत हेरी जाई।।[8]

बूंद और समुद्र के द्वारा यह समझाया है कि ब्रहम का साक्षात्कार होने पर आत्मा परमात्मा में पूर्णतः लीन हो जाता हैं। और दोनों में कोई अलग अस्तित्व नहीं रहता।

कबीरदास ने जगत का भी अलग से अस्तित्व नहीं माना। केवल माया के कारण ही जगत की सता दिखाई देती है, अन्यथा जगत मिथ्या है। माया के आवरण में ही इसका अस्तित्व दिखता है क्योंकि जीवात्मा माया के भ्रमजाल में फँसकर ही जगत के आवागमन के चक्कर में लगती रहती है अन्यथा इस जगत का मूल अधिष्ठान भी परब्रहम में ही है। यह सम्पूर्ण संसार मिट्टी के उस घड़े

के समान है, जो फूटकर मिट्टी में ही मिल जाता है। इसी तरह जीवात्मा भी नश्वर शरीर का परित्याग कर अजर–अमर परमात्मा में समा जाती है।

'जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहरि भीतरी पानी।
फूटा कुंभ जल जलहिं समाना, यहुतत कथौ मियानी।।'[9]

कबीर ने जगत को मिथ्या कहकर, इसे 'दुनिया भाँडा, दुःख' कहकर इसकी नश्वरता की ओर संकेत कर कहा – 'दिवस, चारिका, पेषणां, विनसि जाइगा काल्हि।' इस संसार की नश्वरता का बखान कर कबीर ने ब्रहम सता को सर्वोपरि माना। ब्रहम का ज्ञान होते ही माया का आवरण हट जाता है और फिर ब्रहम की ही सता रह जाती है।

जगत के साथ कबीरदास ने माया को ईश्वर को एक रहस्यमयी शक्ति माना है, जो विश्वमयी नारी के रूप में सम्पूर्ण जीवों को ठगती है। संसार को मोह में फंसाकर आवागमन के चक्कर लगाए रखती है। काम, क्रोध, मोह, मद और लोभ इसके पांच मुँह है, जो जीवात्मा को सदैव सताते हैं, नाना प्रकार के नाच नचाते रहते हैं। इसे कबीर ने 'रमैया की जोरू' कहा है, जिसने सारे संसार को लूट लिया है। यह बड़ी मीठी है, ठगनी है–

'कबीर माया मोहनी, जैसे मीठी खाँड।
सतगुरु की किरपाभई, नहीं तो करती भांड।।[10]

इस तरह कबीर ने माया को वेदान्त की अविद्या की भांति निरूपित किया है जो त्रिगुणात्मकता है, संसार को भ्रमित करने वाली है तथा जो 'कनक और कामिनी' के रूप में प्रकट होकर जीवात्मा को परमात्मा से अलग करती रहती है।

देखा जाए तो कबीरदास के दार्शनिक विचार अद्वैतवादी वेदान्त दर्शन से अत्यधिक प्रभावित है। जिसका उद्देश्य समाज–सुधार का है। चाहे ब्रहम हो, जीव हो, या जगत तथा माया आदि सभी दार्शनिक विचारधारा के तत्व कही–न–कहीं सामाजिक जागृति लाना चाहते हैं।

मानवता के भाव को जागृत कर अच्छे कर्मों पर बल देकर सदाचार पूर्ण, संयमित शुद्ध आचरण द्वारा तटस्थ मनुष्य सुख–दुख से ऊपर उठकर ग्रहस्थ रहते हुए भी वैराग्य संतों जैसा जीवन यापन करें। कबीर का दृष्टिकोण सन्यासी हो जाना नहीं है, अपितु ग्रहस्थ आश्रम का पालन करते हुए सद्कर्म करना रहा है। जिसमें उनकी दार्शनिक विचारधारा का सहयोग रहा है। वे विशुद्ध भक्त नहीं अपितु, अपनी निर्गुण–निराकार भक्ति द्वारा सामाजिक चेतना लाना चाहते है।

''हम सब मांहि, सकल मांहि, हम है और दूसर नाही ।
तीनों लोक में हमर पसार, आवागमन यह खेल हमार।।'' [11]

कबीर दास की वाणी क्रांतिकारी विद्रोही रही है। यह उस युग की आवश्यकता थी। साथ ही कबीरदास का जन्म ऐसे मुस्लिम युग में हुआ, जहाँ ऊँच–नीच का भेद तीव्रतर रूप में विद्यमान था। कबीरदास जाति के जुलाहे थे, लेकिन उनसे पूर्व एक दो पीढ़ी पूर्व ही उनके पूर्वज मुसलमान धर्म को कबूल कर चुके थे। लेकिन मुसलमान मौलवियों ने कबीर का जन्म के समय 'खतना करना मंजूर नहीं किया। मुसलमानों के एक बड़े वर्ग का मानना था कि कबीर मुसलमान नहीं है, वह एक अवैध संतान है। कबीर ने बचपन से ही ऐसे भेदभाव पूर्ण माहौल का सामना किया, जो निरन्तर कबीर की वाणी के माध्यम से मुखरित है। कबीरदास कहते हैं–

'जे बाहमन तू बाहमीं जाया, तो हवै मारग क्यों न आय।[12]

यह जाँति–पाँति पर कटाक्ष कबीर ने स्वंय झेला था। इसलिए उनकी वाणी से जाति–पाति, ऊँच–नीच, छुआछूत, अस्पृश्यता आदि के प्रति तीव्र आक्रोश है।

'जाति न पुछो साध की, पूछ लीजियो ज्ञान।
मौल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान।।'' [13]

कबीर मनुष्य को प्रधानता देते हैं, शास्त्र को नहीं ।

''वेद कुरान सब झूठ है. इसमें हमने पोल देखा।।
अनुभव की बात कहे, कबीर घट का परदा खोल देखा।।'' [14]

कबीर मनुष्य की समय मुक्ति को ही वाणी देते हैं। मानव मन को बदलने के लिए कबीर की क्रांति चेतना का आधार है।

'मन न रंगाये, रंगाये जोगी कपड़ा।' [15]

कबीर दास अन्यन्त्र कहते हैं–

'माला फेरत जुग भया, भया न मनका फेर,
करका मनका डार दे, मनका–मनका फेर।।[16]

कबीरदास तीव्र रूप से कर्मकाण्डों पर प्रहार कर एकता स्थापित करना चाहते हैं। वे हिन्दू–मुसलमान दोनों पर प्रहार कर कहते हैः–

'पत्थर पूजे, हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहार,
ताते तो चक्की भली, पीस खाये संसार।।'' [17] (हिन्दुओं पर कटाक्ष)

कांकर पाथर जोरि के, मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, कै बहरा हुआ खुदाय।'' [18] (मुसलमानों पर कटाक्ष)

जाति–पाति का समन्वय स्थापित करने के साथ–साथ कबीरदास मध्यम मार्ग के अनुसरण पर भी बल देते हैं। वे न तो कठोर तप करने का रास्ता बताते है न भोग विलास का। बीच का मार्ग अपनाकर ग्रहस्थ जीवन में संतुलन स्थापित करने के लिए कह उठते है–

'साई इतना दीजिए, जा में कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाए।।[19]

वास्तव में यह संतुष्टि का भाव आज के वैज्ञानिक तकनीकी युग की

आवश्यकता बन गया है। आज का व्यक्ति असंतोष के भाव से पीड़ित है। इसलिए आज अपराधिक प्रवृतियाँ समाज में बढ़ती जा रही है। साथ ही व्यक्ति को मानसिक रूप से भी नैराश्य की ओर से जाकर आत्महत्या जैसे जघन्य अपराध के लिए प्रेरित कर रहा है। वास्तव में कबीरदास का दृष्टिकोण दूरदर्शी था इसलिए ये मनुष्य को प्रेम का ढाई अक्षर सिखाने में लगे थे।

''पोथी पढ़ पढ़ जग भया, पंड़ित भया न कोय।
ढ़ाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।[20]

इस तरह कबीर अपने आप को ज्ञानी कहने वाले पड़ित लोगों पर कटाक्ष भी करते हैं। साथ ही प्रेम भाईचारे के भाव को भी महत्व देते हैं।

कबीरदास के उपदेश शाश्वत मूल्यों से अनुप्राणित है। उनके उपदेश सार्वभौमिक सत्य के रूप में ग्राहय है। मानव धर्म कोई धर्म नहीं होता। विभिन्न सम्पद्राय, धर्म विभिन्न परिस्थितियों से गुजर कर एक ही ज्योति–स्वरूप परमात्मा से जन्मे है। उनमें न कोई ब्राहमण है , न शुद्र, न हिन्दू, न तुर्क–

'कहै कबीर एक राम जपु हरे, हिन्दू तुरक न कोई'। [21]

कबीर धार्मिकता को महत्व देते हैं, सामप्रदायिकता को नहीं। धर्म भी मानव–धर्म, मानव कल्याणकारी धर्म। कबीरदास मध्यकालीन संत काव्य के नक्षत्र रहे है। उन्होंने व्यक्ति की आत्मानुभूति को आवश्यक मानते हुए, तुच्छता के भाव को सर्वोपरि माना–

''लघुता से प्रभुता मिले, प्रभुता से प्रभु दूरि।[22]

कबीरदास अर्न्तज्ञान को सार्थक मानते हैं–

'आत्म ज्ञान बिन सब सूना क्या मथुरा क्या कांसी।।' [23]

कबीरदास स्वयं जातिवाद का दंश झेल चुके थे। इस लिए प्रेम पंथ, जो समाज–सापेक्ष हो, पर जोर देते हैं। इसके लिए अंहकार का त्याग करने, धार्मिक आडम्बरों से रहित, सहज भाव से प्रयास करते हुए कर्मयोगी बनने को कहते हैं–

कबीर एक न जान्या, तो बहु जान्या क्या होई,
एक तै सब होत है, सब ते एक न होई।। 24

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में–

इसमें कोई संदेह नहीं कि कबीर ठीक मौके पर मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न वर्ग की जनता में उन्होंने आत्म–गौरव का भाव जगाया और उसे भक्ति के ऊंचे से ऊंचे सोपान की ओर बढ़ने के लिए बढ़ावा दिया।''[25]

कबीर ऐसे कवि है, जिन्होंने समन्वय को बढ़ावा दिया। उन्होंने समाज के अधिकार, वंचित शोषित और निर्धन वर्ग के लोगों को आत्मगौरव प्रदान किया। जिससे समाज से समरस्ता स्थापित हो सके। कबीर की शिक्षा आज भी उतनी ही सार्थक है जितनी उनके समय थी। जीवन सत्य की सार्थकता को सिद्ध करने के लिए ये सदा समाज के बीच रहे। उनके अनुसार समाज ही स्वयं सबसे बड़ा शिक्षक है। यह काम न तो योगी बनकर, न समाधि लगाकर, अपितु संसार में रहकर ही मन को जीता जा सकता है –

'साधु कदलां जल मांहि'।
जल में रहा सदा–सर्वदा जल स्पर्श नाहि।। [26]

कबीरदास ने संतोष को परम धन मानकर रूखी–सूखी रोटी खाकर शांतिपूर्वक जीने की प्रेरणा दी।

'रुखा सूखा खाई के ठण्डा पानी पीव।
देख पराई चूपड़ी, मत ललचावे जीव।। [27]

कबीरदास धनसंग्रह को भी ठीक नहीं मानतें –

'उदर समाता अन्न ले, तन ही समाता चीर।
अधिका संग्रह ना करे, ताका नाम फकीर ।। [28]

''सादा जीवन उच्च विचार'' के प्रेरक रूप में संत कवि कबीरदास जाने जाते हैं। संत कबीर ने तत्कालीन समाज का प्रतिनिधित्व करते हुए काव्य को सामाजिक विषमताओं के परिहार के लिए हथियार बनाया। वह न तो काव्य के मर्मज्ञ थे, न अंलकारों के आचार्य। उन्होंने आम आदमी की भांति सहज भाव से कहा है–

'मसि कागज छुऔ नहीं, कलम गहीं नहीं हाथ।।[29]

कबीरदास जी मानव धर्म के प्रचारक थे, इसलिए उन्होंने अपनी सम्पूर्ण दार्शनिक विचारधारा में भी समाज का जो आंकलन किया, उसका उद्देश्य सामाजिक चेतना लाना रहा। कबीरदास के समय समाज में हिन्दू–मुसलमानों का वैमनस्य विद्यमान था। देश में नाना भांति की साधनाएँ विद्मान थी। कबीर नें निर्गुण राम का वर्णन किया। इसका यह अभिप्राय नहीं कि वे सगुण परमात्मा को निस्सार रहे हैं, अपितु उनका उद्देश्य समाज में संतुलन स्थापित करना था। आज भी बहुत से मठाधीशों, महन्तो ने देश में असंतुलन बना रखा है। जाँति–पाँति, लूट–हत्या, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, भाई–भतीजावाद आदि की आग में देश जल रहा है। आज आवश्यकता है, धार्मिक बंधनों को तोड़कर समन्वय के भाव को जागृत करने, जन सेवा, जन–जागरणों की आवश्यकता है। आज देश आर्थिक विषमता की लड़ाई से भटककर जातीय संघर्ष में उलझा हैं कबीर ने सही कहा–

''एके जनी जना संसारा, कौन ज्ञान से भयो निवारा।
एकै तुचा हाड़ मल मूत्रा, एक रूधिर एक गूदा।।'' [30]

इसी तरह ईश्वर, अल्लाह, सिक्ख, ईसाई के नाम पर हमें अलग नहीं रहना चाहिए–

'भाई रे दुई जगदीश कहां ते आया।
कहु कौने बौराया।

आराला राम करीया कैसो।
हरि हजरत नाम धराया।।
गहना एक कनक ते गहना।
या में भाव न दूजा ।।
कहन सुनन को दुद करिथापे,
एक निमाज एक पूजा।।[31]

डॉ. ताराचंद ने ठीक ही कहा है, 'प्रेम के ऐसे धर्म का जो सभी धर्मों और जातियों को संगठित कर दें, का प्रचार करना ही कबीर के जीवन का लक्ष्य था। उन्होंने हिन्दूत्व एवं इस्लाम के तत्वों को जो कि आध्यात्मिक कल्याण के नहीं थे, अस्वीकार कर दिया।[32]

कबीर भावुक थे इसलिए उनसे समाज की यह दशा देखी नहीं गई। वे अहिंसक क्रांति की भावना द्वारा राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक सभी क्षेत्रों में एक क्रांति पैदा करना चाहते थे। उनके पास क्रांति का अस्त्र व्यग्यं था। इसीलिए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है–

'हिन्दी में आज तक ऐसा जबरदस्त व्यंग्य लेखक पैदा ही नहीं हुआ'।[33]

वस्तुतः कबीरदास ने तत्कालीन समाज में व्याप्त धर्म की अकर्मण्यता से समाज को हटाकर उसे सहज बनाकर कर्मशील बनाया। श्रीमद्भगवतगीता की तरह कबीरदास ने सदैव अपनी वाणियों के माध्यम से सुप्त, त्रस्त भारतीय जनता को कर्मशीलता का पाठ पढ़ाते रहे हैं। सही अर्थों में कबीरदास एक सच्चे समाज सुधारक और दार्शनिक विचारधारा के प्रतिपादक थे।

यह कहा जा सकता है कि कबीर का समाज दर्शन मूलतः अध्यात्म दर्शन होने के बावजूद समाज के जिन आयामों की और संकेत करता है, वे संकेत आज की दुनिया में धर्मभेद, जातिभेद, देशभेद, राष्ट्रभेद तथा युद्ध की भयावहता से आक्रांत मानव जाति के लिए कितने प्रांसगिक, ग्रहणनीय तथा अर्थवान है।

कबीरदास के सदगुरु रामानन्द ने कबीर को भक्ति रूपी रसना दी, जिसे पीकर उन्होंने न केवल समाज को चेताया, अर्पितु परम–तत्व की प्राप्ति तथा मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग भी जनता को दिखलाया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के विषय में कहा है–

'कबीरदास का रास्ता उलटा था .... वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे, हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे, वे साधु होकर भी साधु (अग्रहस्थ) नहीं थे, वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे, योगी होकर भी योगी नहीं थे। वे कुछ भगवान की ओर से सबसे न्यारे बनाकर भेजे गए थे।

सत्य के दृष्टा कबीर असत्य का मायाजाल देख सकते थे, ज्ञानदीप से ज्योतित कबीर अज्ञान का अंधकार भगा सकते थे। अहिंसा के पुजारी कबीर हिंसा का रास्ता रोक सकते थे, मानवतावादी कबीर ही समानता के लिए लड़ाई लड़ सकते थे। लगभग 600 वर्ष पूर्व कबीर ने जिस लड़ाई की शुरुआत की थी, वह आज भी खत्म नहीं हुई है। कबीर के विरोध के बावजूद न मंदिरों का बनना रुका, न मस्जिदों, न ही हिन्दू–मुसलमान एकता कायम हुई। न मूर्ति पूजा रुकी, न नमाज पढ़ना, न जात–पात के झगड़े खत्म हुए, न जीव हत्या बंद हुई। न ही वर्ण–व्यवस्था समाप्त हो सकीं। कबीर जिस वर्ण व्यवस्था का आधार कर्म को बनाना चाहते थे, वह न बन सकी। आज भी अभिजात्य वर्ग और निम्न वर्ग की खाई समाज में ज्यों की त्यों बनी हुई। हालांकि गांधी जी ने निम्न जाति को 'हरिजन' शब्द देकर इस खाई को पाटने की कोशिश की, लेकिन वे नाकाम रहे। आज भी जातीय दंगे समाज में यत्र–तत्र होते रहते हैं। आज भी वर्ण के आधार पर एक विशेष वर्ण के व्यक्ति केवल अपने ही वर्ण, सम्प्रदाय के हितों को सर्वोपरि रखकर कार्य करते हैं। जो समाज के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करते हैं, जिससे भाई–भतीजावाद, भ्रष्टाचार आज के समाज में घातक रूप लेता जा रहा है। आज हमें आगे बढ़कर कबीर द्वारा दी गई, अहिंसक क्रांति की मशाल को दोबारा जलाना होगा। जिससे समाज में समन्वयक स्थापित हो सके। साथ ही कबीर की दार्शनिक विचारों को अपनाकर, आध्यात्मिक भाव को भी सामाजिक कल्याण के लिए उपयोग में लाना होगा।

निष्कर्षतः कबीर युग चेता, क्रांतिकारी, समाज सुधारक, दार्शनिक विचारधारा में भी मानवतावादी दृष्टिकोण वाले सशक्त मध्यकालीन नक्षत्र रहें। वे आज भी अपनी वाणियों के माध्यम से हमारे बीच जीवित है। वैसे भी एक साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से सदा अमर हो जाता है। संत शिरोमणि कबीरदास भी ऐसे ही देदीप्यमान नक्षत्र है, जो सदा अमर है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'कबीर समस्त बाहयचारों के जंजालों और संस्कारों को विध्वंस करने वाले क्रांतिकारी थे।' 35

आज भी ऐसे ही क्रांतिकारी की आवश्यकता है, जो समाज में फैले धार्मिक वैमनस्य को समाप्त कर सामंजस्य स्थापित कर सके। संत कबीरदास की सामाजिक दार्शनिक विचारधारा ने मध्यकालीन समाज के साथ–साथ आज के युग का भी मार्गदर्शन किया।

संदर्भः

1.कबीर ग्रंथावली– सं. श्यामसुन्दर दास, पृ. सं. 2 (भूमिका)
2.समाज दर्शन का परिचय और गाँधी जी–डॉ.हरि सिंह, निर्मल प्रकाशन, पृ.सं.3

3.कबीर का सच – डॉ. इन्द्र सेंगर, पृ.सं. 24

4. कबीर ग्रंथावली – सं. श्यामसुन्दर दास, पृ.सं. 21

5.– वही पृ.सं. 30

6.– वही पृ.सं. 35

7.– वही पृ.सं. 61

8.– वही पृ.सं. 69

9.– वही पृ.सं. 33

10.– वही पृ.सं. 64

11.– वही पृ.सं. 75

12.– वही पृ.सं. 80

13.– वही पृ.सं. 82

14.– वही पृ.सं. 70

15.– कबीर ग्रंथावली – सं. श्यामसुन्दर दास, पृ.सं. 72

16.– वही पृ.सं. 67

17.– वही पृ.सं. 78

18.– वही पृ.सं. 36

19.– वही पृ.सं. 99

20.– वही पृ.सं. 79

21.– वही पृ.सं. 80

22.– वही पृ.सं. 89

23.– वही पृ.सं. 24

24.– वही पृ.सं. 37

25. हिन्दी साहित्य का इतिहास– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं. 78–79

26. कबीर ग्रंथावली – सं. श्यामसुन्दर दास. पृ.सं. 104.

27. कबीर ग्रंथावली – सं. श्यामसुन्दर दास. पृ.सं. 96

28. कबीर ग्रंथावली – सं. श्यामसुन्दर दास. पृ.सं. 91

29. कबीर ग्रंथावली – सं. श्यामसुन्दर दास. पृ.सं. 82

30 कबीर ग्रंथावली – सं. श्यामसुन्दर दास. पृ.सं. 85

31. कबीर ग्रंथावली – सं. श्यामसुन्दर दास. पृ.सं. 150

32. नई सदी में कबीर– सं. डॉ. एम. फिरोज खान पृ. सं. 69

33. कबीर– आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं. 130

34. वही पृ.सं. 108

35. वही पृ.सं. 107

डॉ० आशा रानी

हिंदी विभाग

टीका राम कन्या महाविधालय

सोनीपत

546, गली न० 6,

न्यू कोर्ट रोड, अशोक विहार

सोनीपत – 131001